भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन
और
हिन्दी-साहित्य

[प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल्० उपाधि के लिए]
स्वीकृत शोध-प्रबंध

डॉ० कीर्तिलता, एम० ए०, डी० फिल्०

१९६७
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन

और

हिन्दी-साहित्य

[प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल्० उपाधि के लिए]

स्वीकृत शोध-प्रबंध

डॉ० कीर्तिलता, एम० ए०, डी० फिल्०

१९६७

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

प्रकाशक—
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
१९६७
मूल्य १५·०० रुपया

मुद्रक—
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

अपने स्वर्गीय पति को

प्रकाशकीय

भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन, भारत के इतिहास की ही नहीं वरन् विश्व-इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है—अभूतपूर्व इस कारण कि भारत के स्वातंत्र्य आन्दोलन के लिए भारतीय महापुरुषों ने जो पद्धति अपनाई थी, वह संसार के अन्य देशों की दृष्टि में अनोखी थी। यह अनोखापन इस देश की जातीय संस्कृति की उपज थी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वातंत्र्य आन्दोलन देश का जीवन-दर्शन बन गया था। अतः साहित्य-सर्जन में उक्त आन्दोलन का प्रभाव पड़ना सहज ही था। स्वातंत्र्य आन्दोलन के प्रभाव में एक विशाल साहित्य का निर्माण हुआ और उसे 'राष्ट्रीय आन्दोलन का साहित्य' नाम से अभिहित किया गया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का क्रमिक विकास और स्वातंत्र्य आन्दोलन की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति वस्तुतः दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन हिन्दी साहित्य की अनिवार्य पृष्ठभूमि है। यह सन्तोष का विषय है कि डॉ० कीर्तिलता ने अत्यन्त परिश्रम के साथ इस वृहद् अध्ययन को शोध-ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया है, जिस पर उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की उपाधि मिली है। डॉ० कीर्तिलता का यह अध्ययन वास्तव में प्रशंसनीय है।

साहित्य के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ का समादर विद्वानों और सुधीजनों के बीच समान रूप से होगा।

उमाशंकर शुक्ल
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद।
जून, १९६७

विषय-सूची

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

परिचय

इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ में सुयोग्य लेखिका ने समकालीन हिन्दी साहित्य पर भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन (१८८५-१९४७) के प्रभाव का विस्तृत तथा वैज्ञानिक अध्ययन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहले अध्याय में १८८५ से १९०५ तक के प्रारंभिक राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उससे प्रभावित हिन्दी साहित्य का विवेचन है। अगले अध्याय में १९०५ से १९१८ तक के हिन्दी साहित्य की समीक्षा है जो बंगभंग आन्दोलन तथा प्रथम महायुद्ध काल में लिखा गया था। तीसरे अध्याय में १९१८ से १९२८ तक असहयोग आन्दोलन द्वारा प्रेरित हिन्दी साहित्य की आलोचना है। चौथे अध्याय का विषय सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा समकालीन हिन्दी साहित्य (१९२८-३८) है। पाँचवें अध्याय में १९३८ से १९४२ तक के अन्तिम राष्ट्रीय संघर्ष और तत्कालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख है। अन्तिम छठे अध्याय में १९४२ से १९४७ तक की स्वराज्य पूर्व की राजनीतिक परिस्थिति तथा तत्कालीन हिन्दी साहित्य की विशेषताओं की समीक्षा है। ग्रंथ के प्रारंभ में एक विस्तृत भूमिका में १८०० से १८५७ तक की राजनीतिक पृष्ठभूमि तथा उसके उपरान्त १८५७ से १८८५ तक के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभिक स्वरूप का व साथ ही १८८५ से पूर्व के हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि विषय का विवेचन अत्यन्त विस्तृत और क्रमबद्ध है और विषय के सभी पहलुओं पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। लेखिका ने इस काल के समस्त साहित्य का तथा साथ ही भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन के इतिहास का स्वयं अध्ययन किया। अतः प्रस्तुत अध्ययन ठोस सामग्री पर आधारित है। सामग्री की परीक्षा करने और निष्कर्ष निकालने में तटस्थता और वैज्ञानिकता के दृष्टिकोण पर लेखिका ने निरन्तर ध्यान रक्खा है। इस प्रकार यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य और आधुनिक भारतीय इतिहास दोनों ही विषयों के विद्यार्थियों, विद्वानों तथा पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन पर विदुषी लेखिका को मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

धीरेन्द्र वर्मा

पचमढ़ी

१० जून, १९६७।

प्राक्कथन

भारत का स्वातंत्र्य आन्दोलन केवल राजनीतिक नहीं था। उसका मुख्य लक्ष्य स्वतंत्रता-प्राप्ति अवश्य था, परन्तु इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसका रूप राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का हो गया था। यह तथ्य सर्वविदित है कि ह्यूम साहब काँग्रेस का ध्येय केवल सामाजिक सुधारों तक सीमित रखना चाहते थे और लार्ड डफ़रिन की सम्मति से ही उन्होंने इस संस्था को राजनीतिक रूप दिया था। प्रारंभ में काँग्रेस अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में अपनी सहयोगी संस्था के रूप में सामाजिक कान्फ्रेंस का भी अधिवेशन किया करती थी। १९१७ ई० में ही काँग्रेस ने दलित जातियों की कठिनाइयों को दूर करने तथा स्त्रियों के मताधिकार के संबंध में प्रस्ताव पास किये थे। १९२८ ई० में सामान्यरूप से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रस्ताव भी पास हुआ। अस्पृश्यता-निवारण तथा स्त्रियों की बाधाओं को दूर करना काँग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम के महत्त्वपूर्ण अंग थे।

शिक्षा और भाषा की समस्या भी राजनीति से सम्बन्धित रही है। १९०८ ई० में ही निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए काँग्रेस ने प्रस्ताव पास किया तथा कलाकौशल सम्बन्धी शिक्षा के विषय में भी रुचि ली। बहिष्कार आन्दोलन में सरकारी स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार किया गया और राष्ट्रीय विद्यापीठ स्थापित किये गये जिनमें भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दिया जाना निश्चित हुआ।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की विशेषता यह भी रही कि यह निःशस्त्र और अहिंसात्मक था तथा उच्चकोटि की नैतिकता उसकी आधारभूमि थी। काँग्रेस ने देश की नैतिक समस्याओं में प्रारम्भ से ही रुचि ली। १९०० ई० में ही काँग्रेस ने मद्य-निषेध के संबंध में प्रस्ताव पास किया। राज्य-नियंत्रित वेश्यावृत्ति की समाप्ति के लिए भी काँग्रेस ने प्रयत्न किया। सत्याग्रह के समय सत्याग्रहियों के लिए अहिंसा, सत्य और हिन्दू-मुसलिम एकता में विश्वास करना आवश्यक माना गया। मद्यनिषेध- आन्दोलन को रचनात्मक कार्यक्रम का एक

अंग बनाया गया। इस प्रकार देश की नैतिक अवस्था का भी राष्ट्रीय आन्दोलन से विशेष संबंध रहा।

काँग्रेस प्रारम्भ से ही, शासन संबंधी सुधारों के साथ-साथ आर्थिक सुधारों की भी माँग करती आयी थी। ये सुधार सैनिक-खर्च, सरकारी नौकरियों, लगान, अकाल, रोग, जंगलों के कानून, नमक-कर, किसानों की कर्ज़दारी आदि अनेक विषयों से संबंधित थे। स्वदेशी और बहिष्कार जैसे आर्थिक आन्दोलनों को राजनीतिक अस्त्र के रूप में स्वीकार किया गया। आन्दोलन के अंतिम वर्षों में ग्रामोद्योग, चर्खा और खादी, राजनीति में कितने महत्त्वपूर्ण हो गये थे, यह सर्वविदित है। मज़दूरों और किसानों की समस्यायें भी राजनीति में महत्त्वपूर्ण रही हैं। स्वशासन जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों से लेकर तीसरे दर्जे की रेलयात्रा की स्थिति में सुधार जैसे साधारण विषयों तक को राष्ट्रीय-आन्दोलन में सम्मिलित किया गया।

इस प्रकार भारत का राष्ट्रीय-आन्दोलन अनेकमुखी रहा और फलस्वरूप इस आन्दोलन से प्रभावित हिन्दी-साहित्य के प्रस्तुत अध्ययन में मात्र-राजनीतिक भावनाओं से संबंधित विषयों का विवेचन न करके सामाजिक, नैतिक तथा आर्थिक सुधार और उन्नति सम्बन्धी विचारधारा को भी राष्ट्रीय-आन्दोलन के प्रभाव का अंग मानना पड़ा है और सीमित राजनीतिक दृष्टि-कोण न लेकर व्यापक दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य पर विचार किया गया है।

१८८५ ई० में इण्डियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना हुई तथा १९४७ ई० में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की। इसीलिए इन दोनों तिथियों से क्रमशः अध्ययन का प्रारम्भ और अंत किया गया है। अध्यायों के विभाजन में भी कालक्रम का अनुसरण किया गया है और राजनीति की प्रमुख घटनाओं तथा विचार-धाराओं को आधार बनाया गया है। १९०५ ई० में बंग-भंग की महत्त्वपूर्ण घटना और फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा तथा बहिष्कार आन्दोलन के कारण तथा १९१८ ई० में प्रथम महायुद्ध की समाप्ति और उसके बाद जलियानवाला बाग के हत्याकाँड और असहयोग के कारण, प्रथम दोनों अध्यायों की विभाजन रेखाएँ ये तिथियाँ ही रक्खी गई हैं। १९२९ ई० में काँग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता हो जाने के कारण १९२८ ई० को तीसरे अध्याय की विभाजन-तिथि माना गया है। इसके उपरान्त १९३८ ई० में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति, १९४२ई० में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तथा १९४७ ई० में स्वतन्त्रता प्राप्ति के कारण इन तिथियों के अनुसार अध्यायों का विभाजन किया गया है। १८८५ ई०

से पूर्व के साहित्य के अध्ययन को भी आन्दोलन की पूर्वपीठिका के रूप में भूमिका में, सम्मिलित कर लिया गया है। १८८५ ई० के पूर्व भारतेन्दु-साहित्य की रचना हो चुकी थी तथा भारतेन्दु-युग के अन्य लेखकों की केवल कुछ रचनायें ही प्रकाशित हुई थीं, अतः यह एक प्रकार से भारतेन्दु-साहित्य का विवेचन ही हो गया है।

आलोच्यकाल की प्रत्येक पुस्तक का रचनाकाल ज्ञात करने में बहुत कठिनाई हुई। कुछ पुस्तकें तो संग्रह-ग्रन्थ हैं जिनके प्रत्येक निबन्ध, कहानी अथवा कविता का रचनाकाल ज्ञात कर सकना असंभव प्रतीत हुआ। इसीलिए प्रथम प्रकाशन की तिथियों के आधार पर ही साधारणतया पुस्तकों का विभाजन किया गया है। जहाँ पुस्तकों का प्रकाशन साहित्यकार की निधन-तिथि के उपरान्त हुआ है, वहाँ उन पुस्तकों का उल्लेख निधन-तिथि के पूर्व ही कर दिया गया है। इसी प्रकार मानसरोवर (आठ भाग) की कहानियों का विवेचन भी दो अध्यायों में विभाजित करना पड़ा है।

१८८५ ई० से १९४७ ई० तक के हिन्दी साहित्य के अध्ययन में आधुनिक-काल का सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य समाविष्ट होना चाहिए किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से केवल प्रमुख साहित्यकारों की रचनाओं तक ही अध्ययन को सीमित करना पड़ा; क्योंकि आधुनिक-काल का सम्पूर्ण साहित्य परिमाण में इतना अधिक है कि उसका विस्तृत अध्ययन संभव नहीं था, दूसरे उसके अध्ययन से किन्हीं नये निष्कर्षों के प्राप्त होने की संभावना नहीं थी। भारतेन्दु-युग के लेखकों की कुछ कृतियाँ दुष्प्राप्य होने के कारण अध्ययन में सम्मिलित नहीं की जा सकीं। कुछ लेखकों की जन्म-तिथियाँ भी प्राप्त नहीं हो सकीं, अतः पुस्तक सूची में उन्हें अनुमान से स्थान देना पड़ा। प्रस्तुत अध्ययन की इन सीमाओं का यहाँ उल्लेख कर देना मैंने आवश्यक समझा।

आधुनिक युग के हिन्दी साहित्य पर बहुत कार्य हो चुका है। डॉ० वार्ष्णेय का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१८५०-१९०० ई०), डॉ० श्रीकृष्ण लाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' (१९००-१९४७ ई०), आधुनिक-काल के सम्पूर्ण साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि धाराओं के भी इधर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं। इस अध्ययन में केवल राष्ट्रीय आन्दोलन की दृष्टि से आधुनिक-काल के साहित्य का अध्ययन तथा विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यही इस प्रबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता है।

अपने गुरु और निर्देशक डॉ० धीरेंद्र वर्मा के प्रति आभार प्रकट करना धृष्टता होगी परन्तु उनके सतत प्रोत्साहन तथा निर्देशन के अभाव में इस कार्य का समाप्त होना असंभव था। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की मैं आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत अध्ययन की विषय-सूची देखने का कष्ट स्वीकार किया तथा इस संबंध में अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये। अपने गुरुओं डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा डॉ० रघुवंश से भी मुझे समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श मिलते रहे हैं जिनके लिये मैं उनकी कृतज्ञ हूँ। प्रयाग विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पुस्तकालयों के अधिकारियों ने मुझे समस्त सुविधायें प्रदान की हैं। उनके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ।

जून १९६७ कीर्तिलता

संक्षेप-सूची

ज०	— जन्म
तृ०भा०	— तृतीय भाग
द्वि०	— द्वितीय
प्र०	— प्रकाशन काल; प्रथम
प्र० भा०	— प्रथम भाग
पृ०	— पृष्ठ
पृ० सं०	— पृष्ठसंख्या
भा० ग्र०	— भारतेन्दु-ग्रन्थावली
भा० ना०	— भारतेन्दु नाटकावली
र०	— रचनाकाल
ले०	— लेखक

भूमिका

राजनीतिक पृष्ठभूमि

१८००-१८५७ ई०

इंगलैंड की ईस्ट इंडिया कम्पनी ने किस प्रकार व्यापारिक उद्देश्य से भारत में प्रवेश किया यह सर्वविदित है। उस समय मुगल सम्राट् पूर्ण अर्थों में सम्राट् थे अतः यहाँ की राजनीति में अंगरेज़ों का कोई हाथ न होना स्वाभाविक था। लन्दन के जिन व्यापारियों ने सन् १६०० ई० में महारानी एलिज़बेथ से भारत में व्यापार करने की अनुमति माँगी, उन्होंने स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल रहे थे। क्रमशः ईस्ट इंडिया कम्पनी की शक्ति बढ़ती गई। सूरत, आगरा, अहमदाबाद तथा ब्रोच में फैक्टरियाँ स्थापित हो गईं। बम्बई चार्ल्स द्वितीय को विवाह में दहेज के रूप में मिला जो कम्पनी को दे दिया गया। १६६१ से १६८३ ई० के बीच चार्ल्स द्वितीय से कम्पनी को ५ चार्टर प्राप्त हुए जिनसे कम्पनी व्यापारिक संस्था से भौमिक शक्ति बन गई। कम्पनी को कालांतर में सेना-संचालन, युद्ध और सन्धि करने तथा सिक्के बनाने का अधिकार भी मिल गया। नवीन नीति में कम्पनी का ध्येय व्यापारिक उन्नति के साथ-साथ माल-

गुज़ारी बढ़ाना भी हो गया। प्रारम्भ में नील, चीनी, लाख, सूत तथा सूती कपड़ों का व्यापार मुख्यतः होता था। धीरे-धीरे रेशम, रेशमी कपड़ों, मसालों, मलाबार की मिर्चों आदि का भी व्यापार होने लगा। अंग्रेजों का उद्देश्य भारत के शासन और व्यापार दोनों को हस्तगत करना था। शासन-सूत्र ब्रिटेन के राजा के हाथ में चले जाने के बाद भी शासकों ने भारत से होने वाले व्यापारिक लाभ पर विशेष रूप से दृष्टि रक्खी। इसी का फल यह हुआ कि ब्रिटिश शासन में होने वाली देश की आर्थिक अवनति, उद्योग-धंधों और कला-कौशल के विनाश आदि की ओर प्रारम्भिक राजनीतिकों का बहुत ध्यान गया और काँग्रेस में इस सम्बन्ध में निरन्तर प्रस्ताव पास हुए थे। १७ वीं शती के अन्त तथा १८ वीं शती के प्रारम्भ में कम्पनी के व्यापार में स्वयं इंगलैंड के व्यक्तियों ने आपत्ति उपस्थित की क्योंकि भारत की वस्तुएँ इतनी अधिक पसन्द की जाती थीं कि उनके सामने इंगलैंड की बनी वस्तुओं की बिक्री में कठिनाई होती थी। १८०० ई० में भारत के उद्योग-धंधों की ऐसी स्थिति थी और दो सौ वर्षों के उपरान्त ही देश की इतनी अवनति हुई कि कांग्रेस को देश की औद्योगिक उन्नति के संबंध में बार-बार प्रस्ताव पास करने पड़े तथा ब्रिटिश माल की खपत इतनी अधिक हो गयी कि जनता ने बंग-भंग के प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए विदेशी माल के बहिष्कार की नीति अपनाई। क्रमशः अंग्रेजों ने भारत के व्यापार में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। विलियम बोल्ट्स ने १७७२ ई० में लिखा कि अंग्रेज अपने निश्चित किये हुए मूल्य पर कारीगरों को अपना सामान बेचने पर विवश करते हैं। कम्पनी के गुमाश्ते जिस पत्र पर चाहते हैं कारीगरों से हस्ताक्षर करा लेते हैं।[1] इस सब का परिणाम यह हुआ कि भारत के कारीगरों ने अपने-अपने उद्योग-धन्धे छोड़ दिए। १८१३ ई० में भारतवर्ष के बने हुए कपड़ों का व्यापार ७० तथा ८० प्रतिशत चुंगी लगाकर नष्ट कर दिया गया।[2] १७६५ ई० में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी के अधिकार कम्पनी को मिल गए। भूमिकर बराबर बढ़ता गया। १७७० ई० में बंगाल में भयानक अकाल पड़ा। लगभग एक तिहाई जनसंख्या समाप्त हो गई परन्तु भूमिकर में फिर वृद्धि हुई। इस बीच कृषि की उन्नति करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

१—रिजवी, अतहर अब्बास : 'स्वतंत्र दिल्ली', पृ० ९;
२—पृ० ९-१०

१८५७ ई० के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी फजलेहक्क खैराबादी ने क्रान्ति का दूसरा मुख्य कारण आर्थिक संकट बताया है।[१] इसके अतिरिक्त इस काल में विभिन्न शक्तियों में निरन्तर युद्ध होते रहे हैं। प्रथम तथा द्वितीय बर्मा युद्ध (१८२६ ई०, १८५२ ई०), तृतीय मराठा युद्ध (१८१७ ई०), प्रथम तथा द्वितीय सिक्ख युद्ध (१८४५-१८४६ ई०, १८४८-४९ ई०), पिंडारी युद्ध (१८१७ ई०) आदि अनेक युद्ध इसी काल में हुए हैं। इन युद्धों ने भी देश की आर्थिक दशा पर प्रभाव डाला। डलहौजी की स्वतंत्र व्यापार की नीति से भी भारत की अर्थव्यवस्था को आघात पहुँचा। १८५७ ई० के सशस्त्र विद्रोह में तो आर्थिक कारण प्रधान रहा ही, आगे होने वाली राष्ट्रीय आँदोलन मे भी राजनीतिज्ञों की दृष्टि आर्थिक कष्ट दूर करने की ओर विशेष रही।

इस समय मुग़ल सम्राट् केवल नाम मात्र का सम्राट रह गया था। मुगल साम्राज्य के विभिन्न हिस्से अन्य शक्तियों ने अपने अधिकार में कर लिए थे। हैदराबाद में निज़ाम, मैसूर में हैदरअली, महाराष्ट्र में मराठे, बंगाल आदि स्थानों में अंग्रेज शक्तिशाली थे। २३ जून, १७५७ ई० को प्लासी का युद्ध अंग्रेजों ने जीत लिया था और उत्तर भारत में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी। १७६४ ई० के बक्सर के युद्ध ने रहा-सहा काम भी पूरा कर दिया और अंग्रेज़ों के कदम भारत में जम गये। बनारस के राजा चेतसिंह तथा अवध की बेगमों के मामलों में हेस्टिंग्ज़ ने बहुत अत्याचार किया। निस्संदेह निरीह प्रजा-जन इस प्रकार के अन्याय तथा अत्याचारों को देख कर आतंक से भर उठते होंगे और १८५७ ई० की क्रान्ति के बीज इसी प्रकार के कार्यों से जन्म ले रहे होंगे।

१८१३ ई० के एक्ट के अनुसार एक लाख रूपया वार्षिक शिक्षा पर व्यय करने का निश्चय हुआ।[२] इस धनराशि के संबंध में मतभेद था कि यह भारतीय भाषाओं की शिक्षा पर व्यय की जाये अथवा अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर यह राशि व्यय करना दो दृष्टिकोणों से हितकर समझा गया। पहला दृष्टिकोण यह था कि अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने के बाद भारतीयों को निम्नश्रेणी की नौकरियों में भर्ती किया जा सकेगा और

१—रिजवी अतहर अब्बास : स्वतंत्र दिल्ली, पृ० १२

२—ईश्वरीप्रसाद तथा सूबेदार : ए हिस्ट्री आव मार्डन इण्डिया, पृ० १३१

इस प्रकार कम वेतन पर क्लर्क मिल सकेंगे। दूसरा बड़ा लाभ यह भी था कि अंग्रजी भाषा की शिक्षा पाने तथा पाश्चात्य सभ्यता की जानकारी हो जाने के बाद स्वभावतः ही भारतीयों की रुचि आंग्ल-वस्तुओं की ओर होगी और इंगलैंड के व्यापार को भी लाभ होगा। अपने इस उद्देश्य में अंग्रेज सफल रहे क्योंकि भारतीयों में विदेशी वस्तु प्रियता अत्यधिक बढ़ गई। १९०५ ई० के बाद से विदेशी वस्त्र बहिष्कार राजनीतिक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग बनाया गया और स्वदेशी का प्रचार किया गया। विदेशी वस्तु प्रियता केवल वस्त्रों तक ही सीमित नहीं थी, उसका मूल विदेशी संस्कृति के प्रति आकर्षण था। यही कारण है कि देश में विदेशी संस्कृति का विरोध किया गया। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पाने के बाद यह अवश्य हुआ कि विभिन्न प्रान्तों के शिक्षित महापुरुषों को विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सामान्य भाषा मिली और राष्ट्रीयता के प्रसार में सहायता मिली। भारतीयों के समाज सुधारक राजा राममोहन राय भी अंग्रेजी भाषा के पक्ष में थे। १८३५ ई० में यह निर्णय कर दिया गया कि यह धनराशि अंग्रेजी शिक्षा पर ही व्यय होगी। १८५४ ई० की सर चार्ल्स वुड की स्कीम से शिक्षा का पुनस्संगठन हुआ और बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। शिक्षा संबंधी प्रश्नों में काँग्रेस ने प्रारम्भ से ही बहुत रुचि ली। बाद में तो अंग्रेजी शिक्षा का भी विरोध हुआ और सरकारी स्कूल का बहिष्कार करके राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन चलाया गया। बैंटिक ने दो बड़े सुधार किए। पहला सती-प्रथा का उन्मूलन और दूसरा ठगी को समाप्त करवाना।

डलहौजी का शासन काल 'डॉक्ट्रिन ऑफ लैप्स' के कारण बहुत प्रसिद्ध है। यह डलहौजी का नवीन आविष्कार नहीं था। बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स ने भी यह घोषित किया था कि पुत्र न होने की स्थिति में देशी राजाओं को दत्तक पुत्र लेने के लिए अनुमति प्राप्त करनी होगी। डलहौजी ने इस नीति को जहाँ भी अवसर मिला, वहीं लागू किया। १८४८ ई० में सतारा और १८५३ ई० में नागपुर तथा झाँसी के राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिये गये। इसके अतिरिक्त १८५० ई० में जैतपुर, सम्भलपुर तथा बघाट और १८५२ ई० में उदयपुर के राज्य भी ब्रिटिश राज्य में मिला लिए गए। १८५३ ई० में निजाम से बरार भी ले लिया गया। १८५६ ई० में कुशासन का आरोप लगाकर अवध का राज्य भी अपहृत कर लिया गया। इन अत्याचारों से भारत की जनता काँप उठी। डलहौजी ने पेशवा बाजीराव

द्वितीय की १८५२ ई० में मृत्यु हो जाने के उपरान्त उनके दत्तक पुत्र नाना साहब का अधिकार नहीं स्वीकार किया और यह पेन्शन बन्द कर दी। कर्नाटक के नवाब तथा तंजौर के राजा की मृत्यु १८५५ ई० में हुई। पुत्र न होने के कारण उनकी पदवियाँ और जागीर भी ज़ब्त कर ली गयीं। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा विदेशी राजाओं के राज्य, उनकी पदवियाँ और जागीरें सुरक्षित नहीं हैं। आशंका और आतंक का प्रसार होने लगा।

डलहौजी ने रेल तथा तार विभागों की उन्नति की। देश के विभिन्न भागों के एक दूसरे से संबंधित हो जाने से १८५७ ई० की क्रान्ति में अंग्रेजों को बहुत सहायता मिली। डलहौजी ने डाक-विभाग में भी सुधार किए। इन सब सुधारों का फल यह हुआ कि भारत के सभी प्रदेश एक दूसरे से सम्बन्धित हो गए और सामान्य भाषा अंग्रेजी हो जाने के बाद सुसंगठित होकर १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस की स्थापना कर सके ।

१८५७ ई० की क्रान्ति का मुख्य कारण राजनीतिक था। डलहौजी की अपहरण नीति से भारत की जनता नैराश्य के सागर में डूब गयी। बम्बई के आइनेम कमीशन ने २०,००० जागीरें ज़ब्त कीं। अवध को ब्रिटिश राज्य में मिला लेने के बाद वहाँ के बहुत से ताल्लुकेदारों के तालुके ज़ब्त कर लिए गए और ६०,००० भारतीय सेना को खारिज कर दिया गया।[१] मैनपुरी के राजा के १५८ गाँवों में से ११६ गाँव ले लिए गए। एक अन्य राजा के २१६ गाँवों में से १३८ गाँव छीन लिए गए। सतारा, झाँसी, नागपुर जैतपुर, सम्भलपुर आदि राज्यों तथा नवाबों की पेन्शनों और जागीरों के अपहरण का उल्लेख हो चुका है। इन राजनीतिक कारणों से प्रजा बहुत असंतुष्ट और क्षुब्ध थी। इस अत्याचार के शिकार राजाओं तथा नवाबों ने क्रान्ति के समय क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया जिनमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, अवध के नवाब वाजिदअली शाह, बेगम हज़रत महल तथा मुगल सम्राट बहादुरशाह प्रमुख थे।

क्रान्ति का दूसरा कारण धार्मिक था। सैनिक और प्रजा सभी भयभीत थे कि सरकार सभी को ईसाई बना लेना चाहती है। पादरियों के नेता एलेक्ज़ेण्डर डफ़ की नीति थी कि आँग्ल शिक्षा का प्रचार करके भूमिका तैयार की जाये और कुलीन ब्राह्मणों तथा अन्य उच्च श्रेणी के व्यक्तियों को ईसाई

१—सेठी तथा महाजन : ब्रिटिश रूल इन इण्डिया एण्ड आफ्टर, पृ० १४२

बनाया जाय ।[१] ईसाई धर्म अपनाने वालों को आदर दिया जाता था और उनके पैतृक सम्पत्ति आदि प्राप्त करने में जो कानूनी प्रतिबन्ध थे वे नये कानून बनाकर हटा दिये गये थे । हिन्दू तथा इस्लाम धर्म की बहुत सी रूढ़ियों को दूर करने के उद्देश्य से कम्पनी के अधिकारियों ने अनेक सुधार किए । समस्त कम्पनी राज्य में रविवार की छुट्टी अनिवार्य घोषित हुई । सेना दशहरे आदि के धार्मिक जुलूसों में सम्मिलित होती थी, वह बन्द कर दिया गया । मंदिरों और मस्जिदों को जो गाँव दान दिए जाते थे उनमें लगान नहीं लिया जाता था, परन्तु उन गाँवों में भी लगान वसूल करने का प्रयत्न किया गया । १८५४ ई० के शिक्षा संबंधी आज्ञा-पत्र से पादरियों द्वारा स्थापित स्कूलों को आर्थिक सहायता प्रदान की गयी ।[२] बहुत बार ऐसा होता था कि जिले में ही मिशनरियों की सभा होती थी और कलेक्टर सभापति का आसन ग्रहण करता था । इस प्रकार के कार्यों से जनता की यह धारणा दृढ़ होती गई कि शासन का उद्देश्य शासितों का धर्म परिवर्तन करना है ।

इन कारणों के अतिरिक्त आर्थिक दृष्टि से भारत की कितनी अवनति हो गयी थी इसका उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है । शिल्पजीवियों ने अपने-अपने शिल्प छोड़ दिए थे । कृषि के ऊपर बहुत बोझ था । भूमि-कर बढ़ता जाता था । कृषि की उन्नति के कोई उपाय नहीं होते थे । बड़े-बड़े राजाओं, नवाबों, तालुकेदारों और जमींदारों से ले कर साधारण प्रजा तक आर्थिक संकट से ग्रस्त थी ।

सामाजिक दृष्टि से यूरोपीय तथा भारतीयों में भेद-भाव किया जाता था । यह भारतीयों को सह्य नहीं हो पाता था । भारतीय सैनिकों की पदोन्नति बहुत कम होती थी ।

१८५७ ई० की क्रान्ति का तात्कालिक कारण गाय तथा सुअर की चर्बी से चिकने किये गए कारतूसों तथा आटे में हड्डियाँ पिसी होने की किवदन्ती थी । इसने जनता को बहुत उत्तेजित तथा क्रान्ति के लिए प्रेरित किया । क्रान्ति के प्रतीक रूप में बड़े रहस्यात्मक ढंग से छावनियों में रोटियाँ व कमल के फूल घुमाए गए । फकीरों और साधुओं ने भी प्रत्येक छावनी में क्रान्ति की आग सुलगा दी । क्रान्ति का निश्चित दिन ३१ मई १८५७ ई० था परन्तु

१—रिजवी, अतहर अब्बास : स्वतंत्र दिल्ली, पृ० १३;

२—पृ० १४

बैरकपुर तथा मेरठ की छावनियों में क्रान्ति का विस्फोट इस तिथि से पूर्व ही हो गया। मेरठ से भाग कर क्रान्तिकारी दिल्ली पहुँचे और बादशाह बहादुरशाह ने उनका नेतृत्व स्वीकार कर लिया। उत्तर भारत के अन्य भागों में भी क्रान्ति फैली परन्तु हैदराबाद, ग्वालियर, नाभा, पटियाला, झिंद ,राजपूताना और बड़ौदा की रियासतों ने अंग्रेजों का साथ दिया। क्रान्ति का दमन सबसे पहले दिल्ली में हुआ और इसके बाद अन्य स्थानों में। क्रान्ति का सीमात होना, निश्चित तिथि से पूर्व ही उसका प्रारम्भ हो जाना तथा साम्प्रदायिक वैमनस्य आदि कारणों से यह क्रान्ति सफल न हो सकी। भविष्य की राजनीति पर इस क्रान्ति का बड़ा प्रभाव पड़ा। सशस्त्र आन्दोलन को असफल देख कर भारतीयों ने यह निश्चित समझ लिया कि यदि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कोई राष्ट्रीय आन्दोलन हो तो वह वैध आन्दोलन ही होना चाहिए, सशस्त्र विद्रोह नहीं। इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने भी प्रारम्भ से ही वैध आन्दोलन में अटल विश्वास रखा। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय भी, जब कानूनों का उल्लंघन प्रारम्भ हुआ, आन्दोलन पूर्णरूप से अहिंसात्मक रहा। इस विद्रोह के असफल होने से यह भी निश्चित हो गया कि सब जातियों, वर्गों तथा समुदायों के संगठित प्रयत्न तथा आदर्श की एकता के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इसीलिए, यद्यपि धर्म-संप्रदायों म आपस में द्वेष और वैमनस्य चलता रहा, फिर भी राजनीतिज्ञों ने विभिन्न जातियों और समुदायों में एकता उत्पन्न करने का ही प्रयत्न किया।

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भिक स्वरूप

१८५७-१८८५ ई०

१८५७ ई० की महान् क्रान्ति के बाद भारत का शासन कम्पनी के हाथ से निकल कर ब्रिटेन के राजा के हाथ में चला गया। १ नवम्बर, १८५८ ई० को लार्ड कैनिंग ने दरबार किया जिसमें महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र

पढ़कर सुनाया गया। इस घोषणापत्र में यह कहा गया कि भारतीय प्रजा के धर्म-विश्वासों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा, भारत के परम्परागत रीति-रिवाजों को आदर की दृष्टि से देखा जायेगा, उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जायेगा तथा प्रजा अपनी जाति, धर्म अथवा वर्ण के कारण किसी पद से वंचित नहीं की जायेगी। यह भी घोषित किया गया कि प्रजा की उन्नति में शासकों की शक्ति है, प्रजा के संतोष में उनकी सुरक्षा है तथा प्रजा की कृतज्ञता में उनका पुरस्कार है। इस घोषणापत्र में यह आश्वासन भी दिया गया कि शासकों की इच्छा भारत में राज्य का विस्तार करने की नहीं है। और देशी नरेशों के सम्मान तथा अधिकारों की रक्षा की जायेगी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जो संधियाँ आदि की थीं वह ब्रिटेन के राजा को भी मान्य होंगी।

इस घोषणा-पत्र से भारतीय प्रजा को आश्वासन मिला। भारत की प्रजा ने यह समझा कि कम्पनी के अत्याचार और अन्याय से भरे हुए शासन से मुक्त होकर वह ब्रिटेन की महारानी के शासन में आ गई है और अब इस घोषणा-पत्र के अनुसार हर तरह की सुविधायें भारतीयों को दी जायेंगी तथा देश शीघ्र ही सम्पन्न हो जायेगा। नैराश्य के जो बादल क्रान्ति और युद्धों के कारण छाये हुए थे वे हट गये। समकालीन हिन्दी साहित्य में इसीलिए शासन ब्रिटेन के राजा के हाथ में जाने पर हर्ष तथा राजभक्ति प्रकट की गयी है। केवल अवध में इस घोषणा-पत्र के बाद भी क्रान्तिकारी युद्ध करते रहे। १८६१ ई० में इण्डियन कौंसिल एक्ट के द्वारा शासन में कुछ सुधार किये गये। स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रारम्भ १८७० ई० से हुआ।

भारत में कृषि पूर्णतया दैवी कृपा पर अवलम्बित थी। अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि से अन्न कम उत्पन्न होता था और अकाल पड़ते थे। भारत एक ही शासन सूत्र से बंधा हुआ है अतः यहाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में अन्न पहुँचाने की कठिनाई नहीं होती थी परन्तु यहाँ की अकाल पीड़ित प्रजा इतनी सम्पन्न नहीं थी कि वह अन्य प्रान्तों से आए हुए अन्न को खरीद सके। महायुद्धों के बाद सदा ही बीमारियाँ आदि भी फैलती हैं। इसके अतिरिक्त कृषि, शिल्प, उद्योग सभी किसी देश के आय के साधन होते हैं परन्तु दुर्भाग्य से भारत में शिल्प तथा घरेलू उद्योग-धन्धे नष्ट हो चुके थे। वह भारत जहाँ की बनी ढाके की मलमल मध्ययुग में इतनी प्रसिद्ध थी, मुख्यतया कृषि पर अवलम्बित हो गया। १८९१ ई० के आँकड़ों से पता चलता है कि ६१ प्रतिशत जनता कृषि पर अवलम्बित थी। यह जानते हुए भी भारत की अधिकांश प्रजा कृषि

पर ही अवलम्बित है सरकार की ओर से भारत की पैदावार बढ़ाने के कोई प्रयत्न नहीं किए गए। यदि सिंचाई, खेती के औज़ार तथा अच्छे बीजों की ओर ध्यान दिया जाता तो कृषि की दशा सुधर सकती थी। १८५७ ई० की महान क्रान्ति के उपरान्त भारत बहुत काल तक अकालों से ग्रस्त रहा। इंगलैंड में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई उसके फलस्वरूप उसे कच्चे माल की अधिक आवश्यकता पड़ी और उस माल का सामान बन जाने के बाद उसकी खपत करने की भी आवश्यकता हुई। भारत अपने शासकों के आश्रित था। कच्चा माल भारत से ही इंगलैंड भेजा जाता था और वही माल तैयार हो जाने के बाद दुगने-चौगुने दामों में भारत में बिकने के लिए आता था। चुंगी आदि के नियम भी ऐसे बनाए गये थे जिनसे इंगलैंड को अधिक से अधिक लाभ हो। विदेशी शासक इससे पहले भी भारत में आये, लड़ाई-झगड़े भी हुए और अन्त में विदेशी जातियाँ प्रेमपूर्वक यहाँ बस गयीं। परन्तु आर्थिक दृष्टि से भारत की जितनी अवनति आधुनिक काल में हुई उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। इसका कारण यही था कि इन शासकों की पूर्ण सहानुभूति इंगलैंड के साथ थी न कि भारत के साथ। इंगलैंड से बना हुआ जो माल आता था वह मशीनों से बना होने के कारण देशी बनी हुई वस्तुओं से जल्दी बिक जाता था। परिणाम यह हुआ कि भारत निर्धन होता चला गया और देश में बराबर अकाल पड़ते रहे। १८६० ई० में पश्चिमोत्तर प्रान्त, अलवर तथा अन्य रियासतों में अकाल पड़ा। १८६६-६७ ई० में उड़ीसा तथा पूर्वी तट में मद्रास से कलकत्ते तक अकाल पड़ा और १८६८-६९ में ही पंजाब, राजपूताना तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त में अकाल पड़ा। बिहार १८७३ ई० में अकाल से पीड़ित हुआ। १८७६ ई० से १८७८ ई० तक सभी जगह हल्के रूप में अकाल का आक्रमण हुआ। १८९६-९७ ई० में फिर पश्चिमोत्तर प्रान्त, अवध, बिहार, मद्रास, बम्बई, बरार, पंजाब आदि स्थानों में अकाल पड़ा। १८८० ई० में अकाल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट उपस्थित की तथा अकाल निवारण के लिए योजनाएँ बनाईं। देश की आर्थिक परिस्थिति ने राजनीतिक आन्दोलन के रूप को भी प्रभावित किया। कांग्रेस ने प्रारम्भ से ही देश की आर्थिक उन्नति के लिए प्रस्ता पास किए। १८९२ ई० में काँग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने के लिये कहा। १९०३ ई० में काँग्रेस ने लगान अधिक न करने के लिये कानूनी प्रतिबन्ध लगाने का प्रस्ताव पास किया और १८९५ ई० में किसानों की कर्ज-दारी दूर करने के लिए उपाय किए जाने की माँग की।

१८९६ ई० में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना करते हुए कांग्रेस ने दुर्भिक्षों के कारण बढ़ते हुए कर और अधिक लगान बताये। देशी कला-कौशल तथा उद्योग-धन्धों का नष्ट हो जाना भी अकाल का कारण बताया गया और कांग्रेस ने कृषि संबंधी बैंकों, कौशल सम्बन्धी स्कूलों की स्थापना को देश की दरिद्रता दूर करने का उपाय बताया। १८९९ ई० में भी कांग्रेस ने सरकारी खर्च में कमी करने, स्थानीय उद्योग-धन्धों की उन्नति करने तथा लगान और दूसरे करों में कमी करने का प्रस्ताव किया। १९०० ई० में काँग्रेस ने भारत की आर्थिक अवस्था की जाँच कराने का प्रस्ताव पास किया।

महारानी के घोषणापत्र ने सरकारी नौकरियों के संबंध में भारतवासियों में नवीन आशा का संचार किया। यह तो बहुत समय बाद ही पता चला कि नौकरियों के बारे में जो आश्वासन दिए गए थे वे केवल कार्रवाई थे। १८५७ के बाद तो ऊँची नौकरियों में भारतीयों को और भी अधिक आश्वासन की दृष्टि से देखा जाता था। क्रान्ति के तुरन्त बाद शासक उत्तरदायित्व की मुख्य नौकरियाँ भारतीयों को देने की भूल नहीं कर सकते थे। भारत की उत्तेजित जनता को शान्त करने के लिए यह आश्वासन घोषणापत्र में दे दिया गया था। ऊँची सरकारी नौकरियों के सदस्य प्रति वर्ष प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं से चुने जाते थे। भारतीयों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था जिससे वे इन परीक्षाओं में भाग न ले सकें फिर भी व्यावहारिक रूप से वे इन परीक्षाओं में आ नहीं पाते थे। इसके कई कारण थे। ये परीक्षाएँ लन्दन में होतीं थीं और इनके लिए आयु-मर्यादा इतनी कम रक्खी जाती थी कि भारतीय विद्यार्थियों के लिए ये सरकारी नौकरियाँ दुष्प्राप्य हो जाती थीं। १८६० ई० में अधिक से अधिक आयु २२ वर्ष थी, १८६१ ई० में यह आयु और घटाकर २१ वर्ष कर दी गयी। भारत से विद्यार्थियों के इंगलैंड जाने में व्यय भी अत्यधिक होता था। इस तरह केवल नीचे दर्जे की नौकरियाँ ही भारतीयों को मिल पाती थीं जिससे उन्हें बहुत असंतोष होता था। इस समय तक शिक्षा का प्रचार हो चुका था और शिक्षित भारतीय इन नौकरियों में जाने की इच्छा रखते थे। घोषणापत्र के आश्वासन होते हुए भी इस प्रकार की अविश्वासपरायण नीति ने शासित वर्ग में भी संदेह और अविश्वास उत्पन्न कर दिया।

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी का प्रिय विषय सरकारी नौकरियाँ था और उन्होंने इस बात पर बहुत बल दिया कि परीक्षाएं इंगलैंड और भारत में साथ-साथ हों तथा आयु-मर्यादा बढ़ा दी जाये। शिक्षा विभाग की नौकरियों में अंग्रेजों और भार-

तीयों में बड़ा भेद किया जाता था। सरकारी नौकरियों की इस प्रकार की स्थिति ने भी भारत में राष्ट्रीय आंदोलन को बहुत प्रभावित किया। काँग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में ही सरकारी नौकरियों के लिए इंगलैंड और भारत दोनों जगह परीक्षाएं ली जाने का प्रस्ताव पास किया। शिक्षा विभाग की नौकरियों में (१८९६ ई०), छोटी सरकारी नौकरियों में (१९०० ई०), पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट (१९०० ई०) तथा पुलिस विभाग के ऊंचे पदों पर (१९०१ ई०) भारतीयों की नियुक्ति के सम्बन्ध में काँग्रेस ने समय-समय पर प्रस्ताव पास किए।

अंग्रेजी पढ़ने से सब प्रान्तों के शिक्षित वर्ग को विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सामान्य भाषा मिल गई। छापेखाने हो जाने से समाचार पत्रों का बाहुल्य हुआ। १८७५ ई० में ही ४७५ अखबार निकलते थे जिनमें अधिकांश देशी भाषाओं में थे। १८७० ई० तक प्रेस को स्वतंत्रता प्राप्त थी क्योंकि तब तक प्रेस से अंग्रजों को किसी प्रकार की हानि की आशंका न थी। भारतीयों के हाथ में आते ही प्रेस ने राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने तथा जनमत तैयार करने का कार्य प्रारम्भ किया। देशी भाषाओं में समाचारपत्र निकलने लगे, विशेष रूप से बंगाल में। यद्यपि भारत की अधिकांश जनता अशिक्षित थी फिर भी वह इन समाचार पत्रों में रुचि और अन्य शिक्षित व्यक्तियों के पढ़ने पर इन समाचारों को ध्यान से सुनती थी। इनमें सरकार की नीति की कटु आलोचना की जाती थी। १८७० ई० में नयी धारा '१२४ अ' इंडियन पेनेल कोड (भारतीय दंड विधान संहिता) में जोड़ी गई। इस धारा के अन्तगत षड़यन्त्र की बहुत विस्तृत व्याख्या की गयी थी। उसी वर्ष धारा '१२१ अ' भी जोड़ी गई जिसमें राजा के विरुद्ध षड़यन्त्र करना कानून द्वारा दण्डनीय ठहराया गया, चाहे इस प्रकार के कोई कार्य न भी किए गये हों। १८७८ ई० में लार्ड लिटन ने अपना वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू किया। इस एक्ट से भारतीयों को बहुत क्रोध आया, विशेष रूप से इसलिए कि इसके नियम केवल देशी भाषा के समाचार पत्रों पर लागू होते थे। इसके द्वारा स्थानीय सरकार की अनुमति से मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार मिला कि वे प्रशासकों से ज़मानत तथा यह वचन ले लें कि षड़यन्त्रकारी साहित्य नहीं छापा जायेगा। यदि ऐसा न हो तो प्रकाशक उन्हें प्रूफ़ दिखाया करें और वही सामग्री छापी जाय जिसे छपने की अनुमति मिले। उपर्युक्त आदेशों का पालन न करने पर ज़मानत ज़ब्त की जा सकती थी। प्रतिगामी शासन में सदैव ही जनता का रोष

और राष्ट्रीय भावना अधिक उन्नत होती और विस्तार पाती है। भारतीयों को सरकार की नीति अन्याय और पक्षपातपूर्ण दिखायी दी और इस एक्ट की कटु आलोचना हुई। काँग्रेस ने भी प्रेस की स्वतंत्रता का आग्रह किया और १९०८ ई० में अखबार-कानून के विषय में प्रस्ताव पास किया।

काँग्रेस की स्थापना के पूर्व की ही एक महत्वपूर्ण घटना इलबर्ट बिल का पास न होना था। इसके पहले से ही जातिगत वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। सरकारी नौकरियों में निरन्तर आयु घटाकर केवल लन्दन में प्रतिस्पर्धी परीक्षाएं करके सरकार ने यह दिखा दिया था कि उसकी नीति अंग्रेजों के प्रति पक्षपात-पूर्ण है। १८७८ ई० के लार्ड लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट ने भी सरकार की इसी नीति को प्रकाशित किया। १८८३ ई० में भारत सरकार के ला मेम्बर मि० इलबर्ट ने एक बिल उपस्थित किया कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटों पर से यह प्रतिबन्ध उठा लिया जाय कि वे अमेरिकन और यूरोपियन अधिकारियों के मुकदमों का फैसला नहीं कर सकते। इस बिल का गोरे लोगों ने बड़ा विरोध किया और वाइसराय लार्ड रिपन को इंगलैंड भेज देने तक का षड़यन्त्र रचा। इस पर असली बिल उठा लिया गया और केवल जिलाधीशों तथा दौरा जजों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त मान लिया गया। इससे भारतीयों की आँख खुलीं। गोरी जातियों का प्रभुत्व उनकी समझ में आया। इस बिल के द्वारा राष्ट्रीय चेतना को बढ़ने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय यह भी समझने लगे कि यदि उन्हें इस शासन का विरोध करना है तो सबसे पहले सारे देश को एक होना पड़ेगा। इस अन्याय के शिकार सभी भारतीय थे अतः उन सबमें एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का प्रादुर्भाव हुआ। भारत के शिक्षित जन समुदाय को इस प्रकार के प्रश्नों ने क्रियात्मक रूप से कुछ कार्य करने की प्रेरणा दी।

भारत का शासन जिन दुर्गुणों से ग्रस्त था उनकी जड़ें साम्राज्यवादी नीति में थीं। विदेशियों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे भारतीयों के हित को अपना ध्येय बनाते। शोषण की जो नीति अंग्रेजों ने अपनाई वह भारत के लिए बिल्कुल नवीन थी। शिल्प आदि विनष्ट हो जाने से भारत निर्धन होता जा रहा था तथा ऊंची सरकारी नौकरियों से भारतीय वंचित रक्खे जाते थे। लार्ड लिटन के प्रतिगामी शासन ने भारतीयों की राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजित किया। प्रेस ने इस कार्य में बहुत योग दिया। रेल, तार, डाक आदि की सुविधाओं के कारण लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आये और विचारों

का आदान-प्रदान हुआ। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने अपना पहला दौरा बनारस से रावलपिंडी तक १८७७ ई० में किया और दूसरा दौरा १८७८ ई० में। उन्होंने लोगों को उत्साहित किया कि वे विदेशी शासन से टक्कर लें। उन्होंने दो बातों पर बहुत बल दिया। पहली तो यह कि प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं में आयु-मर्यादा बढ़ाई जाय और दूसरी यह कि परीक्षाएँ भारत और इंगलैंड में साथ-साथ हुआ करें। १८८४ ई० में उन्होंने तीसरा दौरा पंजाब और मुल्तान का किया।

यूरोपीय विद्वानों, मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स तथा सर विलियम जोन्स की खोजों ने भारतीयों में आत्मगौरव और आत्म विश्वास का मंत्र फूका। भारतीयों को अपने गौरवमय अतीत, अपने प्राचीन साहित्य और संस्कृति पर अभिमान हुआ। आर्यसमाज तथा थियासाफ़िकल आन्दोलनों ने भी वैदिक तथा पूर्वीय संस्कृति के श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन किया। इस तरह अपनी संस्कृति से दूर ले जाने वाली भावना को इन आन्दोलनों ने दबा दिया। पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य संस्कृति की ओर झुकाव कम हो गया। साहित्य में इन्हीं आन्दोलनों के फलस्वरूप विदेशी संस्कृति का विरोध और उपहास किया गया है। ये आन्दोलन यद्यपि अपनी संस्कृति की पुनस्थापना पर बल देते थे फिर भी सुधारों के विरोधी न थे। इसीलिए पश्चिमी तथा पूर्वी संस्कृति के समस्त गुणों को इन्होंने ग्रहण कर लिया। दयानन्द के बाद विवेकानन्द ने भी यह कार्य जारी रक्खा और भारत में नवीन आशा का संचार किया। भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन बहुत अंशों में पाश्चात्य विद्वानों लाक, स्पेन्सर, मिल, मेकाले तथा बर्क की रचनाओं से भी प्रभावित हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलनों का विकास

आर्य समाज

दयानन्द सरस्वती ने १८७७ ई० में दिल्ली दरबार के अवसर पर सब धर्मों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन किया था। यह विचार बहुत उत्तम था कि विभिन्न धार्मिक नेता विचार-विमर्श करने के बाद सम्मिलित रूप से कार्य

करें। वास्तव में दयानन्द फूट के फलस्वरूप हुई भारत की दुर्दशा को प्रत्यक्ष देख रहे थे। इसी कारण एकता में उनका दृढ़ विश्वास था। इसके पूर्व १८७० ई० में उन्होंने ३०० पुरातन पंथी ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करके बहुत ख्याति प्राप्त की थी। दयानन्द सरस्वती का वेदों की पूर्ण सत्यता में अखंड विश्वास था। यही कारण है कि धार्मिक सुधार तथा सामाजिक सुधार का आधार दयानन्द ने वैदिक धर्म और वैदिक समाज व्यवस्था को माना है। वैदिक धर्म में निराकार ईश्वर की उपासना का विधान है। इसीलिए दयानन्द ने बहुदेववाद तथा मूर्तिपूजा का अत्यधिक विरोध किया। कालान्तर में हिन्दू धर्म में जो दोष प्रवेश कर गए थे दयानन्द ने उनसे भी हिन्दू धर्म को मुक्त करने का प्रयत्न किया। मूर्तिपूजा का विरोध राजा राममोहन राय ने भी किया था। राममोहन राय और दयानन्द दोनों के सुधारों की रूपरेखा एक सी ही थी। विस्तारों में अवश्य भिन्नता थी। धर्म के क्षेत्र में बालहत्या यद्यपि कानून से समाप्त की जा चुकी थी परन्तु अंधविश्वासी माताएँ फिर भी अपने बालकों को गंगा-तट पर बलि दे देती थीं। गुलामी न थी परन्तु मन्दिरों में देवदासी प्रथा थी जो समाज के आचरण को भ्रष्ट कर रही थी। इसके अतिरिक्त अनेक रूढ़ कर्मकांड और अंधविश्वास हिन्दू धर्म का अंग बन चुके थे। दयानन्द ने वैदिक एकेश्वरवाद के द्वारा इन सभी धार्मिक कुरीतियों को दूर करने का विचार किया।

दयानन्द सरस्वती ने महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार किए। समाज में जातिगत वैमनस्य और अछूतों की समस्या बड़ी दारुण हो रही थी। राममोहन राय ने जाति व्यवस्था की समस्या को नहीं सुलझाया, केवल कुलीन ब्राम्हण पुरुषों के बहु-विवाह की प्रथा की ओर उनका ध्यान गया। केशवचंद सेन स्वयं अब्राह्मण थे और उन्होंने इससे अधिक कार्य किया परन्तु ब्रह्म-समाजी हिन्दू धर्म से बहुत जल्दी अलग हो गये और उनके प्रयत्न सफल न हो सके। वैदिक वर्णव्यवस्था कर्म पर आधारित थी। वही आगे चलकर जाति व्यवस्था बन गई। जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित है। जन्म से ही जाति निश्चित होती है। विवाह तथा खान-पान अपनी जाति में ही हो सकता है और इच्छा करने से भी वह बदली नहीं जा सकती। आधुनिक सुधारक जाति को ही हटा देना चाहते हैं परन्तु दयानन्द केवल उपजातियों को हटाना तथा चारों वर्णों को कर्म के आधार पर पृथक करना चाहते थे, जन्म के आधार पर नहीं। इसीलिए वह जाति को परिवर्तनीय बनाने के पक्ष में थे।

वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पुरुषों के समकक्ष थी। धीरे-धीरे उनकी दशा हीन होती गई। विशेष राजनीतिक परिस्थितियों के कारण स्त्रियाँ पर्दे में रक्खी जाने लगीं और उन्हें शिक्षा से वंचित कर दिया गया। अठारवीं शताब्दी तक स्त्रियों की स्थिति शोचनीय हो गयी। स्त्रियों को बहुविवाह का अधिकार नहीं था। इसके अतिरिक्त आर्थिक दृष्टि से भी स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी। दयानन्द सरस्वती ने स्त्रियों की दशा में महत्व-पूर्ण सुधार किए। उन्होंने विधवाओं का पुनर्विवाह मान्य ठहराया, विवाह में वर और कन्या की सम्मति आवश्यक मानी तथा दहेज,सती-प्रथा, बाल-विवाह आदि कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने २५वें वर्ष से पूर्व पुरुष तथा सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या का विवाह करना अनुचित ठहराया। उनका यह भी विचार था कि चाहे बालक बालिकाएं मरण पर्यन्त अविवाहित रहें परन्तु विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वाले व्यक्तियों का विवाह कदापि न हो। उनके समाज सुधार से देश की सामाजिक अवस्था में बड़ा परिवर्तन हुआ। काँग्रेस ने भी स्त्रियों के मताधिकार को स्वीकार कर लिया। प्रथम असहयोग आन्दोलन के समय स्त्रियों ने भी राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया और बहुत से घरों की स्त्रियों ने पर्दा छोड़ दिया। स्त्रियों ने विदेशी वस्त्र बहिष्कार तथा मद्यनिषेध में विशेष रुचि ली। इसी संबंध में उन्होंने पिकेटिंग की और जेल गयीं। इस प्रकार सुधार आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन ने स्त्रियों की प्रगति में महत्वपूर्ण योग दिया है। काँग्रेस की अध्यक्ष स्त्रियाँ भी रही हैं। अल्प समय में स्त्रियों में जितनी जाग्रति फैल गई है उसका श्रेय इन आन्दोलनों को ही है।

सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास में दयानन्द सरस्वती ने विदेश गमन की अनुमति दी है। उन्होंने चौकों की छूआछूत तथा श्राद्ध आदि प्रथाओं का विरोध किया है और शूद्र के हाथ का खाना खा लेने की अनुमति दी है। सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में उन्होंने भूतप्रेत, जन्मपत्री विचार तथा मंत्र-तंत्र आदि अनेक अंधविश्वासों का खण्डन किया है। इस ग्रन्थ में पुराण की अनेक कथाओं, ईसाई तथा इस्लाम धर्म आदि का खण्डन किया गया है।

हरिजनों का उद्धार वस्तुतः आर्यसमाज की एक निजी विशेषता है। दयानन्द सरस्वती ने शूद्रों को ब्राह्मणों से नीच नहीं माना है। उनके शुद्धि आन्दो-लन ने ईसाई तथा इस्लाम धर्म द्वारा किये गये प्रहारों से हिन्दू समाज की रक्षा की। आर्यसमाज अछूत-समस्या को वैदिक नहीं मानता। लाखों अछूतों को जनेऊ पहनाकर आर्यसमाज ने समाज में उन्हें सवर्ण हिन्दुओं के समान अधिकार

दिये। इससे पहले देश में जो ग्रीक, सीदियन, हूण आदि विदेशी आये थे वे हिन्दूसमाज में घुलमिल गये थे। परन्तु बाद में हिन्दू धर्म की आचार और खानपान संबंधी संकीर्णता के कारण बहुत से हिन्दुओं को अपना धर्म छोड़ कर ईसाई या इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा। दयानन्द ने शुद्धि के द्वारा उन्हें हिन्दू समाज में सम्मिलित किया और उसे फिर से खोई हुई शक्ति प्रदान की। अछूतोद्धार आन्दोलन का, जो धीरे-धीरे कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग बन गया, पूर्व रूप यह शुद्धि आन्दोलन ही है। हिन्दी साहित्य पर इस आन्दोलन का बहुत प्रभाव पड़ा है।

पहले तो दयानन्द संस्कृत भाषा में प्रचार करते थे परन्तु बाद में बाबू केशवचन्द्र सेन के यह समझाने पर कि संस्कृतज्ञ पंडित उनकी बात तोड़-मरोड़ कर जनता से कहते हैं उन्होंने हिन्दी भाषा में प्रचार करना स्वीकार किया। आर्य समाजियों के लिए उन्होंने नियम बनाया कि सभी आर्य-भाषा पढ़ें और इस प्रकार हिन्दी भाषा-प्रचार का महत्वपूर्ण कार्य किया। जब बहिष्कार आन्दोलन के फलस्वरूप जगह-जगह राष्ट्रीय विद्यालय खुले तब उसमें भी हिन्दी भाषा को माध्यम बनाया गया। इस प्रकार हिन्दी-प्रचार आन्दोलन से राष्ट्रीय आन्दोलन प्रभावित हुआ है।

शिक्षा प्रचार में भी आर्य समाज ने महत्वपूर्ण योग दिया है। बालकों और बालिकाओं के लिए स्कूलों, कालेजों और गुरुकुलों का आर्यसमाज ने जाल-सा बिछा दिया है। गुरुकुल भारत का प्रथम विश्वविद्यालय है जिसने ऊँची शिक्षा के लिए भी देश-भाषा को ही माध्यम बनाया है। इसने वैदिक और संस्कृत शिक्षा को अपनाया और साथ ही आधुनिक कला और विज्ञान को भी शिक्षा में सम्मिलित किया। ब्रह्मचर्य, नैतिकता तथा सच्चरित्रता पर इसने विशेष बल दिया। उच्चकोटि की नैतिकता का आग्रह राष्ट्रीय आन्दोलन में भी किया गया है। अहिंसा को आर्यसमाज तथा राष्ट्रीय आन्दोलन दोनों में अपनाया गया है। यही कारण है कि साहित्य में भी समाज की नैतिक अवनति का चित्रण और नैतिक सुधार की इच्छा विशिष्ट स्थान रखती है।

शिक्षा के संबंध में राममोहन राय और दयानन्द में मतभेद था। राम मोहन राय अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे क्योंकि वह समझते थे कि यह शिक्षा भारतीयों में बौद्धिक दृष्टिकोण तथा उदारता उत्पन्न करेगी परन्तु दयानन्द अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी थे और वे इसे ईसाइयत का ही दूसरा नाम समझते थे। दयानन्द ने शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता को समझा था। उनके मुख्य

ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास का विषय शिक्षा है। वे लिखते हैं कि मनुस्मृति के अनुसार राजनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से अधिक कोई भी पिता अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रक्खे और पाठशाला में पढ़ने भेज दे। उन्होंने वेदों से प्रमाण देकर इस बात पर बल दिया कि शूद्रों तथा बालिकाओं सभी को वेद पढ़ने का अधिकार है और लड़कियों को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिए। उन्होंने यह राजा का कर्त्तव्य माना है कि वह बालकों और बालिकाओं को विद्वान बनाये। आगे जाकर काँग्रेस ने भी सुधार आंदोलनों द्वारा दिखाये हुए मार्ग का अनुसरण किया और शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत रुचि ली। देश की शिक्षा के संबंध में साहित्यकारों ने भी उल्लेख किये हैं। उन्होंने आर्यसमाज के समान राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया और इस आधार पर अंग्रेजी शिक्षा का विरोध भी किया कि यह शिक्षा हमारी प्रगति म सहायक नहीं होती और इसके विपरीत हममें दासत्व के भाव उत्पन्न करती है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही साहित्यकारों ने स्वदेश के गौरवमय अतीत का वर्णन करने में विशेष रूप से रुचि ली है और वैदिक सभ्यता का गुणगान किया है।

भूकम्प, बाढ़, अकाल आदि में आर्यसमाज ने सहायता का बहुत कार्य किया। लाला लाजपतराय मे १८९७ ई० से १९०० ई० तक अकाल में सहायता कार्य किया। आर्यसमाज ने अनेक विधवाश्रम तथा अनाथालय भी स्थापित किए।

आर्यसमाज का दृष्टिकोण पूर्णतः राष्ट्रीय है। धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोणों से भारत को एक बनाने का ध्येय आर्यसमाज को रहा है। गोरी जातियों के प्रभुत्व में विश्वास कम होने के मुख्य कारण आर्यसमाज तथा थियासाफिकल आन्दोलन ही हैं। साहित्यकारों ने आर्यसमाज के राष्ट्रीय दृष्टि-कोण को ही अपनाया है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य-कार जितना आर्यसमाज आन्दोलन से प्रभावित हुए उतना ब्रह्म समाज आन्दोलन से नहीं। विदेशी संस्कृति और विदेशी सभ्यता का विरोध साहित्यकारों ने प्रारम्भ से किया है।

आर्यसमाज की स्थापना १० अप्रैल, १८७५ ई० में बम्बई में हुई थी। हर बड़े शहर में जहाँ दयानन्द गए, उन्होंने एक समाज की स्थापना की, जो अन्य समाजों से स्वतंत्र रहा। दयानन्द का विचार हर देश में एक केन्द्रीय समाज तथा हर शहर और गाँव में आश्रित समाजों को स्थापित करने का था

जो सफल न हो सका। २४ जून, १८७७ ई० को लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हुई। यहाँ उपनियमों में परिवर्तन किया गया और उन्ह नियमों के आश्रित रखा गया। आर्यसमाज का संगठन जनतंत्रात्मक है। पंजाब में आर्य-समाजों की संख्या सबसे अधिक है और उसके बाद युक्तप्रान्त में।

राममोहन राय को अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था इसीलिए उनके सुधारों और सिद्धान्तों का प्रचार शिक्षित समाज में अधिक हुआ परन्तु दयानन्द अंग्रेजी भाषा न जानते थे। उन्होंने प्रचार का माध्यम पहले तो संस्कृत और बाद में हिंदी भाषा रक्खी इसी से उनके आर्यसमाज में मध्यम और निम्न श्रेणी के व्यक्ति अधिकांश संख्या में दीक्षित हुए। पंजाब तथा उत्तरप्रदेश आर्य समाज का मुख्य केन्द्र होने तथा प्रचार की भाषा हिन्दी होने के कारण उत्तर-प्रदेश के मध्यम तथा निम्न श्रेणी के व्यक्तियों पर आर्यसमाज का बहुत प्रभाव पड़ा। समाज में वर्गों का प्राधान्य होता है अतः लगभग सम्पूर्ण समाज की विचारधारा को मोड़ने का कार्य आर्यसमाज ने किया है। साहित्यकार भी सुधार आन्दोलनों में इसी से सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं।

१८५७ ई० की महान क्रान्ति से दयानन्द विरक्त रहे क्योंकि वे जानते थे कि जब तक हिन्दू समाज के दोषों को दूर नहीं किया जायेगा तब तक कोई भी क्रान्ति देश को लाभ न पहुँचा सकेगी। सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने राजा का आदर्श ऊँचा रक्खा है। उनका विचार है कि यदि राजवर्ग प्रजा से स्वाधीन हो जाता है तो वह प्रजानाशक हो जाता है। इसीलिए उन्होंने राजा के लिए सात अथवा आठ मन्त्री रखने की व्यवस्था दी है। उन्होंने लिखा है कि राजा, प्रजा के साथ पिता के समान व्यवहार करे। वह प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर ले किन्तु अति लोभ में पड़ कर प्रजापीड़क न बने।

आर्यसमाज आदि आन्दोलनों के पूर्व हिन्दू समाज में एक विशेष प्रकार की उदासीनता और निर्बलता आ गयी थी। चाहे उनके देवी-देवताओं और विश्वासों का उपहास किया जाये अथवा उनकी निन्दा की जाये परन्तु उसकी कोई प्रतिक्रिया हिन्दू समाज में नहीं होती थी। आर्यसमाज आन्दोलन से हिन्दुओं में स्वजाति-गौरव की भावना उत्पन्न हुई। वे अपने धर्म के लिए अपना जीवन तक बलिदान करने को तत्पर हो गए।

इस प्रकार सामूहिक रूप से आर्यसमाज आन्दोलन का कार्य उत्तर भारत में बहुत ही महत्वपूर्ण है। धार्मिक और सामाजिक सुधार के साथ-साथ आर्य समाज ने सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोणों को उत्पन्न किया।

ब्रह्मसमाज

१८वीं शती के अन्तिम चरण में राजा राममोहन राय ने नवीन धर्म के द्वारा मृत समाज को पुनर्जीवित किया। राममोहन राय तथा दयानन्द दोनों ने हिन्दू धर्म की ईसाई धर्म के आक्रमणों से रक्षा की ओर दोनों ने ही हिन्दू धर्म और समाज की कुरीतियों को दूर किया। राममोहन राय का कार्य धार्मिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है। वे हिन्दू धर्म को मुख्यतः मूर्तिपूजा तथा बलिदान के दोषों से मुक्त करना चाहते थे। उन्होंने वेदान्त कालेज और आत्मीय सभा की स्थापना की। १८२७ ई० उन्होंने ब्रिटिश इंडियन यूनीटेरियल एसोसियेशन की स्थापना की परन्तु इसके पूर्णतया पाश्चात्य दृष्टिकोण से वे संतुष्ट न हुए और अगले वर्ष १८२८ ई० में उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। ब्रह्मसमाज में उन्होंने इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद, बाइबिल की नैतिकता तथा उपनिषदों के दर्शन का समन्वय किया। इसमें उन्होंने भविष्य के विश्व धर्म का रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने उपनिषदों का अंग्रेजी और बंगाली में अनुवाद किया और इस प्रकार उपनिषदों के दर्शन को सर्वसुलभ कर दिया। ब्रह्मसमाज की स्थापना के बाद जल्दी ही उनका देहान्त हो गया। ब्रिस्टल में राजा राममोहन राय के देहान्त हो जाने के उपरान्त पंडित रामचंद्र विद्यावागीश ने ब्रह्मसमाज का कार्य संभाला और १८४३ ई० में देवेन्द्रनाथ ठाकुर को दीक्षित किया। १८३९ ई० में तत्वबोधिनी सभा की स्थापना हुई। यह सभा १० सदस्यों से प्रारम्भ हुई थी और बाद में उनकी संख्या बढ़कर ५० हो गयी। इस सभा की मासिक पत्रिका तत्वबोधिनी पत्रिका थी। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजेन्द्रलाल मिश्र आदि विद्वान इस पत्रिका में लिखा करते थे। १८४७ ई० में जब मैक्समूलर ऋग्वेद का अध्ययन पेरिस में कर रहे थे, इस पत्रिका ने ऋग्वेद का अनुवाद निकालना प्रारम्भ किया। १८४४ ई० में देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने एक विद्यार्थी को तथा उसके उपरान्त तीन अन्य विद्यार्थियों को वेदों के अध्ययन के लिए काशी भेजा। १८४७ ई० में देवेन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं भी काशी गए। वेदों की पूर्ण सत्यता के सम्बन्ध में बहुत वादविवाद हुआ परन्तु अन्त में बौद्धिकता की विजय हुई और वेदों की पूर्ण सत्यता का सिद्धान्त त्याग दिया गया। यदि ब्रह्म समाज में वेदों की अपौरुषेयता स्वीकार कर ली जाती तो दयानन्द के आर्यसमाज की स्थापना अलग न होती। धर्म के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी राम मोहनराय ने महत्वपूर्ण कार्य किया। सती-प्रथा

का उन्मूलन इनका सबसे महान कार्य है। अकबर ने सती-प्रथा को रोक दिया था परन्तु मुस्लिम-शक्ति के अस्त होने के उपरान्त यह फिर से जीवित हो गयी। सती-प्रथा के उन्मूलन का श्रेय राममोहन राय तथा विलियम बेंटिक दोनों को ही है। राममोहन राय ने पुरुषों के बहु-विवाह का भी विरोध किया और आग्रह किया कि स्त्रियों को भी पिता की जायदाद में हिस्सा मिला करे। वे प्रेस की स्वतंत्रता के बड़े भारी समर्थक थे और भारतीय कृषकों के कष्ट निवारण की ओर भी वे प्रयत्नशील रहे। इन विचारों ने राजनीतिज्ञों को भी प्रभावित किया है। कांग्रेस में प्रेस की स्वतंत्रता तथा कृषकों की कर्जदारी दूर करने के लिए प्रस्ताव पास हुए हैं। ब्रह्मसमाज में मद्यपान तथा बहुविवाह का विरोध हुआ और विधवा तथा स्त्री-शिक्षा का पक्ष लिया गया। कालेजों के विद्यार्थी बड़ी संख्या में समाज की ओर आकर्षित हुए। केशवचंद्र सेन ने 'ऐन अपील टु द ब्रिटिश नेशन' भी प्रकाशित की जिसमें भारत में शिक्षा प्रचार की प्रार्थना की गयी थी। ब्रह्मसमाज की ओर से बालकों और बालिकाओं की शिक्षा के लिए विद्यालय खोले गये थे और ब्रह्मसमाज के प्रचार के लिए पत्र-पत्रिकायें निकलती थीं। १८६१ ई० से केशवचंद्र सेन ने 'इंडियन मिरर' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। स्त्रियों की दीन दशा की ओर भी उनका ध्यान गया और 'वामा बोधिनी' का प्रकाशन १८६३ ई० से प्रारम्भ हुआ। स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए ब्राह्मिका समाज की भी स्थापना की गई। नवयुवकों के उत्साह से ब्रह्मसमाज का संदेश बंगाल के गाँवों तक पहुँच गया और शीघ्र ही बंगाल के बाहर भी फैला। इन नवयुवकों ने जातिगत कट्टरता का विरोध किया और अन्तर्जातीय विवाह किये। १८६२ ई० में केशवचंद्र सेन ने 'कलकत्ता कालेज' के नाम से एक स्कूल की स्थापना की। उन्होंने इंडियन रिफ़ार्म एसोसियेशन भी खोला जिसका कार्यक्रम पाँच भागों में विभाजित था—दान, स्त्री-शिक्षा, शिक्षा, मद्यनिषेध तथा सस्ता साहित्य। १८७१ ई० में उन्होंने भारत आश्रम खोला। १८६१ ई० में उत्तर-भारत में भयंकर अकाल पड़ा। उसके लिए केशवचंद्र सेन ने धन एकत्र किया और अकाल-पीड़ितों को सहायता पहुंचायी। यह इस प्रकार का प्रथम कार्य समाज ने किया। बाद में रूढ़िवादी तथा उदार व्यक्तियों में मत-विभिन्नता के कारण ब्रह्मसमाज में दो दल हो गए—आदि ब्रह्मसमाज तथा भारत का ब्रह्मसमाज। जकारिया ने लिखा है कि राममोहन राय और उनके ब्रह्मसमाज से विभिन्न सुधार-आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ, चाहे वे सुधार हिन्दू धर्म, समाज अथवा

राजनीति किसी भी क्षेत्र के हों।

सभी सुधार-आन्दोलनों ने लगभग एक से ही सुधारों का आग्रह किया है। स्त्री-शिक्षा का समर्थन, बाल-विवाह और बहु-विवाह का विरोध, अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति, मद्य-निषेध, शिक्षा-प्रचार आदि सभी सुधार आर्यसमाज ने भी अपनाए हैं और अन्य सुधार-आन्दोलनों ने भी। शुद्धि आन्दोलन तथा अहिंसा अवश्य आर्यसमाज की विशेषताएं हैं। आर्यसमाज की स्थापना (१८७५ ई०) से पूर्व ही भारतेन्दु की रचनाओं का प्रारम्भ (१८६७ ई०) हो गया था और अपनी बंगाल-यात्रा (१८६३ ई०) में भारतेन्दु बंगला के साहित्य से प्रभावित हुए थे। इसलिए ब्रह्मसमाज का प्रभाव भी उन पर पड़ा होगा। परन्तु हिन्दी साहित्य पर आर्य समाज आन्दोलन का प्रभाव प्रमुख है, ब्रह्मसमाज का गौण और अन्य आन्दोलनों का लगभग नगण्य।

प्रार्थना समाज

प्रादेशिक समाजों में से बम्बई का प्रार्थना समाज (अहमदाबाद तथा पुना के समाज को मिलाकर) सबसे बड़ा तथा महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव इतना अधिक है कि यह अपने आप में एक छोटा धर्म तथा समाज-सुधार आन्दोलन माना जाता है। परन्तु इसे ऐसा मानना भूल होगी। यह ब्रह्मसमाज से पृथक नहीं है।

सामाजिक सुधार के लिए महाराष्ट्रियों ने १८४९ ई० में ही परमहंस सभा की स्थापना की थी जो अधिक दिनों तक जीवित न रह सकी। परन्तु समाज सुधार में रुचि लेने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ गयी थी और धर्म-सुधार की ओर भी उनका ध्यान गया था। १८६४ ई० में जब केशवचन्द्र सेन बम्बई गए तो उन्होंने बहुत से व्यक्तियों को सुधार के लिए तैयार पाया। केशवचन्द्र सेन के जाने से मुख्य प्रभाव यह हुआ कि समाज-सुधार का आधार धर्म को बनाया गया और एक ईश्वरोपासना की संस्था निर्मित हुई। मार्च १८६७ ई० में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। अपनी स्वतंत्र सत्ता रखने के लिए इस संस्था ने ब्रह्मसमाज में अपने को मिला देना उचित नहीं समझा और इसीलिए ब्रह्मसमाज का नाम स्वीकार न करके 'प्रार्थना समाज' नाम रक्खा।

ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज में दोनों प्रान्तों के व्यक्तियों के व्यक्तित्व का अन्तर ही प्रधान है। प्रार्थना समाज की स्थापना करने वाले व्यक्ति दयानन्द

अथवा केशवचंद्र सेन की तरह धर्म में रुचि रखने वाले न थे। प्रार्थना समाज कभी भी बड़ी धार्मिक शक्ति के रूप में विकसित नहीं हुआ और न धर्म-सुधार का निश्चित कार्यक्रम ही इसने अपनाया। एक प्रकार से प्रार्थना समाज ने सामाजिक सुधार तक ही अपने कार्यक्रम को सीमित रक्खा। सदस्यों के धार्मिक विश्वासों में अन्तर होते हुए भी इस समाज ने हिन्दू समाज में अपनी स्थिति बनाये रक्खी। इसके सदस्यों ने अपने को महाराष्ट्र के नामदेव, तुकाराम तथा रामदास जैसे प्रसिद्ध वैष्णव संतों की परम्परा में माना और इसीलिए मानव सेवा में ही उन्होंने ईश्वर प्रेम की अभिव्यक्ति देखी। पंढरपुर में प्रार्थना समाज ने एक आश्रम तथा एक अनाथालय खोला। बम्बई के दरिद्रों की शिक्षा के लिए इसने रात्रि-पाठशालाएं खोलीं, एक विधवाश्रम की स्थापना भी की और हरिजनों की उन्नति की ओर ध्यान दिया। पूना में भंडारकर इन्स्टीट्यूट की स्थापना की जो शिक्षा के क्षेत्र में इसका एक महत्वपूर्ण योगदान है। प्रार्थना समाज की विशेषता यही है कि इसने धर्म-सुधार और समाज-सुधार के बीच का रास्ता अपनाया है। ब्रह्मसमाज की तरह न तो यह पाश्चात्य संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित ह और न आर्यसमाज की तरह यह राष्ट्रीय संस्था ही है। इस संबंध में भी इसने मध्यम वर्ग का अवलम्बन किया है।

बम्बई और पूना के प्रार्थना समाज अधिकांश में एक ही हैं क्योंकि बम्बई के प्रार्थना समाज के मुख्य नेता मराठी ही हैं परन्तु अहमदाबाद के प्रार्थना समाज का अलग उल्लेख आवश्यक है। भोलानाथ सारभाई तथा महीपात्रम् रूपरम ने मिलकर १८७१ ई० में अहमदाबाद के प्रार्थना समाज की स्थापना की। कुछ समय के उपरान्त समाज ने एक विधवाश्रम तथा एक अनाथालय खोला। इन्दौर के ब्रह्मसमाज को यद्यपि ब्रह्मसमाज नाम का दिया जाता है किन्तु यह बम्बई के प्रार्थना समाज के अधिक निकट है।

प्रार्थना समाज का प्रभाव राष्ट्रीय साहित्य पर अधिक नहीं पड़ा है। इसका कारण यही है कि बम्बई और पूना के आन्दोलन उत्तर प्रदेश के साहित्य को अधिक प्रभावित नहीं कर सकते थे।

थियासफी

मैडम ब्लावत्स्की तथा कर्नल आलकाट ने मिल कर संयुक्तराष्ट्र में १८७५ ई० में थियासाफिकल सोसाइटी की स्थापना की थी। वे दोनों १८७९ ई० में भारत आए और १८८६ ई० में मद्रास में अड्यार नामक स्थान इस सोसा-

इटी का मुख्य केन्द्र बन गया। इसके सदस्यों में श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ही सबसे प्रथम थीं जिन्होंने भारत में गीता के ज्ञान का प्रचार किया और इस प्रकार, कम से कम भारत में, थियासफी को हिन्दुत्व के बहुत निकट ला दिया। श्रीमती बेसेंट ने स्वयं अंग्रेज होते हुए भी न केवल भावनाओं में, वरन् आचार-विचार, खान-पान और रहन-सहन में हिन्दुत्व को अपना लिया और इसीलिए उनका प्रभाव भारतीयों पर अत्यधिक पड़ा। अनेक अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों ने उनके प्रभाव से अपने राष्ट्रीय धर्म को नहीं त्यागा।

१८९८ ई० में उन्होंने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की और इस प्रकार भारत में शिक्षा-प्रचार में योग दिया। बाल-विवाह की कुरीति का भी उन्होंने विरोध किया। उनके विचारानुसार भारत में हिन्दू, बौद्ध आदि प्राचीन धर्मों की पुनस्थापना ही प्रधान कार्य था। इससे भारतीयों में आत्म-सम्मान, प्राचीन अतीत के प्रति आत्मगौरव और भविष्य के प्रति आत्मविश्वास के भाव उत्पन्न हुए। उनमें राष्ट्रीय जीवन की लहर सी दौड़ गयी और राष्ट्र का पुनस्संगठन प्रारम्भ हो गया।

श्रीमती बेसेंट के राजनीति में भाग लेने और होमरूल आन्दोलन संगठित करने का उल्लेख यथास्थान हुआ है। काँग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से और राजनीति में भाग लेकर उन्होंने देश को अपने विचारों से बहुत प्रभावित किया। धार्मिक-सुधारवादियों में वे ही अकेली हैं जिन्होंने राजनीति में इतना सक्रिय भाग लिया है। यही कारण है कि थियासाफ़िकल आन्दोलन का प्रभाव साहित्य पर पड़ा है। साहित्य में पूर्णरूप से राष्ट्रीय दृष्टिकोण आर्यसमाज तथा थिया-साफिकल आन्दोलनों के कारण ही ग्रहण किया गया है।

इन प्रमुख समाज सुधार-आन्दोलनों के अतिरिक्त अन्य आन्दोलन भी हैं जिन्होंने समाज़ और धर्म में सुधार करने का प्रयत्न किया है। राधास्वामी सम्प्रदाय ऐसा ही है। इसने खान-पान तथा जाति-पाति की संकीर्णताओं को दूर करने का प्रयत्न किया है और दहेज जैसी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया है।

१९१४ ई० में पं० हृदयनाथ कुँजरू ने सेवा समिति की स्थापना की। इस संस्था ने मेलों, अकालों, बाढ़ों तथा महामारियों के समय में महत्वपूर्ण सेवा-कार्य किया है। १९२३ ई० से यह कुमायूँ के पहाड़ों की नायक जाति में वेश्या-वृत्ति दूर करने के प्रयत्न में संलग्न है। इस संस्था ने एकता और सहयोग की भावना को शक्तिशाली किया है।

बीसवीं शती में स्त्री-शिक्षा में भी विशेष रूप से रुचि ली गयी। १९१६ ई० में श्री कार्वे ने भारतीय स्त्रियों के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना की।

इन अनेक समाज-सुधार आन्दोलनों ने सामूहिक रूप से देश को जागृत किया है। और समाज-सुधार के प्रमुख विषयों में लगभग सभी आन्दोलनों का एकमत रहा है।

१८८५ ई० से पूर्व का हिन्दी साहित्य

राष्ट्रीय जागरण की राजनीतिक अभिव्यक्ति १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना के साथ हुई परन्तु साहित्य में नवयुग का उन्मेष भारतेन्दु के रचनाकाल से ही प्रारम्भ हो गया था। भारतेन्दु की निधन तिथि १८८५ ई० है अतः कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही उनका सम्पूर्ण साहित्य निर्मित हो चुका था। उनका साहित्य नवयुग की विचार-धारा का प्रतिनिधि है और परिमाण में भी अधिक है। इस दृष्टि से उनके साहित्य का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। अन्य प्रमुख साहित्य-कारों की केवल एक दो रचनाएँ ही १८८५ ई० से पूर्व की हैं। १८८५ ई० के पूर्व के साहित्य पर, आलोच्य काल के साहित्य की पूर्व पीठिका के रूप में, एक विहंगम दृष्टि डालना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इस साहित्य तथा १८८५ ई० के बाद के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से ही यह ज्ञात हो सकता है कि साहित्य में किन विचारधाराओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति पहले से हो रही थी और किनकी प्रेरणा साहित्यकारों को राजनीति से मिली।

काव्य की दृष्टि से देखने पर भारतेन्दु भक्तियुगीन कृष्ण भक्त कवियों की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं किन्तु भारत की प्राचीन संस्कृति की ओर वे विशेष-रूप से आकृष्ट हुए हैं।

स्वर्णिम अतीत का चित्रण

१८८५ ई० उपरान्त साहित्य में जिस प्रकार भारत के गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण हुआ है उसी प्रकार १८८५ ई० से पूर्व के साहित्य में भी। 'वर्षा-विनोद' (१८८० ई०) में भारत के प्राचीन गौरव का उल्लेख करते हुए कवि लिखते हैं कि विक्रमादित्य शकारि कहलाते थे, चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिल्यूकस

की पुत्री से विवाह किया था तथा महानन्द की सेना का वर्णन सुन कर सिकन्दर तक भयभीत हो गया था। अनेकों बार इसी प्रकार हमारे देश के वीरों ने शत्रुओं को पराजित किया है।[१] सत्य हरिश्चंद्र (१८७५ ई०) नाटक में हरिश्चंद्र की कथा है तथा सती प्रताप (१८८४ ई०) में सावित्री और सत्यवान की। 'ईशुरवृष्ट और ईशकृष्ण' शीर्षक लेख में भारतेन्दु ने सिद्ध किया है कि संसार के अन्य धर्म भारत से ही फैले हैं और गल्प आदि में भी यही दिखायी पड़ता है।[२] 'जातीय संगीत' शीर्षक लेख में लेखक ने भारतवर्ष की उन्नति के लिए जातीय संगीत की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए उन गीतों के विषयों में से एक विषय पूर्वज आर्यों के शौर्य, औदार्य, सत्य आदि गुणों के वर्णन का भी रक्खा है। जन्मभूमि से स्नेह और उसे सुधारने का वर्णन भी इन गीतों का विषय लेखक ने माना है।[३] 'लेखक और नागरी लेखक' शीर्षक लेख में भारतेन्दु ने यह विश्वास व्यक्त किया है कि भारत के ही विश्वविद्यालयों का उदाहरण लेकर जगत में विश्वविद्यालयों की नींव पड़ी है।[४] भारतेन्दु ने बलिया में दिए गए व्याख्यान 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?' (१८७७ ई०) में भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण करते हुए लिखा है कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने अल्प साधनों से ही ज्योतिष आदि में चोटी की योग्यता प्राप्त कर ली थी।[५]

हिन्दी भाषा के महत्व के सम्बन्ध में विचार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी की उन्नति के लिए विशेष आग्रह था। 'हिन्दी लेक्चर' में प्रथम ही पृष्ठ पर वे लिखते हैं:—

> **'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।**
> **बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥'**

१—हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु : भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय खंड, 'वर्षा विनोद', पृ० ५०२-५०३;

२—तृतीय खंड, 'ईशुरवृष्ट और ईश-कृष्ण', पृ० ७८३-७८८;

३—'जातीय संगीत', पृ० ९३७;

४—'लेखक और नागरी लेखक';

५—'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?', पृ० ८९६

उनकी ये पंक्तियाँ बहुत प्रसिद्धि पा चुकी हैं। इसी पुस्तक में आगे वे लिखते हैं कि संस्कृत, फ़ारसी, अंगरेज़ी सब कुछ पढ़ कर भी हिन्दी के बिना लोग हीन ही बने रहते हैं।[१] सबसे अच्छी शिक्षा माता ही पुत्र को दे सकती है और वह माता हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा नहीं जानती[२]। यदि अपनी भाषा में विद्या की चर्चा होगी तो उससे सभी लाभ उठा सकेंगे। अंगरेजों में यही गुण है कि वे सब भाषाओं की पुस्तकें अपनी भाषा में अनुवादित करते हैं।[३] उनका समाज एक ही भाषा बोलता है इसी से उन्नत है। इसके विपरीत भारत में विभिन्न मत और विभिन्न भाषायें हैं।[४] कानून आदि का अनुवाद हिन्दी में हो जाय तो उससे साधारण जन बहुत लाभ उठा सकते हैं।[५]

इसके अतिरिक्त 'उर्दू का स्यापा' भी एक छोटी कविता है। इसमें भूमिका रूप में भारतेन्दु ने पहले गद्य में लिखा है। वे लिखते हैं कि बनारस अखबार देखने से पता चला कि बीबी उर्दू मारी गई और यह हत्या राजा शिवप्रसाद के द्वारा हुई।[६] अंग्रेजी का भी उन्होंने उपहास किया है। 'नये जमाने की मुकरी' में एक मुकरी अंगरेजी पर है।[७]

अपनी भाषा के प्रति हिन्दी लेखकों और कवियों का आग्रह प्रारम्भ से सदैव ही रहा है। उर्दू और अंग्रेजी का विरोध भी उन्होंने इसी कारण किया कि ये भाषाएँ हिन्दी की उन्नति के मार्ग में बाधक बन रही थीं। आगे के साहित्य में भी लेखकों ने हिन्दी-प्रचार का आग्रह किया है। हिन्दी-प्रचार का यह आन्दोलन

१—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृतीय खंड, 'हिन्दी लेक्चर', पृ० १

२—पृ० २;

३—पृ० ३;

४—पृ० ४;

५—पृ० ५

६—द्वि० खण्ड, 'उर्दू का स्यापा', पृ० ६७७-६७८;

७—'सब गुरुजन को बुरो बतावे
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्व न झूठी तेजी।
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेजी॥
—'नये जमाने की मुकरी', पृ० ८१०

राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित नहीं है। आर्यसमाज आन्दोलन ने अवश्य हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को और तीव्र कर दिया था।

सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार

भारत की अवनत दशा का वर्णन भी १८८५ ई० से पूर्व के साहित्य में मिलता है। स्त्रियों की दीन दशा, बालविवाह, बहुविवाह, विधवा-विवाह निषेध, वेश्यागमन आदि सभी सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख भारतेन्दु ने किया है। सामाजिक कुरीतियों की ओर लेखकों का ध्यान विशेष रूप से आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज आन्दोलनों के फलस्वरूप ही गया है।

१८५७ ई० की क्रान्ति के पहले ही विधवा-विवाह कानून बन चुका था। ब्रह्मसमाज आन्दोलन के कारण सामाजिक कुरीतियों का वर्णन साहित्य में बहुत हुआ है। १८७२ ई० में 'ब्राह्म मैरेज एक्ट—३' भी पास हो गया जिसके अनुसार जो ईसाई नहीं थे उन व्यक्तियों को यह घोषणा कर देने पर कि वे हिन्दू, पारसी, यहूदी या इस्लाम धर्म के अनुयायी नहीं हैं, अन्तर्जातीय विवाह करने का अधिकार मिल गया।

भारतेन्दु जी ने भी देश की सामाजिक अवनत-दशा का वर्णन अपने साहित्य में किया है।

मधु मुकुल (१८८० ई०) में 'होली' शीर्षक कविता में कवि ने भारत की वर्तमान अवनति का वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि सौभाग्य हार गया और दुर्भाग्य जीत गया। प्रजा दीन है और सब व्यक्ति पागल से हो रहे हैं। स्वाधीनता, धन, बुद्धिबल सब दुर्भाग्य ने जीत लिया और साहस, उद्यम, वीरता आदि सभी गुण होली में स्वाहा हो गए।[१] सत्य हरिश्चंद्र नाटक के भरतवाक्य में नाटककार ने प्रार्थना की है कि नर और नारी समान हो जावें जिससे स्पष्ट है कि स्त्रियों की अवनत दशा से लेखक को संतोष नहीं है।[२] ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज आदि सुधार आन्दोलनों ने स्त्रियों की स्थिति को उन्नत करने के लिए विशेष प्रयत्न किया था। ये उल्लेख इसी प्रभाव के कारण साहित्य में आये हैं। भारत-दुर्दशा (१८७६ ई०) नाटक में सत्यानाश फौजदार कहते हैं कि

१—हरिश्चंद्र, भारतेन्दु : भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वि० खंड, मधुमुकुल, 'होली', पृ० ४०५

२—भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग, 'सत्य हरिश्चंद्र', पृ० १२७

इन्होंने बहुत से धर्म फैलाए और छुआछूत बढ़ा दी। पुराणों के बहुविध वाक्यों से शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक मत फैले। बालविवाह, बहुविवाह, विधवा-विवाह निषेध आदि सामाजिक कुरीतियाँ फैलीं। विलायत गमन वर्जित करने से जनता कूपमंडूक हो गयी। अनेक देवी-देवताओं और भूत-प्रेतादि की पूजा प्रारम्भ हो गयी।[१] 'नीलदेवी' (१८८० ई०) गीतिरूपक की भूमिका में भी भारतीय ललनाओं से उन्नति करने का आग्रह किया है।[२] 'प्रहसन पंचक' (१८७३-८३ ई०) में स्वामी दयानन्द तथा बाबू केशवचंद्र सेन के कार्यों पर स्वर्ग की विचार-सभा के अधिवेशन का वर्णन करते हुए भारतेन्दु ने इन दोनों धर्म-सुधारकों के समाज-सुधार विषयक कार्यों से सहमति प्रकट की है।[३] 'स्तोत्र पंचरत्न' में उन्होंने वेश्या और मदिरा की व्यंग्यपूर्वक स्तुति की है।[४] 'जातीय संगीत' में भारतेन्दु ने लिखा है कि भारतवर्ष की उन्नति के लिये साधारण गंवारू भाषा में गीत बनाकर प्रचलित किए जायें जिनके विषय बालविवाह विरोध, जन्मपत्री की विधि दूर करना, बाल-शिक्षा प्रचार, अंग्रेजी फैशन का बहिष्कार, भ्रूण-हत्या और शिशु हत्या दूर करना, फूट दूर करना, मैत्री और ऐक्य बढ़ाना, बहु जातित्व के दोषों का उल्लेख, आलस्य और संतोष की निन्दा, व्यापार की उन्नति की आवश्यकता, नशे की निन्दा, अदालत में रुपए का अपव्यय, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करना, भारत के दुर्भाग्य का वर्णन आदि हों।[५] 'भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?' शीर्षक लेख में भारतेन्दु ने बाल-विवाह, कुली-प्रथा तथा बहुविवाह दूर करने तथा समाज विरुद्ध परन्तु धर्मशास्त्रों से अनुमोदित जहाज का सफ़र और विधवा-विवाह करने की सम्मति दी है।[६] 'दूषण मालिका' (१८७० ई०) पुस्तक से अवश्य भारतेन्दु का स्वामी दयानन्द से मतभेद प्रकट होता है, विशेष रूप से मूर्तिपूजा के विषय में।[७] 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (१८७३ ई०) में एक पात्र, बंगाली बाबू, विधवा विवाह के पक्ष में है,

---

१—भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग, 'भारत दुर्दशा', पृ० ४६५

२—'नीलदेवी', पृ० ५०३-५०४

३—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृतीय खंड, 'प्रहसन पंचक', पृ० ८३६

४—'स्तोत्र पंचरत्न', पृ० ८४३-८५१

५—'जातीय संगीत' पृ० ९३६-९३७

६—'भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?', पृ० ९०१

७—'दूषणमालिका', पृ० ६९८

परन्तु लेखक ने उन्हें यमराज के दरबार तक ही नहीं पहुँचाया है और इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट मत नहीं व्यक्त किया है।[1] बंगाली व्यक्ति को विधवा-विवाह के पक्ष में इसलिए दिखाया गया है क्योंकि बंगाल का ब्रह्मसमाज आन्दोलन प्रथम सुधार आन्दोलन था। बालकृष्ण भट्ट ने 'शिक्षादान' (१८७७ ई०) नाटक में स्त्रियों की दीन दशा का चित्रण किया है। नाटक की नायिका मालती व्यभिचारी पति के कारण अनेक कष्ट सहती है और अन्त में अपने सच्चे प्रेम से कठिनाइयों और कष्टों पर विजय प्राप्त करती है।

इस प्रकार इस काल के साहित्य में ही सुधार-आन्दोलनों के फलस्वरूप सामाजिक अवनति के वर्णन तथा समाज-सुधार की इच्छा की अभिव्यक्ति हुई है। लगभग सभी सुधारों का साहित्यकारों ने अनुमोदन किया है। केवल मूर्तिपूजा जैसे धार्मिक विषयों में कहीं-कहीं मतभेद दिखायी पड़ता है। जन्म-पत्री की विधि, बहुजातित्व आदि का विरोध स्पष्ट करता है कि साहित्यकारों का सामाजिक-सुधारों का आदर्श आर्यसमाज के सिद्धान्तों का अनुसरण ही है।

देश की नैतिक अवनति का चित्रण

देश की नैतिक अवनति का वर्णन भी भारतेन्दु के साहित्य में बहुत हुआ है। भारतेन्दु ने भारत दुर्दशा (१८७६ ई०) नाटक के पहले अंक की लावनी में भारतीयों की मूढ़ता, कलह, अविद्या, आलस्य, कुमति आदि अवगुणों का उल्लेख किया है।[2] तीसरे अंक में भारत 'दुदशा प्रसन्न होकर कहता है कि मैं फूट, बैर और कलह बुलाऊँगा और सुस्ती, आलस तथा दुख लाऊँगा। मैं भारतीयों को काफ़िर, काला और नीच पुकारूँगा, इनके हाथ-पैर तोड़ दूंगा तथा इन्हें संतोष, खुशामद और कायरता दूंगा।[3] तीसरे अंक में ही सत्यानाश फौजदार बताते कि उन्होंने फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रु, मार्जन और निर्बलता इन एक दर्जन दूती और दूतों को भारत में भेजा।[4] चतुर्थ

१—भारतेन्दु नाटकावली, द्वितीय भाग, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', प्रथम अंक

२—प्रथम भाग, भारत दुर्दशा, पृ० ४५८;

३—पृ० ४६२-४६३;

४—पृ० ४६७

अंक में भारत दुर्दैव आलस्य, मदिरा तथा अंधकार को भी भारत में भेजते हैं।[१]

मदिरा के उल्लेख से स्पष्ट है कि मद्यनिषेध का आग्रह करने में भी साहित्यकार सुधार आन्दोलनों से ही प्रभावित हुए हैं। सभी सुधार आन्दोलनों ने मद्यपान का निषेध किया था। केशवचंद्र सेन ने इस आन्दोलन में बहुत भाग लिया था और इंगलैंड के मद्यपान निषेधकों के साथ मिल कर कार्य किया था। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में भारतेन्दु ने उन व्यक्तियों का उपहास किया है जो मद्य पीते और मास खाते हैं।[२]

नीलदेवी के सातवें दृश्य में देवता कहता है कि मूर्खता का अंधकार भारत में चारों ओर फैल जायेगा तथा वीरता, एकता, ममता आदि दूर चले जायेंगे।[३] 'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' शीर्षक प्रहसन में जात वाला लोलुप ब्राह्मण कहता है कि टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें और झूठ को सच कर दें।[४] 'स्तोत्र पंचरत्न' (१८८२ ई०) के अंग्रेज स्तोत्र में भारतेन्दु ने भारतीयों की खुशामदी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। अंग्रेजों को सम्बोधन करके वे लिखते हैं कि हम दान करते हैं, स्कूल खोलते हैं, विद्या पढ़ते हैं, चंदा देते हैं, आपका वेश, खान-पान तथा भाषा सभी अपनाते हैं केवल इसलिए कि आप हम पर प्रसन्न हो जायें।[५] व्यंग्य के साथ वे लिखते हैं कि हम तुमको प्रणाम करते हैं, हमको चाकरी दो, राजा करो, रायबहादुर करो, कौंसिल का मेम्बर बनाओ।[६] भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय भाग की नये जमानेकी मुकरियों में कवि ने खिताबों की निन्दा की है।[७] स्पष्ट है कि खिताबों को आरम्भ से ही राष्ट्रीय मनोवृत्ति वाले व्यक्ति अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। यह निश्चित है कि जो सरकारकी खुशामद में लगे रहते होंगे उन्हें ही खिताब मिलते होंगे। बीसवीं

१—'भारत दुर्दशा', चतुर्थ अंक, पृ० ४७५, ४७८, ४८०

२—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', तृतीय तथा चतुर्थ अंक

३—नीलदेवी, साँतवाँ दृश्य, पृ० ५२१

४—'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा', दूसरा अंक, पृ० ५५२

५—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृतीय खंड, 'स्तोत्र पंचरत्न', पृ० ८५६

६—पृ० ८५७

७—द्वि० खंड, 'नये जमाने की मुकरी', पृ० ८१२

शंती के बहिष्कार आन्दोलन में उपाधियों के बहिष्कार को भी अपनाया गया था और उसका कारण यही था कि जनता प्रारम्भ से ही उपाधियों का विरोध कर रही थी। 'लेवी प्राण लेवी' शीर्षक लेख में लार्ड मेयो के काशी के दरबार का वर्णन है और भारतीयों की खुशामदी प्रवृत्ति का उपहास किया गया है। भारतेन्दु लिखते हैं कि पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरता त्यागेंगे ?[१]

'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में भारतेन्दु लिखते हैं कि यहाँ आलस्य की दावाग्नि जल रही है और मूढ़ता की वायु उस दावाग्नि को और अधिक प्रज्ज्वलित कर रही है। पारस्परिक वैर भाव है। जहाँ धन और विद्या बरसती थी वहाँ अब केवल बेबसी है। आलस्य, कायरता और निरुद्यमता चारों ओर फैली हुई है। धन विदेश चला जाता है फिर भी हृदय चंचल नहीं होता।[२] भारतेन्दु ने आलस्य का उल्लेख एक लेख में भी किया है।[३] अहिंसा में भारतेन्दु की पूर्ण आस्था है। 'बकरी बिलाप' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं कि व्यर्थ ही यवनों की निन्दा की जाती है, जो हत्यारा है वही यवन है। शास्त्रों का कथन है कि परोपकार से बढ़कर पुण्य तथा परपीड़न से बढ़कर कोई पाप नहीं है। अहिंसा सब धर्मों से श्रेष्ठ है।[४] अहिंसा के संबंध में कवियों ये उल्लेख वैष्णव धर्मोपासकों की परम्परा में चले आ रहे थे। राजनीति में अहिंसात्मक नीति का महत्वपूर्ण स्थान प्रथम असहयोग आन्दोलन से प्रारम्भ हुआ। उसके पूर्व के ये उल्लेख राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप नहीं हैं। अहिंसात्मक नीति को आर्यसमाज ने भी अपनाया था।

देश की आर्थिक अवनति का वर्णन

देश की नैतिक अवनति के साथ-साथ भारतेन्दु ने देश की आर्थिक अवनति का भी वर्णन किया है। राजकर के कारण जनता में असंतोष था जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में भी हुई। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'धनंजय विजय व्यायोग', (१८७३ ई०) तथा 'सत्य हरिश्चन्द्र' सभी नाटकों में भरतवाक्य में लेखक ने कामना की है कि राजकर छूट जाये।[५] 'भारत दुर्दशा' के

१—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृ० खंड, 'लेवी प्राण लेवी', पृ० ९३८-९४०

२—द्वितीय खंड, 'प्रबोधिनी' पृ० ६७९

३—तृतीय खंड, 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?' पृ० ८९८

४—द्वितीय खंड, 'बकरी विलाप' पृ० ६७९

५—भारतेन्दु नाटकावली, द्वितीय भाग, पृ० १४१ तथा प्रथम भाग, पृ० १२७ तथा १२७

प्रथम अंक की लावनी में भारतेन्दु ब्रिटिश शासन में आर्थिक कष्ट का वर्णन करते हुए लिखते है :—

'अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चाल जात इहै अति ख्वारी।।
ताहू पै मंहगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हाहारी।।
सब के ऊपर टिक्कस की आफ़त आई।।'[१]

तीसरे अंक में 'भारत दुर्दैव' अपना संकल्प व्यक्त करता है कि वह भारतीयों को कौड़ी-कौड़ी के लिए मुहताज कर देगा ; अकाल, मंहगी तथा रोग लायेगा, उलटा पानी बरसायेगा, मरी बुलाकर, अन्न मंहगा कर के, देश को उजाड़ देगा और सब के ऊपर टैक्स लगायेगा।[२] तीसरे अंक में सत्यानाश फौजदार बताते हैं कि उन्होंने धन की सेना को जीतने के लिए अपव्यय, अदालत, फ़ैशन आदि को भेजा। धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही उसे शरण मिली।[३] 'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' (१८८१ ई०) प्रहसन के दूसरे अंक में घासीराम कहते हैं कि हाकिम लोग सब पर टैक्स लगाते हैं।[४] इसी अंक में पाचक वाला कहता है कि इस चूरन का नाम हिन्दू चूरन है और इसका काम 'बिलायत पूरन' है। जब से यह भारतवर्ष में आया है उसका धन और बल सभी घटा दिया है।[५] 'भारत जननी' ऑपेरा (१८७७ ई०) में भारतलक्ष्मी का भारतवासियों को छोड़ कर, सागर पार जाने का उल्लेख है।[६] 'वैष्णवता और भारतवर्ष' (१८७९ ई०) शीर्षक लेख में भारतेन्दु कहते हैं कि जब पेट भर खाने को ही न मिलेगा तो धर्म कहाँ बचेगा। चारों ओर आग लगी हुई है और दरिद्रता के मारे देश जला जा रहा है। अंगरेजों

१—भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग, 'भारत दुर्दशा', प्रथम अंक, पृ० ४५८;
२—तीसरा अंक, पृ० ४६२-४६३;
३—पृ० ४६६-४६७;
४—'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा', दूसरा अंक पृ० ५४९;
५—पृ० ५५१;
६—द्वितीय भाग, भारत जननी, पृ० २३४

से जो नौकरियाँ बच जाती है उन पर मुसलमान आदि विधर्मी भरती होते जा रहे हैं। वाणिज्य की आमदनी तो पहले ही नहीं थी।[१] 'स्तोत्र पंचरत्न' के 'अंगरेज स्तोत्र' में भी लेखक ने 'टैक्स' का उल्लेख किया है।[२] श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' (१८८४ ई०) उपन्यास के नायक दिल्ली के एक रईस लाला मदनमोहन हैं। वे बहुत फ़िजूलखर्ची करते हैं और विलायत की बनी हुई वस्तुओं पर अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर देते हैं। इस पर लाला ब्रजकिशोर सोचते हैं कि भारतीय, कारीगरी की निरर्थक चीजों के बदले बेकार अपनी दौलत खोये देते हैं।[३] 'हिन्दी लेक्चर' में भारतेन्दु ने देश की दरिद्रता तथा भारतीयों के विदेशी वस्तु प्रेम का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि हम लोगों का मारकीन और मलमल के बिना काम नहीं चलता और हम परदेशी जुलाहों के गुलाम हो गये हैं। यहाँ से ही कच्चा माल विदेश जाता है और उसकी सुन्दर वस्तुएँ बन कर फिर भारतवर्ष में आती हैं तथा भारत निर्धन होता जाता है।[४] बलिया के व्याख्यान में भी भारतेन्दु ने देश की दरिद्रता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि दियासलाई तक हमारे यहाँ विदेश से आती है और हमारा धन बाहर चला जाता है। उन्होंने करीगरी करने की सलाह दी है जिससे देश का रुपया देश में ही रहे।

काँग्रेस ने भी प्रारम्भ से ही देश की आर्थिक दशा की ओर बहुत ध्यान दिया। भारतेन्दु साहित्य के इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही साहित्यकारों ने देश की आर्थिक अवनति का चित्रण साहित्य में किया। मंहगी, अकाल, रोग, दरिद्रता, नौकरियों में हिन्दुओं का न लिया जाना, वाणिज्य की हीन दशा तथा टैक्स आदि के अनेक उल्लेख भारतेन्दु के साहित्य में प्राप्त होते हैं। भारत की धन-संपत्ति के विलायत चले जाने का भी उल्लेख उन्होंने किया है। धन नाश का कारण भी उन्होंने अदालत, अपव्यय तथा फ़ैशन को माना है। इससे स्पष्ट है कि अदालतों का विरोध भी काँग्रेस की स्थापना से पूर्व ही साहित्यकार कर रहे थे। जनता की इस विरोध-भावना की ही अभिव्यक्ति बहिष्कार आन्दोलन में हुई जब अदालतों आदि के बहिष्कार की नीति को अपनाया गया।

१—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृतीय खंड, 'वैष्णवता और भारतवर्ष', पृ० ८०१;
२—'स्तोत्र पंचरत्न,' पृ० ८५७
३—श्रीनिवासदास, 'परीक्षा गुरु', प्रकरण २
४—हरिश्चंद्र, भारतेन्दु, 'हिन्दी लेक्चर', पृ० ५

स्वदेशी का आग्रह भी इसी समय से साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। यह स्वदेशी का आग्रह तथा विदेशी वस्तु बहिष्कार की भावना अपने जन्मकाल में उतने उत्कट रूप में नहीं है जितना आगे आने वाले वर्षों के साहित्य में।

उद्‌बोधन

यद्यपि १८८५ ई० से पूर्व के साहित्य में परतंत्रता के संबंध में महत्वपूर्ण उल्लेख नहीं प्राप्त होते हैं, फिर भी उद्‌बोधन के गीतों की रचना भारतेन्दु ने की है।

'मधु मुकुल' की 'होली' शीर्षक कविता में कवि ने उद्‌बोधन का संदेश दिया है। कवि राम, युधिष्ठिर, विक्रम का स्मरण करने का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि आलस्य त्याग कर सब कमर कस लो और विजय-दुंदुभी बजा कर आगे पैर बढ़ाओ।[१] अन्य कविताओं में भी उद्‌बोधन के गीत हैं। 'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में श्रीकृष्ण से जागने की प्रार्थना की गयी है। वे कामना करते हैं कि सब कलाओं की उन्नति हो, राजा कर न लें और प्रजावत्सल हों तथा गायों का वध कोई न करे।[२]

राजभक्ति की भावना और ब्रिटिश शासन से संताप

भारतेन्दु साहित्य में राजभक्ति का स्वर प्रधान है। 'दिल्ली दरबार दर्पण' (१८७७ ई०) में दिल्ली दरबार का वर्णन है। पुस्तक में वाइसराय की प्रशंसा है।[३] 'श्रीराजकुमार सुस्वागत पत्र' (१८६९ ई०) ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत-शुभागमन के अवसर पर विरचित है। भारतेन्दु राजभक्ति प्रकट करते हुए लिखते हैं कि 'कई सौ बरस से हम लोग चातक की भाँति आस लगाये थे कि वह भी कोई दिन ईश्वर दिखावेगा, जिस दिन हम अपने पालने वाले को इन नेत्रों से देखेंगे और अपना उत्साह और प्रीति प्रकट करेंगे।'[४] १८७१ ई० में श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर तथा महारानी विक्टोरिया

१—हरिश्चंद्र, भारतेन्दु : भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय खंड, मधुमुकुल, 'होली', पृ० ४०५;

२—'प्रबोधिनी', पृ० ६७९;

३—तृतीय खंड, 'दिल्ली दरबार दर्पण', पृ० १८३-२१०;

४—द्वितीय खंड, 'श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र,', पृ० ६२६

के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के विवाह के अवसर पर उन्होंने कविताएँ लिखी हैं।[१] 'श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन' शीर्षक कविता युवराज प्रिंस आफ वेल्स (सम्राट एडवर्ड सप्तम) के भारत आगमन के अवसर पर लिखी गई है।[२] 'भारत भिक्षा' शीर्षक कविता में राजकुमार से कृपा की भिक्षा माँगी गई है तथा उनके प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त की गयी हैं।[३] 'मानसोपायन' शीर्षक कविता में कवि ने हृदय के मार्मिक उद्‌गार व्यक्त किए हैं। वे लिखते हैं कि कभी हिन्दुओं की दशा पर करुणा होती है और इच्छा होती है कि जो कुछ हृदय में उद्‌गार संचित हैं उन्हें प्रकट कर दिया जाय पर साथ ही राजभक्ति कहती है कि जो कुछ भी निवेदन करना बड़ी नम्रता के साथ। 'मनोमुकुलमाला' शीर्षक कविता में राजराजेश्वरी की स्तुति है तथा 'जातीय संगीत' में भी राजभक्ति प्रकट करते हुए ईश्वर से महारानी की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है। 'भारतवीरत्व' कविता सन् १८७८ ई० में अफगान युद्ध छिड़ने पर लिखी गयी है। इस में कवि ने भारतीयों से युद्ध में भाग लेने का आग्रह किया है। ब्रिटिश शासन से पूर्ण संतोष प्रकट करते हुए कवि कहते हैं कि शासक प्रजा की स्त्रियों पर चित्त नहीं चलाते, न प्रजा के धर्म को नष्ट करते हैं। उन्होंने पुल और सड़कें बनाकर प्रजा को सुख दिया है और हर एक ग्राम में पहरेदार नियुक्त किए हैं जिनके कारण चोरियाँ बन्द हो गयीं। राजकुलों की दत्तक प्रथा को नष्ट नहीं किया, 'वारड' कानून से अनेक कुलों को बचाया तथा विद्यादान दिया।[४] 'रिपनाष्टक' शीर्षक कविता में लार्ड रिपन की प्रशंसा में कहा गया है कि उन्होंने भारतीय शिल्प की उन्नति की, शिक्षा का विस्तार किया तथा हिन्दुओं का उन्नति का पथ प्रशस्त किया। उन्होंने स्थानीक स्वराज दिया तथा भारतवासियों को महा-न्यायपति-पद प्रथम बार दिया।[५] 'प्रेमजोगिनी,' (१८७५ ई०) नाटिका के प्रथम अंक के तीसरे गर्भांक में मुगलसराय स्टेशन का दृश्य है। काशी की प्रशंसा

१—भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय खंड, पृ० ६३३
२—पृ० ६३३ तथा 'मुँह दिखावनी', पृ० ६७५
३—'श्रीराजकुमार शुभागमन वर्णन', पृ० ६९७
४—'भारत भिक्षा', पृ० ७०१
५—'भारतवीरत्व', पृ० ७६१-७६५

करते हुए सुधाकर कहता है : 'जहाँ श्रीमती महारानी विक्टोरिया के शासनानुवर्ती अनेक कमिश्नर, जज, कलेक्टरादि अपने-अपने काम में सावधान रहकर प्रजा को हाथ पर लिये रहते हैं और प्रजा उनके विकट दंड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है।'[१] भारत दुर्दशा में भारत भाग्य भारत को जगाने का प्रयत्न करता हुआ कहता है 'अंगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे। मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गये, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने-सुनने का अधिकार मिला तथा देश-विदेश से नई-नई विद्या और कारीगरी आई।[२] 'भारत जननी' ऑपेरा में भारत जननी कहती है 'तुम लोग अब एक बेर जगत्-विख्याता, ललनाकुलकमल-कलिका प्रकाशिका, राजनिचय पूजित पादपीठा, सरलहृदया, आर्द्रचित्ता, प्रजारंजनकारिणी एवम् दयाशीला आर्य्यस्वामिनी राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के चरणकमलों में अपने इस दुःख का निवेदन करो, वह अतीव कारुण्यमयी, दयाशायिनी और प्रजाशोकनाशिनी हैं, निस्संदेह तुम लोगों की ओर कृपाकटाक्ष से देखेंगी और अगस्त की भांति प्रकटित हो तुम लोगों के शोक सागर का शोषण कर लेंगी।'[३] आगे भी भारतमाता ने इसी प्रकार भारतवासियों को महारानी विक्टोरिया को पुकारने की सम्मति दी है। पुकारने पर एक साहब आकर भारतवासियों पर कुपित होता है।[४] परन्तु दूसरा साहब आकर कहता है कि सब अंगरेज एक से नहीं हैं। भारतमाता का अश्रुपात देख कर जिनको स्वयम् अश्रुपात नहीं होता है, ऐसे अंगरेज बहुत थोड़े हैं। उनकी दयालुता, न्यायशीलता, निष्पक्ष भाव तथा प्रजापालन संसार में प्रसिद्ध हैं। महारानी विक्टोरिया रामचन्द्र से भी अधिक प्रजापालन में सदैव तत्पर रहती हैं।[५] 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?' शीर्षक व्याख्यान में भी भारतेन्दु लिखते हैं कि यदि अंगरजों के राज्य में भी हमने उन्नति न की तो

१—भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग, 'प्रेमजोगिनी', प्रथम अंक, तृतीय गर्भांक, पृ० १५८

२—'भारतदुर्दशा', छठा अंक, पृ० ४९६

३—द्वितीय भाग, 'भारत जननी', पृ० २४२;

४—पृ० २४४;

५—पृ० २४५-२४६

फिर कब करेंगे ?[१]

भारतेन्दु ने राजभक्ति की भावना तो प्रकट की ही है, ब्रिटिश शासन से भी उन्होंने संतोष ही प्रकट किया है। विद्या, कारीगरी आदि की उन्नति तथा प्रजा को अधिकार मिलने के कारण उन्हें विशेष प्रसन्नता है। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि कांग्रेस की स्थापना के पूर्व देश में भारतीयों और अंगरेजों के बीच मित्र-भाव वर्तमान था। इसी सौहार्द्र की अभिव्यक्ति राजनीति और साहित्य में आगे भी हुई है।

ब्रिटिश शासन से असंतोष

ब्रिटिश राज्य के अनुचित कार्यों की ओर भी भारतेन्दु का ध्यान गया। "विजय वल्लरी' कविता अफगान युद्ध की समाप्ति पर लिखी गयी है। कवि लिखते हैं कि धननाश के कारण भारतवासी रण से उदास हैं। वैसे ही भारत अकाल पीड़ित है ऊपर से द्रव्यनाश का यह कार्य व्यर्थ है। काबुल-युद्ध में फंसकर भारत जर्जर हो गया है। अगर काबुल भारत के राज्य में मिल भी गया तो भी भारतवासी वहाँ जाकर जज या कलेक्टर तो होंगे नहीं। ये तो केवल धन देने तथा मरने के लिए हैं।[२] 'नये जमाने की मुकरी' में एक मुकरी अंगरेजों के सम्बन्ध में भी है जिसमें उनके सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि ये भीतर ही भीतर सब रस चूस लेते हैं, हँस-हँस के तन-मन-धन सब मूसते हैं परन्तु बातचीत में बड़े तेज हैं।[३] 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारत दुर्दैव कहता है कि कुछ पढ़े लिखे व्यक्ति देश सुधारना चाहते हैं। मैं जिले के हाकिमों को हुक्म दूंगा कि इन्हें 'डिसलायल्टी' में पकड़ो तथा जो जितना बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना ही बड़ा मेडल और खिताब दो।[४] पाँचवें अंक में बंगाली सज्जन अपना विचार व्यक्त करते हैं कि गवर्नमेण्ट तो केवल गोलमाल से भय करती है, और किसी

१—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृतीय खंड, 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?', पृ० ८९७

२—द्वितीय खंड, 'विजयवल्लरी', पृ० ७१५

३—'नये जमाने की मुकरी', पृ० ८११

४—भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग, 'भारत दुर्दशा', तीसरा अंक, पृ० ४६३

तरह नहीं सुनती ।[१] इसी अंक में जब 'डिसलायल्टी' सभासदों को पकड़ने के लिए आती है तब वह बताती है कि गवर्नमेण्ट की पालिसी यही है। 'कविवचन सुधा' में सरकार के विरुद्ध कोई बात न थी परन्तु उसे पकड़ने के लिए हम भेजे गए। सभापति के पूछने पर कि पकड़ने का अधिकार आपको किस कानून से है, डिसलायल्टी उत्तर देती है 'इंगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफ़ा से।'[२] ब्रिटिश शासन की स्वेच्छाचारिता पर यह कटु व्यंग है। 'स्तोत्रपंचरत्न' के 'अंगरेज स्तोत्र' में लेखक अंगरेजों से कहते हैं कि देश पक्षपात तुम्हारी मूंछ है और टैक्स तुम्हारे कराल दंत हैं, चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजाएँ हैं, अमले तुम्हारे नख हैं तथा अन्धेर तुम्हारा पृष्ठ है।[३] इनकम-टैक्स को अंग्रेजों का कलंक कहा गया है।[४] 'लेखक और नागरी लेखक' लेख में भारतेन्दु लिखते हैं कि कुछ नागरी लेखक वर्तमान राजनियम के अनुसार अपनी पुस्तकों पर स्वत्व न रख सके और अपने जीवन के दिन भयंकर दरिद्रता में बिताते हुए चले गए।[५]

'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' शीर्षक प्रहसन में समकालीन शासन व्यवस्था का चित्र-सा उपस्थित किया गया है :—

'धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करे सो न्याव सदाई।
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले अरु प्यादे।।
अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहु राजा रहत बिदेसा।
गोद्विज श्रुति आदर नहिं होई। मानहु नृपति बिधर्मी कोई।।'[६]

समकालीन घटनाओं के उल्लेख

भारतेन्दु की स्फुट कविताओं में समकालीन घटनाओं का उल्लेख मिलता है। 'भारतवीरत्व' शीर्षक कविता अफ़गान-युद्ध छिड़ने पर लिखी गयी है। इसमें

१—'भारत दुर्दशा', पाँचवां अंक, पृ० ४८३;
२—पृ० ४८७-४८८
३—भारतेन्दु ग्रन्थावली, तृतीय खंड, स्तोत्रपंचरत्न, 'अंग्रेजस्तोत्र', पृ० ८५८;
४—पृ० ८५५
५—'लेखक और नागरी लेखक'
६—भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग, 'अंधेर नगरी', पांचवाँ अंक, पृ० ५६३

उन राजाओं का उल्लेख किया गया है जिन्होंने इस युद्ध में सहायता दी।'[१] "विजय-वल्लरी' तथा 'विजयिनी विजय बैजयन्ती' शीर्षक कविताएँ अफ़गान-युद्ध समाप्त हो जाने पर लिखी गयी हैं। इसी प्रकार 'रिपनाष्टक' शीर्षक कविता में लार्ड रिपन द्वारा किए गये सुधारों का उल्लेख है।[२] समकालीन घटनाओं के उल्लेख इसी प्रकार आगे के साहित्य में भी प्राप्त होते हैं।

राष्ट्रीयता का स्वरूप

भारतेन्दु ने भारतीयों और हिन्दुओं में कोई अन्तर नहीं माना है। जहाँ वे समाजसुधार, धर्मसुधार अथवा देशोद्धार के लिए आग्रह प्रकट करते हैं वहाँ केवल हिन्दुओं को सम्बोधित करते हैं। 'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में वे वर्तमान दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जहाँ विश्वेश्वर, सोमनाथ और माधव के मन्दिर थे वहाँ अब मसजिदें बन गयी हैं और 'अल्ला-हो-अकबर' होता है।[३] "भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?' शीर्षक लेख में भारतेन्दु हिन्दू की परिभाषा इस प्रकार करते हैं 'जो हिन्दुस्तान में रहे चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिन्दू।[४]

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि भारतेन्दु हिन्दू जातीयता और भारतीय राष्ट्रीयता को समानार्थक मानते हैं। आगे आने वाले साहित्य में कुछ साहित्यकारों ने हिन्दू जातीयता का यही दृष्टिकोण ग्रहण किया है परन्तु क्रमशः उनके विचारों में परिवर्तन आया है जो स्पष्ट रूप से इंडियन नेशनल काँग्रेस का प्रभाव है।

१—भारतेन्दु ग्रन्थावली : द्वितीय खंड, 'भारतवीरत्व', पृ० ७६५

२—'विजय वल्लरी', 'विजयिनी विजय बैजयन्ती' तथा 'रिपनाष्टक'

३—'प्रबोधिनी', पृ० ६७९

४—तृतीय खंड, 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?', पृ० ९०१

अध्याय १

राष्ट्रीय आंदोलन : समकालीन हिन्दी साहित्य

१८८५ ई०-१९०५ ई०

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, इलबर्ट बिल की घटना हो जाने के उपरान्त देश के नेताओं का ध्यान इस ओर गया कि केवल राजनीतिक-समस्याओं पर विचार करने के लिए कोई अखिल भारतीय संगठन होना आवश्यक है। तीनों प्रेसीडेंसियों में राजनीतिक और सामाजिक संगठन पहले से थे ही। १८७६ ई० में इण्डियन एसोसियेशन की, तथा १८८१ ई० में मद्रास में महाजन-सभा की स्थापना हो चुकी थी। बाम्बे प्रेसीडेंसी एसोसियेशन की स्थापना १८८५ ई० में हुई थी। १८८३ ई० में कलकते के इण्डियन एसोसियेशन की नेशनल कान्फ्रेंस के अवसर पर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने भारतीयों को राष्ट्र के हित के लिये एकता के सूत्र में बँध जाने की प्रेरणा दी। उन्हें १८७७ ई० के दिल्ली-दरबार से एक बड़े राजनीतिक संगठन की प्रेरणा मिली थी। ह्यूम साहब ने लार्ड डफ़रिन से इस संबंध में सलाह ली और यह कहा जाता है कि लार्ड डफ़रिन ने ही इस अखिल भारतीय संस्था को राजनीतिक संस्था बनाने पर बल दिया और यह भी कहा कि गवर्नर सभापति न हुआ करे अन्यथा लोगों को अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त

करने में बाधा होगी। यह कान्फ्रेंस बम्बई में दिसम्बर १८८५ ई० में हुई और इसने अपना नाम 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' रक्खा। दिसम्बर की परिषद् के दो मुख्य ध्येय थे। पहला यह कि राष्ट्रीय उन्नति चाहने वाले व्यक्ति एक दूसरे से परिचित हों और दूसरा यह निश्चित करना कि उस वर्ष कौन-कौन से कार्य अंगीकार किये जायें। ह्यूम साहब इंगलैंड जाकर वहाँ के व्यक्तियों से भी मिले और इंगलैंड में भी एक संगठन बनाया गया। इसका उद्देश्य था कि पार्लियामेण्ट के मेम्बरों से यह प्रतिज्ञा करवाई जाय कि वे भारत के मामलों में रुचि लेंगे। इस प्रकार अंग्रेजों और भारतीयों में सौहार्द्र-भाव के साथ इस संस्था का प्रारंभ हुआ।

अपने विकास की प्रारंभिक स्थिति में कांग्रेसियों की नीति अनुनय-विनय की थी। डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है—'पर इसमें कोई शक नहीं कि ठेठ १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस की जो प्रगति हुई, उसकी बुनियाद थी वैध आन्दोलन के प्रति उनका दृढ़ और अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर अटल विश्वास ही।'[1] प्रारंभिक दिनों में कांग्रेस ने बराबर राजभक्ति संबंधी प्रस्ताव पास किए हैं। महारानी विक्टोरिया तथा सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर कांग्रेस को अपनी राजभक्ति प्रकट करने का अवसर मिला। राजभक्ति की शपथ कई बार ली गयी और राजघराने के सदस्यों के भारत आगमन पर स्वागत संबंधी प्रस्ताव भी पास हुए। सम्राट् के प्रति उनकी यह भक्ति केवल प्रदर्शन मात्र नहीं थी, वह सच्ची राजभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थी। एक बड़े साम्राज्य और सम्राट् की कल्पना भारतीयों को सदैव रुचिकर रही है। १८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया के शासन अपने हाथ में लेने से भारतीयों में नवीन आशाओं का संचार हुआ। हमारे प्रारंभिक राजनीतिज्ञों को अंग्रेजों की न्यायप्रियता में दृढ़ विश्वास था। उनका विचार था कि उनकी शिकायतें सम्राट् तक पहुंच ही नहीं पाती हैं, दोष नौकरशाही या सरकार में है, अंग्रेज-जाति अथवा राजा का नहीं। १८९६ ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष ने कहा कि 'अंग्रेजों से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कहीं नहीं है।'[2]

प्रथम चरण का साहित्य कांग्रेस की अनुनय-विनय की नीति और राजभक्ति की भावना से परिचालित है। महारानी के घोषणा-पत्र के आश्वासन इस साहित्य की पृष्ठभूमि में हैं। जिस प्रकार राजनीतिज्ञों ने राजा के प्रति भक्ति प्रकट की

१-२—सीतारामय्या : कांग्रेस का इतिहास, भाग १, अध्याय ३, पृ० ५८

है और नौकरशाही के प्रति असंतोष, उसी प्रकार जहाँ साहित्यकारों ने ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष की भावना व्यक्त भी की है, वहाँ यह समझ कर ही कि दूर रहने के कारण ब्रिटेन के राजा हमारे कष्टों को समझ नहीं सकते। दोष सरकार का है, राजा का नहीं।

काँग्रेस के १८८५ से १९०५ ई० तक के प्रस्तावों पर दृष्टि डालने से तत्कालीन विचार परम्परा जानी जा सकती है। इस काल में काँग्रेस की माँगें मुख्यतः तीन प्रकार की थीं। पहली शासन-सुधार संबंधी, दूसरी भारतीयों की आर्थिक दुरवस्था संबंधी तथा तीसरी वे माँगें जो दोनों से संबंधित हैं।

शासन-सुधार संबंधी प्रस्तावों में सबसे पहले इण्डिया कौंसिल के संशोधन और उसे तोड़ देने के प्रस्ताव पास हुए। अपने प्रथम अधिवेशन में ही काँग्रेस ने इण्डिया कौंसिल को तोड़ देने का प्रस्ताव पास किया था। जब इण्डिया कौंसिल के तोड़े जाने की आशा कम दिखायी दी तो बाद में उसके सुधार के प्रस्ताव पास किए गए। शासन-कार्य के प्रति असंतोष इसी से प्रकट होता है कि अपने प्रथम अधिवेशन में ही काँग्रेस ने प्रस्ताव पास किया कि शासन-कार्य की जाँच के लिए एक रायल कमीशन बिठाया जाय।

काँग्रेस की प्रारंभ से ही यह माँग थी कि कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या अधिक होनी चाहिए, बजट इन कौंसिलों में विचारार्थ पेश किया जाना चाहिए और कौंसिल के सदस्यों को शासन के प्रत्येक विभाग के संबंध में प्रश्न पूछने का अधिकार मिलना चाहिए। इस आशय का प्रस्ताव प्रथम अधिवेशन में ही पास हुआ था। उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में भी ऐसी कौंसिलों की स्थापना की माँग की गयी। ये प्रस्ताव बराबर पास होते रहे। १८९२ ई० में कौंसिलों के सुधार संबंधी इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट पास हो गया और काँग्रेस ने राजभक्ति के भाव से उसे स्वीकार भी कर लिया, फिर भी आवश्यक परिवर्तन सुझाए गए।

इण्डिया-कौंसिल तोड़ने अथवा उसमें सुधार करने, कौंसिलों की स्थिति में सुधार करने आदि वैधानिक विषयों में 'प्रेमघन' के अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों ने रुचि नहीं ली है। केवल 'प्रेमघन' के 'भारत-सौभाग्य' नाटक में काँग्रेस के प्रस्तावों के महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। इसका कारण यही है कि इस नाटक की रचना काँग्रेस के अधिवेशन के समय खेलने के उद्देश्य से हुई थी।

१८८६ ई० में ही यह प्रस्ताव पास किया गया कि न्याय और शासन विभाग पृथक कर दिए जायँ। राजा राममोहन राय के समय से ही इस सुधार के लिए आन्दोलन हो रहा था। इसके बाद बराबर इस आशय के प्रस्ताव पास किए

जाते रहे। १८८६ ई० में ही इस आशय के प्रस्ताव भी पास किए गए कि जूरी द्वारा मकदमों की सुनवाई अधिकाधिक हो, उनके फैसले अन्तिम समझे जायें तथा वारंट वाले मामलों में अभियुक्तों को यह अधिकार दिया जाय कि उनका मुकदमा मजिस्ट्रेट के सामने पेश न होकर दौरा-जज की अदालत में पेश हो। १८९४ ई० में प्रस्ताव रक्खा गया कि वकीलों में से ऊँचे न्याय-विभाग के अफसर नियुक्त किये जायें। १८९७ में यह प्रस्ताव पास हुआ कि १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन (बंगाल), १८१९ का दूसरा रेग्यूलेशन (मद्रास) तथा १८२७ का पच्चीसवाँ रेग्यूलेशन (बम्बई) वापिस लिए जायें क्योंकि इनके द्वारा हर किसी को मुकदमा चलाये बिना ही देशनिकाले का दण्ड दिया जा सकता था। शस्त्र-कानून व नियमों में संशोधन करने के लिए भी प्रस्ताव पास किए गए। इस आशय के भी प्रस्ताव पास हुए कि प्रान्तों को आर्थिक स्वतंत्रता दी जाये। यह भी प्रार्थना की गई कि देशी-राज्य-स्थित प्रेसों के संबंध में भारतीय-सरकार द्वारा प्रकाशित नोटिफ़िकेशन वापस लिया जाय। उपनिवेशों में भारतीयों की स्थिति के संबंध में १८९४ ई० में पहली बार प्रस्ताव पास हुआ और उसके बाद बराबर दक्षिण अफ्रीका संबंधी अयोग्यताओं का विरोध होता रहा। कांग्रेस ने निरन्तर शर्तबन्दी, कुली-प्रथा तथा अन्य प्रतिबन्धक कानूनों को हटाने की मांग की। १८९८ ई० के लगभग भारतीयों के अयोग्यता संबंधी तीन और प्रस्ताव पास हो चुके थे और गाँधी जी ने अपना प्रसिद्ध आन्दोलन प्रारंभ कर दिया था।

न्याय के विषय में साहित्यकारों ने कांग्रेस के समाने कोई निश्चित मांग तो नहीं उपस्थित की किन्तु सामान्यतः न्याय-विभाग के प्रति इस काल के सम्पूर्ण साहित्य में असंतोष के भाव व्यक्त हुए हैं। शस्त्र-कानून तथा प्रेस की स्वतंत्रता के अपहरण के कारण भी साहित्यकारों ने क्षोभ प्रकट किया है। कर्जन के शासन-काल की तीव्र आलोचना भी इस काल के अन्तिम वर्षों से आरम्भ हो जाती है।

इसके बाद वे प्रस्ताव आते हैं जिनका एक पहलू आर्थिक भी है। इन प्रस्तावों में मुख्य सैनिक-समस्या से संबंधित है। अपने पहले ही अधिवेशन में कांग्रेस ने सैनिक खर्च में वृद्धि का विरोध किया था। अगले वर्ष भारतीयों को सैनिक स्वयंसेवक बनाने की प्रथा जारी करने पर बहुत जोर दिया गया। कांग्रेस ने देश में सैनिक कालेज खोलने की माँग की। सेना पर व्यय अधिक होता था और भारत जैसे गरीब देश की गरीबी बढ़ती जा रही थी, अतः कांग्रेस ने यह प्रस्ताव रक्खा कि इस व्यय का एक हिस्सा इंगलैंड को देना चाहिए, विशेषतः इसलिए कि सैनिकों की एक बड़ी संख्या बाहर भेजा जाना उचित समझा जाता था और

सेना में २० हजार ब्रिटिश सैनिक थे। लार्ड किचनर की सेना की पुनस्संगठन की योजना से एक करोड़ पौंड का अतिरिक्त व्यय हो रहा था। अतः काँग्रेस ने कहा कि भारत का सैनिक-व्यय बढ़ते-बढ़ते असहनीय हुआ जा रहा है। १९०५ ई० में काँग्रेस ने यह भी इच्छा प्रकट की कि वर्तमान नीति में, जिसके अनुसार मुल्की-अधिकारियों का फौजी अधिकारियों पर नियंत्रण रहता था, कोई परिवर्तन न किया जाय।

सैनिक-समस्या ने इस चरण के साहित्यकारों को कम आकर्षित किया है। उन्होंने केवल फौजी खर्च घटाने की माँग की है और ऊँची फौजी नौकरियाँ भारतीयों को न देने के कारण असंतोष प्रकट किया है।

सैनिक-समस्या के बाद दूसरा महत्वपूर्ण विषय सरकारी नौकरियों से संबंधित था। अपने पहले ही अधिवेशन में काँग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया था कि प्रतिस्पर्धी परीक्षाएँ भारतवर्ष और इंगलैंड दोनों देशों में साथ-साथ हुआ करें। शिक्षा विभाग की नौकरियों में तो भारतीयों और अंग्रेजों में बड़ा भेद किया जाता था। काँग्रेस ने अन्य विभागों के ऊँचे पदों पर भी भारतीयों को न रखे जाने का विरोध किया। १८९६ ई० में ही काँग्रेस ने प्रस्ताव रखा कि शिक्षा-विभाग की नौकरियों का इस तरह पुनस्संगठन हो कि भारतीयों के साथ न्याय हो सके। १९०० ई० में काँग्रेस ने प्रस्ताव पास किया कि छोटी सरकारी नौकरियों में भारतीयों को अधिक से अधिक संख्या में लिया जाय। इसी वर्ष पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट में ऊँचे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति-संबंधी रुकावटें हटाने की माँग की गयी तथा अगले वर्ष पुलिस-विभाग के ऊँचे ओहदों पर भारतीयों के नियुक्त किये जाने का प्रस्ताव पास किया गया।

सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति के संबंध में साहित्यकारों ने रुचि ली है। 'ग्राम-पाठशाला और निकृष्ट नौकरी' नाटक तो नौकरियों की शोचनीय स्थिति को स्पष्ट करता ही है, अन्य लेखकों ने भी भारतीयों को ऊँची नौकरियाँ न मिलने का कारण सरकार की भेद-भावपूर्ण नीति माना है।

भारत की आर्थिक-दुरवस्था की ओर राजनीतिज्ञों का ध्यान बहुत गया। १९०० ई० में सामान्य रूप से काँग्रेस ने यह प्रस्ताव रक्खा कि भारतीय जनता की आर्थिक-स्थिति की जाँच कराई जाय। १८९२ ई० में काँग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने तथा कृषि-संबंधी बैंकों की स्थापना करने के लिए कहा। बाद में १८९६ ई० में काँग्रेस ने प्रार्थना की कि यदि मियादी बन्दोबस्त

ही हो तो वह कम से कम साठ वर्षों के लिए तो हो ही। लगान की बढ़ती का काँग्रेस ने विरोध किया और एक बार १८९४ ई० में सिंचाई के कर के बढ़ाने का भी विरोध किया। अकालों के कारण सैनिक-व्यय के लिए असह्य लगान तथा अत्यधिक कर बताए गए और अकालों के संबंध में निरंतर प्रस्ताव पास किए गए। सरकार से कहा गया कि वह कृषि संबंधी बैंकों, अकालरक्षक-कोष तथा कला-कौशल संबंधी स्कूलों की स्थापना करे।

१८९२-९३ ई० में भारत-सरकार से प्रार्थना की गई कि जंगलों के कानूनों से जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं उनकी जाँच करायी जाय। इन कानूनों के अनुसार किसी प्रदेश के निवासी उस प्रदेश के जंगलों की लकड़ी, खाने की चीजें आदि उपयोग में नहीं ला सकते थे। यदि कहीं आग लग जाती तो वही व्यक्ति उत्तरदायी होता जो उस जमीन का मालिक होता था। इन कठोर कानूनों का प्रारंभिक अधिवेशनों में काँग्रेस ने विरोध किया। ग्रामीण-दस्तकारियों और देशी कला-कौशल को चाहे नष्ट न किया जाता हो, परन्तु उनके प्रति जो उदासीनता दिखायी गयी थी उससे वे नष्ट अवश्य हो गए थे। १८९८ ई० में ही पं० मदन-मोहन मालवीय ने प्रस्ताव रक्खा था कि सरकार को देशी उद्योग-धंधों तथा कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिए। १८९४ ई० में काँग्रेस ने ब्रिटिश भारत में तैयार होने वाले सूती माल पर कर लगाए जाने का विरोध किया। औद्योगिक-प्रदर्शनी का भी प्रारंभ हुआ और वह सबसे पहले १९०१ ई० में कलकत्ता काँग्रेस के साथ हुई। मज़दूरी के संबंध में सजा देने के कानून को हटा देने की माँग भी १८८७ ई० में ही की गयी थी। १८८८ ई० में काँग्रेस ने नमक-कर में हुई वृद्धि पर आपत्ति की। १९०२ ई० में अन्तिम बार इस प्रश्न पर विचार करते समय काँग्रेस ने बहुत सी बीमारियों के होने का कारण नमक का कम प्रयोग करना बताया। १९०० ई० में नशीली चीज़ों पर अधिक कर लगाने का प्रस्ताव पास हुआ। १८९५ ई० में ही किसानों की कर्ज़दारी दूर करने के उपाय करने का प्रस्ताव भी काँग्रेस में पास हुआ।

काँग्रेस के विकास की प्रारम्भिक स्थिति में भारत की आर्थिक-दशा तथा आर्थिक सुधारों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। साहित्य में भी भारत की आर्थिक दृष्टि से अवनत दशा के उल्लेख बहुत मिलते हैं। लगान-वृद्धि, अकाल, रोग, नमक-कर, देशी कला-कौशल के विनाश तथा कृषि और कृषकों की दीन-दशा के उल्लेख बार-बार आये हैं। इसके अतिरिक्त इनकम्-टैक्स, नवीन करों का संस्थापन, बेकारी आदि कुछ अन्य विषयों पर भी साहित्यकारों ने

विचार किया है। काँग्रेस ने शिक्षा, स्वास्थ्य तथा बेगार आदि विषयक प्रस्ताव भी पास किये हैं।

भारत के नवयुग का प्रारंभ लगभग भारतेन्दु-युग के साथ ही होता है। १८५७ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकलकर भारत का शासन-सूत्र ब्रिटेन के राजा के हाथ में गया और १८६७ ई० से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं का श्रीगणेश हुआ। इस युग में सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि हमारा साहित्य जो बहुत काल से जन-जीवन के सम्पर्क से दूर था उसके निकटतम सम्पर्क में आ गया। जीवन की विभिन्न समस्याओं की अभिव्यक्ति साहित्य में हुई। यह परिवर्तन बंगला के साहित्य से होता हुआ हिन्दी-साहित्य में आया। यह युग पूर्व और पश्चिम के मिलन, दो विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष और उससे उत्पन्न हुई समस्याओं का था। पश्चिम के बुद्धिवाद ने पूर्व की श्रद्धा, संस्कार तथा आस्था को चुनौती दी। शताब्दियों से चले आये विश्वासों, मान्यताओं और संस्थाओं की जड़ें हिल गईं।

१८५७ की क्रान्ति के उपरान्त भारतीयों के अधिकारों का अपहरण किया गया। उनकी आर्थिक स्थिति भी देशी कारीगरियों के आश्रय-स्थान, राजदरबारों, के उजड़ने, क्रांति के समय हुई लूटों, चोरियों, डकैतियों तथा नये-नये करों के स्थापन के कारण बहुत हीन हो गई थी। अंग्रेजों का सिक्का जम चुका था और उनके द्वारा किये गये अत्याचारों को जनता सहज में नहीं भूल सकती थी अतः उनके प्रति भय और आतंक की भावना जनता के हृदय में उत्पन्न हो गई थी।

इसी समय धर्म और समाज-सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ। इन सुधारों में से आर्यसमाज ने उत्तर प्रदेश की हिन्दी-भाषी-जनता को सबसे अधिक प्रभावित किया। इसके दो कारण थे, एक तो पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश आर्यसमाज के मुख्य केन्द्र थे और दूसरे इसके प्रचार का माध्यम हिन्दी या आर्यभाषा थी। प्राचीन वैदिक-धर्म तथा सभ्यता की पुन-स्थापना इसका मुख्य उद्देश्य था। मैक्स-मूलर, सर विलियम जौन्स तथा मौनियर विलियम्स जैसे पाश्चात्य विद्वानों की खोजों ने भी भारतीयों में आत्म गौरव की भावना भर दी।

स्वर्णिम-अतीत का चित्रण

राष्ट्र के प्रति प्रेम राष्ट्रीय-चेतना का मूल आधार है। यह प्रेम की भावना अनेक रूपों में प्रकट होती है। परतन्त्र और दलित देश के लिए यह बड़े अभिमान की बात होती है कि उसका अतीत महान् हो। इसके अतिरिक्त अवनत-राष्ट्र को

उन्नति की ओर अग्रसर करने तथा प्रेरणा देने के लिए भी उसके गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण किया जाता है। हिन्दी-साहित्य में देश के गौरवपूर्ण-अतीत के उल्लेख धार्मिक और सामाजिक-सुधारों तथा पाश्चात्य विद्वानों की खोजों के फलस्वरूप ही मिलते हैं। ये आन्दोलन देश की जनता को बहुत प्रभावित कर रहे थे अतः इनका सीधा प्रभाव साहित्य पर पड़ा है। इस काल के साहित्य में स्वदेश-प्रेम से युक्त गीत भी स्वतंत्र रूप से नहीं लिखे गए हैं। यद्यपि कुछ स्थलों पर कवियों ने मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट किया है।[१]

कवियों ने भारत के महान् और गौरवपूर्ण अतीत के उल्लेख स्थान-स्थान पर किए हैं। अपनी वस्तुओं, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता, अपने आचार को ग्रहण करने का उपदेश इस काल के लगभग सभी कवियों ने एक स्वर से दिया है। 'लोकोक्तिशतक' (प्र० १८९६ ई०) में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि अपनापन, अपना आचार तथा अपनी जाति यदि अहितकर हो जाय तो भी उसका निरादर नहीं करना चाहिए।[२] 'पितर प्रलाप' में कवि बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारत के अतीत-गौरव का स्मरण करते हुए रघुवंशी तथा चंद्रवंशी प्रतापी राजाओं की वीरता, दानशीलता तथा ऐश्वर्य आदि का वर्णन किया है। कवि ने लिखा है कि सबसे पहले यहीं सभ्यता फैली, सभी प्रकार की कलाओं, विद्याओं आदि का मूलस्रोत भारत ही था।[३] 'हार्दिक हर्षादर्श' की रचना महारानी विक्टोरिया की हीरक-जुबिली के अवसर पर हुई थी जिसमें कवि ने लिखा है कि भारत को विधाता ने जगत् के शीश-भाग के समान रचा है। यहाँ पर निरंतर अन्न, धन, जन, सुख-सम्पत्ति रही। भारत के मनुष्य कभी दूसरों के आश्रित नहीं रहे। प्रजा वीर, धर्मरत, भक्त, त्यागी और ज्ञानी थी; परंतु नाथ हो निज राजा के हाथ बिकी थी।[४] 'स्वदेश विंदु' के अन्तर्गत 'जातीय गीत' में भी

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी: प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, स्वदेश बिन्दु, जातीय गीत, पृ० ६२९। —'जय जय भारत भूमि भवानी। जाकी सुयश पताका जग के दसहूँ दिसि फहरानी।'

२—मिश्र, प्रतापनारायण: प्रताप लहरी, लोकोक्तिशतक, पृ० ६२,

३—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी: प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पितर प्रलाप, पृ० १५५-५८।

४—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी: प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, हार्दिक हर्षादर्श, पृ० २६८।

भारत का यशोगान करते हुए कवि ने कहा है कि यहीं 'धर्म-सूर्य उदय हुआ, सभी कलाएँ तथा सभ्यता यहीं से फैलीं। यहाँ की सम्पत्ति हजारों वर्षों तक लुटने पर भी समाप्त नहीं हुई और यहीं के राजा जगत-विजयी हुए।'[1] 'स्वदेश विंदु' के अन्तर्गत 'स्त्रियों की कीर्ति' शीर्षक कविता में भारत की नारियों के गौरव का गान करते हुए सावित्री, सीता, पद्मिनी, कमलावती, कर्मदेवी, दुर्गावती, मीरा, लक्ष्मी-बाई सभी का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया गया है ।[2] बालमुकुन्द गुप्त ने भी 'स्फुट कविता' (प्र० १९०५ ई०) में प्राचीन भारत के तेज, प्रताप, बुद्धि-गौरव तथा यश का वर्णन किया है ।[3]

इस काल के साहित्य में जहाँ कहीं कवियों ने भारत की वर्तमान अवनत दशा का वर्णन किया है वहाँ विपरीतता दिखाने के लिए उसके विगत-उत्कर्ष का भी वर्णन करना वे नहीं भूले हैं। इस प्रकार के उल्लेख गौण रूप से हुए हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी पुस्तक 'तृप्यन्ताम्' (प्र० १९०५) में पूर्वपुरुषों का स्मरण आदरपूर्वक किया है। उन्होंने वेद, साहित्य तथा प्राचीन काल के गुणों—पातिव्रत्य, वीरता, तपस्या, भक्ति, विद्वता और न्याय का उल्लेख किया है ।[4]

अयोध्यासिंह उपाध्याय के दोनों नाटकों 'प्रद्युम्न विजय' (प्र० १८९३ ई०) तथा 'रुक्मिणी परिणय, (प्र० १८९४ ई०) के कथानकों से उनका भारत की प्राचीन संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है। श्री निवासदास के 'प्रह्लाद चरित्र' (प्र० १८८९ ई०) नाटक में प्रह्लाद की कथा है । इस प्रकार नाटककारों ने सर्वप्रथम भारत के प्राचीन काल से कथानक चुने । इस काल में काव्यों तथा उपन्यासों के लिए प्राचीन पौराणिक काल के कथानक विशेष रूप से नहीं लिए गए । ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'देवयानी' के उपाख्यान का वर्णन अवश्य किया है । इसके अतिरिक्त जिन नाटकों के विषय आधुनिक भी हैं उनमें भी भारत के प्राचीन गौरव को प्रकट करने वाली पंक्तियाँ मिल जाती हैं। जैसे 'भारत सौभाग्य' (प्र० १८८९ ई०) नाटक में दुर्गा कहती हैं कि भारत में ही रघु, दिलीप, राम

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, स्वदेश विन्दु, जातीय गीत पृ० ६२९ ।

२—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, स्वदेस विन्दु, स्त्रियों की कीर्ति, पृ० ६३१ ।

३—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, राम विनय, पृ० २० ।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द ८, पृ० ५ तथा छंद ३१, पृ० ९ ।

और कृष्ण आदि ने राज्य किया था। यही जाति सम्पूर्ण पृथ्वी में सुसभ्य मानी जाती थी। यही लोग कला, विज्ञान आदि में श्रेष्ठ थे। यहीं वे चक्रवर्ती राजा थे जिनके न्याय का लाभ दूर-दूर द्वीप वालों को भी होता था। उनकी सेनाएँ जब चलती थीं तो शेषनाग भी उस भार को संभाल नहीं पाते थे। वे राजा जहाँ कहीं भी गए वहीं विजय प्राप्त की।[१]

निबन्ध-लेखकों में इस काल में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरी-नारायण 'प्रेमघन' आदि प्रमुख हैं। इन सभी ने अपनी-अपनी पत्रिकाओं में सुन्दर निबन्ध लिखे और उनमें देश-दशा, समाज, और राजनीति आदि पर अपने विचार प्रकट किये। प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, प्रथम खंड, में प्रतापनारायण मिश्र के निबन्ध संग्रहीत हैं। 'प्रेमघन सर्वस्व' (द्वितीय भाग) में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबन्ध संग्रहीत हुए हैं। भट्ट निबन्धावली (दो भाग), भट्ट निबन्ध-माला (दो भाग) तथा 'साहित्यसुमन' में बालकृष्ण भट्ट के अधिकांश निबन्ध प्राप्त हो जाते हैं। ये निबन्ध हमारे साहित्य की स्थायी निधि हैं। ये शुद्ध विचारा-त्मक निबन्धों की कोटि में नहीं आते, विशेष रूप से प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट के, परन्तु इन निबन्धों की शैली ऐसी है कि सामान्य से सामान्य विषय को लेकर उससे सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध अन्य विचारों को भी लेखकों ने प्रकट किया है। इसीलिये समकालीन समस्याओं, परिस्थितियों आदि के उल्लेख तथा लेखकों के इन समस्याओं के संबंध में विचार इन निबन्धों में प्राप्त हो जाते हैं। 'पतिव्रता' लेख में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि भारत की पूर्णोन्नति का एक बड़ा भारी कारण यह भी था कि स्त्रियाँ बहुधा पतिव्रता होती थीं।[२] 'पौराणिक गूढ़ार्थ' में वे प्राचीन संस्कृति तथा पुराणों में आस्था प्रकट करते हैं।[३] बालकृष्ण भट्ट ने 'रुचना या पसन्द' शीर्षक लेख में भारत के संगीत, शिल्प और विद्या आदि की प्रशंसा की है।[४]

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, प्रथम अंक, तृतीय गर्भांक।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, पतिव्रता, पृ० १८९।

३—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, पौराणिक गूढ़ार्थ, पृ० ३३४।

४—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, रुचना या पसन्द, पृ० ५२-५३।

'भारतवर्ष की दरिद्रता' शीर्षक निबन्ध में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का ध्यान उस काल की ओर भी जाता है जब भारतवर्ष के प्रचुर धन और प्रशस्त मूर्तियों की प्रशंसा सम्पूर्ण संसार करता था, भारत की खानों में सभी अमूल्य-रत्न उत्पन्न होते थे। भारत की समृद्धि प्राप्त करने की लालसा ने ही सिल्यूकस और सिकन्दर को यहाँ बुलाया था तथा लुटेरे-नहाड़ियों को उपद्रव करने के लिये आमंत्रित किया था। भारत की खोज करने में विलायत की कम्पनियों ने न जाने कितने जहाज और कितना धन नष्ट किया ।[1]

किशोरी लाल गोस्वामी के 'तारा' उपन्यास की कथा शाहजहाँ के काल की है। इस उपन्यास में गौण रूप से देश-प्रेम की भावना व्यक्त अवश्य होती है परन्तु वह यवनों के विरुद्ध स्वजाति-प्रेम के अधिक निकट जान पड़ती है । उपन्यासों का यह जन्मकाल था। उपन्यास-साहित्य की धारा ने राष्ट्रीय-प्रभाव से अपने को अलग रक्खा है। न तो कथानक ही प्राचीन काल से लिये गये हैं और न प्राचीन गौरवपूर्ण अतीत के महत्वपूर्ण उल्लेख ही प्राप्त होते हैं। वास्तव में उपन्यास साहित्य इस काल में सामाजिक-जीवन के सम्पर्क में बिल्कुल नहीं आया।

इस काल के लगभग सभी साहित्यकारों ने भारत के अतीत-गौरव का वर्णन अभिमान के साथ किया है। यह भारतीयों के लिये कम प्रसन्नता की बात नहीं है कि प्राचीन भारत वीरता, तपस्या, भक्ति, न्याय, दानशीलता तथा ऐश्वर्य आदि के गुणों से युक्त था और धर्म, विद्या, और कला आदि का मूल-स्त्रोत था। वैदिक और संस्कृत-साहित्य तथा प्राचीन भारत की तेजस्विनी, पतिव्रता और वीर नारियों के कारण इन कवियों और लेखकों ने विशेष रूप से गौरव का अनुभव किया है।

हिन्दी भाषा पर विचार

हमारी भाषा हमारी संस्कृति का एक अंग होती है। वह विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है और देश के संगठित-रूप का बोध कराती है। देश के विभिन्न-वर्गों, सम्प्रदायों और जातियों की एकता का प्रतीक भाषा ही है। भाषा के द्वारा ये विभिन्न वर्ग एक दूसरे के निकट आते हैं। जैसे राष्ट्रीय-चेतना इस बात की कामना करती है कि हम अपने देश में अपनी संस्कृति अपने आदर्श और अपने विश्वासों की प्रतिष्ठा करें उसी प्रकार वह राजनीतिक

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, भारतवर्ष की दरिद्रता, पृ० २६४

क्षेत्र में अपनी भाषा के व्यवहार का ही आग्रह करती है। उत्तर प्रदेश में हिन्दी-उर्दू विरोध उग्र रूप धारण कर चुका था और निरन्तर चला आ रहा था। हिन्दी के साहित्यकार उर्दू का विरोध करते थे और हिन्दी को राजकार्य के लिए स्वीकार करने का आग्रह सरकार से करते थे। अंग्रेजी भाषा में शिक्षा प्रारंभ से हो जाने के उपरान्त इन साहित्यकारों ने अंग्रेजी के विरोध में भी हिन्दी का पक्ष लिया तथा शिक्षा और राजकार्य के लिए हिन्दी को स्वीकार करने पर विशेष बल दिया। १९०० ई० में हिन्दी भाषा को अदालतों में स्थान मिल भी गया फिर भी उससे व्यावहारिक दृष्टि से अधिक लाभ न हो सका। उधर आर्य-समाज आन्दोलन अपने शास्त्रार्थों और व्याख्यानों में हिन्दी का प्रयोग कर रहा था और अपने ढंग से हिन्दी की प्रगति में योग दे रहा था। भाषा संबंधी प्रश्न एक अन्य दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। राजनीतिक-आन्दोलन में अपनी भाषा की ओर ध्यान हमारे देश के राजनीतिज्ञों ने बहुत बाद में दिया। प्रारम्भिक अधिवेशनों में कांग्रेस की कार्रवाई अंग्रेजी में होती रही और भाषा के प्रश्न पर कोई विचार भी नहीं हुआ। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में भाषा-संबंधी यह आन्दोलन राजनीति से सर्वथा स्वतंत्र रूप से चल रहा था। यदि यह कहा जाय कि जनता तथा साहित्यकारों के निरन्तर प्रयत्नों के उपरान्त ही राजनीति में अपनी भाषा के महत्व को स्वीकार किया गया तो अनुचित न होगा।

इन सभी कवियों ने हिन्दी की दीन-दशा पर दुःख प्रकट किया है। 'लोकोक्ति शतक' में प्रतापनारायण मिश्र ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि हमने हिन्दी को छोड़ कर उर्दू को अपनाया है।[१] 'तृप्यन्ताम्' में कवि लिखते हैं कि यहाँ ऐसे हतभागी रहते हैं जो अपनी भाषा से भी निराश हैं।[२] वे यह भी लिखते हैं कि सब तरह की दुर्दशा तो हो गयी, एक भाषा थी वह भी जाना चाहती है।[३] कवि ने निज-देश तथा निज-भाषा के लिये तन-मन-धन वारने की कामना की है।[४] वे लिखते हैं कि राजवंश का न्याय यही है कि अपनी भाषा भी खो बैठो।[५]

१—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, लोकोक्तिशतक, पृ० ६६।

२—मिश्र, प्रतापनारायण, तृप्यन्ताम, छन्द ८९, पृ० २१।

३—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, भारत रोदन, पृ० १८।

४—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, वर्षारंभ १, पृ० ३२।

५—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, चाहे गाना समझो चाहे रोना, पृ० १९०।

कमीशन हिन्दी के पक्ष में राय नहीं देते । यही तो बुजुर्गों की एक यादगार बची थी।[१] कायस्थों से क्या आशा करें जो अपनी भाषा भी नहीं बोलते ।[२]

इन कवियों ने इस पर दुःख प्रकट किया कि हिन्दी के पक्ष में हंटर कमीशन ने सम्मति नहीं दी। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि हंटर कमीशन ने हिन्दी-हरिणी का शिकार किया है। उर्दू को सम्बोधित करके वे कहते हैं कि तू स्वच्छन्द विहार कर, आज तुझे कोई रोकने वाला नहीं है[3] । हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान जपने का उपदेश उन्होंने 'ब्राह्मण का अंतिम उपदेश' शीर्षक कविता में दिया है ।[४] इन कवियों ने कचहरी आदि के कार्यों के लिए हिन्दी को ही योग्य माना है। प्रेमघन ने 'आनंद-बधाई' शीर्षक कविता में उर्दू की उत्पत्ति का विवरण देते हुए उसके प्रति अपना विरोध प्रकट किया है। नागरी की प्रशंसा की गयी है और कचहरी आदि के कार्यों के लिए एक मात्र उसी को योग्य ठहराया गया है। 'लाट कर्जन' तथा 'मेकडानल' को हार्दिक धन्यवाद देते हुए कवि ने हिन्दी की उन्नति की आशा प्रकट की है।[५] बालमुकुन्द गुप्त ने 'उर्दू को उत्तर' शीर्षक कविता में उर्दू का उपहास किया है और हिन्दी को उससे श्रेष्ठ सिद्ध किया है।[६] यह कविता 'उर्दू की अपील' शीर्षक कविता के उत्तर में लिखी गई है।

इन सभी कवियों ने हिन्दी की उन्नति का आग्रह किया है और उर्दू का विरोध किया है, परन्तु उर्दू का विरोध करने में उनके कोई गंभीर-विचार दृष्टिगोचर नहीं होते । 'बीबी उर्दू' का उन्होंने मज़ाक उड़ाया है और कचहरियों में हिन्दी स्वीकार कर लिए जाने की इच्छा उन्होंने प्रकट की है । अकाट्य-तर्कों, प्रमाणों आदि के द्वारा उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने की योग्यता रखती है। नाटककारों ने भाषा के संबन्ध में विचार नहीं प्रकट किए किन्तु जब वे उन दुर्गुणों को पात्रों का रूप देते हैं जिन्होंने भारत की अवनति में योगदान दिया तब 'उर्दू बुआ' का उल्लेख करना नहीं भूलते ।[७]

१—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, चाहे गाना समझो चाहे रोना, पृ० १९२।
२—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी : ककाराष्टक, पृ० ४४।
३—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, भारत रोदन, पृ० २५४-२५५ ।
४—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रताप लहरी, ब्राह्मण का अंतिम उपदेश, पृ० २६० ।
५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, आनंद बधाई, पृ० २९७।
६—गुप्त बालमुकुन्द : स्फुट कविता, उर्दू को उत्तर, पृ० १३०
७—मिश्र, प्रतापनारायण : भारत दुर्दशा, द्वितीय अंक ।

प्रतापनारायण मिश्र ने अपने निबन्धों में उर्दू के संबंध में विचार व्यक्त किए हैं। 'उरदू बीबी की पूँजी' शीर्षक निबन्ध में वे उर्दू का विरोध करते हुए लिखते हैं कि जानते सब हैं कि उर्दू की पूँजी इतनी ही है परन्तु प्रजा का अभाग्य, राजा की रीझ-बूझ और क्या कहा जाय ? जाने कब राजा और प्रजा दोनों इस मुलम्मे को फेंकेंगे।[१] वे दुःख के साथ लिखते हैं कि न जाने भारत की सन्तान निज भाषा का गौरव कब तक जानेगी ?[२] उनका विचार है कि जब तक अपनी भाषा में पूर्ण रूप से पठन-पाठन नहीं होता तब तक शिक्षा सदा अधूरी ही रहती है और पूर्ण फलदायिनी नहीं होती। उनके विचार से संस्कृत तथा हिन्दी अवश्यमेव पढ़ानी चाहिए तथा उच्च-शिक्षा भी इन्हीं के द्वारा देनी चाहिए। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के हिन्दी हटा देने पर उन्होंने दुःख प्रकट किया है और इसे दुराशा मात्र ही माना है कि सरकार जनता की एतद्विषयक प्रार्थना पर ध्यान देगी।[३] 'अब बातों का काम नहीं है' शीर्षक निबन्ध में भी वे लिखते हैं 'कचहरियों में हिन्दी जारी कराने के लिए, ऊँची-क्लासों में हिन्दी पढ़ाने के लिए, हिन्दी में मिडिल पास करने वालों को सरकारी नौकरी से वंचित न रखने के लिए मेमोरियल भेज के तथा बड़े-बड़े प्रमाण दे के देख लिया गया है कि सरकार कुछ ध्यान नहीं देती....।' उन्होंने आग्रह किया है कि हमें चुप नहीं बैठना चाहिए और सौ बार, सहस्र बार निवेदन करना चाहिए।[४]

वास्तव में इस काल में अपनी किसी भी मांग की पूर्ति के लिए सरकार से निवेदन करने के अतरिक्त अन्य कोई उपाय न जनता के पास था और न वह सोच ही सकी। इसका उल्लेख पहले हो ही चुका है कि इस समय कांग्रेस की नीति भी अनुनय-विनय की ही थी। इसके अतिरिक्त अपने देशवासियों से आग्रह किया जा सकता था कि वे भाषा की उन्नति के लिए प्रयत्न करें। बदरी-

---

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, उरदू बीबी की पूँजी, पृ० १३३-१३४।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, भ्रम है, पृ०,४३२-४३३, अहह कष्टमपंडिता विधे, पृ० २४६।

३—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रतापनारायण ग्रन्थावली, हमारी आवश्यकता, पृ० ३८१-३८२।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, अब बातों का काम नहीं है, पृ० ३५१,

नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'हमारे देश की भाषा और अक्षर' शीर्षक निबंध में स्वदेश-हितैषियों से प्रार्थना की है कि वे निज-मातृभाषा के हित के लिए भी कुछ क्लेश स्वीकार करें। सरकार से प्रार्थना की गयी है कि वह राजकार्यों में हिन्दी और अंग्रेजी दो ही भाषाएँ प्रचलित करे।[1] 'प्रेमघन' ने राजकार्य के लिए अंग्रेजी भी प्रचलित करने का उल्लेख इसीलिए किया है कि वे समझते थे कि राजभाषा को तो हज़ार प्रयत्न करने पर भी हटाया नहीं जा सकता है इसलिए कम से कम इतना ही हो जाये कि उर्दू हट जाये और हिन्दी को राजकार्य में स्थान मिल जाये। अन्य निबन्धकारों की अपेक्षा 'प्रेमघन' का दृष्टिकोण व्यावहारिक अधिक है, आदर्शवादी कम। उनके ही निबन्धों में हमें इस संबंध में गंभीर विचार प्राप्त होते हैं। 'भारतीय नागरी भाषा' शीर्षक लेख में उन्होंने हिन्दी की उन्नति के लिए बहुत आग्रह दिखाया है और कई सुझाव भी दिये हैं जैसे हिन्दी-टेक्स्ट-बुक कमेटियों में अपने सुयोग्य प्रतिनिधियों के प्रवेश का प्रयत्न करना, अपनी भाषा की शिक्षा का स्वयं प्रबन्ध करना तथा काशी विश्वविद्यालय खुलने पर उसमें हिन्दी-भाषा की उचित और प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध करना, बी०ए०, एम०ए० आदि उच्च-कक्षाओं तक अपनी भाषा के अध्ययन को पहुँचाने का प्रबन्ध करना, ग्रन्थ-निर्माण द्वारा साहित्य की पुष्टि करना तथा पुराने ग्रन्थों के नये संस्करण निकालना आदि। उनके विचार से अपने प्रदेश के राज-कार्यालयों में अपनी भाषा के प्रवेश का उद्योग सर्वप्रथम करना चाहिए।[2] 'हमारी प्यारी हिन्दी' तथा 'हिन्द, हिन्दू और हिन्दी' आदि इस संग्रह के अन्य निबंधों में भी उन्होंने भाषा की समस्या को लिया है।

उपन्यास-साहित्य में इस संबंध में कोई विचार नहीं मिलते। अपवाद-स्वरूप देवकीनन्दन खत्री ने 'चंद्रकान्ता संतति' के चौबीसवें हिस्से में मातृभाषा के प्रचार की उत्सुकता अवश्य प्रकट की है।

सामाजिक सुधार संबंधी विचार

राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति केवल राजनीतिक-क्षेत्र में ही नहीं वरन् अन्य क्षेत्रों में भी होती है। वास्तव में राष्ट्रीय-चेतना अनेक रूपों में फूट पड़ती

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, भाग २, हमारे देशकी भाषा और अक्षर, पृ० ६०-६१।

२—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन सर्वस्व, भाग २, भारतीय नागरी भाषा, पृ० ४२०-४२१।

है। ये सभी अंग एक दूसरे से परस्पर सम्बद्ध होते हैं। एक विशिष्ट समाज जब राष्ट्र के रूप में अपने को सुसंगठित इकाई मानने लगता है तो वह राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्रता के लिए तो प्रयत्नशील होता ही है, समाज की कुरीतियों को दूर करने का भी प्रयत्न करता है। स्वतंत्रता की कामना तथा सामाजिक और नैतिक उन्नति के प्रयत्न अन्योन्याश्रित हैं, दोनों एक दूसरे को गति और जीवन देते हैं। समाज के आमूल-सुधार पर ही राजनीतिक-आन्दोलन की सफलता निर्भर है। इण्डियन नेशनल कांग्रेस के समाज-सुधार के रचनात्मक-कार्यक्रम को आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों में कोई स्थान नहीं प्राप्त हुआ किन्तु कुछ काल के उपरान्त तो समाज-सुधार को कांग्रेस ने रचनात्मक-कार्यक्रम के रूप में प्रमुख स्थान दिया। इस काल में साहित्यकारोंने समाज-संबंधी प्रश्नों को स्वतंत्ररूप से उठाया। इन प्रश्नों के प्रमुख होने का एक अन्य कारण भी था। समाज-सुधार आन्दोलन देश के विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे थे। उत्तर-प्रदेश में आर्यसमाज की धूम मची हुई थी। इस चरण के साहित्य में सामाजिक-अवनति के उल्लेख तथा समाज-सुधार की भावना आर्यसमाज-आन्दोलन के फलस्वरूप ही प्रकट हुई है। नवीन और प्राचीन के इस संधि-काल में सामाजिक-जीवन में अनेक समस्याएँ सम्मुख आयीं। आर्यसमाज ने मूर्ति-पूजा जैसे धार्मिक विषय से लेकर बाल-विवाह, विधवा-विवाह जैसी सामाजिक-कुरीतियों तक का कट्टर विरोध किया। समाज सनातनी और सुधारवादी दो दलों में विभक्त हो गया और दोनों में आपस में विरोध-विवाद चलता रहा। इन विवादों का उल्लेख इस काल के लेखकों ने स्वयं किया है। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि यहाँ घर में ही जूता उछौअल है। हम तुम्हें पोप का चेला कहें, तुम हमें दयानन्दी-गपाष्टक वाला बनाओ, फिर भला बाहर वाले ईसाई, मुसलमान क्यों न लथाड़ें ?[१]

विदेशियों के अधिक संसर्ग के कारण और विशेषतः उनके शासक होने के कारण समाज का शिक्षित वर्ग उनके रहन-सहन, आचार-विचार, भाषा तथा सभ्यता की ओर अत्यधिक आकृष्ट हुआ। यह सत्य है कि भारत के उद्धार के लिए जिन्होंने प्रयत्न किया वे महान् व्यक्ति भी अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए थे, परन्तु अधिकांश में यह वर्ग विदेशी-सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित था। समाज के अन्य वर्गों में इसकी प्रतिक्रिया हुई, विशेषतः निम्न-मध्यमवर्ग में, जो

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, होओ ओ-ली है, पृ० ३-४।

सदैव ही सामाजिक-परम्पराओं का अधिक पालन करता है। साहित्यकारों ने एक स्वर से विदेशी-सभ्यता का विरोध किया। प्रतापनारायण मिश्र 'तृप्यन्ताम' में लिखते हैं कि हम पर विदेशी-सभ्यता का पूरा प्रभाव है। वर्ष तक हम इन्हीं का मनाते हैं।[१] यदि कोई व्यक्ति चरक और सुश्रुत को पढ़ने का यत्न करे भी तो वह व्यर्थ है क्योंकि समर्थ-जन तो सर्जनों पर मुग्ध हैं।[२] अंग्रेजी पढ़ने के बाद हम अपनी संस्कृति से घृणा करना सीख जाते हैं। हमारे धार्मिक-विश्वास खण्डित हो जाते हैं। कवि लिखते हैं कि अंग्रेजी पढ़ने के बाद हम अपनी माताओं को सिखाते हैं कि राम मिथ्या हैं और वेद गप्प हैं।[३] वे खेद के साथ लिखते हैं कि हिन्दुओं का भोजन, वेश, और भाषा सभी आसुरी हैं। आत्म-गौरव से हम इतने रहित हो गए हैं कि संस्कृत को हम मृत-भाषा समझते हैं और वेद को असभ्य कलाम। हमने अपनी भाषा और अपने धर्म-कर्म को भुला दिया है।[४]

बालमुकुन्द गुप्त ने 'सभ्य बीबी की चिट्ठी' में स्त्रियों के ऊपर विदेशी सभ्यता का कुप्रभाव दिखाकर उसका उपहास किया है।[५] 'कलियुग के हनुमान', 'देशोद्धार की तान' तथा 'सभ्य होली' शीर्षक अन्य कविताओं में भी विदेशी सभ्यता का उपहास है।[६]

काव्य में सामाजिक अवनति का चित्रण कवियों ने किया है। 'तृप्यन्ताम' में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि लोग साहित्य से विमुख हो गए हैं और हरिश्चन्द्र तक को भूल गए हैं।[७] संगीत का ह्रास हो गया है और लोग मृत से भी तुच्छ हैं।[८]

अशिक्षा के कारण भारत की स्त्रियाँ विशेष रूप से दीन अवस्था में थीं। कवियों का ध्यान इस ओर भी गया है। प्रतापनारायण मिश्र 'तृप्यन्ताम' में लिखते हैं कि स्त्रियों में अविद्या का बहुत प्रसार है, संसार भर की स्त्रियों में

१—मिश्र, प्रतापनारायण, तृप्यन्ताम, छंद १२, पृ० ५।

२—मिश्र, प्रतापनारायण, तृप्यन्ताम, छंद २८, पृ० ९।

३—मिश्र, प्रतापनारायण, तृप्यन्ताम, छंद ४३, पृ० १२।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छंद ४४-४५ पृ० १२।

५—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, सभ्य बीबी की चिट्ठी, पृ० ८३-८५।

६—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, पृ० ९०-९१, ९६।

७—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छंद ६, पृ० ४।

८—मिश्र, प्रतापनारायण: तृप्यन्ताम, छंद १० तथा ११, पृ० ५।

केवल भारत की स्त्रियाँ ही भूत-प्रेत में विश्वास करती हैं।[१] वे मूर्खा और कलह-कारिणी हैं।[२] धन, बल और प्रेम के अभाव के कारण स्त्रियों को सुख नहीं है।[३]

विवाह सामाजिक-जीवन का एक सुदृढ़ स्तम्भ है, अतः विवाह संबंधी कुरीतियों का चित्रण साहित्य में बहुत मिलता है। सुधारवादी-वर्ग विवाह-संबंधी कुरीतियों का विरोधी तथा विधवा-विवाह का समर्थक है। प्रतापनारायण मिश्र ने उल्लेख किया है कि हमारे यहाँ बेमेल तथा बेमौके के विवाह होते हैं।[४] विधवाएँ विपत्ति में रोती हैं,[५] तथा बाल-विधवाओं के शाप के कारण ही कोई सुखी नहीं है।[६] वे विधवा-विवाह का समर्थन करते हैं।[७] 'प्रेमघन' ने 'कुरीति' शीर्षक देकर बाल-विवाह का विरोध एक गीत में किया है। अनमेल विवाह तथा वृद्ध-विवाह के विरोध में भी गीत हैं।[८]

दूसरी ओर एक वर्ग इन सुधारों का विरोधी भी है। बालमुकुन्द गुप्त ने 'स्फुटकविता' की 'विधवा-विवाह', 'सभ्य बीबी' आदि कविताओं में विधवा-विवाह में अविश्वास प्रकट किया है।[९] 'विधवा विवाह' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं कि हम विधवा माँ, दादी, नानी, चाची, फूफी और पत्नी की शादी करने को तैयार हैं।[१०] 'पातिव्रत' शीर्षक कविता में भी उन्होंने स्वामी जी पर आक्षेप किया है और उनके सुधारों का मजाक उड़ाया है। वे लिखते हैं कि बचपन के पति

१—मिश्र, प्रतापनारायण, तृप्यन्ताम, छंद २५, पृ० ८।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छंद ३१, पृ० ९ तथा छंद ७२, पृ० १८।

३—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छंद

४—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम : छंद ६९, पृ० १७। १४, पृ० ६।

५—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रतापलहरी, १—चाहे गाना समझो चाहे रोना, पृ० १९०।

६—प्रतापमिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, गाना समझो चाहे रोना, १, पृ० ११९।

७—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रताप लहरी, जन्मसुफल कब होय, पृ० ४२।

८—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, संगीत-काव्य, कुरीति, पृ० ५४५, ५४७-५४८।

९—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, विधवा-विवाह तथा सभ्य बीबी, पृ० ८७, ९२।

१०—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, विधवा-विवाह तथा सभ्य बीबी, पृ० ८७।

से कोई स्त्री प्रेम न करे, उसे छोड़कर दूसरा पति करे, जब उससे भी स्नेह न रहे तो अन्य किसी से प्रेम करे। जो स्त्रियाँ एक पति के मरने पर दूसरा पति करती हैं वे भवसागर से पार उतर जाती हैं। यदि पति विदेश चला जाय, तो दूसरा पति कर लेना चाहिए क्योंकि स्त्रियों का पति के बिना निर्वाह नहीं है, यह स्वामी जी कह गए हैं।[1]

इस समय तक सामाजिक सुधारों के संबंध में अनिश्चय की भावना दिखायी पड़ती है। अपने-अपने संस्कार, शिक्षा, दीक्षा के अनुसार कवियों ने इन सुधारों को अपनाया अथवा इनका विरोध किया है। इतना अवश्य है कि इस युग के कवियों ने इन समस्याओं को साहित्य में स्थान दिया है और जनता को उन पर विचार करने की प्रेरणा दी है।

प्रतापनारायण मिश्र ने अंधविश्वास के संबंध में लिखा है कि हम सिर पर पाँच पीरों की पाँच-पाँच चुटियाँ रखते हैं।[2] ब्राह्मण राक्षसों के से कार्य करते हैं और वही भाषा पढ़ते हैं जिनसे उनके पेट का काम चले। परशुराम ने अकेले जग जीता था और आजकल के ब्राह्मण अपने पुरखों के घर को भी हार बैठने का काम करते हैं।[3]

'भारत रोदन' कविता में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि विद्या चली गयी है।[4] मद्य निषेध तथा शिक्षा-प्रचार के संबंध में कांग्रेस ने प्रस्ताव किये थे जिनका उल्लेख हो चुका है। देश की सामाजिक अवनति का चित्रण नाटककारों ने भी किया। 'नाट्य संभव' रूपक (प्र० १९०४ ई०) की प्रस्तावना में ही कहा गया है कि नाटक से बढ़ कर कोई दूसरा ऐसा अच्छा उपाय नहीं है जिससे कि सर्वसाधारण को वर्तमान सामाजिक दशा का चित्र दिखा कर उसका पूर्ण सुधार किया जाय। भारत में साहित्य और विद्या के नाश पर इन साहित्यिकों को बड़ा खेद था। 'भारत सौभाग्य' नाटक में निरादर के कारण देवी सरस्वती भारत का परित्याग करके पश्चिम की ओर चली जाती है।[5]

'भारत दुर्दशा' (प्र० १९०२ ई०) नाटक में बाल-विवाह का विरोध किया

१—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, पातिव्रत, पृ० ९२।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छंद ४६, पृ० १२।

३—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छंद ३४, ४५, ३७, पृ० १०-११।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रताप लहरी, भारत रोदन, पृ० १८।

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, प्रथम अंक, द्वितीय गर्भांक।

गया है ।[१] प्रतापनारायण मिश्र का पूर्ण विश्वास आर्यसमाज के सिद्धान्तों में है । नाटक में एक आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द की प्रशंसा करते हुए कहता है कि उनकी दया से जिस तरह हमारी सामाजिक उन्नति हुई है, अगर उसी प्रकार होती गयी तो एक दिन अवश्य आवेगा जब सब भारतवासी भारत के लिए सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत होंगे ।[२]

निबन्धकारों में से उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी ने 'प्रेमघन सर्वस्व', भाग दो के 'विधवा विपत्ति वर्षा' शीर्षक निबन्ध में विधवा-विवाह का समर्थन किया है । 'प्रेषित पत्र' शीर्षक पत्र में उन्होंने विधवा-विवाह के पक्ष में ही सम्मति दी है ।[३] 'देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने बालकों की शिक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट किया है ।[४] तथा 'भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा' शीर्षक निबन्ध में बाल-विवाह का विरोध किया है ।[५]

बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र का सामाजिक सुधारों के प्रति विशेष आग्रह परिलक्षित होता है । भट्ट जी का प्रिय विषय बाल-विवाह-विरोध है । अनेक लेखों में वे किसी अन्य विषय पर लिखते हुए भी इसका उल्लेख अवश्य कर देते हैं । 'चढ़ती जवानी की उमंग' शीर्षक निबन्ध में वे बाल-विवाह के विरोध में लिखते हैं कि अगर बाल-विवाह कायम रहा तो आगे चल कर तीस-चालीस साल की ही आयु रह जायेगी ।[६] 'साहित्य सुमन' के कवि और चितेरे की 'डाँड़ामेड़ी', 'आत्मनिर्भरता' आदि लेखों में उन्होंने इस कुरीति का विरोध किया है। इसके अतिरिक्त भी बाल-विवाह के विरोध में उन्होंने अपने

१—मिश्र, प्रतापनारायण : भारत दुर्दशा, द्वितीय अंक ।

२—मिश्र, प्रतापनारायण, भारत दुर्दशा, तृतीय अंक ।

३—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, भाग २, प्रेषित पत्र, पृ० ५४० ।

४—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के संपादक, पृ० २०८-२०९ ।

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन सर्वस्व, भाग २, भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा, पृ० २७६ ।

६—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबन्धावली, दूसरा भाग, चढ़ती जवानी की उमंग, पृ० ६६ ।

अनेक निबन्धों में लिखा है ।[१]

बाल-विवाह विरोध के अतिरिक्त भट्ट जी का दूसरा प्रिय विषय स्त्रियों की उन्नति है ।[२] वे स्त्री-शिक्षा के समर्थक हैं ।[३] 'स्त्रियाँ' शीर्षक निबन्ध में वे लिखते हैं कि 'देश की दुर्गति के बहुत से कारणों में स्त्रियों की ओर से मरदों का निरपेक्ष होना भी एक कारण है ।' आर्य-ललनाओं की दशा के परिवर्तन को वे तरक्की की पहली सीढ़ी मानते हैं ।[४] उनका विचार है कि यदि हमारे देश की स्त्रियाँ शिक्षिता हो जाँयँ तो अनेक कुरीतियाँ, जिनको दूर करने के लिए हम सभाएँ करते हैं, अपने आप दूर हो जाँयँ ।[५] 'कतिकी का नहान' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने स्त्रियों की दीन-दशा का वर्णन किया है ।[६] साहित्य में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार की कामना समाज-सुधार-आन्दोलनों के फलस्वरूप अभिव्यक्त हुई है । इसका फल यह हुआ कि भविष्य में कांग्रेस ने भी स्त्रियों के समान अधिकारों को मान लिया और १९१७ ई० में ही इस सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किया । 'चलन की गुलामी' शीर्षक लेख में बालकृष्ण भट्ट ने बहु-विवाह, दहेज, जन्मपत्री-विचार, विवाह में क़रार, स्यापा तथा बाल-विवाह आदि कुरीतियों की निन्दा की है ।[७] अन्य निबंधों में भी उन्होंने इन कुरीतियों का विरोध किया है।[८] उनका विचार है कि हम जिसे आचार-विचार के नाम से पुकार रहे

१—भट्ट, बालकृष्ण, भट्ट निबंधावली, परम्परा, पृ० ३, उपदेशों की अलग-अलग बानगी, पृ० ३०-३१ । दल का अगुआ, पृ० १३१, जगत प्रवाह, पृ० १६१, नये तरह का जनून, पृ० १६४ तथा भट्ट निबंधमाला, प्रथम भाग, दरिद्र की गृहस्थी, पृ० ८८ ।

२—भट्ट, बालकृष्ण, भट्ट निबंधमाला, भाग २, हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा, पृ० १३६-१३७ ।

३—बालकृष्ण : भट्ट निबंधमाला, भाग २, धर्म का महत्व, पृ० १०९-११० ।

४—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबंधावली, प्रथम भाग, स्त्रियाँ, पृ० २५-२६ ।

५—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबंधावली, चलन की गुलामी ।

६—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबंधावली, कतिकी का नहान, पृ० १२७ ।

७—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबंधमाला, प्रथम भाग, चलन की गुलामी, पृ० ६९-७० ।

८—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबंधावली, परम्परा, पृ० ३, नए तरह का जनून, पृ० १६७- १६८, भट्ट निबंधमाला, प्रथम भाग, हमारी गुदड़ी के लाल, पृ० १४३-१४४ ।

हैं वही हिन्दू-जाति का ऐसा कोढ़ है जो उसे नीचे गिराता जायेगा।[१] 'बिना भाव' शीर्षक निबंध में उन्होंने खेद के साथ कहा है कि हमारे देश से उत्साह, उमंग, जोश सब विदा हो गये हैं।[२] अंग्रेजों की नकल करने का भी उन्होंने विरोध किया है।[३]

स्त्रियों की अशिक्षित अवस्था की ओर प्रतापनारायण मिश्र का ध्यान भी आकृष्ट हुआ है। 'पतिव्रता' लेख में वे लिखते हैं कि स्त्री-शिक्षा की चाल उठ गयी है। यदि स्त्रियों को हम पढ़वाते भी हैं तो मेमों से, जो ईसा के गीत और 'लिबरटी' सिखायेंगी न कि पातिव्रत।[४] चाहे स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न हो अथवा पुरुषों की, मिश्र जी ने प्रत्येक स्थल पर विदेशी सभ्यता के प्रति शंका ही प्रकट की है। जिस प्रकार बालकृष्ण भट्ट जी का विशेष आग्रह बाल-विवाह-विरोध तथा स्त्री-शिक्षा-प्रवर्तन की ओर लक्षित होता है उसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र जी ने प्रत्येक संभव स्थल पर विदेशी सभ्यता की निन्दा की है। इस संबंध में उन्होंने सशक्त व्यंग्य लिखा है जिसके दो-एक उदाहरण दर्शनीय हैं :—

'घर में दमड़ी की सुई भी विलायती, खाने की दवा भी विलायती, पीने की मदिरा भी विलायती, नहाने का साबुन भी विलायती, देशी केवल मुँह का रंग ही रंग दिखायी देता है। क्या इन्हीं लक्षणों से देश का दरिद्र मिटाइयेगा और देशोद्धार करने वालों में पाँचवें सवार बनियेगा ?'[५]

'बज्रमूर्ख' शीर्षक लेख में भी मिश्र जी विदेशी सभ्यता का उपहास बड़े मार्मिक रूप से करते हैं।[६] 'स्वतंत्र' शीर्षक लेख में वे लिखते हैं कि विदेशियों की

१—भट्ट, बालकृष्ण, भट्ट निबंधावली, दूसरा भाग, संसार सुख का सार है हम इसे दुखका आगार कर रहे हैं, पृ० ६०।

२—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबंधमाला, प्रथम भाग, बिना भाव, पृ० १२२।

३—भट्ट, बालकृष्ण, भट्ट निबंधावली, बड़ों के बड़े हौसिले, पृ० ८५।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, पतिव्रता, पृ० १९०।

५—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, यह तो बतलाइये, पृ० ३७४।

६—ईश्वर, धर्म एवं परलोक सब बेउकूफों की गढ़ंत हैं। अथवा कुछ हैं भी तो कब ? जब कोई यूरप अमेरिका के महात्मा श्रीमुख से आज्ञा करें तब। क्योंकि हिन्दुस्तान तो अगले जमाने में बनमानुषों की बस्ती था और अब

इतनी नकल करने पर भी नौकरी के समय काले का प्रश्न तो उठता ही है।
इन लोगों ने छब्बीसाक्षरी मंत्र पढ़ कर चरुटाग्नि में सभी कुछ स्वाहा कर रक्खा है परन्तु तोता-मैना मनुष्य की बोली सीख कर मनुष्य नहीं हो जाते फिर ये कैसे राजभाषा सीख कर राज-जातीय हो जायेंगे ? देश का अधिकांश इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता।[1] उच्च प्रकृति के अंग्रेज भी इन्हें गद्दार समझ कर घृणा करते हैं और अनुदार अंग्रेज तो काले मात्र से घृणा करते हैं। लेखक ने विदेशी वस्तुएँ अच्छी लगने का कारण पश्चिमी शिक्षा माना है।[2] इससे स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने जिस उद्देश्य से यहाँ अंगरेजी शिक्षा प्रचलित की उसमें वे सफल रहे। अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए व्यक्तियों ने अंग्रेजी वस्तुओं के प्रति रुचि दिखायी।

मिश्र जी विलायत-गमन को बुरा नहीं समझते। वे विलायत जाकर अपनी रीति-नीति, आचार-विचार फैलाने की अपेक्षा उनकी रीति-नीति सीख जाने को बुरा समझते हैं।[3] कई अन्य निबन्धों में उन्होंने विदेशी सभ्यता का उपहास किया है।[4]

कुछ देशसेवक भी विदेशी सभ्यता के उपासक थे। मिश्र जी ने इससे अनर्थ होने का डर दिखाया है। वे स्त्रियों और गंवारों की उस बुद्धि को पवित्र समझते हैं जो यह विश्वास करती है कि हमारे पूर्वज मूर्ख न थे।[5] विदेशी सभ्यता का विरोध लेखकों ने धर्म-सुधार आन्दोलनों (आर्यसमाज और थियासफ़ी आदि) से प्रभावित होकर किया है।

भी हाफ-सिविलाइज्ड मुल्क है, इसमें मानने लायक मजेदार बातें कहाँ ? मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, बज्रमूर्ख, पृ० ४४६-४४७।

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, स्वतंत्र, पृ० ६०५-६०६।

२—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रतापनारायण ग्रन्थावली, स्वतंत्र, पृ० ६०४-६१०।

३—मिश्र, प्रतापनारायण, प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, विलायत-यात्रा, पृ० सं० ५८९।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, धोखा, पृ० ५८७, हो हो होली है ! पृ० ६, समय का फेर, पृ० २७२-७३, यह तो बतलाइये, पृ० ३७४, ममता, पृ० ३७८, उन्नति की धूम, पृ० ४१७, विलायत-यात्रा, पृ० ५८९।

५—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, पुराण समझने को समझ चाहिये, पृ० ५२९-५३०।

हरिजनों की समस्या को राजनीति में तो बहुत बाद को स्थान मिला परन्तु आर्यसमाज ने 'शुद्धि' की धूम मचा रक्खी थी और जातिगत ऊँच-नीच के भाव का विरोध किया था, अतः इस प्रकार के दो-एक उल्लेख मिल जाते हैं। मिश्र जी ने श्रीमद्भागवत से दृष्टान्त देकर शुद्धि का आग्रह किया है।[१] शूद्रों के संबंध में वे लिखते हैं कि हम यह नहीं चाहते कि उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार किया जाय परन्तु उन्हें अपना प्यारा आर्य-भाई तथा सहायक न समझना मूर्खता है।[२] दलित-जातियों पर परम्परा से चले आते हुए प्रतिबन्धों को दूर करने का प्रस्ताव कांग्रेस ने १९१७ ई० में पास किया। बाद के कई वर्षों में तो अस्पृश्यता-निवारण को राजनीतिक-कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग बना दिया गया और स्वराज्य प्राप्ति के लिये अस्पृश्यता के दोष को दूर करना अनिवार्य समझा गया। इस प्रकार समाज-सुधार आन्दोलनों ने जिन सुधारों की ओर देश को अग्रसर किया था उन्हें क्रमशः राजनीतिक-कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया। राष्ट्रीय-आन्दोलन की ये धाराएं आपस में इतनी मिली-जुली हैं कि वे अविभाज्य प्रतीत होती हैं।

सभ्यता के सम्बन्ध में मिश्र जी का एक उल्लेख महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत की सीधी-सरल सभ्यता के नष्ट हो जाने पर खेद प्रकट करते हुए वे लिखते हैं कि 'हज़ारों गरीब लोग केवल एक लढ़िया से घर भर का पालन करते थे। उनका रेल ने सर्वनाश कर दिया। हज़ारों अनाथा विधवा पिसौनी-कुटौनी कर खाती थीं, उनकी रोटी पनचक्कियों ने हर ली। हज़ारों कोरी कम्बल, खेस, गजी, गाढ़ा बना के निबाह कर लेते थे। उन्हें सत्यानास में मिलाने को पुतली-घर खड़े हुए हैं। विपत्ति आती है तो एक ओर से नहीं आती। उधर विदेशियों का यह दाँव है कि अन्न-जौ-जल भी हम इनके हाथ बेंचा करें और इधर हिन्दुस्तानियों की यह इच्छा है कि मिट्टी और हवा भी विलायत से आये तो खरीदना चाहिए, दाम चाहे जो लगे।[३]

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, फूटी सहैं आँजी न सहैं, पृ० ४२।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, प्रेम एवं परो धर्मः पृ० १०३।

३—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, समय का फेर, पृ० ४४।

यह उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि भारतीय मशीन-युग की सभ्यता को अपने देश के लिए उपयुक्त नहीं समझ रहे थे। आगे चलकर गाँधी जी ने इस सभ्यता के विरुद्ध आवाज़ उठाई। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'स्वर्गीय कुसुम' उपन्यास में देवदासी प्रथा के दोष दिखाये हैं और इस सामाजिक-कुरीति का घोर विरोध किया है। इस काल के अधिकांश उपन्यास जासूसी और ऐयारी हैं, सामाजिक-समस्याओं के उल्लेख उनमें अपवाद-स्वरूप ही हैं परन्तु यह उपन्यास इसी समस्या पर लिखा गया है। इस चरण में तो सामाजिक-समस्याओं का चित्रण साहित्यकारों ने सुधार-आन्दोलनों के फलस्वरूप ही किया परन्तु सामाजिक-सुधारों का आग्रह इतना बढ़ा कि १९२८ ई० में सामाजिक-कुरीतियाँ दूर करने का प्रस्ताव कांग्रेस ने भी पास किया। इस काल में केवल राज्य-नियंत्रित वेश्या-वृत्ति के सम्बन्ध में कांग्रेस ने १८८८ ई० में प्रस्ताव पास किया।

देश की नैतिक अवनति का चित्रण

देश की नैतिक अवस्था की ओर भी साहित्यकारों का ध्यान गया। किसी भी महान् कार्य के लिए नैतिक साहस की अपेक्षा होती है और विशेषतः उस स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए जो अहिंसात्मक हो। नैतिक-पवित्रता की ओर राजनीतिज्ञों का ध्यान भी प्रारम्भ में ही गया और मदिरा-निषेध के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास हुए। मद्य-निषेध के सम्बन्ध में पहला प्रस्ताव कांग्रेस ने १८९०ई० में पास किया था। उसके उपरान्त १९०० ई० में सरकार से प्रार्थना की गई कि अमेरिका के 'मेन लिकर लॉ' के समान कोई कानून बनाया जाय और दवा के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए नशीली वस्तुओं पर अधिक कर लगाया जावे जिससे नशीली चीज़ों का प्रयोग कम हो। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि कायस्थ माँस और मदिरा के बिना कौर नहीं उठाते।[1] वे यह भी लिखते हैं कि जातिपक्ष के कारण ही मदिरा यहाँ से हटाई नहीं जाती।[2] तृप्यन्ताम में वे लिखते हैं कि हमें आठों याम स्वार्थ प्रिय है और कायर हम इतने हो गए हैं कि हमें छुरी छूने में भी डर लगता है। राजनियमों के वश हम स्त्रियाँ हो गए हैं ?[3] शस्त्र कानून और उसके नियमों के प्रति जनता में बड़ा विरोध फैल रहा था और इस कानून व इसके

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, ककाराष्टक, पृ० ४४।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, युवराजकुमार स्वागतं ते, पृ० २५०।

३—प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द २ तथा ३।

नियमों में संशोधन करने की माँग कांग्रेस ने अपने तीसरे ही अधिवेशन में रक्खी थी। यह कथन शस्त्र-कानून के विरोध में ही किया गया है। तृप्यन्ताम् में हिंसा, पाप, पाखंड, अविद्या, आलस, फिज़ूलखर्ची आदि अन्य अवगुणों का भी उल्लेख कवि ने किया है।[१] आपस के द्वेष का उल्लेख लोकोक्तिशतक में भी है।[२]

'पितर प्रलाप' शीर्षक कविता में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतीयों के धार्मिक तथा नैतिक पतन का सुन्दर चित्र खींचा है। वे लिखते हैं कि न तो अब कोई संध्या करता है, न यज्ञादि होते हैं, न कोई प्राणायाम ही करता है। इन्होंने आठों-याम निंदा करना सीखा है। अब घरों से सोडावाटर की बोतलें खुलने तथा तबले की आवाज़ें आती हैं।[३] संगीत-काव्य के अन्तर्गत 'रुलाती गाली' में भी कवि ने भारतीयों की नैतिक अवनति का वर्णन किया है।[४] संगीत-काव्य के अन्तर्गत 'जातीय गीत' में भी कवि लिखते हैं कि मूर्खता आलस और हठ के बादल आ गए हैं और कुमति की घटा छाई हुई है।[५] 'चेतावनी' शीर्षक कविता में उन्होंने ब्राह्मणों को चेतावनी देते हुए कहा है कि धर्म-कर्म, आचार-विचार सभी तुम उठाकर पी गये और स्वार्थलोलुप हो गये। तुम्हारे ही आलस्य और अधर्म से देश डूब रहा है।[६] सामान्य रूप से भारत की दीन-दशा का वर्णन 'स्फुट कविता' में बालमुकुन्द गुप्त ने बड़े ही यथार्थवादी ढंग से किया है।[७]

१—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द १३, १४, ३६, ४०, ८ तथा ५२।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : लोकोक्तिशतक, पृ० ६३।

३—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पितर प्रलाप, पृ० १६१,

४—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, संगीत काव्य, रुलाती गाली, पृ० ४६१।

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, जातीय गीत, पृ० ५४८-५४९।

६—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, चेतावनी, पृ० ५५१। गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, श्रीराम स्तोत्र, पृ० ५,।

७— "नहिं उमंग नहिं हर्ष कछु नहिं उछाह नहिं चाव।
उदासीनता को छयो चारहुँ ओर प्रभाव॥
नाचत नाहिं तुरंग कहुँ नहिं हाथिन पै झूल।
चमकत नाहिन खड्ग कहुँ बरसत नाहिन फूल॥

इसी कविता में वे क्षत्रियों की कायरता का उल्लेख करते हैं ।[१] भारतीयों की फूट, उनके आलस्य आदि अवगुणों का अन्य स्थलों पर भी उल्लेख है और ईश्वर से भारतीयों की दशा सुधारने की प्रार्थना की गई है ।[२]

नाटककारों ने भारतीयों की नैतिक अवनति का वर्णन एक विशेष प्रकार से किया है। उन्होंने भारतीयों के अवगुणों को पात्रों का रूप दिया है । भारत-दुर्दशा में 'कुमत' 'आलस्य' आदि पात्र हैं। भारतीयों की आपस की फूट की ओर संकेत 'कुमत' के कथन में मिलता है कि वह भारत में जाकर फूट फैलायेगा । इसी के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न धार्मिक संप्रदाय हो जायेंगे और छुआछूत फैल जायेगी । कलियुग की बीबी भी कहती है कि लोग अंग्रेज़ी पढ़ेगे, गुलामी करेंगे और स्त्रियों को शिक्षा नहीं देंगे ।[३]

'भारत सौभाग्य' नाटक में 'प्रतिष्ठा' कहती है कि यहाँ अब चारों वर्णों ने दास-वृत्ति की चाह बढ़ा ली है और खुशामद तथा झूठी प्रशंसा करते हैं अतः 'मर्यादा' और 'प्रतिष्ठा' भी राजश्री के साथ ही चली जाती हैं ।[४] जहालत, काहिली, ऐयाशी, कमहिम्मती, लामजहबी, बेहयाई तथा फ़िजूलखर्ची सभी आती हैं और कहती हैं 'गारत करो हिन्द को चटपट इसमें देर मत लगाओ ।'[५] सुकृत देवी विलाप करते हुए कहती है कि यहाँ के नर अधर्म-रत हैं और दास-वृत्ति पसन्द करते हैं। ये सभी कायर, क्रूर, दुर्मति, निर्लज्ज, आलसी तथा निरुद्यमी हैं ।[६] चतुर्थ

जिनके छत्रन पर रही तरिवारिन करि छाँह ।
अभय सबन को करत हीं जिनकी लम्बी बाँह ।
सो विश्वम्भर नाथ के चरनन महँ सिर नाय ।
घटती के दिन मार मन चुपके रहे बिताय ॥"—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, श्रीराम स्तोत्र, पृ० ६

१— 'सेल गई बरछी गई गये तीर तलवार ।
घड़ी छड़ी चसमा भये छत्रिन के हथियार ॥'—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, श्रीराम स्तोत्र, पृ० ५

२—गुप्त, स्फुट कविता, श्रीराम स्तोत्र तथा हे राम, पृ० ६ तथा १२ क्रमशः

३—मिश्र, प्रतापनारायण : भारत दुर्दशा, द्वितीय अंक ।

४—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, प्रथम अंक, चतुर्थ गर्भांक ।

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, प्रथम अंक, तृतीय गर्भांक ।

६—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, द्वितीय अंक, तृतीय गर्भांक ।

अंक में जहालत, काहिली आदि वेश बदलकर आइडिलनेस, कार्वडिस, लग्ज़री, फ़ैशन, फ्लैटरी तथा फ्री-थिंकिंग के रूप में भारत में आती हैं।[1]

अधिकतर साहित्यकारों ने इस काल में अपनी दशा के सुधार के लिए ईश-प्रार्थना की है। 'भारत सौभाग्य' नाटक में नान्दी में ही सूत्रधार तथा नटी प्रार्थना करते हैं कि भारतवासी अपनी आलस्य-निद्रा से शीघ्र जागें और उनमें एका, सुमति, कला, विद्याबल तथा तेज उत्पन्न हो।

प्रतापनारायण मिश्र ने अपने निबन्धों में फूट और बैर का उल्लेख विशेष रूप से किया है।[2] हंटर कमीशन ने हिन्दी के पक्ष में राय नहीं दी—इसका कारण भी प्रतापनारायण मिश्र ने हिन्दुओं की नैतिक-दुर्बलता ही माना है। वे लिखते हैं कि क्या शिक्षा कमीशन वाले अंगरेज़ जो दुनिया को चरे बैठे थे न जानते थे कि हिन्दी से प्रजा का उपकार होगा परन्तु 'फूट के लतिहल, आलस्य के आदी, खुशामद के पुतले हिन्दू नाराज़ ही होके क्या कर लेंगे।[3] भारतीयों में साहस और जोश की जो कमी थी उसका उल्लेख बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों में मिलता है।[4] उपाध्याय बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' 'हमारे देश की भाषा और अक्षर' शीर्षक निबन्ध में लिखते हैं कि पश्चिमोत्तर प्रदेश की प्रजा को न तो अपने हिताहित का ज्ञान है, न उसमें यथाविधि उद्योग करने की ही योग्यता है, साथ ही द्वेष की ऐसी जड़ जमी है कि सब प्रकार की उन्नति की आशा निराशा मात्र प्रतीत होती है।[5] 'हमारे धार्मिक, सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन' शीर्षक निबन्ध में 'प्रेमघन' ने वृद्ध पुरुषों को दुराग्रही, मूर्ख तथा मिथ्याविश्वासी और युवकों को अकर्मण्य, प्रमादी, विपरीत बुद्धि तथा दुष्टाचारण वाला कहा है।[6]

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी: भारत सौभाग्य, चतुर्थ अंक, प्रथम गर्भांक।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, हो ओ होली है, पृ० ३-४, जरा अब तो आँखें खोलिये, पृ० ३५, तथा मुच्छ, पृ० ७९

३—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खंड, घूरे के लत्ता बिनै कनातन का डौल बाँधे, पृ० ४९।

४—भट्ट, बालकृष्ण : भट्ट निबन्धावली, लौ लगी रहे पृ० ७५ तथा भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, रसाभास, पृ० ७९-८०।

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, हमारे देश की भाषा और अक्षर, पृ० ५१।

६—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, हमारे धार्मिक, सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, पृ० २११।

जब कभी भी भारत विदेशियों से पराजित हुआ तब आपसी फूट के कारण ही, इसीलिये देश की नैतिक अवनति का वर्णन करते समय साहित्यकारों ने विशेष रूप से फूट और बैर का उल्लेख किया है। देश की नैतिक उन्नति के लिये कांग्रेस ने भी प्रारंभ से ही प्रयत्न किया था। साहित्य में देश की नैतिक अवनति का वर्णन समाज सुधार आन्दोलन तथा कांग्रेस के प्रस्तावों के फलस्वरूप हुआ है।

देश की आर्थिक अवनति का वर्णन

एक ओर तो भारत की जनता की नैतिक और सामाजिक स्थिति इस प्रकार की थी दूसरी ओर आर्थिक कष्ट बढ़ता जाता था। १८८६ ई० में इनकम्-टैक्स का नियम बना। इसके अतिरिक्त लगान में वृद्धि, नये करों के स्थापन, कला-कौशल और देशी उद्योग-धन्धों के विनाश के कारण भूमि पर निर्भर रहने वाले व्यक्तियों की संख्या का बढ़ना, महँगी, रोग, आये दिन के दुर्भिक्ष, अस्त्र और जंगलों के कानून के फलस्वरूप कृषकों की दयनीय-दशा आदि के कारण भारत की प्रजा आर्थिक-कष्ट से संतप्त थी। फौज़ी ख़र्च बढ़ रहा था और उसका व्यय भारत के सिर जाता था जबकि ऊँची सैनिक तथा अन्य नौकरियों से वे वंचित रखे जाते थे। व्यापार में लंकाशायर के हितों के सामने भारत के हित गौण थे। यहाँ से कच्चा-माल इंगलैण्ड जाता था और वही फिर चौगुने दामों में भारत में बेचा जाता था। इस काल के साहित्य में आर्थिक कष्ट का वर्णन प्रमुख स्थान रखता है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि सामान्य जनता शासनाधिकारों के संबंध में गहन् विचार नहीं कर सकती क्योंकि उसके पास न तो इतना समय ही होता है और न बुद्धि ही। परन्तु वह आर्थिक-कष्ट की अनुभूति तुरन्त करती है और उसकी प्रतिक्रिया भी जनता में बहुत होती है। दूसरा कारण यह है कि आर्थिक-कष्ट किसी वर्ग-विशेष या समुदाय-विशेष का नहीं होता। इस कष्ट से सम्पूर्ण देश एक साथ प्रभावित होता है। कांग्रेस ने अपने प्रारंभिक वर्षों में भारत की आर्थिक दृष्टि से अवनत दशा पर बहुत ध्यान दिया। इन सभी आर्थिक-विषयों पर प्रस्ताव पास होते रहे हैं जिनका उल्लेख पहले ही हो चुका है।

इस काल के कवियों ने महँगी और टैक्स का वर्णन किया है। प्रतापनारायण मिश्र ने तृप्यन्ताम में इन दोनों का उल्लेख किया है।[१] इन कवियों ने टैक्सों के संबंध में विशेष रूप से क्षोभ व्यक्त किया हैं क्योंकि ये टैक्स भारत के लिये

१—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द १६, पृ० ६।

नवीन थे। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि पशुओं के लिये भगवान् बिना जोते-बोये घास उत्पन्न करते हैं। परन्तु उस पर भी टैक्स लिया जाता है।[१] पानी के टैक्स, इनकम्-टैक्स और चुंगी आदि पर भी उन्होंने असंतोष प्रकट किया है।[२] निर्धनता के भी अनेक उल्लेख तृप्यन्ताम में मिलते हैं।[३] इस समय भारत में जो अनेक अकाल पड़े उनका भी वर्णन कवियों ने किया है। अकालों के कारण महँगी होना भी स्वाभाविक ही था। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि अन्न की उपज दिन-दिन नष्ट होती जाती है, कभी अति-वृष्टि होती है तो कभी सूखा पड़ता है। अकाल सिर से कभी नहीं टलता और जौ, तिल तथा चावल दिन-दिन महँगे होते जाते हैं।[४] जंगलों के कानूनों में संशोधन की माँग कांग्रेस ने अपने प्रस्तावों में रक्खी थी परन्तु प्रतापनारायण मिश्र ने केवल जंगलों के काटे जाने पर खेद प्रकट किया है।[५] इन साहित्यकारों ने गोवध पर दुःख प्रकट किया है। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि नाग देवता को हम क्या पिलायें, हमारा गोवंश तो कटता रहता है।[६] क्षुधा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि ब्रह्माग्नि तो बरसों से बुझ गई, अब तो जठराग्नि से सारे लोग जल रहे हैं।[७] 'प्रताप-लहरी' की कविताओं में भी प्रतापनारायण मिश्र ने दरिद्रता, महँगी, रोगों, दुर्भिक्षों, करों, चन्दों आदि का उल्लेख किया है।[८] यदि भारत में रोजगार किया भी जाता था तो उसमें दुस्सह राज-कर देना पड़ता था। इसका उल्लेख भी प्रताप-नारायण मिश्र ने किया है।[९] नमक-कर में की गई वृद्धि का विरोध भी कांग्रेस ने किया था। प्रतापनारायण मिश्र इन टैक्सों के सम्बन्ध में लिखते हैं कि नमक,

---

१—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द २६, पृ० ८।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम्, छन्द ५७, पृ० १५।

३—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द ५७, पृ० १५।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम, छन्द ४३, पृ० १३।

५—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम्, छन्द २७, ५३, पृ० ९, १४।

६—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम्, छन्द १६, पृ० ६।

७—मिश्र, प्रतापनारायण : तृप्यन्ताम्, छन्द ५२, पृ० १४।

८—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी नयासम्वत्, पृ० २९, महापर्व, पृ० ३५, ककाराष्टक, पृ० ४४। पद पृ० ९९, चाहे गाना समझो चाहे रोना, पृ० १९०, कानपुर माहात्म्य, पृ० ११२।

९—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, महापर्व, पृ० ३५।

तेल, लकड़ी और घास पर भी टैक्स लगता है तथा चौथाई प्रजा रूखी रोटी को तरसती है।[१] कृषि की दशा के बिगड़ने की ओर भी कवियों का ध्यान गया। प्रतापनारायण मिश्र ने इसका कारण अति-वृष्टि, अनावृष्टि तथा रेल को माना है।[२] वे यह भी समझते हैं कि इन चन्दों आदि ही के रास्ते भारत का सारा धन इंगलैंड पहुँचा जा रहा है।[३] यद्यपि १९०५ ई० में बहिष्कार को राजनीतिक-अस्त्र के रूप में अपनाया गया परन्तु विदेशी वस्तुओं के द्वारा हमारा सर्वस्व लुटा जा रहा है यह भारतीय पहले से ही समझ रहे थे और इसीलिये विदेशी-वस्तु-प्रचार को शंका की दृष्टि से देखते थे। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि हम देशी वस्तुएँ छोड़कर विदेशियों से सर्वस्व ठगाते हैं। हमारा सर्वस्व अंगरेज़ लिये जाते हैं और हम केवल लेक्चर में ही तेज़ हैं।[४]

महारानी विक्टोरिया की दूसरी हीरक जुबिली के अवसर पर भारत में जो भयंकर अकाल पड़ा उसका उल्लेख 'प्रेमघन' ने 'भारत बधाई' में किया है।[५] 'हार्दिक हर्षादर्श' में भी कवि ने महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबिली के अवसर पर असीम हर्ष प्रकट करते हुए अकाल का भी विशद् वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि ऐसा भयंकर अकाल पड़ा कि पेड़ों की छाल, घास और जानवर तक खा लिये गये। जाने कितने व्यक्ति मर गये और चारों ओर महाप्रलय की तरह हाहाकार मच गया। बहुतेरे लोग चोर, डाकू तथा लुटेरे बन गये और बहुतों ने आत्मघात कर लिया।[६] दरिद्रता, टैक्स, आदि के उल्लेख भी उनकी कविताओं में मिलते हैं।[७] इनकम्-टैक्स का उपहास 'होली की नकल' शीर्षक कविता में किया गया है। वे लिखते हैं कि पाँच सौ तक जिसकी आय है उसे टैक्स तो देना

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, ब्रैडली स्वागत, पृ० ११३।

२—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, होरी, पृ० १४५।

३—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, होली, पृ० १३२-१३३ तथा युवराज कुमार स्वागतं, पृ० २५०।

४—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापलहरी, लोकोक्तिशतक, पृ० ६२, ६६।

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, भारत बधाई, पृ० ३४३।

६—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन सर्वस्व, हार्दिक हर्षादर्श, पृ० २७८।

७—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, कलिकाल तर्पण, पृ० १४१, पितर प्रलाप, पृ० १५९ तथा जातीय गीत, पृ० ५४९।

ही पड़ता है चाहे वह आधा पेट खाये और उसके बच्चे बिना ब्याहे रह जायँ। मालगुजारी बढ़ा दी गई है। हाकिमी तो गोरे लोग करते हैं और खर्च भारत के सिर जाता है।[१] कांग्रेस ने लगान को स्थायी करने तथा लगान में की गई वृद्धि को घटाने के प्रस्ताव पास किये थे। यह उल्लेख कांग्रेस के प्रस्तावों से प्रभावित है। देश की दरिद्रता का वर्णन करते हुए कवि ने उल्लेख किया है कि भारत की श्री-सम्पत्ति विधर्मियों ने हर ली है तथा अंग्रेजों ने भारत का अशेष धन तथा उद्यम ढो लिया है।[२]

बालमुकुन्द गुप्त के काव्य में भारत की आर्थिक अवनति, अकाल आदि का विशद् वर्णन मिलता है। वे लिखते हैं :—

'जहं तहं नर कंकाल के लागे दीखत ढेर।
नरन पसुन के हाड़ सों भूमि छई चहुँ फेर।
हरे राम केह पाप ते भारत भूमि मझार।
हाड़न की चक्की चलै हाड़न को व्यापार॥
अब या सुखमय भूमि महँ नाहीं सुख को लेस।
हाड़ चाम पूरित भयो अन्न दूध को देस।
बार बार मारी परत बारहिं बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पैं खोले गाल कराल॥[३]

अन्य कविताओं में भी उन्होंने भारत के आर्थिक-कष्ट का वर्णन किया है।[४] अकाल का वर्णन भी है।[५]

कृषि तथा कृषकों की दीन-दशा की ओर भी कांग्रेस का ध्यान गया था। किसानों की कर्ज़दारी दूर करने के उपाय करने का प्रस्ताव कांग्रेस ने १८९५ में ही पास किया था तथा १८८८ ई० में ही लगान-नीति में सुधार करने का प्रस्ताव भी किया था। इस चरण के साहित्य में इस संबंध के उल्लेख राष्ट्रीय

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, होली की नकल, पृ० १८३।
२—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, संगीत काव्य, रुलाती गाली, पृ० ४६१, संगीत काव्य, होली राग काफी, पृ० ६३३।
३—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, हे राम, पृ० २१।
४—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, श्रीराम स्तोत्र, पृ० ६, अगवानी, पृ० २२, दुर्गास्तुति, पृ० २४, लक्ष्मी पूजा, पृ० ३८, लक्ष्मी स्तोत्र, पृ० ४१।
५—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, मेघ मनावनि, पृ० ६३।

आन्दोलन के ही प्रभावस्वरूप हैं। कृषि की दुरवस्था का वर्णन तो इस काल के लगभग सभी कवियों ने किया है परन्तु बालमुकुन्द गुप्त ने विशेष रूप से कृषकों की दीन-दशा का भी वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि जो सबको गेहूँ देते हैं वे स्वयं बाजरा खाते हैं और जब वह भी नहीं मिलता तब वृक्षों की छाल चबाते हैं। जब छोटे और बड़े लाट साहब शिमले में चैन उड़ाते हैं तब ये दुखिया मर-खप कर अनाज पैदा करते हैं। उस पर भी पापी लगान सारा अन्न हड़प कर जाता है और कभी-कभी उसके बाद भी अघाता नहीं है। जिन बेचारों के शरीर पर कपड़ा तथा छप्पर पर फूस नहीं है, खाने के लिये दो सेर अन्न तथा बैलों के लिए घास भी नहीं है, उनके नग्न शरीरों पर कोड़े पड़ते हैं।[१]

कृषि और कृषकों की ऐसी अवस्था थी। उधर वाणिज्य की दशा भी इससे अच्छी न थी। इसी कविता में बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं कि साहूकारों के तो अब प्रतिवर्ष दिवाले निकलते हैं।[२] देश की औद्योगिक उन्नति में कांग्रेस ने भी विशेष रुचि ली थी। देशी उद्योग-धन्धों तथा कला-कौशल की उन्नति करने का प्रस्ताव भी पास किया गया था। इसी के फलस्वरूप साहित्यकारों ने भी इन विषयों में बहुत रुचि ली। १९०५ में बंग-भंग के फलस्वरूप बहिष्कार को अपनाया गया। इस आन्दोलन ने उग्र रूप तो आगे चल कर धारण किया परन्तु इसका उल्लेख १९०५ ई० में तथा उसके पूर्व भी मिलता है। 'टेसू' शीर्षक कविता में कवि देशवासियों से विदेशी वस्तु छोड़ देने तथा अपनी वस्तुएँ अपने आप बनाने का आग्रह करते हैं।[३]

जिस प्रकार इस काल के काव्य में टैक्सों का कवियों ने बहुत विरोध किया है उसी प्रकार नाटककारों ने भी। 'भारत दुर्दशा' में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि सब लोग टैक्स देने के लिए साँझ-सबेरे झींकते रहते हैं।[४] 'भारत सौभाग्य' नाटक में नाटककार ने अनेक दरिद्रों का टैक्स के लिए रोने का वर्णन किया है।[५] भारत की प्रजा पर इन नए-नए करों ने जो भारी बोझ डाला था उसका इससे अधिक हृदयस्पर्शी वर्णन और क्या हो सकता था ? भारत का धन विदेश में

१—गुप्त, बालमुकुन्द : स्फुट कविता, जातीय गीत, पृ० ४७।

२—पृ० ४९।

३—टेसू, पृ० १४७-१४८

४—मिश्र, प्रतापनारायण : भारत दुर्दशा, प्रथम अंक, भारत का एक गीत

५—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, चतुर्थ अंक, प्र० गर्भांक

जा रहा था तथा भारत के उद्यम और व्यापार नष्ट हो गए थे। इसका उल्लेख 'भारत सौभाग्य' नाटक में है। चतुर्थ अंक, प्रथम गर्भांक में लक्ष्मी कहती हैं कि अब 'पच्छिम' में मुझे दिन-रात बुलाते हैं अतः वहीं जा रही हूँ। लक्ष्मी के जाने के बाद उद्यम और व्यापार आते हैं। उद्यम कहता है कि कपड़ा, गहना, औज़ार, सन्दूक, कलम, कागज़, बरतन, तेल, जूता, सूई तथा दियासलाई तक तो और स्थानों से आती है अतः व्यापार और उद्यम दोनों चले जाते हैं। यह उल्लेख सरकार की उस नीति का उद्घाटन करता है जिससे प्रेरित होकर व्यापार में इंग्लैंड के हितों के सामने भारत के हित गौण समझे जाते थे, और देशी उद्योग-धंधों का संरक्षण नहीं किया जाता था। १८९४ ई० में कांग्रेस ने ब्रिटिश-भारत में तैयार होने वाले सूती माल पर कर लगाए जाने का विरोध किया और १९०१ ई० से ही कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ औद्योगिक प्रदर्शनी प्रारंभ हुई। नाटक में इसके बाद कृषि-कर्म और सेवा-कर्म प्रवेश करते हैं। कृषि-कर्म अति-वृष्टि, अनावृष्टि, जंगलों के कटने, गोबध, मालगजारी वसूल करने के कठोर तरीकों तथा अन्न विलायत जाने और फलस्वरूप भाव बढ़ जाने का उल्लेख करता है। बेकारी प्रवेश करके कहती है कि मैंने बहुत कुछ किया, व्यापार और कारीगरी को तो निकाल ही दिया, कृषि-कर्म को भी ज़ेर कर लिया। एक दरिद्र प्रवेश करके कहता है कि चारों तरफ महँगी की आग लगी हुई है, सारी प्रजा भिखारी बन कर चिल्ला रही है।[१] इससे स्पष्ट है कि महंगी और बेकारी तो देश में थी ही, जनता का यह विचार था कि अन्न के निर्यात के कारण ही भाव अधिक हो जाता है।

देशी उद्योग-धंधों के विनाश का एक कारण मशीनों की कमी भी था। बाहर से जो कपड़ा आता था वह भारतीय कपड़े की तुलना में सुन्दर होता था। प्रताप-नारायण मिश्र ने इसका वर्णन 'भारत दुर्दशा' में किया है। एक महाराष्ट्री कहता है कि विलायत से मशीनें मँगवा कर देशी कपड़ा बनाकर पहनेंगे, सब तरह का रोज़गार करेंगे और यदि विदेशों का धन यहाँ नहीं ला सकेंगे तो यहाँ का धन भी विदेश नहीं जाने देंगे।[२] इससे स्पष्ट है कि बीसवीं सदी के आरम्भ में विदेशी वस्तुओं का आयात भारत की निर्धनता का मुख्य कारण माना जाने लगा था।

१—प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी : भारत सौभाग्य, चतुर्थ अंक, प्रथम गर्भांक

२—मिश्र, प्रतापनारायण : भारत दुर्दशा, तृतीय अंक

प्रतापनारायण मिश्र ने अपने अनेक निबन्धों में स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का आग्रह किया है। 'देशी कपड़ा' शीर्षक लेख में उन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से सिद्ध किया है कि देशी कपड़े में किफ़ायत और लाभ है, नफासत भी है। विदेशी वस्त्र पहनने से धन तो विदेश जाता ही है देश की कारीगरी भी लुप्त होती है।[१] 'समय का फेर' निबंध में इसी प्रकार देशी बर्तन तथा देशी जूतों के व्यवहार का आग्रह उन्होंने किया है और उसमें किफायत सिद्ध की है। इसी निबन्ध में वे यह भी लिखते हैं कि प्रत्येक व्यापार सरकार ने निज हस्तगत कर लिया है। देशी कारीगरी को देश वाले ही नहीं पूछते। लखनऊ, फर्रुखाबाद, मिरजापुर आदि स्थानों में जहाँ कंचन बरसता था, अब धूल उड़ती है।[२] भारत की दरिद्रता तथा अंगरेजों के भारत की सारी सम्पत्ति ढो ले जाने के उल्लेख उनके अनेक निबंधों में प्राप्त होते हैं।[३] वे भारतीयों को चेतावनी देते हुए लिखते हैं कि तुम मेहनत करके मर जाओगे। कहीं कोई अंगरेज बहादुर कोई नई चीज़ निकालेंगे और सब 'लैया पुँजिया' समेट के ले जायेंगे।[४] कई अन्य निबंधों में उन्होंने इसी प्रकार देशी व्यापार बढ़ाने का आग्रह तथा कृषि, व्यापार, नौकरी सभी की दीन दशा का वर्णन किया है। देश के धन के नष्ट होने का उल्लेख भी किया है।[५] देशी उद्योग-धंधों को उन्नत करने के उद्देश्य से देशी वस्तुओं के ही उपयोग का आग्रह साहित्यकारों ने किया है। राजनीति में तो १९०५ ई० में बंग-भंग के बाद स्वदेशी और बहिष्कार की नीति को अपनाया गया था। परन्तु देश की आर्थिक उन्नति करने के दृष्टिकोण से स्वदेशी वस्तुओं का आग्रह साहित्यकारों ने आरम्भ से ही किया है।

१—मिश्र, प्रतापनारायण : प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, देशी कपड़ा, पृ० १२३;

२—'समय का फेर', पृ० २७१;

३—पृष्ठ १३१, पृ० १८७, 'इन्कम टैक्स', पृ० ११९, 'समय का फेर', पृ० २७२ 'न जाने क्या होता है', पृ० ४०८;

४—'मार मार कहे जाओ नामर्द तो खुदा ने ही बनाया है', पृ० २३;

५—'ज़रा अब तो आँखें खोलिए', पृ० ३५-३७; 'इन्कम टैक्स', पृ० ११८, १२०; 'मरे का मारे साहबमदार', पृ० १७५; 'न जाने क्या होना है', पृ० ४०८; 'हुयी चोट निहाई के माथे', पृ० ९१; 'देशी कपड़ा,' पृ० १२३, 'धरती माता', पृ० २६६; 'उन्नति की धूम', पृ० ४६९

राजनीति और साहित्य दोनों में देशी उद्योग-धंधों और कारीगरी के विनाश को चिन्ताजनक दृष्टि से देखा गया है ।

'होली है' शीर्षक निबन्ध में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि बी० ए०, एम० ए० को भी नौकरी उचित रूप से मुश्किल से ही मिलती है[१] तथा 'बेगार' निबन्ध में वे लिखते हैं कि इंट्रेंस पास किए हुए व्यक्ति पंखा-कुली की नौकरी करते हैं ।[२] इससे प्रकट होता है कि बेकारी भी शिक्षित वर्ग में बहुत फैली हुई थी ।

गोरक्षा-आन्दोलन देश में चल ही रहा था । इन साहित्यकारों ने गोरक्षा के पक्ष में आर्थिक कारण भी रक्खे । प्रतापनारायण मिश्र का 'गोरक्षा' शीर्षक निबन्ध तो इसी विषय पर लिखा गया है । अन्य निबंधों में भी उन्होंने गोरक्षिणी-सभाओं की सहायता करने का आग्रह किया है ।[३]

'मानस विनोद' में भी प्रतापनारायण मिश्र ने टैक्सों के संबंध में व्यंग्य के साथ लिखा है कि जब हमारे म्युनिस्पल कमिश्नर कोई नया टैक्स लगाते हैं तो इतना अवश्य कह लेते हैं—'जन मंगल भल काज बिचारा । बेगहि नाथ न लाइय बारा ।'[४] बालकृष्ण भट्ट ने भी अपने निबंधों में टैक्स का उल्लेख किया है । वे लिखते हैं : 'टैक्स की झोंका-झोंक और हर एक बहाने रुपये की खींच से महाराणी के न्याय और प्रजा के सुख और आराम में रसाभास है ।'[५] कृषि के संबंध में लिखते हैं कि रेली ब्रदर्स के कारिन्दे गाँव-गाँव घूम कर खेत चुकता कर लेते हैं और उनके हौसले का अन्त यही है कि सब का सब गेहूँ विलायत पहुँच जाय ।[६] इस काल के साहित्यकारों ने अन्न निर्यात पर क्षोभ व्यक्त किया है । अन्न निर्यात की नीति का विरोध कांग्रेस ने भी किया था और ये उल्लेख राजनीति से ही प्रभावित हैं । बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में भी दुर्भिक्ष, प्लेग और अन्य रोगों का उल्लेख है ।[७]

१—'होली है', पृ० ५७८;

२—'बेगार', पृ० ९

३—प्रताप नारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड : 'गोरक्षा', पृ० १३२;

४—'मानस विनोद', पृ० १८

५—भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'रसाभास', पृ० ८०

६—भट्ट निबन्धावली, 'ईश्वर भी क्या ही ठठोल है', पृ० २०, तथा 'बड़ों के बड़े हौसिले', पृ० ८५-८६;

७—'कालचक्र का चक्कर', पृ० ९, 'नाम में नई कल्पना', पृ० ७८; तथा भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'चली सो चली', पृ० ६१, 'दरिद्र की गृहस्थी', पृ० ८७

भारतवर्ष की दरिद्रता का, जिसका कारण विदेशियों की नीति तथा भारतीयों का विदेशी-वस्तु-प्रेम है, उल्लेख उन्होंने किया है।[१] 'त्रिदेव कल्पना' शीर्षक निबंध में उन राजाओं का वर्णन है जो केवल टैक्स पर टैक्स लगाते जाते हैं अथवा जो प्रजा को निर्बल और अस्त्र-शस्त्रहीन कर देते हैं। उन राजाओं का भी वर्णन है जो अफ़ीम या नील की खेती से कृषि को दुर्बल कर देते हैं।[२] नील की खेती का उल्लेख महत्वपूर्ण है, क्योंकि आगे नील की खेती के संबंध में ही महात्मा गांधी ने चम्पारन में सत्याग्रह किया। मालगुजारी की वृद्धि पर इस काल के सभी लेखकों ने असंतोष प्रकट किया है और भट्ट जी ने भी इस संबंध में लिखा है।[३] लगान के संबंध में कांग्रेस ने भी प्रस्ताव पास किए हैं। साहित्य में आर्थिक-दशा, मालगुज़ारी आदि के उल्लेख राजनीति से प्रभावित हैं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने निबन्धों में आर्थिक-समस्या पर गम्भीर रूप से विचार किया है। 'भारतवर्ष की दरिद्रता' शीर्षक लेख में भारत की दरिद्रता का वर्णन करते हुए उन्होंने उसके कारणों का भी उल्लेख किया है। व्यापार का नाश दरिद्रता का मुख्य कारण है ही, कृषि की अवस्था भी हीन है। किसानों को बनिये और महाजनों की शरण लेनी पड़ती है। शस्त्रहीन होने के कारण वे पशुओं से खेतों की रक्षा भी नहीं कर पाते। नौकरियों पर विदेशियों का अधिक अधिकार है, जो पेंशन पाते ही स्वदेश चले जाते हैं।[४] 'भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा' शीर्षक निबन्ध में भी उन्होंने भारत की दरिद्रता का वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि विदेशी व्यापारियों के कारण हमारे व्यापारियों की दशा ऐसी है कि जिनके घर व्यापार होता चला आ रहा था वे भी चार पैसे की मजदूरी ढूँढ़ रहे हैं। कर के कारण जितना क्लेश किसानों को आजकल है उतना मुसलमानों के समय में नहीं था। उन्होंने कराँची में कपड़े की मिलें खोलने की सलाह दी है।[५] 'नवीन वर्षारम्भ' शीर्षक लेख में उन्होंने प्लेग, विशू-

---

१—भट्ट निबन्धावली, 'नये तरह का जनून', पृ० १५५; तथा भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'रुचना या पसन्द', पृ० ५०-५२; भट्ट निबन्धमाला, द्वितीयभाग, 'जातीयता के गुण', पृ० ५३, 'हमारे धर्म संबंधी खर्च', पृ० १२३

२—भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'त्रिदेव कल्पना,' पृ० १५

३—भट्ट निबन्धमाला, द्वि० भाग, 'राजा', पृ० ११

४—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'भारतवर्ष की दरिद्रता', पृ० २६४-२६८;

५—'भारतवर्ष के लुटुरे और उनकी दीन दशा,' पृ० २७६, २७८, २८०, २८१

चिका, शीतला आदि रोगों तथा अवर्षण, दुष्काल, और 'महर्घता' का वर्णन किया है। अकालों पर भी उन्होंने गम्भीर रूप से विचार किया है। वे लिखते हैं कि १८वीं शती में जब अंग्रेजों के कथनानुसार मानो यहाँ कोई राजा ही नहीं था, सौ वर्ष के बीच चार बार से अधिक अकाल नहीं पड़ा, परन्तु १९ वीं शती में जब अंग्रेजों का शासन यहाँ पुष्ट हुआ तो अकालों में वृद्धि हुई। प्रथम पच्चीस वर्षों में दस लाख तथा दूसरे पच्चीस वर्षों में पाँच लाख मनुष्य भूख से मरे। १८५० ई० से १८७५ ई० तक छः बार अकाल पड़ा और पचास लाख मनुष्य मरे तथा १८७५ ई० से १९०० ई० तक १८ बार अकाल पड़ा जिसमें लगभग दो करोड़ नब्बे लाख मनुष्य स्वाहा हो गए। इसका कारण अन्न-निर्यात तथा भारी लगान है और उद्धार का एक मात्र उपाय स्वदेशी है।[1] अकाल आदि इन सभी विषयों पर कांग्रेस ने भी प्रस्ताव पास किये हैं।

अस्तु, हम देखते हैं कि इस काल के साहित्यकारों ने देश की आर्थिक समस्याओं में विशेष रूप से रुचि ली है। कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही साहित्यकारों का ध्यान देश के आर्थिक शोषण की ओर गया था। कांग्रेस ने भी प्रारम्भिक वर्षों में शासन सुधार तथा देश की आर्थिक-समस्या-सम्बन्धी प्रस्तावों को ही बार-बार उपस्थित किया। आर्थिक-क्षेत्र में राजनीति तथा साहित्य की धाराएँ समानान्तर चलती हैं। देश की आर्थिक अवनति के उल्लेखों पर कांग्रेस के प्रस्तावों का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है।

परतंत्रता संबंधी उद्गार

देश की हर प्रकार की अवनति का मुख्य कारण परतंत्रता है और स्वातंत्र्य-आन्दोलन का परतंत्रता से सीधा सम्बन्ध है। स्वतंत्रता के आकांक्षी कवि को सबसे अधिक दुख देश की परतंत्रता से होता है। पराधीनता में जो अपमान, तिरस्कार, ग्लानि और लज्जा है उसके क्लेश का वर्णन पराधीन राष्ट्र के कवियों से अधिक और कौन कर सकता है ? प्रतापनारायण मिश्र 'तृप्यन्ताम्' में लिखते हैं कि हम दास बन कर जी रहे हैं उस पर भी करोड़ों आपदाएँ हैं। हम तो निर्लज्जता के अक्षत खाते हैं और आँसू पीते हैं। मनुष्य नाम धारण करके भी हम लोग अपने घर में मरे से पड़े हुए हैं।[2] कवियों ने परतंत्रता के दुःखों का वर्णन करके जनता को स्वतं-

---

१—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'नवीन वर्षारम्भ', पृ० ५१९, ५३०-५३१
२—'तृप्यन्ताम', छं० २०, पृ० ७

त्रता ग्रहण करने के लिए प्रेरित भी किया।[1] प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा है कि हम पेट के लिए गुलाम बने हैं, और जहाँ भी जाते हैं, धक्के खाते हैं। परतंत्रता पर उन्होंने बहुत क्षोभ व्यक्त किया है।[2]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने भी 'पितर प्रलाप', 'रुलाती गाली' आदि में देश की पराधीन दशा का करुण वर्णन किया है।[3] 'स्वदेश बिन्दु' के अन्तर्गत 'भारतीय गीत' में कवि अहिंसा पर आक्षेप करते हुए लिखता है कि अशोक ने हिंसा के साथ ही हिम्मत तेज और पराक्रम सभी को दूर कर दिया। धर्म तथा स्वतंत्रता नष्ट हो गयी।[4] यह कथन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इस काल के लगभग सभी कवियों ने अहिंसा में आस्था प्रकट किया की है।

नाटकों में भी परतंत्रता के सम्बन्ध में उल्लेख मिल जाते हैं।[5] 'भारत सौभाग्य' नाटक में 'प्रेमधन' ने दिखाया है कि राजश्री और विजयदेवी आती हैं और भारत को छोड़कर चली जाती हैं। उसके उपरान्त स्वाधीनता प्रवेश करके कहती है कि जिनसे ढीली-ढाली धोती भी संभल नहीं सकती वे देश-प्रबन्ध क्या करेंगे, अतः वह भी चली जाती है।[6] इस उल्लेख से प्रकट है कि पराधीनता के लिए साहित्यकार अपने को ही उत्तरदायी भी समझते थे। 'प्रेमधन' 'हमारे देश की भाषा और अक्षर' निबन्ध के प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि 'हम आर्यों की असावधानी और कार्य शिथिलता ने राज-पाट, मान-मर्यादा, स्वाधीनता और सब प्रकार के अधिकारों को खोया।'[7] एक ओर तो अपने अवगुणों के कारण ही भारतीय परतंत्र हुए थे दूसरी ओर परतंत्रता के कारण ही उनमें उत्साह की कमी थी। 'प्रेमधन'

१—'सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लातें खाव।
राजा करै सो न्याव है, पाँसा परै सो दाँव॥'
प्रताप लहरी, लोकोक्ति शतक, पृ० ६३

२—'तृप्यन्ताम', छं० ३३, पृ० १०, छंद ३८, पृ० ११, छंद ४२, पृ० १२, छंद ७३, पृ० १८ तथा प्रताप लहरी, 'बेगारी विलाप', पृ० १२३, 'भारत रोदन', पृ० १८

३—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'पितर प्रलाप', पृ० १५९; 'संगीत काव्य', 'रुलाती गाली', पृ० ४६१;

४—'स्वदेश विन्दु', 'जातीय गीत', पृ० ६३०

५-६—भारत सौभाग्य, प्रथम अंक, तृतीय गर्भांक, 'दुर्गा का कथन'

७—प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय, भाग, 'हमारे देश की भाषा और अक्षर', पृ० ५२

लिखते हैं : 'पराधीनता के कारण स्वदेशियों के उत्साह हर विषयों में जाते रहे, उन्हें सब कुछ असंभव समझ पड़ता है।'[१] एक अन्य निबन्ध में भी वे लिखते हैं कि परतंत्रता ने साधारण मनुष्यों को निर्बल तथा दरिद्र बना दिया है। उनमें वह 'तिग्मता' कभी आ ही नहीं सकती जो विजयी जाति में होती है।[२]

इस काल के साहित्यकारों ने परतंत्रता के कारण दुःख और क्षोभ तो व्यक्त किया है और उसके लिए अपने को दोषी भी माना है परन्तु परतंत्रता से मुक्त होने के कोई उपाय उन्होंने नहीं सुझाए। केवल उस क्षोभ का वर्णन साहित्यकारों ने किया है जो परतंत्रता से उत्पन्न हुआ था। बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं कि हज़ारों वर्षों से विदेशियों का पदाघात सह कर भी कभी एक क्षण के लिए हमारी जीवनी-नाड़ी में रक्त संचालन न हुआ।[३] 'जगत प्रवाह' शीर्षक लेख में भी वे लिखते हैं : 'कालचक्र की वक्र गति भारत में उसी तमोगुण को प्रवाहित कर रही है जिसे अवनति, तनज्जुली, घटती, जघन्यता, पराधीनता, चाहे जिस नाम से पुकारो। नरक के प्राणी भी हम ऐसों के पराधीन निकृष्ट जीवन से अधिक श्रेष्ठ और सुखी हैं।'[४] अन्य अनेक निबन्धों में भी भारत की परतंत्रता के सम्बन्ध में उनके उल्लेख मिलते हैं।[५]

काँग्रेस ने इन वर्षों में शासन सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव तो पास किए थे परन्तु स्वतंत्रता का प्रश्न ही हास्यास्पद था, अतः उस पर कोई विचार नहीं हुआ। साहित्यकारों का भी यही दृष्टिकोण है। बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं कि स्वराज्य की उत्कट वांछा ज़ोर पकड़ती जा रही है परन्तु हमारी वर्तमान गिरी हुई सामाजिक दशा में 'स्वराज की वासना' कितनी हास्यास्पद है।[६]

१—'हमारे देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के संपादक', पृ० २०९

२—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भा०, 'भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा', पृ० २८१

३—भट्ट निबन्धावली, 'संसार कभी एक-सा न रहा', पृ० १६;

४—'जगत प्रवाह', पृ० १६०

५—भट्ट निबन्धावली, दूसरा भाग, 'मनुष्य के जीवन की सार्थकता', पृ० ३७; 'ज्ञान और भक्ति', पृ० १२; भट्ट निबन्धावली, प्रथम भाग, 'कालचक्र का चक्कर', पृ० ९; 'ईश्वर भी क्या ही ठठोल है', पृ० १८; तथा भट्ट निबन्ध-माला, प्रथम भाग, 'चली सो चली', पृ० ६१, 'हिन्दुस्तान के रईस', पृ० ८१

६—भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'अकिल अजीरन रोग', पृ० ११२

उद्‌बोधन

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कोई निश्चित कार्यक्रम भारतीयों के सम्मुख नहीं था परन्तु इतना स्पष्ट था कि यदि देश की उन्नति के लिए आलस्य दूर करके सामूहिक रूप से भारतीय कटिबद्ध हो जायेंगे तो उसकी दशा में सुधार अवश्य होगा। इसीलिए इस काल के सम्पूर्ण साहित्य में कवियों के उद्‌बोधन-गीत बहुत मिलते हैं। उन्होंने भारतवासियों को आलस्य-निद्रा से जगाने के प्रयत्न किए हैं। भारत की दशा सुधारने के लिए ईश्वर से भी प्रार्थनाएँ की गयी हैं। 'प्रेमधन' 'संगीत काव्य' के अन्तर्गत एक गीत में भारतीयों को जागृति का सन्देश देते हुए कहते हैं कि मूर्खता की नींद छोड़ कर आलस्य को दूर बहाओ, अपना स्वत्व पहचानो। साहस और उद्योग करके फिर वे दिन दिखलाओ। मिथ्या डर छोड़ दो, क्लीव और कुमति मत कहलाओ। भारतमाता के हृदय में उन्नति की आशा बंधाओ।[१] 'आशीर्वाद' शीर्षक गीत में कवि ने ईश्वर से भारत का मंगल करने की प्रार्थना की है जिससे आलस्य, निद्रा त्याग कर भारतवासी तुरन्त जागें। एका, सुमति, कला, विद्या, बल और तेज बढ़ें और उन्हें अपना स्वत्व प्राप्त हो। उद्यमशील, धर्मरत होकर वे देशोन्नति करें।[२]

कवियों ने एकता पर विशेष बल दिया है। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि एकता से बहुत शक्ति आती है। एक और एक मिल कर ग्यारह होता है। सब मिल कर कार्य करें तो वह किसी को भी बोझ नहीं मालूम पड़ता।[३] 'तृप्यन्ताम्' में वे लिखते हैं कि जब तक जग की शंका, संकोच, आलस्य, अनेकता आदि छोड़ कर अपने उद्धार के लिए भले काम न करोगे तब तक कुछ न हो सकेगा।[४] 'वर्षा-रम्भ' में भी एकता का उपदेश दिया गया है।[५]

'भारत-सौभाग्य' नाटक में नान्दी में ही एक कजली है जिसमें एका तथा उद्यम पर नाटककार ने बल दिया है। 'कलि कौतुक' रूपक के अन्त में भी एक ऐक्यवर्धिनी सभा का उल्लेख है। ऐसी सभाओं से भारतीय जनता में जागृति फैल सकती थी, ऐसा नाटककार का विश्वास है।

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'संगीत काव्य', पृ० ४४०;

२—'आशीर्वाद', पृ० ५५३

३—प्रताप लहरी, 'लोकोक्तिशतक', छन्द, १७, ९१, पृ० ६३, ७०;

४—'तृप्यन्ताम्', छंद ८१;

५—'वर्षारम्भ', पृ० ३३

'जातीयता के गुण' शीर्षक निबन्ध में बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं कि ऐक्य, सहानुभूति, देश भर की एक भाषा, एकमत आदि जातीयता के उत्कृष्ट गुण जब तक न आयेंगे तब तक भारत का पुनरुत्थान असंभव है।[१] 'भारतीय प्रजा में दो दल' शीर्षक निबन्ध में 'प्रेमघन' ने भी भारत की प्रजा के सभी दलों को परस्पर का द्रोह भूल कर देश के हित-साधन में संलग्न होने का उपदेश दिया है।[२] अस्तु, हम देखते हैं कि साहित्यकारों ने एकता और प्रयत्न पर विशेष रूप से बल दिया है और जनता को जागृत करने का प्रयत्न किया है। वह अखिल भारतीय कांग्रेस संगठन के पीछे देश के सभी वर्गों और सम्प्रदायों की सम्मिलित शक्ति के प्रभुत्व का अनुभव कर रहे थे। इसी से प्रभावित होकर उन्होंने एकता का इतना आग्रह किया है। आगे चल कर हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य की विकट समस्या ने उपस्थित होकर राजनीतिक आन्दोलन की शक्ति कम कर दी। तब हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य बढ़ाना कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बनाया गया।

राजभक्ति की भावना

इस समय की देश की दशा पर विचार करने से पता चलता है कि १८५८ ई० के महारानी के घोषणापत्र को भारतीय जनता ने अक्षरशः सत्य समझ कर ही ग्रहण किया। महारानी विक्टोरिया जैसी करुण-हृदया, दयालु, रमणी के भारत की साम्राज्ञी होने पर भारतीयों का हृदय राजभक्ति के भावों से परिपूर्ण हो गया। इसी कारण राजभक्ति की भावना राजनीति और साहित्य दोनों में प्रमुख है। यह राजभक्ति केवल दिखावे की नहीं थी, वह हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा से समन्वित थी। राजभक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव कांग्रेस में बराबर पास होते रहे थे और डा० पट्टाभि सीतारामय्या ने तो यहाँ तक लिखा है कि पुराने जमाने में कांग्रेसी लोगों को अपनी राजभक्ति की परेड दिखाने का शौक था।[३] अवसरानुकूल स्वागत और खेद प्रकाशन सम्बन्धी प्रस्ताव भी बराबर पास होते रहे थे। जिस प्रकार राजनीतिज्ञों ने राजभक्ति की भावना प्रकट की है उसी प्रकार साहित्यकारों ने भी।

इस काल के कवियों ने राजभक्ति पूर्ण रचनाएँ की हैं। 'भारत बधाई' कविता

१—भट्ट निबन्धमाला, द्वितीय भाग, 'जातीयता के गुण', पृ० ५४

२—प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, 'भारतीय प्रजा में दो दल', पृ० २५०

३—'काँग्रेस का इतिहास', प्रथम खंड, पृ० ५९

सम्राट् श्री एडवर्ड सप्तम के भारत साम्राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर लिखी गयी है। कवि ने उस मंगल-दिवस को धन्य कहा है जिस दिन भगवान ने भारत की आर्त्त दशा देख कर अन्याय, भय, दुःखद एवं निंद्य राज्य का अन्त किया और सात समुद्र पार से बुलाकर सुखद शासन स्थापित किया। सन् १८५८ ई० का पहली नवम्बर का दिन धन्य है जिस दिन सितासित भेद हट गया। श्रीमती जब हमारी रानी हुईं तो हम सब प्रजा स्वतंत्र नाम से पुकारे गये। भारतवासी उन्हें प्रमुदित होकर आशीष देने लगे। ईश्वर की कृपा से एक और जुबिली आये। धर्म-धुरीण ऐसा उपकारी नृप मिले और प्रजा उस पर प्राण-धन वार देना चाहे तो आश्चर्य ही क्या है? इन सभी अवसरों पर भारत ने सारे संसार को लज्जित करके अपनी राजभक्ति प्रकट की है।[१] कवि-कोविद और पंडित सभी नाना कविता बनाकर अपनी राजभक्ति प्रकट कर रहे हैं।[२] 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबिली के अवसर पर रची गयी है। रानी की प्रशंसा में कवि लिखते हैं कि उनके प्रताप को दिनेश का प्रताप समझ कर उलूक छिप गये, प्रजा रूपी कंज सदैव प्रफुल्लित रहता है। इस संसार में महारानी के समान वे ही हैं। ईश्वर महारानी का कल्याण करे जिससे वह प्रजा के हित में रत होकर राज्य करती रहें।[३]

इस प्रकार 'प्रेमधन' के साहित्य में राजभक्ति की भावना प्रमुख है। अपने व्यक्तिगत स्वभाव-संस्कार, वातावरण आदि के अनुसार ही इन साहित्यकारों के साहित्य में राजभक्ति का स्वर तीव्र या मध्यम है। ब्रिटेन के शासकों का आर्य होना भी एक कारण है जिससे भारतवासियों ने अपने को उनके अधिक निकट समझा और उनकी भक्ति की। 'युवराजकुमार स्वागतं ते' में प्रतापनारायण मिश्र ने युवराज के प्रति तथा 'महापर्व' में महारानी विक्टोरिया के प्रति भक्ति प्रकट की है। वे लिखते हैं कि रानी पुत्र की तरह प्रजा-पालन करती हैं परन्तु दूर रहने के कारण हमारा कष्ट नहीं जानतीं।[४]

नाटकों में भी यह राजभक्ति की भावना पाई जाती है। 'भारत सौभाग्य'

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'भारत बधाई', पृ० ३४०-३४४;

२—पृ० २३९;

३—हार्दिक हर्षादर्श, पृ० २६५

४—प्रताप लहरी, 'युवराजकुमार स्वागतं ते', पृ० २४६ तथा 'महापर्व', पृ० ३६

नाटक के द्वितीय अंक के अन्त में राजभक्ति की भावना से पूर्ण एक गाना है।[१]

यह राजभक्ति की भावना इस दृढ़ता के साथ बद्धमूल है कि इन साहित्यकारों ने १८५७ ई० की क्रान्ति के नेताओं—बहादुरशाह, झाँसी की रानी, नाना साहब आदि को विश्वासघातियों की श्रेणी में रक्खा है। यह ध्यान देने की बात है कि यही नेता स्वतंत्रता के अमर शहीदों के रूप में सुभद्राकुमारी चौहान तथा वृन्दावन लाल वर्मा के साहित्य में चित्रित हैं। 'भारत सौभाग्य' नाटक में भारत कहता है : 'अरे आँख के अन्धों ! यह तुमने क्या किया ? हाय ! इन इंगलैण्डियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? इनसे तुम्हारा क्या बैर था ? क्या यह कलिकाल के प्रभाव से उनके उपकारों का प्रत्युपकार है ? ऐ कृतघ्न विश्वासघाती पापियों ! तुमने मेरे राजभक्ति रूपी निर्मल यश को ऐसा कलंकित किया जो प्रलय पर्यन्त नहीं शुद्ध होने का—।'[२] भारत ने बहादुरशाह, झाँसी की रानी आदि सभी को धिक्कारा है। इसके बाद कई मेमें व बच्चे चिल्लाते हैं और उनकी पुकार पर एक सिक्ख आकर उनको रक्षा का आश्वासन देता है तथा यह कहता है कि सारा भारत बेईमान नहीं है।[३] इसी नाटक में एक बधाई की ठुमरी है जिसमें महारानी की दीर्घायु की प्रार्थना की गई है। विद्रोहियों को मार कर महारानी के राज्य अपने हाथ में लेने पर हर्ष प्रकट किया गया है और यह आशा की गई है कि महारानी अवश्य सुख देंगी।[४]

'प्रेमधन' के साहित्य में तो राजभक्ति का स्वर प्रमुख है ही, प्रतापनारायण मिश्र भी अपने निबन्ध 'हम राजभक्त हैं' में १८५७ ई० की क्रान्ति के लिए थोड़े से अदूरदर्शियों को दोषी ठहराते हैं और उसके कारण 'भारत नेशन मात्र' को कलंक लगाना बुद्धिमानी नहीं समझते। वे लिखते हैं कि फिर उस संकट के समय सहायता भी तो हमी ने की क्योंकि राजभक्ति हमारा सनातन धर्म है। इतर

१—बढ़ै तेरो राज। दिन दिन बढ़ै तेरो राज ॥टे० ॥

× ×

आपके पावन परसि पग जनम भूमी आज।
कियो करिहौ फेरि हमरे आप सुख के काज।
देत हम सब चित्त सों आसीस तुम कहं आज।
बहुत दिन कायम रहै तेरो तखत अरु ताज॥

२-३-४—'भारत सौभाग्य', तृतीय अंक

उपधर्मों का हम तभी तक विचार करते हैं जब तक हमारी राजभक्ति में हानि न हो ।[१]

राजभक्ति की भावना इस काल के सम्पूर्ण साहित्य में व्याप्त है। १८५७ ई० की क्रान्ति से लेखकों की सहानुभूति न होना आश्चर्यजनक है। इसका कारण सम्भवत: यह हो सकता है कि इस क्रान्ति को साहित्यकारों ने मसलमानी राज्य स्थापित करने की चेष्टा समझा हो। इतना निश्चित है कि वे उसको राष्ट्रीय-क्रान्ति के रूप में नहीं ग्रहण करते। इस काल की राजनीति तथा साहित्य दोनों में अंग्रेजों के प्रति विश्वास की भावना मेरुदण्ड के समान स्थित है।

ब्रिटिश शासन से संतोष

बहुत समय तक अव्यवस्था, अशान्ति और गृहयद्धों से त्रस्त जनता ने अंग्रेजी राज्य का स्वागत किया। ब्रिटिश शासन में शान्ति, सुव्यवस्था, यातायात के सुप्रबन्ध और विद्यार्जन की सुविधाओं के कारण भारतीय जनता ने संतोष का अनुभव किया। घोषणापत्र के आश्वासन के अनुसार धर्मनिरपेक्ष राज्य स्थापित होने पर उसे विशेष सुख का अनुभव हुआ होगा, क्योंकि धर्मापेक्षी राज्य के कष्टों का कटु अनुभव उसे मुसलमानों के सुदीर्घ शासन-काल में हो चुका था। शासन के दोषों की ओर भी साहित्यकारों का ध्यान गया है किन्तु राजा के भारत से बहुत दूर होने के कारण उन्होंने ब्रिटेन के राजा को नहीं अपितु भारत के कर्मचारियों को इसके लिए उत्तरदायी माना है। यदि एक ओर ब्रिटिश राज्य की स्थापना से भारतीयों को जानमाल की सुरक्षा का अनुभव और अंग्रेजों की कार्यकुशलता का विश्वास हुआ तो दूसरी ओर आर्थिक शोषण के नये-नये रूप भी सामने आये। एक ओर घोषणापत्र में सितासित भेद हट जाने से उन्हें सुख हुआ तो दूसरी ओर नौकरियों के सम्बन्ध में उन्हें आये दिन अंग्रजों के जाति-पक्षपात का अनुभव हुआ। पुलिस और न्याय विभाग के कारण न्याय की पोल खुलने में देर नहीं लगी। ऐसी स्थिति में भारतीयों के लिए शासन के सम्बन्ध में किसी निर्णय तक न पहुँच सकना ही अधिक सम्भव था। यही कारण है कि इस काल में साहित्यकारों का दृष्टिकोण अनिश्चित है। उन्होंने शासन के गुणों का भी उल्लेख किया है और दोषों का भी। 'प्रेमधन' की दृष्टि शासन के गुणों की ओर अधिक गयी है। 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद' में वे लिखते हैं कि जिसकी कृपा से भारत का दुर्दिन गया वह

७१—प्रतापनारायण ग्रन्थावली : प्रथम खंड, 'हम राजभक्त हैं' पृ० २१४

अंगरेजी राज्य यहाँ बिना प्रयास के आया है। स्वच्छन्दता का स्वाद पाकर हम लोग स्वस्थ हुए और ज्ञान विद्या तथा नवीन उन्नति का हमें लाभ हुआ। राजा ने बिना कहे ही हमारे दुख हर लिये और जो दुख बच गये हैं याजो नये हैं वे बिना जाने कैसे हटाये जा सकते हैं और हम भी कैहे कहें क्योंकि राजा बहुत दूर देश में रहते हैं।[१] प्रारम्भिक वर्षों में शासनाधिकारियों के प्रति कांग्रेस का दृष्टिकोण मित्रतापूर्ण था। साहित्यकारों ने भी शासन में जिन गुणों का अनुभव किया उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। 'हार्दिक हर्षादर्श' में 'प्रेमघन' ने शासन के गुणों का विस्तार में उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि प्रजा रूपी कमल का देश रूपी सर में फैले रहने का कारण न्याय-नीर से अघाया हुआ होना है।[२] बिना ज्ञान के जो प्रजा पशु के समान बनी हुई थी उसे थोड़े ही दिनों में महारानी के शासन ने नर बना दिया, उसको स्वच्छन्द किया तथा न्याय-भवन में खरा न्याय दिखलाया। शासनाधिकारी देश-प्रबन्ध में चतुर, दयालु, न्यायी, दुखहारी तथा विद्या, विनय और विवेकवान हैं। शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं। जहाँ नगरों में दिन दुपहर डाके पड़ते थे वहाँ अब यात्रियों के लिए वन में भी रक्षक हैं। जहाँ काफ़िले लुटते थे वहाँ अब रेल के कारण अंध, पंगु, निस्सहाय व्यक्ति तथा अबलाएँ तक निधड़क यात्रा कर सकते हैं। पानी के जहाज़ से माल दूर-दूर जाता है। डाक और तार का उत्तम प्रबन्ध है। डाक्टर लाखों रोगियों को रोज जिलाते हैं। जलविहीन स्थानों में नहरें खुदवाई गई हैं और सड़कों पर वृक्ष लग गए हैं। विश्वविद्यालय तथा पाठालय खुल गए हैं।[३] कवि ने चिकित्सालयों तथा अनाथालयों की प्रशंसा की है।[४] 'आनन्द बधाई' तथा 'भारत बधाई' कविताओं में भी इसी प्रकार 'प्रेमघन' ने ब्रिटिश राज्य से संतोष प्रकट किया है।[५] 'संगीत काव्य' में लार्ड रिपन के शासनकाल में न्याय की प्रशंसा की गयी है।[६]

'प्रेमघन' ने अपने नाटक 'भारत सौभाग्य' में भी विदेशी शासन से पूर्ण संतोष व्यक्त किया है। चतुर्थ अंक के द्वितीय गर्भांक में नाटककार ने दिखाया है कि

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद; पृ० २४८

२—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'हार्दिक हर्षादर्श', पृ० २६५;

३—पृ० २७४;

४—पृ० २८०, पृ० २९७;

५—'भारत बधाई', पृ० ३४१, तथा 'आनंद बधाई' पृ० २९७;

६—संगीत काव्य, पृ० ४३९

भारत मूर्च्छित पड़ा हुआ है । राज–प्रतिनिधि आकर भारत के मुँह में लगा हुआ प्रेस एन्ट का ताला तोड़ देते हैं और कहते हैं कि हम ज़राअत को तरक्की देंगे, बन्दोबस्त के मुकदमे बन्द करेंगे, पटवारियों की तनख़्वाह सरकार से दिलायेंगे, नमक का महसूल भी कम करते हैं, हमने अखबारों का डाक महसूल घटाया और बेफायदे की काबुल की लड़ाई को बन्द किया। भारत इस पर हर्ष प्रकट करता है। राज-प्रतिनिधि देशी वस्तुओं के व्यवहार की सम्मति तथा 'लोकल सेल्फ़ गवर्नमेण्ट की शिक्षा' देने का आश्वासन देते हैं। भारत उठकर रानी को धन्यवाद देता है और सड़कें, पुल, डाक के प्रबन्ध, पुलिस, पाठशालाएँ, औषधालय, छापेखाने, समाचार-पत्र, तार, नल, कारागृह का सुप्रबन्ध, रेलगाड़ी, नहरें, लड़कियों की शिक्षा आदि सभी सुविधाओं के लिए रानी का कृतज्ञ होता है और कहता है कि यथार्थ उन्नति की आशा तो आज हुई ।[१]

प्रतापनारायण मिश्र ने 'श्रीभारत धर्म महामंडल'[२] शीर्षक निबन्ध में महारानी के प्रताप से दुर्दशा समाप्त होने का उल्लेख किया है तथा 'विस्फोटक' निबन्ध में चेचक का टीका लगवाने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया है।[३] 'बालक' निबन्ध में उन्होंने बाल-वध करनेवाले सरकारी कर्मचारियों को कठोर दण्ड देने का समर्थन किया है।[४] भट्टजी ने 'नये तरह का जनून' शीर्षक निबन्ध में ब्रिटिश-राज्य के न्याय और स्वतंत्रता की प्रशंसा की है। वे लिखते हैं कि शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं।[५]

ब्रिटिश शासन से असंतोष

अस्तु हम देखते हैं कि साहित्यकारों ने विदेशी शासन से पूर्ण संतोष व्यक्त किया है परन्तु दूसरी ओर शासन के दोषों की ओर भी उनका ध्यान गया है। आर्थिक कष्ट के अतिरिक्त न्याय तथा पुलिस-विभाग से ही विशेष रूप से साहित्यकारों ने असंतोष प्रकट किया है। न्याय विभाग में सुधार की माँग कांग्रेस ने भी रक्खी थी जिसका उल्लेख किया जा चुका है। जनता को यह असंतोष था कि

१—'भारत सौभाग्य', चतुर्थ अंक

२—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्र० खं०, 'श्रीभारत धर्म महामण्डल', पृ० ३८९;

३—'विस्फोटक', पृ० ५२;

४—'बालक', पृ० १३६

५—भट्ट निबन्धावली, 'नये तरह का जनून', पृ० १६६–१६७

न्याय महँगा और देर से मिलने वाला है। 'तृप्यन्ताम्' में प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि हमको न्याय बिना दाम खर्च किये नहीं मिलता और दामों का वहाँ कहाँ योग जहाँ कृषि, वाणिज्य, सेवा तक सभी 'निकाम' हों। वे लिखते हैं कि लाइसेंस, इनकमटैक्स, चुंगी, चंदे, पुलिस और अदालत के बीच जीवन संशयमय है। इनसे प्राण बचें भी तो गोली आकर लगती है।[१]

इसी प्रकार 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद' में जहाँ एक ओर ब्रिटिश राज्य से संतोष प्रकट किया गया है वहाँ दूसरी ओर कवि यह भी लिखते हैं कि ब्रिटेन की प्रजा तो अपने लिये स्वयं नियम बनाती है परन्तु हम भारतवासी भूलकर भी राजसभा में नहीं जा सकते।[२] पुलिस द्वारा झूठी-सच्ची वारदातों में भले आदमियों के फँसाए जाने का उल्लेख प्रतापनारायण मिश्र ने 'जन्म सुफल कब होय' कविता में किया है।[३] लाइसेन्स के बिना हथियार न मिलने पर भी उन्होंने असंतोष प्रकट किया है।[४] शस्त्र कानून व नियमों में संशोधन करने का प्रस्ताव कांग्रेस ने भी १८८७ ई० में ही उपस्थित किया था। प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि अंग्रेजों की कामना यही है कि हिन्दू सब धन खोकर उनकी लातें सहें और इंगलिश-पालिसी न खुले।[५]

'स्फुट कविता' में बालमुकुन्द गुप्त भी पुलिस के सम्बन्ध में लिखते हैं कि छोटे बच्चों को सरसों की चोरी लगाकर पुलिस जेल भेज रही है।[६] कर्जन के दमन-पूर्ण शासन ने उसी समय से जनता को शासन का विरोधी बना दिया था। उनके कई कार्यों बंग-भंग, दिल्ली-दरबार, भारतीयों के चरित्र को असत्यमय बताना आदि का विरोध उसी समय हुआ। 'कर्जननाना' शीर्षक कविता में बालमुकुन्द गुप्त ने उनके इन कार्यों का उपहास किया है और इसका उल्लेख किया है कि कर्जन के ही कारण स्वदेशी का प्रचार हुआ।[७] कर्जन के द्वारा भारतीयों के चरित्र को असत्यमय बताया गया जिसको लेकर बालमुकुन्द गुप्त ने व्यंग्य-पूर्ण

१—'तृप्यन्ताम्', छन्द, ५६-५७, पृ० १४-१५
२—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद', पृ० २४८
३—प्रताप लहरी, 'जन्म सुफल कब होय', पृ० ४२;
४—'महापर्व', पृ० ३६;
५—'जन्म सुफल कब होय', पृ० ४०
६—स्फुट कविता, 'बसन्तोत्सव', पृ० ५७;
७—'कर्जननाना', पृ० १४९-१५०

शैली में लिखा है :—

> "हम जो कहें वही क़ानून, तुमतो हो कोरे पतलून।
> हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।
> सच है सभ्य देश की चीज़, तुमको उसकी कहाँ तमीज़ !
> औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उड़ाना।
> ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।
> बोले और करे कुछ और, यही सभ्य के सच्चे तौर।"[१]

'टेसू' शीर्षक कविता में दिल्ली-दरबार का उपहास है।[२] शिक्षा के प्रबन्ध से असंतोष व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं कि गीता नष्ट हो गई है और केवल डारविन, मिल, तथा शेली पढ़ाये जाते हैं।[३] शिक्षा के विषय में कांग्रेस ने भी रुचि ली थी परन्तु साहित्यकारों ने देशी-साहित्य के स्कूलों में न पढ़ाये जाने पर राजनीति से प्रभावित होकर नहीं, वरन स्वतंत्र रूप से विचार किया है। शासन के प्रति असंतोष नाटकों में भी व्यक्त हुआ है। प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं, फ़ौजों की तथा अन्य ऊँची नौकरियों के सम्बन्ध में प्रस्ताव कांग्रेस में पास हुए हैं। काशीनाथ खत्री का 'ग्राम पाठशाला और निकृष्ट नौकरी' नाटक आधुनिक नौकरियों की शोचनीय दशा का वर्णन करता है। भरोसदास पढ़े लिखे हैं, फिर भी उन्हें नौकरी बड़ी कठिनाई से मिलती है और नौकरी मिलने के उपरान्त भी कठिनाइयाँ होती हैं।[४] प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं तथा विभिन्न सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कांग्रेस ने बार-बार प्रस्ताव किये थे जिनके फलस्वरूप नौकरियों की दशा की ओर ध्यान जाना आवश्यक था। प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारत दुर्दशा' नाटक में अदालतों के प्रति असंतोष व्यक्त किया है। मुसाहब एक गाने में कहता है कि वकालत और अदालत के कारण एक कौड़ी भी नहीं बचती।[५] 'कलिकौतुक' में भी कहा गया है कि स्वदेशियों का धन और माल विशेषतः कचहरियों में ही स्वाहा होता है।[६]

१—टेसू, पृ० १४६;
२—पृ० १२६;
३—'सब जाय', पृ० ११५;
४—पृ० १४४
५—भारत दुर्दशा, द्वितीय अंक
६—'कलिकौतुक', चतुर्थ दृश्य

नाटकों में से 'भारत सौभाग्य' नाटक में शासन के असंतोष के उल्लेख बहुत मिलते हैं। पाँचवें अंक के तृतीय गर्भांक में सातवाँ नौजवान अपने भाषण में कहता है कि हमको अपने जिले में पंचायती हुकूमत की तालीम मिल चुकी है अतः हम चाहते हैं कि मुल्क के इंतजाम में भी हमें हिस्सा मिले। सालाना बजट कौंसिल में पेश हो जिससे हम लोग भी उस पर बहस कर सकें। पचास साल की शिक्षा के बाद भी क्या ऐसे लोग तैयार न किये जा सके जो अपने मुल्क के काम करने के लायक माने जायँ। हिन्दुस्तान में बड़ी-बड़ी तनख्वाह वाले सिर्फ अंग्रेज अफ़सर ही क्यों होते हैं ? अगर हम 'सिविल सर्विस वास्ते खयाल हकरसी हमवतनों' के कहते हैं तो क्या बुरा कहते हैं ? सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति के सम्बन्ध में समय-समय पर कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किये हैं। शिक्षा-विभाग में, छोटी सरकारी नौकरियों में, तथा पुलिस-विभाग की ऊँची नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कांग्रेस ने क्रमशः १८९६, १९०० तथा १९०१ ई० में प्रस्ताव पास किये थे। इस प्रकार के उल्लेख राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित हैं। नौजवान कहता है कि इंगलैंड ने जितनी लड़ाइयाँ एशिया में की उससे भारत का क्या फायदा हुआ, मगर खर्च सब भारत के ही सिर क्यों पटका गया ? ब्रह्मा जीतने से हिन्दुस्तान का क्या फ़ायदा हुआ ? उसका खर्च हमसे इनकम-टैक्स व नमक-कर बढ़ाकर लिया गया। अगर हम फ़ौजी खर्च कम करने को कहते हैं तो क्या बुरा कहते हैं ? विलायती कपड़े पर जो महसूल लगता था वह बन्द कर दिया गया। सरकार की सैनिक नीति से कांग्रेस ने बहुत असंतोष व्यक्त किया है और उस सम्बन्ध में निरन्तर प्रस्ताव पास किये हैं। पहले ही अधिवेशन में कांग्रेस ने सैनिक खर्च में प्रस्तावित वृद्धि का विरोध किया था। नमक-कर में की गई वृद्धि का विरोध भी कांग्रेस ने १८८८ ई० तथा १८९० ई० में किया। इनकम-टैक्स का नियम बनते ही जनता ने इसका भी विरोध किया। ये सभी उल्लेख राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि से प्रभावित हैं। नाटक में कहा गया है कि सरकार कहती है कि हम रियाया की वफ़ादारी पर पूरा एतकाद करते हैं, फिर वह हथियार क्यों छीनती है और ऊँची फ़ौजी नौकरियाँ क्यों नहीं देती ? हम 'आर्म्स एक्ट' हटाने को कहते हैं तो क्या बुरा कहते हैं ?[1] 'शस्त्र-कानून' व अन्य नियमों में संशोधन सम्बन्धी कांग्रेस के प्रस्ताव का उल्लेख हो चुका है। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि कांग्रेस के ऐसे प्रस्तावों से साहित्यकार बहुत प्रभावित हुए हैं। छठे अंक में सर

१—भारत सौभाग्य, पंचम अंक

चार्ल्स ब्रेडला भारतीयों का आवेदन पत्र देते है जिसमें इंडिया कौंसिल तोड़ने, भारतीयों के लिये सिविल-सर्विस सुलभ करने, कानूनी कौंसिल में प्रजादल को अधिक बलशाली करने व अधिक अधिकार देने, इनकम-टैक्स हटाने तथा जूरी-प्रथा चलाने आदि की प्रार्थना की गई है ।[१]

अंग्रेजों के नाम के साथ आतंक की जो भावना सम्बद्ध थी उसके उल्लेख भी साहित्य में मिलते हैं । 'मानस विनोद' में यह उल्लेख मिलता है कि बच्चे अंगरेजों को देखकर सूख जाते हैं ।[२] कोई-कोई अंगरेज यद्यपि शान्तिप्रिय होने का दावा करते हैं परन्तु 'जेहि सुभाव चितवहिं हित जानी, सो जानै जनु आयु खुरानी'[३] अंगरेजों से लेखक कहते हैं कि 'परम स्वतंत्र न सिर पर कोई' भावै मनहिं करौ तुम सोई'[४] 'कलिकोष' निबन्ध में प्रतापनारायण मिश्र ने 'कचहरी', 'अदालत', 'दर्बार', 'हाकिम', 'वकील', 'मुख्तार', 'मुअक्किल' 'इजलास', 'चपरासी', 'अर-दली' आदि शब्दों के जो अर्थ दिये हैं उनसे स्पष्ट है कि वे शासन तथा न्याय विभाग से असन्तुष्ट हैं ।[५] सरकार के पक्षपात का उल्लेख भी उन्होंने किया है ।[६] वे इंगलैंड को स्वार्थी बताते हैं ।[७] 'यह तो बतलाइए' शीर्षक निबन्ध में वे पुलिस के दोषों का वर्णन करते हैं ।[८] अन्य निबंधों में भी उन्होंने शासन से असंतोष प्रकट किया है ।[९] काँग्रेस ने भी न्याय-विभाग से असंतोष प्रकट किया था और सुधारों के प्रस्ताव उपस्थित किये थे । इस काल में लेखकों ने न्याय विभाग से असंतोष तो प्रकट किया है परन्तु काँग्रेस के प्रस्तावों को उन्होंने नहीं दुहराया है । पुलिस से भी साहित्यकारों ने विशेष रूप से असंतोष प्रकट किया है ।

१—भारत सौभाग्य, षष्ठ अंक

२—मानस विनोद, पृ० १२;

३—पृ० १५;

४—पृ० १०

५—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, 'कलिकोष', पृ० ७३-७४;

६—'कलिकोष,' पृ० १९७, 'असंभव है,' पृ० ४२९;

७—'स्वार्थ', पृ० ३०७

८—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, 'यह तो बतलाइये', पृ० ३७५;

९—'सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय', पृ० ६६, तथा 'टैढ़ जानि शंका सब काहू', पृ० ५९, 'मुनीनों च मतिभ्रमः', पृ० ७६-७७

बालकृष्ण भट्ट ने पुलिस विभाग के प्रति असंतोष व्यक्त किया है।[१] सरकार के दंभ, पक्षपात और अत्याचार का उल्लेख भी उन्होंने किया है।[२] इसके अतिरिक्त नौकरियों के सम्बन्ध में सरकार की जो नीति थी उससे भी बालकृष्ण भट्ट ने असंतोष व्यक्त किया है। 'मनुष्य के जीवन की सार्थकता' शीर्षक लेख में वे लिखते हैं कि 'वर्तमान समय में कर्मचारियों की कुछ ऐसी पालिसी हो रही है कि सौ रुपये से ज्यादा की नौकरियाँ नेटिवों को न दी जायें।'[३] इसी प्रकार फ़ौज़ी नौकरियों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि हिन्दुस्तानी फ़ौज़ी अफ़सर सौ-सवा-सौ की कोई नौकरी पा जाने से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं जब कि विलायती अफ़सर जब तक कमान्डर-इन-चीफ़ न हों तब तक उनका हौसिला पूरा नहीं होता।[४] लेखक के ये कथन सरकार की उस भेद-भाव पूर्ण नीति के विरोध में किये गये हैं जिसके कारण कांग्रेस ने सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति के लिये बार-बार प्रस्ताव पास किये हैं। प्रेस की स्वतंत्रता के अपहरण पर भी उन्होंने क्षोभ व्यक्त किया है। वे लिखते हैं कि चाहे हम राजभक्ति जागृत करने की सदा कोशिश करते रहें परन्तु कर्मचारियों के अत्याचार से खिन्न होकर अगर कुछ बात लिख दें तो वह चाहे सच ही हो परन्तु 'सेडिशन' समझी जाती है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कई निबन्धों में लिखा है।[५] प्रेस-कानून की कठोरता के कारण जनता में बहुत असंतोष फैला था। प्रेस की स्वतंत्रता की माँग राजा राम मोहनराय के समय से ही चली आ रही थी। इसका उल्लेख केवल राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव के कारण नहीं है। अमेरिका के ईस्ट इण्डियन्स तथा अफ्रीका के काफ़िरों को गुलाम बना लेने पर भी उन्होंने क्षोभ व्यक्त किया है।[६]

१—भट्ट निबन्धावली, 'ढोल के भीतर पोल', पृ० ९२, तथा भट्ट निबन्ध माला, प्रथम भाग, 'अकिल अजीरन रोग', पृ० ११३

२—भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'अकिल अजीरन रोग', पृ० ११३ तथा 'दंभाख्यान', पृ० १००

३—भट्ट निबन्धावली, दूसरा भाग, 'मनुष्य के जीवन की सार्थकता', पृ० ३८

४—भट्ट निबन्धावली, 'बड़ों के बड़े हौसिले', पृ० ८४;

५—'रस में फीकापन कब आता है', पृ० १४०-१४१, 'खटका', पृ० १९१ तथा भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'हाकिम और उनकी हिकमत', पृ० १३६-१३७

६—भट्ट निबन्धावली, दूसरा भाग, 'ज्ञान और भक्ति', पृ० ९

अस्तु इस काल में शासन के प्रति असंतोष मुख्यतः पुलिस और न्याय विभागों, नौकरियों में भारतीयों की स्थिति, तथा प्रेस की स्वतन्त्रता के अपहरण के कारण था। आगे आने वाले वर्षों में बहिष्कार-आन्दोलन में अदालतों के बहिष्कार को भी स्थान मिला। इसका कारण जनता का तीव्र असंतोष ही था।

समकालीन घटनाओं, समस्याओं तथा व्यक्तियों के उल्लेख

राजनीतिक घटनाओं के भी अनेक उल्लेख इस काल के साहित्य में मिलते हैं। ये उल्लेख साहित्यकारों की राजनीतिक घटनाओं के प्रति जागरुकता के प्रमाण हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि साहित्यकार किन घटनाओं से विशेष प्रभावित हुए।

नील की खेती का उल्लेख बालकृष्ण भट्ट ने एक निबन्ध में किया है।[१] प्रतापनारायण मिश्र ने भी अपनी कविता-पुस्तक 'तृप्यन्ताम' में लिखा है कि बहुत से लोग नील की खेती से सहज ही धन-धाम खो बैठते हैं।[२] नील की खेती से किसानों को जो हानि हो रही थी उसका उल्लेख साहित्य में अभी से मिलने लगता है। नील की खेती तथा उससे सम्बन्धित तीन-कठिया प्रथा का स्थान राजनीति में महत्वपूर्ण है। प्रताप लहरी की 'लावनी' में उन्होंने 'इलबर्ट बिल' का उल्लेख किया है। एग्लों-इण्डियन-शक्ति 'इलबर्ट बिल' के विरोध में गाती है।[३] कांग्रेस के संबंध में भी उन्होंने लिखा है।[४] 'प्रेमघन' ने अपने साहित्य में समकालीन घटनाओं का विशेष उल्लेख किया है। 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद' में ब्रिटेन की राज-सभा में भारतीयों के आने पर बधाई दी गई है, विशेष रूप से दादा भाई नौरोजी को।[५] 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता में भी उन्होंने ब्रिटेन की प्रजा के समान ही स्वत्व, आयुध अधिकार आदि की माँग की है।[६]

'प्रेमघन' ने 'भारत सौभाग्य' नाटक में कांग्रेस की स्थापना का वर्णन किया है। प्रतापनारायण मिश्र ने कई निबन्धों में इंडियन नेशनल कांग्रेस का उल्लेख

१—तृप्यन्ताम्, छन्द ६४, पृ० १६
२—प्रताप लहरी, 'लावनी', पृ० १९६-१९७
३—प्रताप लहरी, 'काँग्रेस की जय', पृ० १७ तथा 'महापर्व', पृ० ३६
४—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० २४९–५०;
५—'हार्दिक हर्षादर्श', पृ० २९१
६—भारत सौभाग्य, चतुर्थ अंक

किया है तथा उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की है।[१] 'समझदार की मौत है' शीर्षक लेख में वे लिखते हैं कि बहुत रोने-गाने, लड़ने-भिड़ने से सरकार ने सिविल सर्विस में १९ वर्ष की जगह २१ वर्ष की आयु का नियम कर दिया है, फिर भी कितने व्यक्ति विलायत परीक्षा देने जायेंगे ? इससे अच्छा हो कि व्यापार की उन्नति की जाय।[२] 'मानस विनोद' में 'इलबर्ट बिल' के विनाशकारियों के सम्बन्ध में मिश्र जी लिखते हैं कि ये दूसरों की संपदा ईर्ष्या और कपट के कारण नहीं देख सकते।[३] 'ग्रामों के साथ हमारा कर्त्तव्य' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने ग्रामों में कार्य करने की आवश्यकता दिखाई है।[४]

समकालीन घटनाओं का उल्लेख बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों में भी मिलता है। उन्होंने देशी रियासतों की दशा पर विचार करते हुए लिखा है कि स्वाधीनता का सुख इन्हें ज़रा भी नहीं है। इनमें से एक भी रियासत ऐसी नहीं है जिसको ब्रिटिश शासन सब ओर से आच्छादित किये हुये न हो। राजा, एजेन्ट साहब की खुशामद में लगे रहते हैं और राज्य के कर्मचारी प्रजा पर अत्याचार करते हैं।[५] अपने प्रारम्भिक अधिवेशनों में कांग्रेस ने रियासतों की स्थिति पर कभी विचार नहीं किया। यह उल्लेख इस तथ्य को प्रकट करता है कि केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से ही साहित्यकारों ने सभी समस्याओं पर विचार नहीं किया है। उन्होंने स्वतंत्र रूप से भी देश के विभिन्न भागों की दशा को देखा है। इंडियन नेशनल कांग्रेस से इस काल के सभी साहित्यकारों ने सद्भावना प्रकट की है और इसीलिये उसके बलसंचय करने पर उन्होंने हर्ष प्रकट किया है। 'नये तरह का जनून' शीर्षक निबन्ध में बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं कि आर्य समाजियों में भी जनून की कमी नहीं है। कांग्रेस वालों का जनून महा असाध्य रोग है। कर्मचारियों ने हज़ार सिर धुना कि इस विष-वृक्ष की जड़ उखाड़ डालें पर यह दिन-दिन पुष्ट पड़ता जाता है और अब तो अजर-अमर हो गया है।[६] देश की

१—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, 'स्वप्न', पृ० ३१४-३१६; 'काँग्रेस की जय', पृ० २४२-२४४ तथा पृ० २९०;
२—'समझदार की मौत है,' पृ० ६९
३—'मानस विनोद', पृ० १०
४—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, 'ग्रामों के साथ हमारा कर्तव्य', पृ० ४००
५—भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'एक अनोखा स्वप्न', पृ० ९२
६—भट्ट निबन्धावली, 'नये तरह का जनून', पृ० १६३-१६५

दशा से द्रवित होने वाला और देश का उद्धार करने वाला वर्ग अधिकतर वकीलों का था। इसका उल्लेख भी भट्ट जी ने किया है।[1] कांग्रेस के उल्लेख अन्य निबन्धों में भी मिलते हैं।[2]

बदरीनारायण चौधरी ने भी कांग्रेस के विषय में जनता की इस समालोचना का उल्लेख किया है कि काँग्रेस वाले तो राजनीतिक विषयों में उलझे हुये हैं। यदि इतना परिश्रम व्यापार के लिये करते तो उत्तम परिणाम होता।[3]

अस्तु राजनीतिक क्षेत्र में अन्य घटनाओं के अतिरिक्त इंडियन नेशनल काँग्रेस ने जनता का ध्यान आकृष्ट किया। काँग्रेस-संस्था में सभी साहित्यकारों ने विश्वास प्रकट किया है।

राष्ट्रीयता की भावना देश के उद्धारकों और नेताओं के प्रति आदर के रूप में भी प्रकट होती है। राष्ट्रीय-आन्दोलन के इस प्रथम चरण तक साहित्यकार समकालीन तथा भूतपूर्व नेताओं के प्रति विशेष आकृष्ट नहीं हुये। प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविता 'हाय बड़ा अनर्थ हुआ' में दयानन्द के देहान्त पर खेद प्रकट किया है[4] और स्फुट कविताओं में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी की प्रशंसा की है।[5] 'बलि पर विश्वास' शीर्षक निबन्ध में दयानन्द, केशवचन्द्र सेन तथा भारतेन्दु आदि के प्रति उन्होंने आदर प्रकट किया है[6] और 'रक्ताश्रु' में इन तीनों के देहान्त पर खेद प्रकट किया है।[7]

राष्ट्रीयता का स्वरूप

अन्त में इस प्रथम चरण में राष्ट्रीय-आन्दोलन के स्वरूप पर विचार कर लेना उचित होगा। राष्ट्रीय-आन्दोलन के सम्बन्ध में साधारणतया यह बात दृष्टि-गोचर होती है कि साहित्यकारों के मस्तिष्क में भारत-राष्ट्र की कल्पना ठीक

१—भट्ट निबन्धमाला, प्रथम भाग, 'वकील', पृ० ११०;

२—'रसाभास', पृ० ७९, तथा भट्ट निबन्धमाला, द्वितीय भाग, 'हमारे धर्म सम्बन्धी खर्च', पृ० १२४

३—प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, 'देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक', पृ० २०६

४—प्रताप लहरी, 'हाय बड़ा अनर्थ हुआ', पृ० १२६;

५—'स्फुट कवितायें', पृ० २०२

६—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, 'बलि पर विश्वास', पृ० १७२;

७—'रक्ताश्रु', पृ० ८१

राष्ट्रीय ढंग की नहीं थी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखें तो भारत के प्रत्येक प्रान्त का निवासी, प्रत्येक धर्मावलम्बी, प्रत्येक जाति और समुदाय का सदस्य भारत-वासी है। परन्तु साहित्यकारों में से अधिकांश ने भारतवासी से केवल हिन्दू का अर्थ लिया है और राष्ट्र से हिन्दू-राष्ट्र का। जब वे भारत के स्वर्णिम अतीत का वर्णन करते हैं तो कभी यवन बादशाहों का उल्लेख नहीं करते। सामाजिक और नैतिक अवनति का चित्रण करते समय भी वे हिन्दू समाज की कुरीतियों और हिन्दुओं के ही दुर्गुणों का उल्लेख करते हैं। भारत की दासता और हिन्दुओं की दासता उन्हें एक ही बात लगती है। हिन्दी भाषा का आग्रह करते समय वे हिन्दुओं को ही सम्बोधित करते हैं। हिंदुत्व के प्रति कवियों का विशेष प्रेम लक्षित होता है। 'तृप्यन्ताम्' में औरंगजेब द्वारा मंदिर और मूर्तियों के तोड़े जाने पर दुख प्रकट करते हुये कवि ने यह भी कहा है कि नये मतवालों ने मिलकर देवगण का स्वरूप और नाम लुप्त कर दिया। वेद का पढ़ना समाप्त हो गया और पुराणों को लोग मूर्खों की कहानी समझते हैं।[१] हिन्दुत्व के साथ-साथ आर्यत्व की भावना भी कवियों में मिलती है। 'तृप्यन्ताम्' में ही कवि ने यह भी कहा है कि आर्य जाति की हंसी होती रहती है, उसके उत्तम गुण गुप्त हो गये।[२] धर्म के सम्बन्ध में कहा गया है कि जोग, जाग, जप, तप करने वाला कोई नहीं रहा। गो-वध का भी विरोध किया गया है।[३] गोरक्षा के लिये प्रतापनारायण मिश्र का विशेष उत्साह लक्षित होता है। 'गोगुहार' में कवि ने गायों के प्रति बहुत करुणा दिखाई है।[४] कसाइयों के सम्बन्ध में कहा गया है कि ये भारत को 'गारत' करने वाले हैं।[५] अन्य कविताओं में गायों की दीन-दशा का वर्णन है तथा गायों के रखने के लाभ और गौरक्षिणी-सभाओं आदि का वर्णन किया गया है।[६] प्रतापनारायण मिश्र ने हिंदी, हिंदू और हिन्दुस्तान एक ज़बान से जपने की सम्मति दी है क्योंकि उनके विचारानुसार त्रिदेव के समान यही कल्याण करेंगे।[७]

१—'तृप्यन्ताम्', छन्द ५, १५, ७, पृ० ४-६;
२—छन्द ५१, पृ० १३;
३—छन्द १५, ६५, पृ० ६, १६
४—प्रताप लहरी, 'गोगुहार', पृ० २८
५—'ककाराष्टक', पृ० ४५
६—'कानपुर माहात्म्य', पृ० २१२;
७—'ब्राह्मण का अंतिम उपदेश', पृ० २६०

कांग्रेस पूर्णरूप से राष्ट्रीय संस्था थी अतः जो साहित्यकार काँग्रेस के प्रभाव में अधिक थे उन्होंने हिन्दू-राष्ट्रीयता के नहीं अपितु भारतीय-राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण को अपनाया। 'भारत सौभाग्य' नाटक में भारत के सात पुत्र हैं जो क्रम से पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी, उत्तरी, मुसलमान, पारसी और अंग्रेज हैं। लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि भारत भौगोलिक दृष्टि से प्रत्येक प्रान्त तथा धार्मिक दृष्टि से प्रत्येक धर्म का है। सभी भारतवासी भारत के पुत्र हैं। अंग्रेज को भी भारत का पुत्र मानना[1] महत्वपूर्ण है और साहित्यकारों की राज-जाति के प्रति भक्ति को प्रदर्शित करता है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'भारतीय प्रजा में दो दल' शीर्षक निबन्ध में हिन्दू और मुसलमानों की एकता पर बल दिया है। 'देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने देश के लड़कों के विधर्मी हो जाने पर क्षोभ प्रकट किया है। उन्होंने अलग स्कूल खोलकर अपने लड़कों को धर्म-शिक्षा आदि देने की सलाह दी है।[2] प्रतापनारायण मिश्र भी हिन्दी का आग्रह करते समय केवल हिन्दुओं को ही सम्बोधित करते हैं।[3]

किशोरीलाल गोस्वामी का 'हीराबाई वा बेहयाई का बोरका' ऐतिहासिक उपन्यास है और इसमें अलाउद्दीन की चरित्रहीनता प्रदर्शित की गई है। कथानक से लेखक का हिंदुत्व के प्रति प्रेम गौण रूप से प्रकट होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह काल राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय-भावना के जन्म तथा शैशव का था। हमारे राजनीतिज्ञों की आकाँक्षाओं की परिधि कुछ शासन सम्बन्धी तथा कुछ आर्थिक-सुधारों तक ही सीमित रही। विस्तार में इन सुधारों का उल्लेख हो चुका है। राजनीति तथा साहित्य दोनों में राजनीतिज्ञों और कवियों की नीति अनुनय-विनय की रही है। साहित्यकारों ने देश की स्थिति के सुधार के लिये ईश्वर से प्रार्थना की तथा सहयोग के लिये जनता से आग्रह किया। साहित्य में अनिश्चय की भावना प्रमुख है। बहुत से विषय विवादास्पद बने रहे। कभी साहित्यकारों ने राज-भक्ति प्रकट की और कभी देश-भक्ति, कभी समाज सुधार का आग्रह किया कभी कट्टरता का, कभी शासन के गुणों का वर्णन

१—'भारत सौभाग्य', चतुर्थ अंक

२—प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, 'देश के अग्रसर और समाचारपत्रों के सम्पादक', पृ० २०९

३—प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खंड, 'मूलन्नास्थि कुतः शाखा', पृ० ३१७

किया और कभी उसकी प्रशंसा की तो कभी उसके दोषों के कारण उसकी भर्त्सना की। कभी अंग्रेज जाति की प्रशंसा की, कभी निंदा, कभी राष्ट्रीयता में विश्वास प्रकट किया तो कभी हिन्दू-जातीयता में। कुछ विषयों में साहित्यकारों में मतैक्य भी मिलता है, जैसे भाषा का प्रश्न। यद्यपि यह राष्ट्रीय-चेतना राजनीतिक-जागृति से विशेष प्रभावित थी परन्तु कुछ ऐसी प्रमुख समस्याओं को जैसे सामाजिक सुधार तथा भाषा का प्रश्न उठाकर साहित्यकारों ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनका दृष्टिकोण केवल राजनीतिक-प्रश्नों से ही परिचालित नहीं था, उन्होंने स्वतंत्र रूप से भी देश की परिस्थिति पर विचार किया।

समग्र-रूप से जीवन में जो अशांति, व्यग्रता तथा बेचैनी थी उसका चित्रण साहित्यकारों ने किया है परन्तु राष्ट्रीय-चेतना स्पष्ट आकृति और रेखायें नहीं ग्रहण कर सकी। देश की जो प्रमुख समस्यायें थीं उन्हें साहित्यकारों ने जनता के समक्ष रक्खा और जनता को उन पर विचार करने के लिये प्रेरित किया परन्तु स्वयं इन समस्याओं पर गंभीर रूप से विचार इस काल के साहित्यकारों ने नहीं किया। यह स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्रीय-भावना भविष्य में क्या रूप ग्रहण करेगी। कवि के शब्दों में यही कह सकते हैं कि :

> 'सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,
> किन्तु समझो रात्रि का जाना हुआ।'

अध्याय २

बंग-भंग तथा प्रथम महायुद्ध का काल और हिन्दी साहित्य

१९०५–१९१८ ई०

●

१९०५ ई० में राष्ट्रीय-चेतना की जो लहर राजनीतिक-गगन में एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गई थी। उसने अपनी गहराई, दृढ़ता और व्यापकता के कारण १९०५ तथा उसके बाद के वर्षों को पिछले समय से बिल्कुल अलग कर दिया। इस राष्ट्रीय-चेतना के कुछ तात्कालिक कारण थे। जापान की रूस के ऊपर विजय ने एशियाई जातियों में आत्मविश्वास के भाव भर दिए थे। इसके अतिरिक्त १९०५ ई० के पहले के कुछ वर्ष लार्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारों में कमी कर दी गई, विश्वविद्यालयों को सरकारी नियंत्रण में लाया गया जिससे शिक्षा महंगी हो गई, लार्ड कर्जन के द्वारा पूर्वी देशों के व्यक्तियों के चरित्र को असत्यमय बताया गया और तिब्बत पर आक्रमण हुआ। परन्तु इन सबसे भी बढ़ कर बंग-भंग था, जिसने बंगाल और बाद में सम्पूर्ण भारत को ब्रिटिश शासन का कट्टर विरोधी बना दिया। कर्जन के शासन की कठोर आलोचना साहित्य में हुई है। बंगालियों ने समझा कि बंग-भंग के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता और राष्ट्रीय भावना को

नष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है। जनमत बंग-भंग का घोर विरोध कर रहा था, फिर भी इसका कुछ फल न हुआ, उल्टे दमन ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। विद्यार्थियों के ऊपर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे राजनीति में भाग न लें। इसका फल यह हुआ कि स्कूल और कालेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय-शिक्षा-आन्दोलन शुरू हुआ। श्री अरविंद का सहयोग प्राप्त करके राष्ट्रीय-शिक्षा-आन्दोलन और भी बढ़ा। स्वदेशी का आन्दोलन सारे देश में व्याप्त हो गया और हाथ के कपड़े का उद्योग पुनर्जीवित हो गया। १९०५ ई० में कांग्रेस ने विदेशी-वस्त्र बहिष्कार के संबंध में कहा था कि बंग-भंग आदि के प्रति विरोध प्रकट करने का एकमात्र यही वैध उपाय रह गया था और विवश होकर वंगाल के लोगों को इसे अपनाना पड़ा। परन्तु १९०६ ई० में साहस के साथ बहिष्कार का समर्थन किया गया और उसे न्यायसंगत बताया गया। सरकार के द्वारा 'युगान्तर', 'संध्या','वन्देमातरम्' आदि पत्र बंद कर दिए गए और १९०८ई० तक स्थिति बहुत गंभीर हो गयी। १९०८ ई० में तिलक को गिरफ्तार करके ६ साल के लिए 'देश-निकाला' की सज़ा दी गयी। १९०८ ई० में राजद्रोही सभाबन्दी कानून व प्रेस-एक्ट जनता के विरोध के होते हुए भी पास किए गए। १९१० ई० में 'क्रिमिनल ला एमेन्डमेंट ऐक्ट' बना। सरकार की दमन-नीति, स्वदेशी तथा बहिष्कार-आन्दोलन से हिन्दी साहित्य बहुत प्रभावित हुआ है। सरकार की दमन-नीति के कारण हिंसावाद बहुत बढ़ रहा था। १९०७ ई० में लंदन की एक सभा में सर कर्जन वाइली का खून हुआ। नासिक के कलेक्टर मि० जैक्सन की हत्या कर दी गयी। १९११ ई० में स्थिति कुछ सुधर गयी क्योंकि एक तो लार्ड हार्डिंग ने दक्षिण अफ्रीका में शर्तबन्दी कुली प्रथा को समाप्त कर दिया और दूसरे बंग-भंग कर दिया गया। शर्तबन्दी कुली प्रथा तथा लार्ड हार्डिंग द्वारा उसके बन्द होने का उल्लेख साहित्य में भी मिलता है। फिर से भारतीयों के हृदयों में अंग्रेज़ों के न्याय के प्रति विश्वास उत्पन्न हो गया। साहित्यकारों ने भी श्रद्धा और विश्वास के भाव प्रकट किए हैं। १९१२ ई० में फिर एक भारी दुर्घटना यह हो गयी कि लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया यद्यपि वह बच गए। कांग्रेस के अधिवेशन में इस आक्रमण पर रोष प्रकट किया गया। प्रेस का और अधिक कठोरता से नियंत्रण होने लगा और इस प्रकार प्रकाशन की स्वतंत्रता पर रोक लगा दी गयी। १९०८ ई० का प्रेस-ऐक्ट १९१० ई० में स्थायी कानून बना दिया गया था।

बंग-भंग के दिनों से ही मुसलमान राष्ट्रीय आदर्शों से दूर रहे थे परन्तु

१९१३ ई० में उन्होंने भी ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन को अपना ध्येय मान लिया। मुस्लिम लीग ने दोनों जातियों के सहयोग और सहकार्य पर बल दिया। यह भावना भारत के लिए बहुत शुभ हुई। जुलाई १९१४ ई० में महा-समर छिड़ गया। भारतीय सैनिक रणक्षेत्र में बड़ी वीरता से लड़े और उनकी इस वीरता से भारतीयों में आत्मविश्वास की भावना दृढ़ हुई।

भारतीयों की राजभक्ति की भावना में कोई कमी नहीं हुई थी। १९१४ ई० की कांग्रेस में जब गवर्नर, लार्ड पेंटलैंड ने प्रवेश किया तो उनके सम्मान में सभी उपस्थित व्यक्ति उठ खड़े हुए और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने राजभक्ति का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। लखनऊ में भी सर जेम्स मेस्टन के आने पर इसी प्रकार खड़े होकर उनका स्वागत किया गया। १९१५ ई० की बंबई-कांग्रेस में भी राजभक्ति संबंधी एक प्रस्ताव पास हुआ था। राजभक्ति की भावना द्वितीय चरण तक साहित्य में भी अभिव्यक्त हुई है।

१९१५ ई० की ही कांग्रेस में महासमिति को यह आदेश दिया गया कि वह मुस्लिम लीग की कमेटी से परामर्श करके सुधारों की एक योजना तैयार करे। १९१६ ई० में तिलक तथा श्रीमती बेसेन्ट ने अपनी अपनी होमरूल लीग की स्थापना की। होमरूल लीग आंदोलन को श्रीमती बेसेण्ट ने बहुत लोकप्रिय बनाया। १९१६ ई० की लखनऊ कांग्रेस में सहयोग की भावना प्रधान थी। इस वर्ष दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हो गयीं। एक तो कांग्रेस-लीग-योजना को कांग्रेस और मुसलिम-लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया और इस प्रकार भारत की इन दोनों महान जातियों में मेल हो गया और दूसरे १९०७ ई० की सूरत-कांग्रेस में जो नरम और गरम दल हो गए थे, उन दोनों दलों में १९१६ ई० की लखनऊ-कांग्रेस में मेल स्थापित हो गया। इस कांग्रेस में उत्तरी बिहार के निलहे-गोरों तथा वहाँ की प्रजा के संबंधों के बारे में सरकारी और गैर सरकारी सदस्यों की एक जाँच-कमेटी बिठाने की माँग उपस्थित की गयी। विश्वविद्यालय संबंधी बिल के बारे में भी एक प्रस्ताव पास किया गया और 'डिफेन्स ऑफ इन्डिया' ऐक्ट तथा १८१८ के तीसरे रेग्युलेशन (बंगाल) के इतने विस्तृत प्रयोग का विरोध किया गया।

होमरूल-आन्दोलन बहुत प्रिय होता जा रहा था परन्तु इस चरण के साहित्य में होमरूल आन्दोलन का उल्लेख नहीं मिलता। लार्ड पैटलैंड की सरकार ने तो विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने से रोक लिया था। १९१७ की कलकत्ता कांग्रेस में प्रेस-ऐक्ट, आर्म्स ऐक्ट, तथा उपनिवेशों में भारतीयों के प्रति किए जाने वाले दुर्व्यवहार के प्रति विरोध व्यक्त किया गया। सेना में जातिगत

भेद-भाव हटा दिया गया था और नौ भारतीयों को सेना में कमीशन मिला था। इस पर कांग्रेस ने प्रसन्नता प्रकट की और भारतीयों को सैनिक शिक्षा देने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। १० दिसम्बर को सरकार ने रोलेट-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा इसकी निन्दा की क्योंकि उसकी दृष्टि में इसका उद्देश्य जनता के दुःख दूर करना नहीं, वरन् दमन के लिए नए कानून निकालना था।

बिहार में निलहे-गोरों ने नील की खेती में लाभ देख कर किसानों से नील की खेती करवाना प्रारम्भ किया था और आगे चल कर उनके लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वे अपनी भूमि के ३।२० या ५।२० भाग पर नील अवश्य बोयें। बंगाल टेनेन्सी ऐक्ट में इस बात को कानून का रूप दिलवा दिया गया। किसानों को नील की खेती से कोई लाभ नहीं होता था। इससे मुक्त करने के लिए निलहे-गोरों ने किसानों से लगभग १२ लाख रुपया वसूल किया। इन शिकायतों को सुनकर महात्मा गाँधी अपने अनुयायियों के साथ वहाँ गए और अपने मित्रों की सहायता से लगभग २० हजार किसानों के बयान लिखे तथा किसानों की माँगें उपस्थित कीं। सरकार को एक जाँच कमीशन नियुक्त करना पड़ा जिसमें जमींदारों, किसानों तथा निलहे-गोरों के प्रतिनिधि थे। किसानों के प्रतिनिधि महात्मा गाँधी थे। जाँच कमीशन की रिपोर्ट के फलस्वरूप तीन-कठिया प्रथा का अन्त हो गया।

सरकार का दमन-चक्र जोरों के साथ चलने लगा। श्रीमती बेसेंट, अरन्डेल और वाडिया साहब को १९१७ ई० में नज़रबन्द कर दिया गया। तिलक और विपिनचंद्र पाल को पंजाब और दिल्ली में प्रवेश करने की मनाही की आज्ञा मिली थी।

भारतवर्ष इस समय होमरूल के सिलसिले में नज़रबन्द हुए लोगों को छुड़ाने के लिए सत्याग्रह की योजना बना रहा था और यह तय हुआ कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ और मुस्लिम लीग की कौंसिलें सत्याग्रह के प्रश्न पर अपनी राय दें। इधर मिस्टर चेम्बरलेन के इस्तीफा देने के बाद मि० मान्टेग्यू भारत-मंत्री बने जिन्होंने एक घोषणा में बताया कि ब्रिटिश नीति का अन्तिम ध्येय यह है कि भारत में उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो और स्वशासन-प्रणाली स्थापित हो तथा भारत, ब्रिटिश-साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे। इस नयी परिस्थिति में सत्याग्रह का विचार रोक दिया गया। नई नीति के अन्तर्गत श्रीमती बेसेन्ट तथा उनके साथियों को १६ सितम्बर को छोड़ दिया गया। कांग्रेसवाले

कांग्रेस-लीग योजना के पक्ष में भारतीयों के हस्ताक्षर ले रहे थे। गाँधी जी ने यह सम्मति दी कि कांग्रेस-लीग योजना का देश की भाषाओं में अनुवाद कराया जाय और उसे भारतीयों को समझाया जाय। १९१७ के अंत तक कांग्रेस-लीग योजना के पक्ष में १० लाख से अधिक हस्ताक्षर लिए जा चुके थे। इस प्रकार देशी भाषाओं के महत्व को स्वीकार कर लिया गया।

१९१७ के अन्त में मि० मान्टेग्यू तथा लार्ड चेम्सफोर्ड भारत में सर्वत्र दौरा कर रहे थे और सभी मतवाले व्यक्तियों से भेंट कर रहे थे। उनका इरादा पार्लियामेण्ट में एक मशविदा पेश करने का था परन्तु तथ्य यह है कि मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड की योजना १९१६ में ही तैयार हो चुकी थी।

३ मई, १९१८ को कांग्रेस महासमिति की तीसरी बैठक हुई जिसमें यह कहा गया कि सरकार की ओर से यह अधिकार पूर्ण घोषणा कर दी जानी चाहिए कि लड़ाई समाप्त हो जाने पर भारत को उत्तरदायी-शासन-प्रणाली दी जायगी। कांग्रेस ने अपने अधिवेशन में यह घोषणा की कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है और मान्टेग्यू-रिपोर्ट में इसके विपरीत कथन का विरोध किया। इस प्रकार की भावना साहित्य में भी अभिव्यक्त हुई। साहित्यकारों ने भी अपनी योग्यता में विश्वास प्रकट किया है। कांग्रेस ने यह भी कहा कि स्त्रियों को मताधिकार के अयोग्य न ठहराया जाय। स्त्रियों की सामाजिक अवनति के उल्लेख नवयुग के प्रारम्भ से ही साहित्य में किए जा रहे थे। कांग्रेस के इस प्रस्ताव से स्त्रियों के समानाधिकार की भावना को तीव्रता प्राप्त हुई और इस चरण के साहित्य में भी उसकी अभिव्यक्ति हुई। कांग्रेस ने यह भी माँग की कि भारतीयों को कम से कम २५ प्रतिशत कमीशन्ड जगहें सेना में मिलें और १५ वर्ष में यह अनुपात बढ़ कर ५० प्रतिशत हो जाय।

महायुद्ध के लिए सिपाही भरती करने और रुपया इकट्ठा करने का तरीका बहुत कठोर था। दमन मुख्यतः प्रेस-ऐक्ट के रूप में बड़ी तेजी के साथ हुआ। रोलेट-कमीशन ने जिस कानून की सलाह दी थी वह बड़ी कौंसिल में उपस्थित भी कर दिया गया था। इससे सारे देश में बड़ी निराशा और क्षोभ फैला।

११ नवम्बर, १९१८ की अस्थायी सन्धि के बाद महायुद्ध का अन्त हो गया। दिल्ली-कांग्रेस में एक प्रस्ताव के द्वारा राजभक्ति प्रकट की गयी और युद्ध के सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर बधाई दी गयी। यह बात दोहराई गयी कि भारत स्वराज्य के योग्य है और शासन सुधारों के लिए कांग्रेस लीग योजना वाले प्रस्ताव को ही दुहराया गया। दमन-नीति हटा देने की माँग की

गयी तथा कहा गया कि साम्राज्य-नीति के पुनर्निर्माण में पार्लियामेण्ट शीघ्र ही भारत को ऐसा पूर्ण उत्तरदायी शासन देने का कानून पास करे जैसा कि उपनिवेशों में है। भारतीय पूंजी और व्यापार को प्रोत्साहन देने की भी माँग हुई और औद्योगिक बैंक जारी करने पर ज़ोर दिया गया। युद्ध के कार्यों के लिए चार करोड़ पाँच लाख रुपया देने से भारत को मुक्त करने की माँग की गयी और आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा प्रणालियों के लिए भी वही सुविधाएँ माँगी गयीं जो विदेशी चिकित्सा प्रणाली को प्राप्त थीं। इस प्रस्ताव से यह स्पष्ट है कि देशी संस्थाओं के लिए राजनीतिज्ञों का आग्रह था। साहित्य में विदेशी संस्कृति का विरोध बड़े तीव्र रूप में हुआ।

लगभग इसी समय गुजरात के खेड़ा जिले में सारी फसल खराब हो गयी। इसलिए लगान न देने के लिए गाँधी जी के नेतृत्व में वहाँ के किसानों ने सत्याग्रह किया। जानवरों तथा अन्य वस्तुओं के कुर्क हो जाने पर भी वे इस सत्याग्रह पर डटे रहे। अन्त में अधिकारियों ने गरीब किसानों के लगान को स्थगित कर दिया। कृषकों की समस्याओं की ओर ध्यान तो साहित्यकारों ने प्रारम्भ से ही दिया था परन्तु चम्पारन और खेड़ा के प्रसिद्ध सत्याग्रहों के कारण किसानों की कठिनाइयाँ स्पष्ट रूप से जनता के सामने आयीं और साहित्य में कृषकों की दीन-दशा तथा ग्रामों की अवस्था के बहुत उल्लेख हुए।

अहमदाबाद के मज़दूरों को मिल मालिकों से असंतोष था। इसकी जाँच करने के बाद गाँधी जी ने मज़दूरों की मज़दूरियों में ३५ फ़ीसदी वृद्धि करने का परामर्श दिया। मिल मालिकों की इच्छा इस वृद्धि में केवल २० फ़ीसदी ही देने की थी अतः अहमदाबाद में भी मज़दूरों ने सत्याग्रह किया। मज़दूरों की दृढ़ता में कमी होते देख कर गाँधी जी ने अनशन प्रारम्भ किया। अंत में फैसला पंचों के ऊपर छोड़ दिया गया और उस फैसले के अनुसार मज़दूरों को मज़दूरी में ३५ प्रतिशत वृद्धि मिली। मज़दूरों की समस्याओं ने इस चरण में साहित्यकारों को आकृष्ट नहीं किया है।

मातृभूमि के प्रति प्रेम

अभी तक हमारे देश में जातीय, धार्मिक और साम्प्रदायिक चेतनाएँ तो थीं परन्तु राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। यद्यपि पुराने संस्कार सहज में ही छूटने वाले नहीं थे फिर भी कांग्रेस की स्थापना के उपरान्त तथा पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप हमने अपने देश को समग्र भाव से एक इकाई के रूप में

देखा।[1] यह भारत देश हमारी जन्म-भूमि है और हम तैंतीस करोड़ भारतवासी, चाहे किसी जाति अथवा समुदाय के हों, इसके पुत्र हैं, यह दृष्टिकोण नवीन था। कांग्रेस की स्थापना के उपरान्त भारत के कवियों ने यह दृष्टिकोण ग्रहण कर लिया। इस भावना ने राष्ट्रीय आन्दोलन के इस द्वितीय चरण में अनेक मुक्तक गीतों को जन्म दिया। बीसवीं शती के आरम्भ के साथ ही हिन्दी साहित्य में गीत काव्य का आधिक्य हुआ अतः देश-प्रेम की भावना से ओतप्रोत गीतों की सृष्टि हुई। देश-प्रेम की यह भावना प्रथम चरण के साहित्य में भी मिलती है परन्तु वहाँ भारत राष्ट्र के प्रति प्रेम-भावना ने स्वतन्त्र रूप से कविताओं को जन्म नहीं दिया है। इस काल के साहित्य में देश-प्रेम की भावना से ओतप्रोत गीतों की रचना स्वतंत्र रूप से हुई है। इन सभी गीतों में भारत का स्तवन मिलता है। सम्भवतः इनकी प्रेरणा संस्कृत के स्तोत्रों से ग्रहण की गयी है। इस चरण में मातृभूमि का दैवीकरण काव्य में अधिक मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'मातृभूमि' शीर्षक कविता में मातृभूमि को ईश्वर की सगुण मूर्ति माना है। वे लिखते हैं—

'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य्य चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द शेष फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की,
है मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।'[2]

सम्पूर्ण कविता में मातृभूमि की स्तुति की गयी है। उसकी तुलना कवि ने मातामही से की है। पालन-पोषण और जन्म का वही कारण है, हमारा जीवनाधार अन्न भी वही देती है। पद्य प्रबंध, (१९१२ ई०) की 'स्वर्ग सहोदर' शीर्षक कविता में भी कवि ने इसी प्रकार भारत-भूमि की प्रशंसा की है। 'भारत गीत' की अधिकांश कविताओं से भी कवि श्रीधर पाठक का स्वदेश-प्रेम प्रकट होता है।[3] ये गीत कई प्रकार के हैं। मातृभूः, पुण्य मातृ धरे, पुण्य भारत मही, नौमि-

---

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, दूसरा अध्याय, पृ० ८२

२—पद्य प्रबन्ध, 'मातृभूमि', पृ० ३०

३—भारत मंगल, भारत धाम, भारत धरनि, भारत भूमि, देश गीत, जय भारत जय, भारत जय जय, जय जय भारत, नौमिभारतम्, भारताष्टक, भारत

भारतम् आदि कुछ गीत संस्कृत के स्तोत्रों की शैली पर लिखे गए हैं ।[१] 'बलि-बलि जाऊँ' आदि दो-एक गीत बिल्कुल घरेलू हैं और गानों की श्रेणी में आते हैं ।[२] सभी गीतों में भारत की वन्दना और प्रशंसा की गयी है और भारत को सब देशों से श्रेष्ठ, सुन्दर तथा सभ्यता का आगार कहा गया है । भारत के प्राकृतिक-सौंदर्य का वर्णन इन गीतों में है ।[३] 'सती समाज' तथा 'आर्य महिला'

स्तव, स्वदेश पंचक, भारत वंदना, हिन्द वंदना, भारत प्रशंसा, भारत श्री, भारतोत्थान, शिक्षक भारत, भारत हितकारी, सुन्दर भारत, स्वदेश विज्ञान, भारत गगन, प्यारा हिन्दुस्तान, भारत आरती, मातृभूः, पुण्य मातृ धरे, पुण्य भारत मही, बलि बलि जाऊँ आदि सभी गीतों में कवि का मातृभूमि-प्रेम अभिव्यक्त हुआ है ।

१—सुखधाम अति-अभिराम गुन-निधि, नौमि नित प्रिय भारतम्
सुठि सकल-जग-संसेव्य सुभथल, सकल-जग-सेवा रतम्
सुचि सुजल-सुफल-सुशस्य-संकुल, सकल-भुवि-अभिवन्दितम्
नित नवल-सुऋतु-सुदृश्य-सुठि-छबि अवलि अवनि अनन्दितम्
धृति-प्रकृति-सरस-समृद्धि-सर्वस, सर्वसुख परिपूरितम्
कृत-अखिल-जग-परितोख, द्रुत-दुख-दोख-दुरित-सुदूरितम्

—नौमिभारतम्

२—भारत पै सैयाँ मैं बलि बलि जाऊँ
बलि बलि जाऊं हियरा लगाऊं
हरवा बनाऊं घरवा सजाऊं
मेरे जियरवा का, तन का जिगरवा का
मन का मंदिरवा का प्यारा बसैया
मैं बलि बलि जाऊं

—बलि बलि जाऊं, पृ० ९६

३—भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है
शुचि भाल पै हिमालय, चरणों पै सिन्धु अंचल
उर पर विशाल-सरिता-सित-हीर-हार-चंचल
मणि बद्ध नील नभ का विस्तीर्ण पट अचंचल
सारा सुदृश्य वैभव मन को लुभा रहा है
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है...

—सुन्दर भारत, पृ० ५८

शीर्षक दो गीतों में भारत की स्त्रियों की प्रशंसा की गयी है ।

कवि माधव शुक्ल के 'भारत गीतांजलि' संग्रह में भी देश-प्रेम की भावना व्यक्त करने वाली अनेक कविताएँ हैं ।[१] ये सभी कविताएँ राग-रागनियों में हैं और सभी में देश-प्रेम की भावना मिलती है जैसे, 'जन्मभूमि' (दूसरी) कविता में वे लिखते हैं :—

जयति जयति जन्मभूमि प्राणहुं ते प्यारी ।
तव सम्मुख तुच्छ अखिल सम्पत्ति जग सारी ।।

रामनरेश त्रिपाठी ने भी कविता विनोद (१९१४ ई०) में 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में लिखा है कि जिस देश में हमने जन्म लिया है, जिसका अन्न खाया है और अमृतोपम जल पिया है वह पुण्यभूमि यही भारत है । इसकी सेवा से हम जगत् में सम्मान पा सकते हैं ।[२]

प्रेमघन ने 'जीर्ण जनपद' में मातृभूमि के प्रति प्रेम-भावना को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि यह प्रेम हमें प्रकृति से मिलता है । पशु-पक्षियों में भी यह नियम दिखायी पड़ता है फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है ? जिसके हृदय में जन्म-भूमि के प्रति प्रेम नहीं है वह जड़ जीव है । जन्मभूमि की दुर्दशा देखकर जिसका हृदय कातर नहीं होता उसका मुख देखना भी पाप है ।[३]

इस चरण में भारत-स्तुति के गीतिकारों में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त तथा माधव शुक्ल प्रमुख हैं ।

स्वर्णिम अतीत का चित्रण

राष्ट्रीय-आन्दोलन के प्रथम चरण में तथा उसके पूर्व ही साहित्यकारों ने भारत के गौरवपूर्ण अतीत के वर्णन में विशेष रुचि ली थी । आन्दोलन के इस द्वितीय चरण में भी भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्रण साहित्यकारों का प्रिय विषय रहा । प्रथम चरण में कवियों ने प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रति विशेष प्रेम प्रकट किया था । इस काल में साहित्यकारों ने वह क्षेत्र विस्तृत किया । मैथिली-

---

१—जन्मभूमि (दूसरी), भारत देश (तीसरी), भैरव चौताल, प्राचीन भारत (चौथी), वागीश्वरी, देशराज (पाचवीं) ईमन कल्याण (छठी), भैरवी (नवीं), भैरवी (दसवीं), होली (४५ वीं) तथा लावनी (३० वीं) आदि ।

२—कविता विनोद, 'जन्मभूमि', पृ० ३८

३—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, 'जीर्ण जनपद', पृ० ६

शरण गुप्त ने राजपूत-काल के शौर्य और पराक्रम की कथाएँ अपने काव्यों में वर्णित कीं। ये राजपूत वीर अपनी स्वाधीनता के लिए मुग़ल सम्राटों का सामना करते रहे थे। उनके बलिदान, त्याग, वीरता व स्वदेश-प्रेम की अमर-कथाओं से अधिक जीवन-संचारिणी और कौन कथाएँ हो सकतीं थीं ? ऐसे आन पर मिटने वाले, प्राणों पर खेलने वाले वीरों की कथा 'रंग में भंग' (१९१० ई०), 'महाराणा का महत्व' (१९१४ ई०) आदि कृतियों में वर्णित है। भारत के स्वर्णिम अतीत का वर्णन निष्प्रयोजन न था। सुप्त भारतीयों को जगाने वाली ये ही पंक्तियाँ हो सकती थीं—

'स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई
सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी।
फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करूँ ?
भीरु हूँ क्या मैं अहो ! जो मृत्यु से मन में डरूँ ?[१]

'प्रेमघन सर्वस्व' के तीसरे खण्ड में 'वर्षा-विन्दु' (१९१३ ई०) की 'चेतावनी' शीर्षक कविता में कवि ने ब्राह्मणों को चेतावनी देते हुए कहा है कि तुम्हारे ही पुरखे विज्ञान प्रदर्शक, श्रेष्ठ भक्त, वीर, राजनीतिज्ञ और महान् कवि हो चुके हैं। इसी संबंध में व्यास, पतंजलि, मनु, पाणिनि, भृगु, कणाद, याज्ञवल्क्य, जैमिनि, कपिल आदि सभी का स्मरण किया गया है।[२]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'काव्योपवन' (१९०९ ई०) की 'आर्य पंचक' शीर्षक कविता में भारत के अतीत गौरव का गान किया है। उन्होंने लिखा है कि एक दिन वह भी था जब हम बल, विद्या और बुद्धि वाले थे, हम भी धीर, वीर और गुणशाली थे। जब कभी हम साम-गान करते थे तो पत्थर भी मोम हो जाते थे। जब हम विजय करने के लिए निकलते थे तो हमारी रण-हुँकार सुनकर सभी दहल जाते थे। हम भी जहाजों से दूर-दूर तक जाते थे और न जाने कितने द्वीपों का पता लगा कर आते थे। आज अगर पैसेफ़िक के ऊपर मंडराते थे तो कल एटलांटिक में दिखायी पड़ते थे। अमेरिका में हमने निवास किया था, योरोप में हमने प्रकाश फैलाया था और अफ़रीका को हमने अपने ढंग में ढाला था। हमने सभ्यता को जगत में फैलाया था और जावा में हिन्दुत्व का रंग जमाया था। जापान, चीन, तिब्बत, तातार व मलाया सभी ने हमसे ही धर्म का मर्म

१—गुप्त, मैथिलीशरण, 'रंग में भंग,' पृ० ३४

२—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, 'वर्षाविन्दु', 'चेतावनी', पृ० ५५१

पाया था।[१] 'हरिऔध' के प्रेम प्रमोद (१९१७ ई०) के 'पुनीत प्रसंग' के अन्तर्गत जो कविताएँ हैं उनके कथानक भारत के गौरवपूर्ण अतीत के हैं। भारत की महान नारियों, रुक्मिणी, सीता, संयुक्ता, उर्मिला आदि का गौरव-गान इन कथाओं में है। 'प्रिय प्रवास' (१९१४ ई०) में हरिऔध ने कृष्ण-कथा का वर्णन किया है। यद्यपि कथा प्राचीन है परन्तु कृष्ण तथा राधा दोनों के चरित्र पर आधुनिकता की पूरी छाप है। कवि ने उन्हें देश-सेवक तथा देश-सेविका के रूप में देखा है और काव्य के अन्त में कामना की है कि श्याम के समान देश के सच्चे स्नेही और राधा जैसी विश्वप्रेमानुरक्ता देवियाँ भारतभूमि के अंक में और आवें।[२] भारत की प्राचीन-संस्कृति के प्रति प्रेम अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा मैथिली-शरण गुप्त दोनों ही महान कवियों के काव्य में विशेष रूप से मिलता है। राष्ट्रीय-आन्दोलन की प्रगति में गुप्त जी की 'भारत भारती' (१९१२ ई०) ने भी बहुत योगदान दिया। यह कविता-पुस्तक जनता के द्वारा बहुत आदृत हुई। सरल बोधगम्य भाषा तथा ओजस्विनी शैली के कारण नवयुवक वर्ग ने इसे विशेष रूप से अपनाया। कवि ने इस पुस्तक में भारत के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों का वर्णन तीन खंडों में किया है। अतीत-खण्ड में उन्होंने अपनी प्राचीन-सभ्यता की श्रेष्ठता सिद्ध की है। वे लिखते हैं कि हमारे यहां की स्त्रियां भी पुरुषों से सद्गुणों में कम न थीं। गुलामों के बिकने की कुप्रथा हमारे देश में नहीं थी और सेवकों के साथ भी सद्व्यवहार होता था।[३] इसी प्रकार विद्या, ज्ञान, साहित्य, कलाकौशल, वीरता आदि में हमारे पूर्वज सर्वश्रेष्ठ थे।[४] जिन सिद्धान्तों का निरूपण हमारे पूर्वज हजारों वर्ष पहले कर चुके थे उन्हीं का समर्थन अब यूरोप के विद्वान करते हैं।[५] अपने पूर्वजों की प्रशंसा में कवि लिखते हैं कि वे धर्म पर तृण के समान शरीर निछावर करते थे; धीर, गंभीर और वीर थे। वे सन्तोषपूर्वक शान्तिमय जीवन बिताते थे और ईश-नियमों की कभी अवहेलना नहीं करते थे। वे मोह-बन्धन से मुक्त, स्वच्छन्द तथा स्वाधीन थे।[६] शिवि, हरिश्चंद्र तथा दधीचि जैसे दानी यहाँ

१--काव्योपवन, 'आर्य्य पंचक', पृ० १६२-१६३

२--प्रिय प्रवास, पृ० ३२३

३--भारत भारती, 'हमारी सभ्यता', पृ० १७;

४--अतीत खंड, पृ० २७-५४;

५--'हमारी सभ्यता', पृ० १९;

६--'हमारे पूर्वज', पृ० ५-६

होते रहे और प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव, और अभिमन्यु जैसे यशस्वी बालक।[१] विदुला, सुमित्रा तथा कुन्ती के समान माताएँ हमारे देश में हुईं और सावित्री, सुकन्या और अंशुमती जैसी स्त्रियाँ। गान्धारी तथा दमयन्ती जैसी पति-भक्ता नारियाँ उत्पन्न हुईं। अबला-जनों का वह आत्म-बल संसार में नवीन था जिससे अधिक क्या, रवि का उदय भी रुक गया।[२] 'रंग में भंग' काव्य की कथा भी राजपूताने के इतिहास से सम्बन्धित है। इसमें राजपूत-वीरों के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है तथा वीर कुम्भ का मातृभूमि-प्रेम दिखाया गया है। वह बूँदी के कृत्रिम दुर्ग की रक्षा में अपने प्राण दे देता है। 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) की कथा भी प्राचीन काल से ही सम्बन्धित है। कवि का उद्देश्य भारत की श्रेष्ठता दिखाना ही है—

> **'करने लगे सब लोग तब आनन्द से जयनाद यों—**
> **त्रैलोक्य को हों दे रहे निर्भय विजय संवाद ज्यों।**
> **अन्यत्र दुर्लभ है भुवन में बात यों उत्कर्ष की,**
> **सचमुच कहीं समता नहीं है भव्य भारतवर्ष की।[३]**

'प्रसाद' ने 'महाराणा का महत्व' काव्य में राणा प्रताप के चरित्र की उच्चता प्रदर्शित की है। खानखाना महाराणा के चरित्र से बहुत प्रभावित होते हैं और अकबर से राणा के साथ सन्धि करने की प्रार्थना करते हैं।

खण्डकाव्यों के अतिरिक्त 'पद्यप्रबन्ध' की मुक्तक रचनाओं में भी कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के अतीत गौरव का वर्णन करते हुए लिखा है कि कवि, पंडित और वीर सभी ने यहाँ जन्म लिया था। यद्यपि नगर, ग्राम तथा गगनचुंबी इमारतें अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं फिर भी वे पूर्व-दशा की याद दिलाती हैं। कविता, कला आदि की भी यहाँ इतनी उन्नति हुई जितनी अन्य किसी स्थान में नहीं हुई।[४] 'प्राचीन भारत' शीर्षक कविता में भी भारत की आर्थिक, शारीरिक तथा नैतिक उन्नति का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि प्राचीन भारत में अकाल नहीं सुनायी पड़ते थे, नागरिक रोगी नहीं थे, वर्णभेद होते हुए भी उनमें आपस में प्रेम था तथा उस समय हमारे देश में किसी भी गुण का अभाव न था।[५] रामनरेश

१—भारत भारती, 'आदर्श', पृ० ९;
२—'आर्य्य स्त्रियाँ', पृ० १२-१४
३—जयद्रथ वध, पृ० ९१
४—पद्य प्रबन्ध, 'स्वर्ग सहोदर', पृ० ३५-३९;
५—'प्राचीन भारत', पृ० ३६-४२

त्रिपाठी की 'कविता विनोद' (१९१४ ई०) पुस्तक की 'श्रीराम' शीर्षक कविता से भी कवि का प्राचीन भारतीय संस्कृति और भारत के महान पुरुषों के प्रति प्रेम प्रकट होता है।

नाटकों के लिए भी भारत के प्राचीन काल से कथानक चुने गए हैं। करुणालय (१९१२ ई०) की कथा हरिश्चंद्र के काल की है। उस समय प्रचलित नर-बलि की प्रथा का इस नाटक में विरोध किया गया है। तिलोत्तमा (१९१६ ई०) पौराणिक रूपक है। राज्यश्री (१९१५ ई०) की कथा भी भारत के स्वर्ण युग की है। चतुर्थ अंक में सुएनच्वांग राज्यश्री से कहता है: 'तुम्हीं मुझे वरदान दो कि भारत से जो कुछ मैंने सीखा है वह जाकर अपने देश में सुनाऊँ।'[1] प्रसाद के नाटकों के कथानक अधिकतर प्राचीन-भारत के गौरवपूर्ण इतिहास से लिये गए हैं और नाटककार की देश-प्रेम की भावना इन सभी नाटकों में व्यक्त हुई है।

निबन्ध लेखकों ने भी प्राचीन भारत के गौरव का वर्णन किया है। राजा रामचंद्र का उदाहरण देते हुए बालमुकुन्द गुप्त 'शिवशम्भु के चिट्ठे' (१९०६ ई०) में लिखते हैं कि यहाँ की प्रजा ऐसी है जो राम के वन जाने पर उनके पीछे-पीछे वन जाती थी और ऐसी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए भरत को कोई राजदरबार नहीं करना पड़ा वरंच दौड़ कर राम को वापस लाने के लिए वन जाना पड़ा और वे उनकी खड़ाउओं को सिंहासन पर रख कर स्वयं चौदह साल तक वल्कल धारण करके उनकी सेवा करते रहे।[2]

महाबीरप्रसाद द्विवेदी ने भी 'प्राचीन पंडित और कवि' (१९१८ ई०) नामक पुस्तक के 'बौद्धाचार्य शीलभद्र' शीर्षक लेख में लिखा है कि एक समय वह भी था जब भारतवर्ष के बड़े-बड़े विद्वान चीन लंका और तिब्बत आदि देशों में जाकर विद्या और धर्म की शिक्षा देते थे। इसी पुस्तक के 'मधुरवाणी' शीर्षक लेख में भी द्विवेदी जी ने प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा की उन्नत अवस्था का उल्लेख किया है।

'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर' शीर्षक लेख में प्राचीन भारत के धर्म-ज्ञान की प्रशंसा की है।[3]

१—राज्यश्री, चतुर्थ अंक

२—शिवशम्भू के चिट्ठे, 'वैसराय का कर्तव्य', पृ० २२

३—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भा०, 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर', पृ० ५०७

इस चरण के साहित्य में कहानियों का भी प्रचलन हो गया। 'नवनिधि' कहानी संग्रह (१९१८ ई०) में प्रेमचंद की नौ कहानियां संग्रहीत हैं। 'राजा हरदौल' कहानी में राजा हरदौल की वीरता तथा साहस का गौरव के साथ वर्णन किया गया है। 'रानी सारन्धा' में उनके देश-प्रेम, स्वातंत्र्य-प्रेम, वीरता आदि गुणों का वर्णन है। 'मर्यादा की बेटी' तथा 'पाप का अग्नि कुण्ड' दोनों कहानियों में भारत की वीर क्षत्राणियों के त्याग और साहस की अमर कथाएँ हैं, 'पाप का अग्निकुण्ड' कहानी में राजनन्दिनी आत्मगौरव और न्याय-प्रियता के कारण अपने पति की मृत्यु की कामना करती है और उसके साथ सती हो जाती है। 'जुगनूँ की चमक' कहानी में राणा जंगबहादुर के आतिथ्य सत्कार तथा उनकी शरणागत वत्सलता की महानता दिखायी गई है।

इस चरण में भारतीयों में जो आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव के भाव उत्पन्न हुए थे उन्होंने साहित्य में अपनी गौरवमयी परम्पराओं के चित्रण की प्रेरणा दी। प्रथम महायुद्ध में भारतीय सैनिक जिस वीरता के साथ लड़े उसने भारतीयों में आत्मविश्वास उत्पन्न किया। इसीलिए राजनीतिज्ञों ने भी भारतीयों को उत्तर-दायी शासन के योग्य घोषित किया। राजपूतों का स्वातंत्र्य-प्रेम दिखाकर भार-तीयों में स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा उत्पन्न करने के लिए ही साहित्यकारों ने राज-पूत-काल के उज्ज्वल-चरित्रों का वर्णन किया है। काव्यों और नाटकों के कथानक पौराणिक और ऐतिहासिक काल से लिए गए हैं। कहानियों और निबन्धों में भी भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल चित्र अंकित हैं परन्तु प्रथम चरण के समान ही इस चरण में भी उपन्यास-धारा पर इस विचार परम्परा का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता।

हिन्दी भाषा के महत्व के संबंध में विचार

प्रथम चरण में ही साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा की अवनत दशा पर खेद प्रकट किया था और उसकी उन्नति की कामना की थी। बीसवीं शती के प्रारम्भ में अंग्रेजी भाषा ने देश में और विशेषत: शिक्षा व्यवस्था में सुनिश्चित स्थान प्राप्त कर लिया था। हिन्दी भाषा में साहित्य-रचना और पठन-पाठन चल रहा था अवश्य, परन्तु उसे सरकारी संरक्षण प्राप्त नहीं था। हिन्दी भाषा की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। केवल सन् १९०० ई० में अदालतों के लिए हिन्दी भाषा स्वीकार कर ली गयी थी यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ था। परन्तु साहित्य के अध्ययन के उपरान्त ऐसा प्रतीत होता है

कि हिन्दी आन्दोलन की वह तीव्रता जो भारतेन्दु युग में थी, धीरे-धीरे शिथिल हो रही थी। हिन्दी भाषा-भाषी जब निरन्तर प्रार्थना करने के उपरान्त भी सरकार की नीति में परिवर्तन न ला सके तो वे इस ओर से निराश हो चले अत: साहित्य में हिन्दी की दयनीय-दशा का वर्णन ही प्रमुख रूप से हुआ और देशवासियों से ही हिन्दी की उन्नति करने का आग्रह कवियों ने किया। मनोविनोद (तृतीय खंड, १९१२ ई०) की 'मातृभाषा का महत्व' शीर्षक कविता में कवि श्रीधर पाठक ने हिन्दी भाषा की उन्नति करने का आग्रह किया है। उनका विश्वास है कि भाषा की उन्नति के बिना अपनी उन्नति नहीं हो सकती। 'भारत गीत' में उन्होंने हिन्दी भाषा की सेवा करने वाले प्राचीन तथा नवीन कवियों की वन्दना की है।[१] अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'काव्योपवन' में प्रतापनारायण मिश्र के देहावसान पर खेद प्रकट करते हुए लिखा है कि हिन्दी का हितकारी अब कोई दिखाई नहीं पड़ता। सरकार को भी हिन्दी दया के योग्य नहीं जान पड़ी। उन्होंने प्रार्थना की है कि मिश्र जी स्वर्ग में भी हिन्दी की सुधि करें।[२] हरिऔध जी का जिस प्रकार स्वजाति से प्रेम है उसी प्रकार जातीय भाषा से भी। 'पद्य प्रमोद' (१९१७ ई०) की 'जीवनी धारा' के अन्तर्गत 'जातीय भाषा' शीर्षक कविता में कवि ने जातीय-भाषा की बड़ाई की है। उनके विचार से जातीय-भाषा जाति की हर प्रकार की उन्नति में सहायक होती है। यद्यपि बंगाली, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि की दशा बहुत अच्छी है, फिर भी हिन्दी के लिए ऐसा दिन अभी दूर है। जातीय भाषा के कारण ही बंगाल, बम्बई आदि के निवासियों तथा मुसलमानों में जागृति है। हिन्दुओं के लाल प्रतिदिन उर्दू की ही ओर झुकते जाते हैं। कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि वे उर्दू के विरोधी नहीं हैं और न उसका गला ही घोंटना चाहते हैं। कवि पाठकों से पूछते हैं कि उन्हें जाति-भाषा नागरी की कितनी ममता है तथा अन्त में प्रार्थना करते हैं कि हिन्दी का भाग जगे।[३] 'हिन्दी भाषा' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि जब दो सूबों के भिन्न-भिन्न बोली बोलने वाले व्यक्ति मिलते हैं तो हिन्दी ही उनके काम आती है। हिन्दी के महान कवियों का स्मरण करते हुए कवि ने कहा कि हिन्दी का साहित्य समुन्नत हो रहा है परन्तु जो कार्य अभी तक हुआ है वह ऐसा ही है जैसा समुद्र में कुछ बूंदें। वे कामना करते हैं कि

१—भारतगीत, 'हिन्दी हितकारी', पृ० ५५-५६

२—काव्योपवन, 'शोकाश्रु', पृ० १३३-१३८

३—पद्य प्रमोद, 'जीवनी धारा', 'जातीय भाषा', पृ० ७८-८६

निज-भाषा के अनुराग की वीणा घर-घर में बजे ।[१] 'उद्बोधन' शीर्षक कविता में कवि ने जागृति का संदेश दिया है। वे कहते हैं कि हमें हिन्दी-हित के रंग में कपड़ों को रंगाना होगा, हिन्दी-सेवा में ही जन्म बिताना होगा, नई पौध के उरों में हिन्दी अनुराग का वृक्ष लगाना होगा तथा राजा से जाति-भाषा की उन्नति के लिए प्रार्थना करनी होगी ।[२] 'अभिनव कला' शीर्षक कविता में कवि ने नागरी की प्रशंसा में कहा है कि वही विमल कीर्ति पावेंगे जो जाति-भाषा को ललककर गले लगावेंगे ।[३]

इसी प्रकार कानन कुसुम की 'भारतेन्दु प्रकाश' कविता में जयशंकर प्रसाद ने भारतेन्दु के द्वारा हिन्दी की सेवा तथा उसकी विजय होने पर हर्ष प्रकट किया है ।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आर्य्याभिनन्दन' में लिखा है कि अंग्रेजी ने हमारी मति और गति हर ली है। अब हिन्दू लोग आपस में मिल कर हिन्दी बोल भी नहीं सकते हैं ।[४] माधव शुक्ल ने 'भारत गीतांजलि' की कविताओं में हिन्दी की अवनत दशा पर दुख प्रकट किया है ।[५] हिन्दी कहती है 'हिन्दी हूँ माँ तुम्हारी टुक तो नजर उठाओ' ।[६] नागरी विनय में भी हिन्दी अपनी दशा सुधारने की प्रार्थना करती है ।[७] अन्य अनेक कविताओं में कवि का हिन्दी-प्रेम प्रकट हुआ है। इनमें से कुछ कविताएँ घरेलू गीतों के ढंग की हैं ।[८] भाषा के सम्बन्ध में माधव शुक्ल का दृष्टिकोण भावनात्मक अधिक है, बौद्धिक कम । मैथिलीशरण गुप्त ने इसके विपरीत अधिक गम्भीर विचारपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है । उन्होंने

१—पद्य प्रमोद, 'हिन्दी भाषा', पृ० ८६-९२;

२—'उद्बोधन', पृ० ९२-९३;

३—'अभिनव कला', पृ० ९३-९५

४—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'आर्य्याभिनंदन', पृ० ३८५

५—भारत गीतांजलि, 'देश', 'चेतावनी' तथा 'होली';

६—'गजल';

७—'नागरी विनय';

८—होली में भया हिन्द भंग पीकर मतवाला ।
ब्याही हिन्दी नारि छोड़ घर दे बाहर से ताला ।
उर्दू बीबी संग निकाह हित चला गधी चढ़ लाला ।
लिये इंगलिश सहबाला ॥ होली में भया हिन्द....।

—'होली'

'पद्य प्रबन्ध' में हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि की प्रशंसा की है। उनका कथन है कि यह भाषा सुबोध है। जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है अतः अर्थ का अनर्थ नहीं हो सकता। यही भाषा प्रारम्भ से इस देश में प्रचलित रही है अतः सब प्रकार से राष्ट्रभाषा होने के योग्य भी यही है।[1] 'हिन्दी की वर्तमान दशा' कविता में भी कवि ने स्पष्ट कहा है कि राष्ट्रभाषा बनने के योग्य हिन्दी ही है।[2] इस कविता में हिन्दी की वर्तमान दशा पर कवि ने क्षोभ व्यक्त किया है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' शीर्षक कविता में भी कवि ने कहा है कि हिन्दी केवल मातृभाषा ही नहीं है। व्यापकता में वह देशभाषा भी है।[3] 'भारत भारती' के भविष्यत् खंड में कवि ने राष्ट्रभाषा पद के योग्य हिन्दी को ही माना है और उसके अपने पद को न पा सकने पर खेद प्रकट किया है।[4]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर' शीर्षक निबन्ध में इस बात पर खेद प्रकट किया है कि राजा-महाराजाओं, पढ़े-लिखे 'ग्रेजुएटों' आदि किसी को हिन्दी भाषा से प्रेम नहीं है।[5] बालमुकुन्द गुप्त ने 'हिन्दी भाषा' पुस्तक में हिन्दी भाषा पर साहित्यिक दृष्टि से विचार करते हुए उसकी उत्पत्ति तथा विकास का वर्णन किया है।

आन्दोलन के प्रथम चरण में कविता, नाटक, निबन्ध आदि साहित्य के सभी अंगों में भाषा की समस्या ने साहित्यकारों को आकृष्ट किया। द्वितीय चरण में भाषा के सम्बन्ध में केवल काव्य में ही विशेष रुचि ली गयी। कवियों ने हिन्दी की दीन-दशा और सरकार द्वारा उसके अनाहत होने का उल्लेख किया है और उर्दू तथा अंग्रेजी का विरोध किया है। गुप्त जी ने हर प्रकार से हिन्दी को राष्ट्र-भाषा होने के योग्य सिद्ध किया है। इस चरण में पहली बार राजनीति में देशी भाषाओं के महत्व को माना गया। गाँधी जी ने कांग्रेस-लीग-योजना को देशी भाषाओं में अनुवादित कराने तथा उसके पक्ष में जनता के हस्ताक्षर लेने की सम्मति दी। विदेशी भाषा की दुरूहता को ध्यान में रख कर ही ऐसा निश्चय किया गया

१—पद्य प्रबन्ध, 'नागरी और हिन्दी', पृ० ६२-६३;
२—'हिन्दी की वर्तमान दशा', पृ० ६६;
३—'हिन्दी साहित्य सम्मेलन,' पृ० ७०
४—भारत भारती, 'भविष्यत् खण्ड', पृ० १७५
५—प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, 'आनंद कादम्बिनी का नवीन संवत्सर', पृ० ४८९

था। हिन्दी भाषा का आग्रह साहित्यकार कांग्रेस की स्थापना के बहुत पहले से करते आ रहे थे। 'नागरी भाषा' पर अनेक पुस्तकें भी निकल चुकी थीं और निरन्तर निकल रही थीं।[1] अतः हिन्दी भाषा का यह आन्दोलन राजनीति से प्रभावित नहीं है।

सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार

आन्दोलन के प्रथम चरण में साहित्यकारों ने देश की सामाजिक अवनति की ओर बहुत ध्यान दिया। उन्होंने उन सभी कुरीतियों को, जो समाज में प्रचलित थीं, साहित्य में चित्रित किया जिससे भारतीय जनता उनका सुधार कर सके और समस्याओं के उचित समाधान ढूंढ़ सके। प्रथम चरण में साहित्यकारों का दृष्टिकोण एक सीमा तक अनिश्चित था। द्वितीय चरण में सामाजिक सुधारों के सम्बन्ध में सभी साहित्यकारों में मतैक्य मिलता है। इसका एक कारण था। अपरिवर्तनवादी वर्ग लगभग समाप्त हो चुका था और नवीन शिक्षा के फलस्वरूप जो वर्ग समाज में उठ रहा था वह सुधारों के पक्ष में था। देश की सामाजिक अवनति की ओर कवियों का ध्यान बहुत गया है क्योंकि वे जानते थे कि जब तक सर्वांगीण उन्नति न होगी, स्वतंत्रता प्राप्त करना बहुत कठिन होगा। 'भारत गीत' की 'मनू जी' कविता में श्रीधर पाठक ने किंचित् रोष के साथ मनु को जाति-पाँति के जाल के लिए दोषी ठहराया है।[2] मनोविनोद (१९१७ ई०) में उन्होंने 'बाल विधवा,' 'जगनिठुराई' तथा 'निबल अबला' आदि कविताओं में बाल-विधवाओं की अवस्था पर शोक प्रकट किया है। उनका विचार है कि जब तक ये कुप्रथाएँ देश से नहीं जाएँगी तब तक देश का कल्याण नहीं हो सकता।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में देश के अतीत और वर्तमान का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि रईस तथा उनके सपूत विद्या से उदासीन हैं।[3] शिक्षा भी ऐसी है कि उसे प्राप्त करके केवल क्लर्की ही की जा सकती है। इस शिक्षा के द्वारा हमें अपने देश और धर्म से अनुरक्ति नहीं होती वरन् हम दासता की ओर ही बढ़ते हैं।[4] राष्ट्रीय

१—गुप्त, माताप्रसाद, हिन्दी पुस्तक साहित्य, भाषा-दर्शन, पृ० ३०३-३०५

२—भारत गीत, 'मनू जी', पृ० ७७

३—भारत भारती, वर्तमान खंड, 'रईस', पृ० १११, 'रईसों के सपूत', पृ० ११४;

४—'शिक्षा की अवस्था', पृ० ११७-११८

आन्दोलन में भी शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत रुचि ली गयी। १९०८ ई० में ही प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य करने का प्रस्ताव पास किया गया परन्तु साहित्यकारों ने शिक्षा का विरोध इस आधार पर किया कि इससे हममें दासता के भाव उत्पन्न होते हैं। कवि ने शिक्षा तथा स्त्री-शिक्षा बढ़ाना आवश्यक माना है। स्त्री के समानाधिकारों तथा शिक्षा के प्रसार के लिए देश में जो आन्दोलन चल रहा था, कवि ने उसका समर्थन किया है।[१] साहित्य में काव्य का उद्देश्य केवल शृंगार रस वर्णन ही रह गया है।[२] साधु सन्त, मन्दिर महन्त, तीर्थ और पंडे सभी की दशा अवनत हैं।[३] प्रत्येक वर्ण अपने आदर्श से गिरा हुआ है।[४] स्त्रियाँ मूर्खा हैं और पुरुष उनका आदर भी नहीं करते।[५] बेजोड़-विवाह, अन्ध-परंपरा, दासत्व, नशेबाज़ी, मात्सर्य आदि दुर्गुणों के कारण हिन्दू-समाज अवनत दशा में है।[६] उपदेशक आदि इतने पाखंडी हैं कि वे औरों को तो विदेशी वस्तुएँ त्यागने का उपदेश देते हैं परन्तु स्वयं उनका वेश तक विदेशी है।[७] पद्यप्रबन्ध की 'प्राचीन भारत' शीर्षक कविता में यद्यपि गुप्त जी ने प्रमुख रूप से भारत के अतीत गौरव का ही वर्णन किया है परन्तु साथ ही वर्तमान अवनत दशा पर उनका क्षोभ भी स्पष्ट है। 'ब्रह्मचर्य का अभाव' शीर्षक कविता में वे बाल-विवाह पर दुख प्रकट करते हैं। वे लिखते हैं कि पुत्र ने माँ का पय-पान भी नहीं छोड़ा था कि हमें पौत्र का मुँह देखने की इच्छा होने लगी।[८]

मैथिलीशरण गुप्त का 'किसान' एक किसान के कष्टपूर्ण जीवन की कथा है। गाँव में उसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। जमींदार, महाजन, पटवारी, कारिन्दे सभी उसे लूटते हैं और उसका ऋण बढ़ता चला जाता है।

माधव शुक्ल ने भारत गीतांजलि की प्रार्थना में ही देश की दशा को सुधारने की इच्छा प्रकट की है। 'पीलू', 'आदर्श बालक' में अशिक्षा, बाल-विवाह, ब्रह्मचर्य

१—भारत भारती, भविष्यत् खंड, पृ० १७४-१७५;
२—वर्तमान खंड, 'साहित्य', पृ० १२१;
३—पृ० १२७-१२९;
४—पृ० १२९-१३४;
५—'स्त्रियाँ', पृ० १३५;
६—'समाज', पृ० १३९-१४६;
७—पृ० १२५
८—पद्य प्रबन्ध, 'उपदेशक', पृ० १२५ तथा 'ब्रह्मचर्य का अभाव', पृ० ४६-४७.

आदि का अन्त करने की कामना की गई है। 'होली' में वृद्ध-विवाह और अनमेल-विवाह पर खेद प्रकट किया गया है तथा बाल-विवाह बन्द करने और पुत्रों को विद्या पढ़ाने का उपदेश दिया गया है। 'होली' में स्त्रियों के झाड़-फूँक आदि में विश्वास करने का उल्लेख है। 'लावनी' में कवि ने कहा है कि जिन्हें अपना ध्यान होता है वे शराब, जुआ, वेश्यागमन आदि में नहीं रमते। देश की नैतिक-पवित्रता की रक्षा के लिए कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किये थे उनका उल्लेख हो चुका है। अस्तु, माधव शुक्ल ने 'भारत गीतांजलि' में समाज में प्रचलित कुरीतियों की ओर ध्यान दिया है।

नाथूराम शंकर शर्मा के 'अनुराग रत्न' (१९१३ ई०) में आर्य समाज आन्दोलन का बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'अनुराग रत्न' में कवि ने प्रार्थना की है कि सधवाएँ सुधरें और विधवाओं का उद्धार हो, वे किसी कुल को कलंकित न करें। लड़कियाँ न बिकें।[१] विधवाओं के कष्टों का उल्लेख कवि ने किया है, तथा उनके उद्धार का आग्रह भी दिखायी पड़ता है।[२] उन्होंने नारियों को महा-शोक के सिन्धु में गिराकर डुबाना अनुचित बताया है।[३] बाल-विवाह का विरोध किया गया है तथा छुआछूत को दम्भ कहा गया है।[४] उन्होंने विवाह में वेश्या-नृत्य को अनुचित माना है।[५] उन्होंने स्त्री-शिक्षा को उचित माना है।[६] कवि का ध्यान अछूत-समस्या की ओर भी गया है। उन्होंने छुआछूत दूर हो जाने का उल्लेख किया है और अछूतों को सुधारने की इच्छा प्रकट की है।[७] इन सब उल्लेखों से पता चलता है कि देश में अछूतों की स्थिति की ओर विचारशील भारतीयों का ध्यान आकृष्ट हो रहा था। काँग्रेस ने भी अछूतों के सम्बन्ध में १९१७ ई० में एक उदार प्रस्ताव पास किया था।

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने 'कृषक क्रन्दन' (१९१६ ई०) में एक कृषक की करुण कथा का वर्णन किया है। प्लेग में उसके पिता का देहान्त हो जाता है। पिता के मरते ही महाजन की बाकी चुकाने में घर की सारी सम्पत्ति समाप्त हो

१—अनुराग रत्न, 'प्रार्थना पंचक', पृ० ५;
२—'रुद्रदंड', पृ० ४२;
३—'सावधान रहो', पृ० ९६;
४—'धर्मघोषणा', पृ० १३०-१३१;
५—'प्रचंड प्रण पंचदशी', पृ० १५५;
७—'भारतोदय' पृ० ९२, तथा 'प्रचंड प्रण पंचदशी' पृ० १५६

जाती है। ज़मींदार भी उस पर दया नहीं करते। उसकी दरिद्रता का मार्मिक वर्णन कवि ने किया है।[१] 'गीत' तथा 'दुखिया किसान' कविताओं में कवि ने कृषकों के कष्टों का वर्णन किया है।[२] 'आर्त्तकृषक' कविता में किसानों पर जमींदारों, ज़िलेदारों तथा पटवारियों के अत्याचार का उल्लेख है।[३] यद्यपि राजनीति तथा साहित्य दोनों में कृषकों की कठिनाइयाँ, लगान-वृद्धि, कर्ज़दारी, जंगलों के कठोर कानून आदि का उल्लेख प्रथम चरण से ही हो रहा था फिर भी गाँधी जी के नेतृत्व में चम्पारन तथा खेड़ा में किसानों के सत्याग्रह करने तथा उसमें सफलता पाने के कारण साहित्य में, इस चरण में, किसानों के कष्टों का वर्णन प्रमुख रूप से होने लगा है।

पद्यप्रमोद (१९१७ ई०) में स्त्रियों की दीन-दशा की ओर संकेत करते हुए अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते हैं—

> 'अवश्य है अंध परंपरा किये।
> हमें विवेकादि विहीन मंद धी॥
> भला नहीं तो हम क्यों विलोकते।
> स्वलोचनों से कुदशा स्वकन्यका॥'[४]

१९१७ ई० में ही कांग्रेस ने भी मताधिकार के सम्बन्ध में स्त्रियों का स्थान पुरुषों के समकक्ष मान लिया था।

प्रेमचन्द के 'सप्तसरोज' की 'उपदेश' कहानी में गाँवों की दुर्दशा का वर्णन मिलता है। पुलिस, कारिन्दे आदि गाँव वालों को परेशान करते हैं। 'नवनिधि' से भी लेखक के इन्हीं विचारों की पुष्टि होती है कि जमींदार से अधिक उनके

१—'मज़दूरी से गुज़र किसी विधि कर लेता हूँ
किसी तरह से उदर दरी को भर लेता हूँ।
अंकरा, मकरा, मोठ, मसूर, मटर लेता हूँ।
उतने ही में बांट बराय सपर लेता हूँ।
सालन बथुआ मिला कि मेथी मिल जाती है।
कहीं शाम तक एक पनेथी मिल जाती है।

—'कृषक क्रन्दन', पृ० ८

२—'कृषक क्रन्दन', पृ० १८, २२

३—'आर्त्तकृषक', पृ० १५

४—'पद्यप्रमोद', पृ० ३१

कारिन्दे गाँव वालों पर अत्याचार करते हैं। रिश्वत का बाज़ार गर्म रहता है। जैसा उल्लेख किया जा चुका है राजनीति-क्षेत्र की विशेष परिस्थितियों के कारण ग्रामों और कृषकों की ओर साहित्यकारों का ध्यान अधिक गया है। देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही उपदेशकों का बाहुल्य हुआ। जहाँ उनमें से अधिकांश उपदेशक सच्चे देश-सेवक थे, वहाँ कुछ ऐसे भी थे जो देश-सेवा के बहाने अपना स्वार्थ साधना चाहते थे। 'नवनिधि' की 'ममता' कहानी में प्रेमचन्द ने उन उपदेशकों की पोल खोली है जो देश-सेवा का राग अलापते हैं किन्तु भाषण देने के अतिरिक्त कोई काम नहीं करते। वे चाहें भारतीय संस्कृति से कितना ही प्रेम दिखाएँ परन्तु देश-वासियों से हंटर बात करते हैं और उनकी माँ तक उनसे अलग रहती हैं। विदेशी रहन-सहन से वे बहुत प्रभावित हैं। ऐसे ही विचार उन्होंने सप्तसरोज में भी व्यक्त किए हैं।

'प्रेमपूर्णिमा' की 'खून सफेद' कहानी में जादोराम का छोटा लड़का पादरी साहब के साथ भाग जाता है। बड़े होने पर वह हिन्दू समाज में सम्मिलित होना चाहता है परन्तु हिन्दू समाज की संकीर्णता के कारण विवश होकर उसे फिर ईसाइयों में ही लौट जाना पड़ता है। लेखक ने व्यंग्य किया है कि हमारी धार्मिक संकीर्णता के कारण लाखों हिन्दू ईसाई बन रहे हैं। इसी संग्रह की 'शिकारी राजकुमार' कहानी में एक बड़े महन्त की चरित्रहीनता प्रेमचन्द ने दिखायी है।

प्रेमचन्द के 'सेवासदन' उपन्यास का कथानक समाज की वेश्या-समस्या पर आधारित है। इस उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार अनमेल विवाह आदि के कारण भले घरों की लड़कियाँ भी वेश्या का जीवन बिताने पर बाध्य हो जाती हैं। लेखक का विचार है कि हमारे समाज में स्त्रियों का आदर नहीं है। यही पतन का मुख्य कारण है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय के 'अधखिला फूल' उपन्यास पर सुधार-आन्दोलनों का पर्याप्त प्रभाव है। देवसरूप कामिनीमोहन का बहुत-सा धन पाकर उससे धर्मशाला, अनाथालय, पाठशाला, सदाव्रत, औषधालय, विधवाश्रम तथा कन्या पाठशाला आदि खोलते हैं।

कुछ उपन्यास आर्यसमाज आन्दोलन के अत्यधिक प्रभाव में लिखे गए हैं। किशोरीलाल गुप्त का 'राधा' उपन्यास ऐसा ही है। बाल-विवाह, विवाह में अधिक व्यय, स्त्रियों को अशिक्षित रखना, विवाह में गाली गाना, वेश्या-नृत्य, दहेज, कन्या-विक्रय आदि कुप्रथाओं का इस उपन्यास में विरोध किया गया है। सुधार-आन्दोलनों के फलस्वरूप राजनीति में भी कुछ सुधारों को अपना लिया

गया था। इस प्रकार के उपन्यास सुधारवादी दृष्टिकोण से ही लिखे गए हैं।

देश की सामाजिक अवनति का वर्णन प्रथम चरण के साहित्य में विशेष रूप से हुआ था। प्रथम चरण के ही समान इस चरण में भी बाल-विवाह, अब्रह्मचर्य, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, बाल-विधवाओं की समस्या, लड़कियों का बिकना, वेश्या-समस्या, स्त्रियों की अशिक्षा आदि की ओर कवियों ने विशेष ध्यान दिया। परन्तु प्रथम चरण की अपेक्षा इस चरण में इन कुरीतियों का वर्णन तुलनात्मक दृष्टि से कम हुआ है। इन कुरीतियों के अतिरिक्त कुछ नयी समस्याओं की ओर कवि का ध्यान गया। 'सनेही' जी ने 'कृषक क्रन्दन' में किसानों की स्थिति का वर्णन किया। अछूत समस्या के उल्लेख भी मिलते हैं। १९१७ ई० में प्रथम बार कांग्रेस ने स्त्रियों तथा दलित जातियों के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किए। कांग्रेस ने यह सम्मति प्रकट की थी कि शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की वही शर्तें स्त्रियों के लिए भी रक्खी जायँ जो पुरुषों के लिए हैं। इसी कांग्रेस ने दलित जातियों के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव किया कि परम्परा से उन पर जो रुकावटें चली आ रही हैं उन्हें दूर किया जाय। अतः अछूत समस्या का साहित्य में उल्लेख होना स्वाभाविक ही था। प्रथम चरण में विदेशी सभ्यता का विरोध किया गया था। इस चरण में भी पाश्चात्य सभ्यता का विरोध तो हुआ परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से वह कम है। अभी तक उपन्यास साहित्य की धारा सामाजिक जीवन के सामंजस्य में नहीं आयी थी। इस चरण में इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। उन्होंने कहानियों में भी सामाजिक जीवन की प्रमुख समस्याओं को लिया।

देश की नैतिक अवनति का चित्रण

भारतीयों में व्यापार आदि छोड़ कर नौकरी करने की जो इच्छा थी उसके सम्बन्ध में खेद के साथ 'जीर्ण जनपद' (१९०९ ई०) में 'प्रेमघन' लिखते हैं कि थोड़ी विद्या पढ़ कर ही इन्होंने परम्परागत उद्यम से मुँह मोड़ लिया है और नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं जो किसी प्रकार नहीं मिलती। अंग्रेजी पढ़ कर इन लोगों ने वही रहन-सहन बना ली है परन्तु कम आय में वह कैसे चल सकती है?[१] 'आर्य्याभिनन्दन' (१९०५ ई०) में भी वे लिखते हैं कि अब भारतीयों में भारतीयता का लेशमात्र भी नहीं रह गया है। अब तो वे हिन्दी बोल भी नहीं सकते हैं, अंग्रेजी

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'जीर्णजनपद' पृ० ५६

ही बोलते हैं और रहन-सहन भी अंग्रेजी ही हो गयी है। बाज़ारों में भी अंग्रेजी माल है परन्तु इनमें अंग्रेजों के गुण नहीं आए, न इन्हें अंग्रेज-प्रजा के समान अधिकार ही प्राप्त हैं।[१] 'वर्षाविन्दु' की तीसरी कजली में कवि ने कहा है कि भारतीय काले, कायर, क्रूर और कुचाली कहे जाते हैं तथा मूर्ख और परम नीच गिने जाते हैं। ये सभी प्रकार से निर्बल दिखाई पड़ते हैं तथा शशक और शृगाल के समान निरादर सहते हैं।[२]

'काव्योपवन' की 'शोकाश्रु' शीर्षक कविता में 'हरिऔध' लिखते हैं कि अभी तो भारत-सुधार कुछ भी नहीं होने पाया। कलह, फूट और वैर चारों दिशाओं में छाया हुआ है। आर्य-संतति की बहुत निन्दा होती है। सब जातियों ने अपना धर्म छोड़ दिया है और वे मनमानी करती हैं। स्त्रियों ने भी थोड़ी शिक्षा पाकर सतीत्व और पति-सेवा का रत्न छोड़ दिया है और वे बहुत स्वतंत्रता चाहती हैं। देश-हितैषी केवल यश के लिए देश-हितैषी बनते हैं, वे अंग्रेजी पढ़ते और बोलते हैं। उनकी प्रीति देश की वस्तुओं पर नहीं है। यहाँ के भूषण, वसन, पुस्तक, कारीगरी, शिल्प यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी उन्हें नहीं सुहातीं।[३] 'काव्योपवन' की ही 'आर्यपंचक' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं कि अब हमें कलह और फूट में मज़ा आता है। अपनापन हमको काटता है। पौरुष, उद्यम, और उत्साह नहीं भाता है, आलस और जमुहाइयों में ही सारा दिन बीत जाता है।[४]

'पद्यप्रमोद' में भी अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते हैं कि हम लोगों में अधिकतर आरम्भ-शूरता का अवगुण है। कभी वह आलस्य के बहाने प्रकट हो जाता है, कभी कलह, हिंसा, असहनशीलता और अल्पज्ञता उसे उत्पन्न करती है। हम लोगों में कर्त्तव्यशीलता की कमी है।[५]

'भारत गीतांजलि' में माधव शुक्ल ने देश में चारों वर्णों के पतित होने का उल्लेख करते हुए लिखा है कि नारियों का अनादर होता है। देश में अभिमान और कायरता बहुत अधिक है।[६] 'होली' शीर्षक दो कविताओं में उन्होंने देशवासियों

१—आर्य्याभिनन्दन, पृ० ३८५

२—वर्षाविन्दु, 'जातीय गीत', पृ० ५५०

३—काव्योपवन, 'शोकाश्रु', पृ० १३३-१३५;

४—'आर्यपंचक', पृ० १६३

५—पद्यप्रमोद, 'सुविचार संग्रह', 'आरम्भ शूरता', पृ० ३४-३५

६—भारत गीतांजलि, 'देश'

के आलस्य, निर्लज्जता, गर्व, कुमति, द्वेष, निन्दा आदि अवगुणों का उल्लेख किया है ।[१] कवि ने भारतीय-अमीरों का नैतिक-पतन दिखाते हुए उनका उपाधि-प्रेम, कौंसिल-मेम्बरी की लिप्सा, मदारी के बन्दर की तरह सरकार के इशारों पर नाचना और राजभक्ति दिखाने के लिए दीनों को क्लेश देने का सुन्दर वर्णन किया है ।[२]

'कविता विनोद' में रामनरेश त्रिपाठी ने भी देशवासियों के आलस्य, नीच-कर्मता, स्वार्थपरता, कायरता, दीनता तथा निरुद्यमता का उल्लेख किया है । स्वाधीनता खो देने का भी उल्लेख है ।[३] उन्होंने मादक द्रव्यों के परित्याग का उपदेश भी दिया है ।[४]

'अनुरागरत्न' में कवि नाथूराम शंकर शर्मा ने देशवासियों की कायरता का उल्लेख किया है ।[५]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने निबन्ध 'स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार' में लिखा है कि अब तो भारत में कुछ भी भारतीयता का लेश नहीं दिखायी पड़ता । शिक्षा-दीक्षा विदेशी, विद्या-बुद्धि विदेशी, मति-गति विदेशी, रीति-नीति और प्रीति विदेशी, चाल-ढाल और माल-टाल भी विदेशी, खान-पान विदेशी, व्यायाम, विश्राम, नाम तथा काम सब विदेशी ही विदेशी की भरमार है । इसी निबन्ध में ये यह भी लिखते हैं कि हम आलसियों की तरह भगवान किसी की भी दुर्गति न करे ।[६]

भारतीयों की नैतिक अवनति का वर्णन प्रथम चरण में भी हुआ और इस चरण में भी । क्रमशः नाटकों की रचना साहित्य में कम होने लगी । अतः काव्य में ही समाज सम्बन्धी विचार कवियों ने विशेष रूप से व्यक्त किए हैं । विदेशी रहन-सहन अपनाने पर कवियों ने दुख प्रकट किया । विशेष रूप से जो देश-हितैषी और उपदेशक बनते थे वे जब स्वयं विदेशी रहन-सहन का अनुसरण करते थे तो

१—भारत गीतांजलि, 'होली' (दोनों कविताएँ);
२—'लावनी'
३—कविता विनोद, 'पश्चाताप', पृ० ४५-४६;
४—'उपदेश', पृ० ४७
५—अनुराग रत्न, 'हमारी दुर्दशा', पृ० १८२
६—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार', पृ० २३४-२३६

कवि बहुत चिढ़ते थे। स्त्री-शिक्षा प्रचलित हुई तो शिक्षित स्त्रियों ने भी राष्ट्र के परम्परागत आदर्शों की रक्षा के लिए कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखायी। अतः स्त्री-शिक्षा भी आक्षेप का विषय हो गयी। सब वर्णों ने अपना-अपना काम छोड़ दिया और नौकरी पाने की इच्छा करने लगे। उनमें आत्म-सम्मान का भाव नष्ट हो गया। देश के अमीरों ने साधारण जनता के साथ सहानुभूति न प्रकट करके केवल अपने स्वार्थ की रक्षा की ही चेष्टा की। उनमें उपाधिओं तथा कौंसिल की मेम्बरी की लिप्सा जाग उठी। हाकिमों की चापलूसी करने पर भी कवियों को खेद हुआ। असहयोग आन्दोलन में देश के नेताओं ने कौंसिल की मेम्बरी तथा पदवियाँ छोड़ने का आग्रह किया था। कौंसिलों के बहिष्कार में सफलता भी बहुत मिली थी। परन्तु असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ के बहुत पहले से ही उपाधियों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। सामान्य रूप से देशवासियों के आलस्य, कायरता, स्वार्थ, निर्लज्जता आदि अवगुणों का उल्लेख लगभग सभी कवियों ने किया। नशीली चीजों पर अधिक कर लगाने का प्रस्ताव कांग्रेस प्रारंभ से ही कर रही थी और समाज-सुधारक भी मद्य-निषेध आन्दोलन चला रहे थे। साहित्यकारों को भी इस आन्दोलन ने प्रभावित किया है।

देश की आर्थिक अवनति का वर्णन

इस समय देश की परिस्थिति बदल चुकी थी। १९०५ ई० में बंग-भंग होने से उसकी प्रतिक्रिया पहले बंगाल में और बाद में सम्पूर्ण भारत में हुई। कर्जन के अन्य कार्यों तथा दमनपूर्ण-शासन ने जनता को शासन के विरुद्ध कर दिया। दो नाम—कर्जन तथा डायर—ब्रिटिश-शासन के अत्याचार के प्रतीक स्वरूप साहित्य में व्यवहृत हुए हैं। कर्जन के शासन की प्रतिक्रिया 'स्फुट कविता' में ही व्यक्त हुई है। आगे चलकर स्वदेशी की स्वीकृति और विदेशी के बहिष्कार की धूम मच गयी। साहित्य को नए-नए विषय मिले। स्वदेशी आन्दोलन का साहित्य में बहुत वर्णन हुआ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 'काव्योपवन' में लिखते हैं कि धन-रक्षण की रीति देशवासियों को नहीं आई। नवशिक्षित जन शिल्प को नहीं अपना सके। भारत में दारिद्रय दिन-दिन बढ़ता जाता है परन्तु उसे रोकने की किसी को सुधि नहीं है।[१] 'पद्यप्रमोद' में 'हृदयोद्‌गार' के अन्तर्गत 'दिल के फफोले' शीर्षक कविता में कवि ने भारत की निर्धनता का वर्णन किया है।

१—काव्योपवन, 'शोकाश्रु', पृ० १३३

'आनन्द अरुणोदय' में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने लिखा है कि देशी वस्तुओं का अनुराग-पराग उड़ रहा है।[1] 'जीर्ण जनपद' में आर्थिक अवनति का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि समलगान, अधिक व्यय और आय कम होने के कारण सभी दीन-हीन हैं। इनके शरीर में रुधिर, माँस तथा उज्जवल वस्त्र नहीं तथा उनकी स्त्रियों के शरीर पर भूषण नहीं हैं। इनके शिशु दुर्बल, रोगी तथा नंगे हैं।[2] 'आर्य्याभिनन्दन' में भी कवि लिखते हैं कि रोग, शोक और दुष्काल से भारत आर्त्त है।[3]

स्वदेशी-आन्दोलन में पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुए 'स्वदेश विन्दु' के अन्तर्गत "चरखे की चमत्कारी' में कवि 'प्रेमघन' चरखे से कहते हैं कि वह मैनचेस्टर और लंकाशायर को भी मात कर दे। वे लिखते हैं कि जब से चरखा चलना बन्द हुआ तभी से भारतीयों को पेट भर अन्न भी नहीं मिल सका और अब ज्यों-ज्यों चरखा चलता जाता है स्वराज्य पास आता जाता है और परतंत्रता भागी जाती है।[4]

'भारत भारती' में देश की आर्थिक दशा के प्रति मैथिलीशरण गुप्त ने बहुत असंतोष व्यक्त किया है। वे लिखते हैं कि भारत में चारों ओर दरिद्रता और दुर्भिक्ष है।[5] कृषि के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि यदि अन्य देशों को अन्न जाना बन्द हो जाये तो देश फिर से सम्पन्न हो सकता है। भूमि की उर्वरता कम हो गयी है क्योंकि कृषक परिश्रम नहीं करते। परिश्रम न करने का कारण कर-वृद्धि है। अवर्षण से हमारा जो हाल है उसका दृष्टान्त गुजरात का अकाल है। कृषकों की दैनिक आय चार पैसे से अधिक नहीं है।[6] व्यापार की हीनता कृषि की हीनता से किसी प्रकार भी कम नहीं है।[7] सुइयाँ, वस्त्र, दियासलाई, छड़ियाँ तक सभी

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'आनन्द अरुणोदय', पृ० ३७३;

२—'जीर्ण जनपद', पृ० ५६;

३—'आर्य्याभिनन्दन', पृ० ३८६;

४—'चरखे की चमत्कारी', पृ० ६३३-६३४

५—भारत भारती, वर्तमान खंड, 'दारिद्र्य दुर्भिक्ष', पृ० ८७;

६—'कृषि और कृषक', पृ० ९१-९३;

७—'जो वस्तु देखो मेड इन इंगलैंड, इटली, जर्मनी,
जापान, फ्रान्स, अमेरिका वा अन्य देशों की बनी।'
\+ \+
कुल नारियाँ जिनको हमारी हैं करों में धारतीं
सौभाग्य का शुभ चिन्ह जिनको हैं सदैव विचारतीं

विदेशी है। 'रेली ब्रदर' आदि को जो हम माल देते हैं, वही तत्काल पन्द्रह गुने मूल्य तक में लेते हैं। ढाके, चँदेरी आदि की कारीगरी अब कहाँ रह गयी है?[१] इसी प्रकार 'पद्य प्रबन्ध' की 'प्रयाग की प्रदर्शिनी' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए भी हम दूसरों का मुंह ताकते हैं। अगर अन्य देशों से वस्तु का आगमन रुक जाये तो अभाव की पूर्ति की तो बात ही क्या, हमारी लज्जा भी नहीं रह सकती।[२] 'भारत गीतांजलि' में माधव शुक्ल ने भारतीयों की आर्थिक दुरवस्था तथा रोग, अकाल आदि का वर्णन किया है।[३]

लक्ष्मी के देश से चले जाने तथा दूध-घी के बिना भारतीयों के निर्बल होकर मरने का भी उल्लेख है।[४] 'चेतावनी' शीर्षक कविता में भी कवि माधव शुक्ल ने प्लेग आदि रोगों, अकाल तथा स्वयं जोतने-बोने के उपरान्त भी भूखे मरने का वर्णन किया है।[५] दरिद्रता का वर्णन भी किया गया है।[६]

विदेशी-माल की खपत भारत में बहुत थी। बहिष्कार-आन्दोलन के फल-स्वरूप जनता का ध्यान इस ओर बहुत गया। जहाँ विदेशों से तरह-तरह की वस्तुएँ भारत में बिकने के लिए आती थीं, वहाँ भारत से अन्न विदेश जाता था। माधव शुक्ल ने इन दोनों तथ्यों का उल्लेख किया है।[७] १९२० ई० में कांग्रेस ने

वे चूड़ियाँ तक हैं विदेशी देख लो, बस हो चुका,
भारत स्वकीय सुहाग भी परकीय करके खो चुका।'
—'व्यापार', पृ० १०२-१०४

१—भारत भारती, वर्तमान खंड, 'व्यापार', पृ० १०८

२—पद्य प्रबन्ध, 'प्रयाग की प्रदर्शिनी', पृ० ७९

३—'हैजा प्लेग अकालहु राखत नित हमहिन पर ध्यान।
तिल्ली फटत हमार कुली बन हमहीं करत पयान।'

४—भारत गीतांजलि, पद १६;

५—'देश'

६—न जाने कौन दशा अब हिन्द देश की होने वाली है।
दुर्गति सब हो गई फकत अब मरना खाली है।
देते देते खर्च बचा नहिं लोटा थाली है।
—'चेतावनी'

७—शुक्ल माधव, भारत गीतांजलि, पद २६, 'कजली'

अन्न निर्यात का विरोध किया था। साहित्यकार अधिकाँश में काँग्रेस की नीति से बहुत प्रभावित हुए हैं। विदेशी चीनी खाने का कवि ने घोर विरोध किया है।[१] भारत की दरिद्रता, अकाल, रोग, तथा देश के धन का बाहर जाना—आदि का उल्लेख माधव शुक्ल ने 'भारत गीताँजलि' में अनेक स्थलों पर किया है। उन्होंने गोवध पर दुःख प्रकट किया है।[२] उन्होंने इस बात पर भी खेद प्रकट किया है कि देश का धन पानी की तरह विदेश को बहा जा रहा है।[३]

बहिष्कार आन्दोलन के फलस्वरूप कवियों ने यही इच्छा प्रकट की है कि हम कला-कौशल की दृष्टि से स्वावलम्बी हो जायें। 'कविता विनोद' में रामनरेश त्रिपाठी ने अकाल का वर्णन करते हुए कामना की है कि हम ज्ञान, विज्ञान, कला-कौशल सीख कर उन्नत हों तथा भारत में सम्पत्ति और शान्ति भर दें।[४]

प्रायः सभी कवियों ने गोवध पर खेद प्रकट किया है। नाथूराम शंकर शर्मा ने प्रार्थना की है कि गायें न काटी जायँ और अनाज न घटे।[५] इसी प्रकार 'अनुराग रत्न' में उन्होंने भारत की दीनता, दारिद्र्य आदि का वर्णन 'हमारी दुर्दशा' शीर्षक कविता में किया है।[६] उद्यम-नाश पर भी उन्होंने दुख प्रकट किया है।[७] लगान की अधिकता तथा कृषकों की कठिनाइयों की ओर इस चरण में कवियों का ध्यान गया है। नाथूराम शंकर शर्मा ने भूमि पर लगान कम होने की प्रार्थना की है।[८] देश की दरिद्रता का आंशिक कारण राज-कर्मचारियों का अधिक वेतन पाना भी था। 'अनुराग रत्न' में कवि ने राज-कर्मचारियों के अधिक वेतन पाने तथा सब ओर राजभाषा के ठमकने का उल्लेख किया है।[९]

'स्वदेशी आन्दोलन' का प्रभाव सबसे अधिक बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबन्धों पर दिखायी पड़ता है। 'भावी भारतीय महा सम्मिलन' शीर्षक निबन्ध

१—शुक्ल, माधव, भारत गीतांजलि, (३३) लावनी;
२—(२२) देश;
३—(४३) होली
४—त्रिपाठी, रामनरेश, कविता विनोद, 'जन्मभूमि', पृ० ३८-३९
५—शर्मा, नाथूराम शंकर, अनुराग रत्न, 'प्रार्थना पंचक', पृ० ५
६—अनुराग रत्न 'हमारी दुर्दशा', पृ० १८२;
७—'होलिकाष्टक', पृ० १८६;
८—'मेरा मनोराज्य', पृ० २१९;
९—'हमारा अधः पतन', पृ० १७०-१७१

के प्रारम्भ में ही 'प्रेमघन' लिखते हैं कि हमारे देश का हाथ विलायत की कलों ने बाँध रक्खा है। वे लिखते हैं कि इसीलिए अब काँग्रेस ने व्यापार की ओर विशेष ध्यान देकर अपने अधिवेशनों के साथ-साथ प्रदर्शिनियाँ खोलनी आरंभ की हैं। उनका विचार है कि स्वदेशी आन्दोलन ने हमारे कारीगरों को उन्निद्रित कर उन्हें मरते मरते बचाया है।[१] 'स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार' शीर्षक निबन्ध में भी वे लिखते हैं कि इतना विचार तो अवश्य ही रखना उचित है कि जो स्वदेशी पदार्थ देश में लभ्य होते हैं वे कदापि विदेशी न लिये जायँ। लेखक ने लिखा है कि हम सौ-सौ दुख झेलकर कपास बोते हैं परन्तु रुई निकाल कर विदेश भेज देते हैं और उसके बदले में विदेशी कपड़े मोल लेते हैं। सुई, सूत, बटन, साबुन, कागज़, कलम, रोशनाई, किताबें सभी विदेशी होते हैं। अगर बरतन और ट्रंक यहाँ बनते भी हैं तो भी ताँबे, पीतल और लोहे की चद्दरें वहीं की लेकर। अगर कच्चा माल एक रुपये मूल्य पर वहाँ जाता है तो घूम कर पच्चीस-पचास का होकर यहाँ आता है।[२] 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर' शीर्षक लेख में लेखक ने लिखा है कि विदेशी लोगों का उद्यम, व्यापार और ऊँची नौकरियों पर अधिकार है। वे लिखते हैं 'विलायती प्रजा मंडली प्रायः चारों वर्ण और छत्तीसों जाति के कार्य करके इस देश के अन्न-धन को चूस अपने पेट पालती है। इस देश के सब प्रकार के उद्यम और व्यापार तथा उच्च सेवा पर भी केवल उन्हीं सबों का अधिकार है जिस कारण अब यहाँ के लोग सब प्रकार निकम्मे और दरिद्र होकर रोटियों के दुख से मरते हैं और विदेशी उनके भाग को खा-खाकर मदान्ध होते जाते हैं।'[३] इसी निवन्ध में सामान्य शीर्षक देकर लेखक लिखते हैं कि विगत वर्ष के जाड़े-पाले, ओलों की वर्षा तथा अनावृष्टि की क्या कथा कही जाय? विलक्षण दुष्काल और प्लेग, विशूचिकादि रोगों का तो भारत अड्डा ही हो रहा है।[४]

आन्दोलन के प्रथम चरण में जिस प्रकार सामान्य रूप से भारत की महंगी, दरिद्रता, अकाल और रोगों के सम्बन्ध में साहित्यकारों ने लिखा है उसी प्रकार इस चरण में भी; परन्तु रोगों का उल्लेख तुलनात्मक दृष्टि से कुछ कम मिलता

१—प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, 'भावी भारतीय महा सम्मिलन', पृ० २२९;
२—'स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार', पृ० २३६;
३— 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर', पृ० ५०६;
४—पृ० ५००

है। व्यापार और शिल्प के नाश हो जाने का तथा खेती और किसानों की दुर्दशा का वर्णन इस काल में कवियों ने बहुत किया है। विदेशी वस्तुओं पर भारतीयों के निर्भर रहने तथा भारतीय कला-कौशल के नष्ट होने पर साहित्यकारों का विशेष ध्यान बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन के कारण गया। आर्थिक अवनति का चित्रण प्रमुख रूप से काव्य में मिलता है। प्रेमघन के निबन्ध अवश्य स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित होकर लिखे गए हैं।

गोवध का विरोध इस काल में भी कवियों ने किया है यद्यपि गोरक्षा-आन्दोलन की वह तीव्रता जो प्रथम चरण में थी, इस चरण में नहीं लक्षित होती। काँग्रेस ने अपने प्रारम्भिक अधिवेशनों में सरकारी नौकरियों, लगान, दुर्भिक्ष, देशी उद्योग-धंधों के विनाश, जंगलों के कानून, आदि सभी विषयों पर प्रस्ताव पास किए। १९०१ ई० में स्वदेशी-प्रदर्शिनी का भी प्रारम्भ हुआ। द्वितीय चरण में स्वदेशी के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ और स्वदेशी-आन्दोलन देशव्यापी हो गया। आर्थिक अवनति के उल्लेख इस चरण में काँग्रेस के प्रारम्भिक प्रस्तावों से ही प्रभावित हैं क्योंकि इन वर्षों में साधारण आर्थिक विषयों पर काँग्रेस ने कम प्रस्ताव पास किए परन्तु स्वदेशी आन्दोलन के कारण देश की आर्थिक स्थिति की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। १९२० ई० में काँग्रेस ने खाद्य पदार्थों के निर्यात् की नीति की निन्दा की। साहित्यकारों ने भी अन्न-निर्यात् का विरोध किया है।

परतंत्रता संबंधी उद्गार

आन्दोलन के प्रथम चरण में साहित्यकारों ने देश की परतंत्रता पर बहुत क्षोभ व्यक्त किया था। इस द्वितीय चरण में भी कवियों ने पराधीनता पर क्षोभ व्यक्त किया है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'अलौकिक लीला' में लिखा है कि परवश होकर कैसे धर्म बचाया जा सकता है? यद्यपि जगत् में बहुत से दुःख हैं परन्तु पराधीनता के समान कोई नहीं है।[1] 'आनन्द अरुणोदय' के अन्त में कवि ने प्रार्थना की है कि भारत में एकता, धीरता, देश-भक्ति तथा स्वाधीनता निवास करें।[2]

माधव शुक्ल ने 'भारत गीताँजलि' में स्वाधीनता के सुख और पराधीनता

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, 'अलौकिक लीला', पृ० ६९;
२—'आनन्द अरुणोदय', पृ० ३७८

के दुःख का वर्णन किया है और यह तथ्य पक्षियों के जीवन से सिद्ध किया गया है 'उसका भी जीवन क्या है जो पराधीनता में पागा'।[१] 'होली' शीर्षक कविता में कवि भारत के विषय में लिखते हैं कि 'अबहूँ भोगत पराधीन ह्वै तेहि न आज बिसराओ'।[२]

'भारत गीत' में 'स्मरणीय भाव' शीर्षक एक कविता है, जिसमें उस देश की निन्दा की गयी है जहाँ के व्यक्ति परतंत्र और पराई-प्रभुता के अभिमानी हों, यद्यपि स्पष्ट रूप से भारत का उल्लेख कवि ने नहीं किया।[३]

'सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल' उपन्यास में ब्रह्मानन्द भारत की पराधीनता पर क्षोभ व्यक्त करते हैं।[४] 'याकूती तख्ती वा यमज सहोदरा' उपन्यास में भी हमीदा कहती है कि तुम लोग अंग्रेज़ों के गुलाम हो इसलिए तुम आज़ादी की कीमत नहीं समझ सकते।[५]

इस चरण में भी परतंत्रता पर कवियों ने दुःख प्रकट किया है परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपायों पर गंभीर विचार नहीं प्रकट किए हैं। काँग्रेस ने इन वर्षों में उपनिवेशों के समान पूर्ण उत्तरदायी शासन को अपना ध्येय माना था और यह घोषणा की थी कि भारत अवश्य ही स्वराज्य के योग्य है। साहित्यकारों ने स्वतंत्रता की कामना की है परन्तु उसके स्वरूप पर विस्तार में विचार नहीं किया है।

उद्बोधन

कवियों ने उद्बोधन की अनेक कविताएं लिखी हैं और देश में जागृति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। 'भारत गीताँजलि' की अधिकाँश कविताओं में कवि माधव शुक्ल ने भारतीयों में जागृति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।[६] उन्होंने कई कविताओं में एकता पर बल दिया है[७] और विश्वविद्यालय बनवाने का

१—भारत गीतांजलि, 'स्वतंत्रता';
२—'होली'
३—भारत गीत, 'स्मरणीय भाव', पृ० १८-१९
४—गोस्वामी, किशोरीलाल, 'सुल्ताना रज़िया बेगम वा रंगमहल में हलाहल' दूसरा भाग, प्रथम परिच्छेद
५—'याकूती तख्ती वा यमज सहोदरा', दूसरा परिच्छेद, पृ० ९
६—भारत गीतांजलि, (७) भैरवी, (८) भैरवी, (११) भैरवी;
७—(१७) पीलू, (२४) पद

आग्रह किया है।[1] विश्वविद्यालय बनवाने का आग्रह राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन का ही प्रभाव है।

'भारत भारती' के भविष्यत् खंड में उद्‌बोधन है। कवि ने पौरुष तथा एकता का संदेश दिया है।[2] ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों को कवि ने संबोधित किया है और कर्त्तव्य-पालन के लिए प्रेरित किया है। वैश्यों से अनुरोध किया है कि वे कल-कारखाने खोल दें जिससे कि कच्चा माल बाहर न जाने पाये।[3] उनका विचार है कि कवियों को भी देश की ओर दृष्टि करनी चाहिए।[4]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता विनोद' में जागृति का संदेश दिया है। वे आग्रह करते हैं कि उठो, आलस्य को त्याग दो। अपनी दशा सुधारो। इस तेजहीन निर्बल समाज में नवजीवन डालो।[5] कवि ने आग्रह किया है कि आओ हम द्वेष छोड़ दें और सब में मतैक्य हो जाय।[6] 'उन्नत जीवन का उपदेश' शीर्षक कविता में भी आपस का मतभेद मिटाने का आग्रह है।[7] १९१६ ई० के लगभग हिन्दू-मुस्लिम भ्रातृ-भाव बहुत था। साहित्य में भी इसीलिए इस भावना का वर्णन हुआ है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'पद्यप्रमोद' में भी 'उलाहना' शीर्षक कविता में हिन्दी कहती है कि मुसलमान हिन्दू दोनों ही मेरे हैं और दोनों मुझे जी से भी अधिक प्यारे हैं। कवि ने एकता में विश्वास प्रकट किया है। कविता के अन्त में कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि आपस का प्यार सब ओर फैला रहे और किसी का भी किसी से भी जी न मैला हो।[8]

'प्रेमघन' ने 'आनन्द अरुणोदय' में प्रार्थना की है कि देश में एकता, धीरता, देश-भक्ति और स्वाधीनता हो। ईश्वर वैर, फूट, अन्याय, दुःख और दीनता हरे।[9]

१—भारत गीतांजलि, (४३) होली
२—भारत भारती, भविष्यत् खंड, पृ० १५६-१५७;
३—पृ० १६७-१६९;
४—पृ० १७४-१७५
५—कविता विनोद, 'उपदेश', पृ० ४८;
६—'जन्मभूमि', पृ० ३९;
७—'उन्नत जीवन का उपदेश', पृ० ४३
८—पद्य प्रमोद, 'कुछ जी के दुखड़े', 'उलाहना', पृ० १५९
९—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, 'आनन्द अरुणोदय', पृ० ३७८

जैसा पहले भी कहा जा चुका है 'प्रेमघन' के निबन्धों पर स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव बहुत अधिक है। 'नवीन वर्षारम्भ' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने स्वदेशी को ही भारत के उद्धार का एकमात्र उपाय माना है। वे आग्रह करते हैं कि करघे और चरखे घर-घर में फिर से चलाए जाँयें, तथा सभी देशवासी निज-निज शिल्प की उन्नति करें। हमें चाहिए कि विदेशी वणिकों से अपने अन्न और धन की रक्षा करें।[१]

'समाचार पत्र या अखबार किसे कहते हैं' शीर्षक निबन्ध में 'प्रेमघन' समाचार को एकता का प्रचारक मानते हुए लिखते हैं कि यह देश और जातियों में एकता उत्पन्न करने वाला है तथा फूट से उत्पन्न रोग की औषधि है।[२] समाचार-पत्रों ने जनमत जाग्रत करने में बड़ी सहायता दी थी और काँग्रेस ने प्रारंभ से ही प्रेस की स्वतंत्रता का आग्रह किया था। साहित्यकारों ने भी इसीलिए समाचार पत्रों को देश की उन्नति में योग देने वाला माना है।

कविता पुस्तकों में से अधिकाँश में भारतीयों को निद्रा से जगाने का प्रयत्न और उद्बोधन के गीत हैं। लगभग सभी कवियों ने एकता पर विशेष रूप से बल दिया है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय बनवाने, कल-कारखाने खोलने, स्वदेशी वस्तु स्वीकार के लिए भी साहित्यकारों ने भारतीयों से आग्रह किया है। उपन्यास व नाटक साहित्य की धाराओं पर इस द्वितीय चरण के साहित्य में राष्ट्रीय आन्दोलन का उल्लेखनीय प्रभाव नहीं दृष्टिगोचर होता।

राजभक्ति की भावना

प्रथम चरण के कवियों ने तो राजभक्ति प्रकट की ही थी, इस द्वितीय चरण में भी राजभक्ति की भावना भारतीयों में दृढ़ता से बद्धमूल रही। 'प्रेमघन' ने 'शुभ सम्मिलन' शीर्षक कविता में लिखा है कि राजभक्ति का छप्पर छाकर ऊपर रखना चाहिए जिससे हम राजकोप के उपल से बचे रहें।[३] 'आर्याभिनन्दन' में भी वे लिखते हैं कि यद्यपि हम भारतीयों के सभी गुण नष्ट हो गए हैं फिर भी इनमें जैसी अकथ, अनूप राजभक्ति पहले थी वैसे आज भी पाई जाती है।[४]

१--प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, 'नवीन वर्षारम्भ', पृ० ५३१;
२--'समाचार पत्र या अखबार किसे कहते हैं', पृ० १
३--प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'शुभ सम्मिलन', पृ० ३६८;
४--'आर्याभिनन्दन', पृ० ३८६

'सौभाग्य समागम'—श्री पंचम जार्ज के दिल्ली में साम्राज्याभिषेक पर बधाई और स्वागत संबंधी कविता—में कवि ने कहा है कि यद्यपि ब्रिटिश राज्य में भारतीयों को सभी प्रकार का सुख था फिर भी अपने राजा के दर्शन न कर पाने से इन्हें दुःख होता था अतः यहाँ राज्याभिषेक होने से भारत बहुत आनन्दित है। यदि हम लोग पलक-पाँवड़े आपके लिए बिछा दें, लोचन-जल से पग धोएं तथा सर्वस्व आप पर वार दें तो भी आपके गुरुजनों द्वारा किए हुए उपकारों की ओर देखते हुए वह थोड़ा है।[1]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी 'काव्योपवन' में राजभक्ति प्रदर्शित की है। 'राज प्रशंसा' शीर्षक कविता के पहले दो कवित्तों में महारानी की कीर्ति को अखण्ड रखने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। महारानी की दीर्घायु की कामना करते हुए कवि ने इच्छा की है कि महारानी के साठ साल वाले राज्य का यश महीतल में फैला रहे। महारानी की उपमा शची अथवा रति से दी गयी है। कवि लिखते हैं कि पृथ्वी पर सुनीति का निर्वाह करने के लिए महारानी विक्टोरिया हैं। उनकी दया और उदारता की प्रशंसा करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना की गयी है।[2]

हरिऔध ने पद्य प्रमोद में भी राजभक्ति विशेष रूप से व्यक्त की है। 'स्तुति-सर्वस्व' के अन्तर्गत 'वाइसराय स्तुति' में कवि ने लार्ड हार्डिंग की स्तुति की है। उन्होंने उनकी वर्षगाँठ पर हर्ष प्रकट किया है और उन्हें अंग्रेजी राज्य का रुचिर खंभ कहा है। कवि ने इच्छा प्रकट की है कि उनके मुख दिनमणि की वर-ज्योति से भारत-अवनी का तम टल जाय।[3] 'स्तुति सर्वस्व' में ही 'शुभ स्वागत' शीर्षक कविता में कवि ने श्री जार्ज के शुभागमन पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा है—

> **प्रताप श्री जार्ज नृपाल का बढ़े।**
> **प्रशंसिता रूल ब्रिटानिया रहे।**
> **सुखी रहें कीर्ति लहें मनोहरा।**
> **समेत लेडी सर जेम्स मेस्टन ॥११॥**[4]

'सच्ची उमंग का रंग' के अन्तर्गत 'राजतिलक का दिन' शीर्षक कविता में महराज

१—'सौभाग्य समागम', पृ० ३९४-३९५
२—काव्योपवन, 'राज प्रशंसा' पृ० ८-११
३—पद्यप्रमोद, 'स्तुति सर्वस्व', पृ० ५-६;
४—'शुभ स्वागत', पृ० ८

की प्रशंसा की गयी है और कवि ने मंगल-कामना की है कि महाराज व महारानी कुमार तथा परिवार के साथ सुख से रहें।[१] 'सच्ची उमंग का रंग' के ही अन्तर्गत 'कौआली' में भी कवि ने यह दिखाया है कि राजाधिराज सम्राट् जार्ज के राज-तिलक के दिन प्रकृति तक प्रसन्नता में डूबी हुई है। कवि ने महाराज के लिए मंगल कामना की है।[२] 'बरस गाँठ बधाई' शीर्षक कविता में लार्ड हार्डिज के जन्म-दिवस पर बधाई दी गयी है।[३] 'एक अपील' शीर्षक कविता में कवि ने कामना की है कि महाराज जियें और बड़ा नाम पायें तथा उनकी धाक दिन-दिन बढ़े। महारानी नित्य रंगरेलियों मनायें और हम उनके काम आयें।[४] 'सच्ची उमंग का रंग' के अन्तर्गत 'हमारे सपूत' शीर्षक कविता में भी कवि ने अंग्रेजों के पक्ष की ओर से युद्ध करने के लिए देशवासियों से आग्रह किया है और उसके लिए उत्साह दिखाया है। कविता के अन्त में कवि ने कामना की है कि महाराज की जय हो तथा ब्रिटिश तेज का पारा ऊंचा हो।[५] 'बाल विनोद' के अन्तर्गत 'सम्राट शुभ कामना' शीर्षक कविता में भी कवि ने महाराज की स्तुति की है तथा उनके आरोग्य, दीर्घायु तथा यश के लिए भगवान से प्रार्थना की है।[६]

मनोविनोद, तृतीय खंड में कवि ने 'श्री जार्ज वन्दना' शीर्षक कविता में राजभक्ति प्रकट की है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि नृप में हम लोग धर्म और और जाति का अंतर नहीं मानते। बंग-भंग रद्द करने पर कवि ने हर्ष प्रकट किया है तथा दिल्ली को राजधानी बनाने पर भी प्रसन्नता प्रकट की गयी है। कवि कहते हैं कि सम्राट् ने सैनिक-जनों के सम्मान की प्रथा को उन्नत किया तथा देशवासियों को पदक विशेष की प्राप्ति की क्षमता भी दी।[७] मनोविनोद (नवीन संस्करण) में भी श्रीधर पाठक ने 'विक्टोरिया' कविता में महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा की है।[८] एक कविता लार्ड रिपन के प्रयाग आगमन पर भी

१—सच्ची उमंग का रंग, 'राजतिलक का दिन', पृ० १२४-१२५;

२—कौआली, पृ० १२६;

३—'बरस गाँठ बधाई', पृ० १२७

४—पद्य प्रमोद, 'एक अपील', पृ० १३५;

५—सच्ची उमंग का रंग, 'हमारे सपूत', पृ० १३८

६—बाल विनोद, 'सम्राट शुभ कामना', पृ० १९९-२००

७—मनोविनोद, तृतीय खंड, 'श्री जार्ज वन्दना', पृ० ६;

८—नवीन संस्करण, 'विक्टोरिया', पृ० ३०

है।[१] 'युद्ध पुकार' शीर्षक कविता में भारत को युद्ध में भाग लेने के लिए उत्साहित किया गया है तथा ब्रिटिश-राज्य से संतोष प्रकट किया गया है।[२] 'भारत गीत' में श्रीधर पाठक ने 'कृतज्ञता ब्रिटेन की भारत के प्रति' शीर्षक कविता में ब्रिटेन की ओर से भारत की सेवाओं के लिए कृतज्ञता प्रकट की है। साथ ही महारानी और महाराज के प्रति राज-भक्ति भी प्रकट की गयी है।[३]

'अनुराग रत्न' में नाथूराम शंकर शर्मा ने राजभक्ति का उपदेश दिया है और राज-द्रोह से दूर रहने की सम्मति दी है।[४] अन्य कविताओं में भी कवि की राजभक्ति प्रकट हुई है।[५]

१९१८ ई० तक काँग्रेस की राजभक्ति में भी कोई अन्तर नहीं आया था। १९१८ ई० में काँग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा राजभक्ति प्रकट की और युद्ध के सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर बधाई दी। १९१९ ई० में खिलाफ़त आन्दोलन जालियान वाला बाग का हत्याकाण्ड तथा अपर्याप्त सुधारों आदि के सम्मिलित-असंतोष ने काँग्रेस की राजभक्ति की भावना समाप्त की। इस दृष्टि से देखा जाय तो साहित्य में राजभक्ति की भावना राजनीति से बहुत प्रभावित है। १९१८ ई० तक साहित्यकारों की राजभक्ति की भावना भी दृढ़ बनी रही।

ब्रिटिश शासन से संतोष

'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने ब्रिटिश शासन से पूर्ण संतोष व्यक्त किया है। अतीत खंड के अन्त में उदार ब्रिटिश राज्य भारत में भेजने के लिए कवि नारायण को धन्यवाद देते हैं।[६] कवि लिखते हैं कि आत्म-विकास के सभी साधन ब्रिटिश राज्य में हो गए हैं। पथ, रेल, तार, डाक-विद्यालय, डाकघर,

---

१—मनोविनोद, न० सं०, तृ० खंड, पृ० १३०;

२—'युद्धपुकार', पृ० १५२-१५४

३—भारतगीत, 'कृतज्ञता ब्रिटेन की भारत के प्रति', पृ० ११८-११९

४—अनुराग रत्न, 'सावधान रहो तथा सदुपदेश', पृ० ९६-९७;

५—'महेन्द्र मंगलाष्टक', पृ० १५७, 'विमुक्तात्मा महारानी विक्टोरिया,' पृ० १५९

६—'देते हुए भी कर्मफल हम पर हुई उसकी दया।
भेजा प्रसिद्ध उदार जिसने ब्रिटिश राज्य यहाँ नया।'

चिकित्सालय आदि से असुविधाएं मिट गयी हैं। इस राज्य ने हमें समय से परिचित कराया है और विज्ञान का वैभव दिखाया है।[१] गुप्त जी मानते हैं कि भारत में राष्ट्रीयता की लहर भी ब्रिटिश राज्य का ही फल है।[२] 'किसान' में भी गुप्त जी ने ब्रिटिश शासन से पूर्ण संतोष प्रकट किया है। कुली-प्रथा बन्द करने के लिए लार्ड हार्डिज के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन किया गया है और इस प्रथा के अन्त करने का सारा श्रेय भारत सरकार को दिया गया है।[3] इसी काव्य में नायक रण में भर्ती होकर ब्रिटिश राज्य के उपकारों का बदला भी चुकाता है। कवि राजभक्ति भारतीयों का विशेष गुण मानते हैं और यह किंचित् आश्चर्य की बात है कि वह इस राजभक्ति को उसी राजभक्ति के समकक्ष रखते हैं जो पन्ना धाय ने अपने पुत्र का बलिदान करके अपने राजवंश के प्रति प्रकट की थी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'पद्य-प्रबंध' की 'राज्याभिषेक' शीर्षक कविता में सम्राट् जार्ज पंचम के राज्याभिषेक के अवसर पर आशीष और बधाई दी है। ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं कि उन्नति का पथ खुल गया है और इस राज्य में कोई अनाचार नहीं करने पाता है।[४] 'सौभाग्य समागम' कविता में 'प्रेमघन' ने भी विदेशी-शासन से पूरा संतोष प्रकट करते हुए कहा है कि जो कुछ उन्नति हुई है वह महारानी विक्टोरिया के राज्य में। सप्तम् एडवर्ड ने भी प्रजा को अधिक अधिकार दिए। अतः यदि भारतीय प्रजा उन पर बलि जाये तो आश्चर्य ही क्या है?[५]

'काव्योपवन' की 'स्वर्गारोहण' शीर्षक कविता में 'हरिऔध' ने महारानी विक्टोरिया के देहावसान पर दुख प्रकट किया है और कहा है कि उनका झंडा

१—भारत भारती, 'अतीत खंड,' पृ० ८०-८१;

२—'है ब्रिटिश शासन की कृपा ही यह कि हम कुछ जग गये।
स्वाधीन हैं हम धर्म में, सब भय हमारे भग गये।
निज रूप को फिर हम सभी कुछ कुछ लगे हैं जानने-
निज देश भारतवर्ष को फिर हम लगे हैं मानने।'
—'भविष्यत् खंड', पृ० १७६

३—'सहसा हुआ विचार कि जिसने हमें नरक से लिया उबार
पड़ी आज कल रण संकट में वह मेरी उदार सरकार'

४—पद्यप्रबन्ध, 'राज्याभिषेक', पृ० १३०-१३१

५—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, 'सौभाग्य समागम', पृ० ३९२-३९३

सबसे ऊंचा फहराता है, भलमनसाहत में उन्हें कोई नहीं पा सकता।[१]

'पद्यप्रमोद' में 'सच्ची उमंग का रंग' के अन्तर्गत 'राजतिलक का दिन' शीर्षक कविता में कवि राजाधिराज के संबंध में लिखते हैं कि सूर्य उनके राज्य में कभी नहीं डूबता है, और सभी व्यक्ति राम-राज्य का सा सुख पाते हैं। उनकी दयादृष्टि से हिन्द को सारी बला नष्ट हो गयी है। उनके गुरुजनों ने देश का सभी दुख मिटा दिया और लोहे को हाथों से छूकर सोना बना दिया। पुल, रेल, तार, डाक, मदरसे, तथा जादू भरी कलें सभी उन्होंने बनवाई। उनके राज्य में एक बुढ़िया भी सोना उछालती हुई निडर चली जाती है। बाघ और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते हैं।[२] 'बरस गाँठ बधाई' शीर्षक कविता में लार्ड हार्डिंज की वर्षगाँठ पर हर्ष प्रकट किया गया है।[३] 'द्विपद' शीर्षक कविता में भी कवि ने वाइसराय के जन्मदिवस पर हर्ष प्रकट किया है और कहा है कि हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई आज एक ही रंग में रंगे हुए दिखाई दे रहे हैं। कलेक्टर स्मिथ की भी प्रशंसा की गयी है।[४]

पद्यप्रमोद की अनेक कविताओं में हरिऔध ने अंग्रेजों की भी अत्यधिक प्रशंसा की है। अंग्रेज जाति के गुणों से कवि बहुत प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। 'बरस गाँठ बधाई' शीर्षक कविता में कवि ने कहा है कि जग में बड़ी निराली जो ब्रिटिश जाति है, जिसने हमें न्यारी जड़ी छुआ के जिलाया और जिसके राज्य में कभी सूरज नहीं डूब सकता है उसी वीर जाति में लाट साहब जन्मे हैं इसी कारण उनका इतना बुलन्द पाया है।[५] 'द्विपद' शीर्षक कविता के अन्त में भी कवि ने कामना की है कि सब गुणों वाली ब्रिटिश जाति का ही हिन्द के सिर पर साया बना रहे।[६] 'एक अपील' शीर्षक कविता में भी ब्रिटिश जाति की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहा है कि इस जाति के लोग कठिनाइयों से नहीं डरते, बेबसी या काहिली उन्हें नहीं दबाती, वे धुन और विचारों के पक्के हैं, जीवट के पुतले हैं, उन्होंने किसी का बसेरा नहीं उजाड़ा, उनकी सचाई का फरेरा उड़ता है, उन्होंने ही हमें सोते से आकर जगाया,

---

१—काव्योपवन, 'स्वर्गारोहण', पृ० १४१-१४२

२—पद्यप्रमोद, 'सच्ची उमंग का रंग' तथा 'राजतिलक का दिन', पृ० १२३-१२४;

३—'बरस गाँठ बधाई' पृ० १२६;

४—'द्विपद', पृ० १२९-१३०;

५—'बरस गाँठ बधाई,' पृ० १२८;

६—'द्विपद,' पृ० १३०

अंधेरे में उजाला दिखाया और वह जड़ी पिलाई जिससे सूखी नसों में भी लहू दौड़ा। कवि ने कहा है कि अगर पहाड़ भी सामने रण में आ जायेगा तो हम लोग नहीं डरेंगे और ब्रिटिश नाम जपते वहीं पर मर मिटेंगे । ब्रिटिश राज्य की तरह किसने प्रजा को पाला-पोसा और प्यार से सम्हाला ? कविता के अन्त में कवि ने प्रार्थना की है कि ब्रिटिश जाति जीते, उसका सुयश सवाया हो और हम सबों पर उसका साया रहे।[१] 'सच्ची उमंग का रंग' के अन्तर्गत 'सबसे बड़ी लड़ाई' शीर्षक कविता मे कवि ने ब्रिटिश जाति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह जाति वैसे ही निराली है फिर इसके साथ रूस, फ्रांस और इटली हैं। इसके मुखड़े की लाली सदैव रही है और सदैव जय की लाली इसके हाथ में रही। कवि का विश्वास है कि ब्रिटिश जाति सबसे आला रहेगी।[२]

मैथिलीशरण गुप्त ने ब्रिटिश शासन से संतोष व्यक्त किया है यद्यपि वे पर-जाति के शासन को सर्वांश में इष्ट नहीं समझते।[३]

'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर' शीर्षक निबन्ध में लिखा है कि भारतीय प्रजा स्वभाव से ही राजभक्त है। राजपरिवार में यदि उसे अधिक नहीं तो इंगलैंड की प्रजा से सौगुनी अधिक भक्ति है। वे कहते हैं कि अंग्रेजी राज्य ने वास्तव में प्रजा का बहुत कुछ उपकार किया, भारत का तो अनेक अंशों में काया-पलट ही कर दिया। शिक्षा-विस्तार से पाश्चात्य शिक्षा और विज्ञान अर्जन कर तथा शान्त शासन से स्वस्थ होकर यहाँ की प्रजा चैतन्य हुई।[४] 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के 'बनाम लार्ड कर्ज़न' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र तथा लार्ड रिपन के शासन से संतोष प्रकट किया है। वास्तव में प्रथम महायुद्ध की समाप्ति तक भारत के राजनीतिज्ञों का भी ब्रिटिश शासन की न्यायशीलता में विश्वास समाप्त नहीं हुआ था। लार्ड हार्डिज के बंग-भंग के रद्द करने तथा शर्त-

---

१—पद्यप्रमोद, 'एक अपील,' पृ० १३०-१३५;

२—'सच्ची उमंग का रंग,' तथा 'सबसे बड़ी लड़ाई,' पृ० १४०-१४२

३—'शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक-विशिष्ट हो,
सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।
यह सत्य है, तो भी ब्रिटिश शासन हमें सम्मान्य है,
वह सुव्यवस्थित है तथा आशा प्रपूर्ण वदान्य है।'
—भारत भारती, अतीत खंड, पृ० ८१

४—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर', पृ० ५०५

बन्दी-कुली-प्रथा के बन्द करने पर जनता को बहुत हर्ष हुआ और इन सफलताओं के कारण १९११ ई० का काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बड़ी प्रसन्नता के साथ मनाया गया। राजनीतिज्ञों का अंग्रेज जाति में विश्वास फिर से सुदृढ़ हो गया। साहित्य में इन भावनाओं का ही प्रतिबिम्ब मिलता है। १९१८ ई० तक प्रमुख राजनीतिज्ञों की नीति सरकार के प्रति सहयोग की ही थी। स्वयं गाँधी जी ने इस महायुद्ध के लिए खेड़ा में सैनिकों की भर्ती की।[१] साहित्यकारों ने भी इसीलिए भारतीयों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से महायुद्ध में भाग लेने के लिए उत्साहित किया है।

ब्रिटिश शासन से असंतोष

जहाँ एक ओर साहित्यकारों ने राजभक्ति प्रकट की है और अंग्रेज जाति के सद्गुणों में पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुए ब्रिटिश शासन को भारत के लिए कल्याण-प्रद माना है, वहाँ दूसरी ओर इस शासन के अवगुणों की ओर भी कवियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। 'प्रेमधन' ने 'जीर्ण जनपद' के 'सामाजिक न्याय' के अन्तर्गत ब्रिटिश शासन के न्याय में अविश्वास प्रकट करते हुए लिखा है कि बिना रुपया खर्च किए न्याय नहीं मिलता और वकीलों की जिरह में सच का झूठ बन जाता है। यदि न्याय आज चाहिए तो बहुत रुपया खर्च करने के उपरान्त दस वर्ष बाद हमें वही न्याय मिलता है।[२] न्याय के सम्बन्ध में काँग्रेस ने भी अपने प्रस्तावों में असंतोष प्रकट किया था जिसका उल्लेख हो चुका है।

'प्रेमधन' ने 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर' शीर्षक निबन्ध में यद्यपि राजभक्ति प्रकट की है परन्तु साथ ही ब्रिटिश राजा की उपमा ठाकुर जी से दी है और कहा है कि पुजारी की तरह वास्तविक अधिकारी तो राजकर्मचारी ही है अतः राजा में भक्ति होने पर भी राजकर्मचारियों के अत्याचारों से धैर्य खोकर प्रजा को अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी है। अब प्रजा भी राजकर्मचारियों की 'वदाम्यहम् ददामि न' वाली नीति समझ चली है।[३]

'शिव शम्भु के चिट्ठे' में बालमुकुन्द गुप्त ने लार्ड कर्ज़न के शासन की भार-

---

१—सीतारमैय्या, पट्टाभि : काँग्रेस का इतिहास, पहला भाग, अध्याय ४, पृ० ६७

२—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भा०, 'जीर्ण जनपद,' 'सामाजिक न्याय', पृ० १८

३—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भा०, 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर,' पृ० ५०८

तीय दृष्टिकोण से आलोचना की है। चुभता हुआ, संयत व्यंग्य लिखने में गुप्त जी अपना सानी नहीं रखते। कर्ज़न के दो मुख्य कार्यों—विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दिल्ली दरबार—का उल्लेख करते हुए लेखक ने उनको 'शो' बताया है, 'ड्यूटी' नहीं और मार्मिक-व्यंग्य से भरी शैली में उनके इन कार्यों की कटु आलोचना की है।[1]

'आशा का अन्त' शीर्षक लेख में बालमुकुन्द गुप्त ने कलकत्ता के म्यूनिसिपल कारपोरेशन की स्वाधीनता समाप्त करने का उल्लेख किया है।[2] लेखक की दृष्टि में इस देश के नमक की विशेषता यह है कि वह आदमी के मन में यही जमा देता है कि जहाँ का खाना, वहीं की खूब निन्दा करना और अपनी शेखी मारते जाना। भारतीयों का दरिद्रता और सर्दी के कारण मर जाने[3] का भी उल्लेख

१—'दिल्ली दरबार में कुछ बातों की कसर रह गयी थी। उदयपुर के महाराणा ने तो हाथियों के जुलूस में साथ चल सके, न दरबार में हाजिर होकर सलामी देने का मौका उनको मिला। इसी प्रकार बड़ौदा नरेश हाथियों के जुलूस में शामिल न थे। वह दरबार में भी आए, तो बड़ी सीधी-सादी पोशाक में—इतनी सीधी सादी में जितनी से आज कलकत्ते में फिरते हैं। वह ऐसा तूम-तराक और ठाठ-बाट का समय था कि स्वयं श्रीमान् को पतलून तक कारचोबी पहनना और राजा-महाराजों को काठ की तथा ड्यूक आफ़ कनाट को चाँदी की कुरसी पर बिठाकर स्वयं सोने के सिंहासन पर बैठना पड़ा था। उस मौके पर बड़ौदा नरेश का इतनी सफाई और सादगी से निकल जाना, एक नयी आन थी। इसके सिवा उन्होंने झुक के सलाम नहीं किया, बड़ी सादगी से हाथ मिलाकर चल दिये थे। यह कई एक कसरें ऐसी हैं, जिनको मिटाने को फिर दरबार हो सकता है। इसी लेख में आगे वे लिखते हैं: 'और भी कई काम हैं, कई कमीशनों के नाम का फैसिला करना है, कितनी ही मिशनों की कारंवाई का नतीजा देखना है। काबुल है, काश्मीर है। काबुल में रेल चल सकती है। काश्मीर में अंग्रेजी बस्ती बस सकती है। चाय के प्रचार की भांति मोटरगाड़ी के प्रचार की इस देश में बहुत जरूरत है। बंग-देश का पार्टीशन भी एक बहुत जरूरी काम है।'

—शिवशम्भु के चिट्ठे, 'श्रीमान का स्वागत,' पृ० १४-१५;

२—'आशा का अन्त,' प० ३२;

३—पृ० ३३,३५

है। लेखक ने इसका भी उल्लेख किया है कि लार्ड कर्ज़न के भारत से जाने के समय बड़ी अशान्ति थी।[1] उन्होंने बंग-विच्छेद से उत्पन्न हुए असंतोष का भी उल्लेख किया है।[2]

ब्रिटिश शासन के दोषों ने भी साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया है। शासन के दोषों का वर्णन प्रथम चरण के साहित्य की अपेक्षा इस द्वितीय चरण के साहित्य में अल्प है। बालमुकुन्द गुप्त ने अवश्य प्रथम चरण में 'स्फुट-कविता' में तथा इस द्वितीय चरण में 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में लार्ड कर्ज़न के शासन काल की कटु आलोचना की है। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति तक भारतीयों के चित्त में अंग्रेज जाति के प्रति भक्ति की भावना अडिग रही। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के उपरान्त भारतीय संतोषप्रद शासन सुधारों की आशा लगाये बैठे थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि युद्ध की समाप्ति के बाद उन्हें स्वशासन सम्बन्धी महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकेंगे, इसी कारण राजनीतिज्ञों ने भारतीयों को युद्ध में भर्ती होने के लिए प्रेरित किया था और साहित्यकारों ने भी इसका अनुमोदन किया। संभवतः इसी कारण शासन के दोषों की ओर उनका ध्यान अपेक्षाकृत कम गया।

समकालीन घटनाओं, समस्याओं तथा व्यक्तियों के उल्लेख

इस समय वातावरण में स्वराज्य बहिष्कार और स्वदेशी की भावना व्याप्त

१—'आपको स्वयं इस बार बेचैनी उठानी पड़ी है और इस देश में जैसी अशान्ति आप फैला चले हैं, उसके मिटाने में आपके पद पर आने वालों को न जाने कब तक नींद और भूख हराम करना पड़ेगा।'—शिवशम्भु के चिट्ठे, 'विदाई संभाषण,' पृ० ४७;

२—'यह बंग-विच्छेद बंग का विच्छेद नहीं है। बंग निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए वरंच और युक्त हो गए। जिन्होंने गत १६ अक्टूबर का दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंगदेश या भारतवर्ष में नहीं, पृथ्वी भर में वह अपूर्व दृश्य था। हाँ, एक बड़े ही पवित्र मेल को हमारे माइ लार्ड विच्छिन्न किये जाते हैं। वह इस देश के राजा-प्रजा का मेल है। भारतवासियों के जी में यह बात जम गई है कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है, और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुर्बल की वह नहीं सुनते।'
—'बंग विच्छेद,' पृ० ५७-५८

थी। कवियों ने भी स्वराज्य की कामना की है। 'भारत गीत' में 'स्वराज्य स्वागत' शीर्षक दो गीतों में भारत की ओर से स्वराज्य का आवाहन किया गया है। कवि का दृढ़ विश्वास है कि स्वराज्य के आगमन से भारत सुखी होगा। स्वराज्य और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का उल्लेख 'प्रेमघन' ने 'चरखे की चमत्कारी' के दूसरे गीत में किया है।[१] वे लिखते हैं कि एकता के साँचे में स्वराज्य का सिक्का ढल रहा है और होलिका में विदेशी वसन जल रहे हैं।[२]

मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' पुस्तक के उत्तरार्द्ध में प्रवासी भारतीयों के कष्टों का वर्णन है। पुस्तक का नायक फीजी द्वीप में जाता है और वहाँ नाना कष्ट झेलता है। समकालीन राजनीति में प्रवासी भारतीयों की समस्या बड़ी जटिल होती जा रही थी। कवि ने राजनीतिक और सामाजिक जीवन की इस समस्या को प्रधानता दी है और इस प्रथा के समाप्त हो जाने पर हर्ष प्रकट किया है।

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने भी 'कृषक क्रन्दन' में इस समस्या का उल्लेख किया है। कृषक कहता है कि चाहे भारत में जन्म देकर फीजी भिजवाना, चाहे नेटाल भेजकर खान खुदवाना, मुझे वहाँ पर कोड़े खाना मंजूर है, परन्तु हे भगवान मुझे भारत का कृषक मत बनाना।[३]

इसके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में अन्य घटनाओं का उल्लेख भी कवियों ने किया है। 'काव्योपवन' में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने श्री व्हाइट के आगमन पर हर्ष प्रकट किया है। व्हाइट ने भारत में विद्या की जो उन्नति की उस पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कवि ने उनसे प्रार्थना की है कि वे नागरी की बाँह पकड़ें और उसे राजकाज में स्थान दें।[४] 'प्रेमघन' ने 'संगीत काव्य' के अन्तर्गत 'उत्साह' शीर्षक गीत में रूस की फौजों के चढ़ आने का उल्लेख किया है।[५]

इंडियन नेशनल काँग्रेस को इन साहित्यकारों ने देश के लिए हितकारक माना है। मनोविनोद (नवीन संस्करण) की 'काँग्रेस बधाई' शीर्षक कविता में श्रीधर पाठक ने काँग्रेस की प्रशंसा की है। 'शुभ सम्मिलन' शीर्षक कविता बदरीनारायण

१—भारत गीत, 'स्वराज्य स्वागत,' पृ० ५१-५३

२—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, 'चरखे की चमत्कारी,' पृ० ६३३-६३४;

३—'कृषक क्रन्दन,' पृ० १०

४—काव्योपवन, 'प्रशंसावली,' पृ० १५३-१५५

५—प्रेमघन सर्वस्व, प्र० भाग, संगीत काव्य, 'उत्साह', पृ० ५५२

चौधरी 'प्रेमधन' ने काशी की इक्कीसवीं कांग्रेस में आये हुए प्रतिनिधियों के स्वागत में लिखी है।[1]

रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' नामक काव्य (१९१७ ई०) में इटली देश पर आस्ट्रियनों के अत्याचार तथा इटली निवासियों का इसके विरोध में जागृत होकर आस्ट्रियनों को देश से भगा देने की कथा है। विषय देश भक्ति की भावना से ओतप्रोत है। भारत की अवनति, विदेशियों के अत्याचार तथा एक संगठित विद्रोह की आवश्यकता पर परोक्ष रूप से बल दिया गया है। अत्याचार के विरोध में सशक्त विद्रोह को भी न्याय ठहराया गया है।

'प्रतिफल देना उन्हें उचित है घर विकराल कृपाण।
निश्चय है उनका अब होगा बहुत शीघ्र अवसान॥'[2]

विदेशी शासन के दोष, देश की दरिद्रता, स्वदेश से अनुराग, स्वतंत्रता की कामना आदि का वर्णन स्पष्ट करता है कि परोक्ष रूप से इस पुस्तक पर राष्ट्रीय आन्दोलन का बहुत अधिक प्रभाव है।

नवयुग की विचार परम्परा का दर्शन पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में भी मिलता है। चन्द्रहास (१९१६) में कौन्तलप चन्द्रहास से कहता है कि प्रजा-वर्ग के लिए ही राज्य है। राज-सत्ता इसीलिए है कि देश में दुर्व्यवस्था न हो।[3] इस कथन पर स्पष्ट रूप से आधुनिक काल की प्रजातांत्रिक विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

काँग्रेस की गतिविधि की ओर बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने विशेष रूप से ध्यान दिया है। 'भावी भारतीय महा सम्मिलन' शीर्षक निबन्ध में वे लिखते हैं कि इण्डियन नेशनल काँग्रेस ने अब व्यापार की ओर विशेष ध्यान देकर अधि-वेशनों के साथ-साथ प्रदर्शनियाँ खोलनी आरम्भ की हैं। स्वदेशी आन्दोलन ने हमारे देश के कारीगरों को उन्निद्रित कर मरते-मरते बचाया है।[4] लेखक ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की है कि दादा भाई नौरोजी सभापति के आसन को तीसरी बार सुशोभित करेंगे। श्री चारलू के इस कथन से भी उन्होंने सहमति प्रकट की है कि काँग्रेस के सभापति अधिवेशनों के बाद ही पदत्याग न करके वर्ष भर आसन

१—'शुभसम्मिलन', पृ० ३६६
२—मिलन, पृ० २
३—चंद्रहास, पंचक अंक
४—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'भावी भारतीय महा सम्मिलन,' पृ० २२९

ग्रहण किए रहें तो अधिक उत्तम हो। लेखक ने श्री वेंकटेश्वर समाचार के इस कथन का भी अनुमोदन किया है कि चूंकि अंग्रेज लोग यह कहने का अवकाश पा रहे हैं कि काँग्रेस केवल पढ़े-लिखे व्यक्तियों की संस्था है और देश के जनसाधारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं अतः गाँव-गाँव में पंचायत होना आवश्यक है।[१] 'नेशनल काँग्रेस की दुर्दशा' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने सूरत में काँग्रेस के दो दलों में विभक्त हो जाने पर क्षोभ प्रकट किया है।[२]

१९०७ ई० के बाद से देश में आतंकवादी दल बलवान होता जा रहा था। 'नेशनल काँग्रेस की दुर्दशा' शीर्षक निबन्ध में 'प्रेमघन' लिखते हैं कि बंग-भंग से क्षुब्ध होकर देश में एक नवीन राजनीतिक दल की सृष्टि हुई है जो 'एक्सट्रीमिस्ट' के नाम से प्रख्यात है।[३] 'भारतीय नागरी भाषा' शीर्षक निबन्ध में 'प्रेमघन' ने कुली-प्रथा का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि पहले यहाँ से जो हिन्दू पकड़ कर जाते थे वे गुलामी के लिए बेचे जाते थे। आज भी अफ्रीका आदि देशों में यहाँ से कुलियों के जाने के कारण हिन्दुस्तानी नाम सुनकर वहाँ वाले कुली ही समझते हैं। मारिशस आदि स्थानों के प्रवासियों की दशा सब पर विदित ही है।[४] इसी निबन्ध में हिन्दी की दशा पर भी लेखक ने खेद प्रकट किया है। वे लिखते हैं कि सर एन्टनी मैकडानल के जमाने में किसी प्रकार मालवीय जी ने मातृभाषा का राज कार्यालयों में प्रवेश भी कराया। परन्तु अभी तक उर्दू की ही तूती बोल रही है।[५] 'नीरद का नवीन वर्षारम्भ' शीर्षक निबन्ध में 'विगत वृतान्त व्यवस्था' उपशीर्षक देकर 'प्रेमधन' ने अनेक घटानाओं का उल्लेख किया है, जैसे बिहार, बंगाल, चंपारन, मुजफ्फरपुर तथा दरभंगा आदि स्थानों की दशा का बाढ़ के कारण शोचनीय हो जाना, दादाभाई नौरोजी का ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में प्रवेश करना, अनेक स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे होना, बंगाल में पुनः जूरी प्रथा का प्रचार होना, तथा देश में कई कारखानों का खुलना आदि।[६] 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने वर्णन किया है कि किस प्रकार प्रजा के दृष्टि-

१—प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'भावी भारतीय महा सम्मिलन', पृ० २३१-२३२;
२—'नेशनल काँग्रेस की दुर्दशा', पृ० ३०६;
३—पृ० ३११;
४—'भारतीय नागरी भाषा,' पृ० ३८३;
५—पृ० ४१८;
६—'नीरद का नवीन वर्षारम्भ,' पृ० ४७२-४७३

कोण में क्रमशः परिवर्तन हुआ। वे लिखते हैं कि लार्ड लिटन के समय से प्रजा के विश्वास का ह्रास आरम्भ हुआ और प्रेस-ऐक्ट से देश में अधिक असंतोष बढ़ा। यद्यपि रिपन के राज्य ने इस विश्वास को पुनः परिवर्तित किया किन्तु इलबर्ट-बिल की घटना ने प्रजा का भ्रम दूर करके देश में दूसरे ही मत का प्रचार किया। बंग-भंग से प्रजा की भक्ति और विश्वास समाप्त हो चले, जान माल ने रही-सही आशा भी समाप्त कर दी। निदान बंगाल की प्रजा ने स्वदेशी स्वीकार और विदेशी बहिष्कार की शपथ ले ली। शिक्षित मण्डली के दो दल हो गए——शान्त व उग्र।[1] ''नवीन वर्षारम्भ' शीर्षक निबन्ध में लेखक लिखते हैं कि राजनीतिक उपद्रव की वृद्धि और उसका आधिक्य क्रमशः विस्तार पाते ही चले जाते हैं। राज्याधिकारियों की ओर से प्रजा-दर्प-दमन और उग्र दण्ड विधान की नीति चल रही है।[2] इसी निबन्ध में 'भयंकर दुष्काल' उपशीर्षक देकर युक्त प्रान्त के भयंकर अकाल का वर्णन लेखक ने किया है।[3]

प्रेमचन्द के 'नवनिधि' कहानी संग्रह की 'पछतावा' कहानी पर गांधीवाद——जिसमें अहिंसा, सत्य और प्रेम के द्वारा हृदय परिवर्तन की नीति प्रमुख है——का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। दुर्गानाथ अहिंसा और प्रेम से गाँव वालों से लगान वसूल करना चाहते हैं और इसमें सफल भी होते हैं।

उपन्यासों में समकालीन राजनीतिक घटनाओं के उल्लेख नहीं प्राप्त होते। अपवाद स्वरूप 'याकूती तख्ती वा यमज सहोदरा' के प्रथम परिच्छेद में १८९८ ई० में जेठ के महीने में बंगाल में भयानक प्लेग फैलने का उल्लेख है।

इस काल के कवियों ने समकालीन राजनीतिक घटनाओं और परिस्थितियों की ओर विशेष ध्यान दिया है। काव्य में स्वराज्य, विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार, मादक-द्रव्य-निषेध तथा चरखे आदि के उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। 'किसान' तथा 'कृषक क्रन्दन' में प्रवासी-भारतीयों की समस्या ली गयी है। 'प्रेमघन' के निबन्धों में राजनीतिक परिस्थितियों के उल्लेख अधिक मिलते हैं। प्रवासी-भारतीयों की समस्या का उल्लेख उन्होंने भी किया है। इसके अतिरिक्त इण्डियन नेशनल कांग्रेस, आतंक-

---

१——प्रेमघन सर्वस्व, द्वि० भाग, 'आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर,' पृ० ५०९-५११;

२——'नवीन वर्षारम्भ,' पृ० ५१९;

३——पृ० ५२४

वादी-दल तथा सरकार की दमन-नीति आदि के महत्वपूर्ण उल्लेख भी उनके निबन्धों में प्राप्त होते हैं ।

कविता और निबन्ध के अतिरिक्त साहित्य के अन्य रूपों में समकालीन घटनाओं और परिस्थितियों का उल्लेख नगण्य-सा है ।

आन्दोलन के प्रथम चरण में देश के नेताओं के प्रति आदर व्यक्त करने वाली कविताएँ अत्यल्प थीं । इस दूसरे चरण में कवियों ने देश के नेताओं के प्रति आदर प्रकट किया । श्रीधर पाठक की दो रचनाएँ, 'गोखले गुणाष्टक' तथा 'गोखले प्रशस्ति' गोपालकृष्ण गोखले गुणगान में रची गयी हैं । 'गोखले गुणाष्टक' में कवि ने गोखले के गुणों का वर्णन विशेष रूप से किया—उन्होंने जाति-पाँति के भेद को नहीं माना, स्वजनों के उद्धार के लिए अफ्रीका गए, अल्प-वृत्ति पर अध्यापक रहे , शिक्षालय के लिए उन्होंने भिक्षा का व्रत लिया, भारत सेवक समिति की स्थापना की, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखा तथा स्वराज्य की आशा की उद्भावना की । 'गोखले प्रशस्ति' में संस्कृत के नौ श्लोक गोखले की प्रशंसा में लिखे गये हैं, उनके द्वारा अफ्रीका प्रवासी बन्धुओं के कष्ट हरने का भी उल्लेख कवि ने किया है । काव्य के अतिरिक्त साहित्य के अन्य रूपों में नेताओं के प्रति आदरपूर्ण उल्लेख अधिक नहीं मिलते ।

राष्ट्रीयता का स्वरूप

अब अन्तिम प्रश्न राष्ट्रीयता के स्वरूप के सम्बन्ध में आता है । जिन कवियों अथवा लेखकों का सम्पर्क इण्डियन नेशनल कांग्रेस से अधिक रहा उन्होंने पूर्णतः राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही ग्रहण किया है और प्रत्येक जाति वाले तथा प्रत्येक धर्मावलम्बी को भारतीय माना है । 'प्रेमघन' ने 'स्वदेश विन्दु' के अन्तर्गत 'चरखे की चमत्कारी' गीत में कामना की है कि हिन्दू, मुसलिम, जैन, पारसी, ईसाई सभी जाति के व्यक्तियों में प्रेम बढ़े और सभी भारतीय भाई सुखी हों ।[1] कांग्रेस रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू मसलिम ऐक्य बढ़ाना भी था । कवियों ने भी एकता में विश्वास प्रकट किया ।

इसके विपरीत हरिऔध ने 'काव्योपवन' में स्पष्ट कहा है कि हम लोग हिन्दू रह कर ही भारत के रहते हैं । मुसलमानों में चाहे हिन्दू रक्त भी हो, फिर भी वे विदेशी-संस्कृति से प्रेम करते हैं । इसी प्रकार ईसाई भी यूरोप का ही चाल-ढाल

१—प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, 'चरखे की चमत्कारी,' पृ० ६३२

पसन्द करते हैं । ब्रह्म-समाजियों और आर्य-समाजियों के लिए भी कवि ने कहा है कि कहने को ये भारतवासी बनते हैं परन्तु ये भी यूरोप की बातों पर जाते हैं और जातीयता इन्हें नहीं भाती है । ये कलह और फूट फैलाते हैं ।[१] इससे स्पष्ट है कि कवि की उन्हीं के साथ सम्पूर्ण सहानुभूति है जो प्राचीन-हिन्दू-संस्कृति को अपनाने वाले हैं । धर्म और जाति के अतिरिक्त जो भावना में भी विदेशी-संस्कृति को अपनाते हैं उनसे कवि का विरोध है । आर्य समाज ने यद्यपि विदेशी-संस्कृति को स्वीकार नहीं किया था फिर भी कवि के ऐसा लिखने का कारण संभवतः यही होगा कि आर्य-समाज ने सनातन-हिन्दू-धर्म में परिवर्तन करना चाहा था । एक अन्य लावनी में कवि ने श्राद्ध-कर्म का मर्म समझाया है और कौमियत को न छोड़ने का आग्रह किया है ।[२] 'प्रियप्रवास' में भी हरिऔध ने कहा है कि अपनी जाति को संकट से उबारना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्म है । ब्रज में दावानल लगने पर कृष्ण गोपों से कहते हैं कि वीरों, बढ़ कर स्वजाति का भला करो । हमें दोनों ओर अपार लाभ है । यदि उबार लिया तो स्वकर्तव्य पूरा होगा और यदि भस्म हो गए तो सुकीर्ति मिलेगी ।[३] हरिऔध को जातीयता से विशेष प्रेम है । 'पद्यप्रमोद' में 'सुशिक्षा सोपान' के अन्तर्गत 'अविनय' शीर्षक कविता में कवि ने कामना की है कि हमारी नयी-पौध की धमनियों में पूत-जाति-हित की धारा बहे ।[४] 'हमें चाहिए' शीर्षक कविता में भी कवि ने कहा है कि हमें ऐसा सुधारक चाहिए जिसकी रुचि जातीय-रंग बीच रंगी हो ।[५] 'सुविवचार संग्रह' के अन्तर्गत 'आरम्भ शूरता' शीर्षक कविता में कवि ने हिन्दू जाति को सम्बोधित करके कहा है कि ज्ञान गौरवमयी हिन्दू जाति, आरम्भशूरता दोष को बिना तजे तू कर्मक्षेत्र में कभी जयी नहीं होगी ।[६]

'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने आर्यत्व तथा हिन्दुत्व की भावना विशेष रूप से व्यक्त की है । यह हिन्दू जाति के उत्थान और पतन का ही काव्य है । स्थान-स्थान पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं जैसे 'हत भाग्य हिन्दू जाति ! तेरा पूर्व दर्शन है कहाँ ?' 'भविष्यत् खण्ड' के अन्त में कवि ने लिखा है कि—

१—काव्योपवन, 'आर्यपंचक,' 'लावनी', पृ० १६७;

२—पृ० १६४-१६७

३—प्रियप्रवास, एकादश सर्ग, पृ० १८१

४—पद्यप्रमोद, 'सुशिक्षा सोपान', 'अविनय', पृ० १०२;

५—'हमें चाहिए,' पृ० १६७

६—सुविचार संग्रह, 'आरम्भशूरता,' पृ० ३५

'ऐसा न हो जो अन्त में चर्चा करें ऐसी सभी—
थी एक हिन्दू नाम की भी निन्द्य जाति यहाँ कभी।'[१]

'भविष्यत्-खण्ड' में उद्‌बोधन है। इसमें कवि ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों को अलग-अलग सम्बोधित किया है किन्तु मसलमानों अथवा ईसाइयों का कोई उल्लेख नहीं आया है। वर्तमान-खण्ड में भी इन चार वर्णों का उल्लेख है परन्तु हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों का नहीं। वर्तमान-खण्ड में धर्म सम्बन्धी मतभेद की गर्हणा करते हुए कवि ने शैव-वैष्णव तथा सगुण-निर्गुण का ही उल्लेख किया है। इन सब से स्पष्ट है कि उनका अभिप्राय केवल हिन्दुओं से है। हिन्दू-धर्म को ही उन्होंने 'विख्यात, सच्चा, सनातन' धर्म माना है। वर्तमान-खण्ड में उन्होंने गोवध का विरोध किया है और मुसलमानों से आग्रह किया है कि वे भारत को अरब से कम न समझें।[२]

'भारत गीताँजलि' में कवि माधव शुक्ल ने भी हिन्दू-संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग व्यक्त किया है। अधिकांश कविताओं में हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति की उन्नति की कामना की गयी है।[३]

मनोविनोद (नवीन संस्करण) में कवि श्रीधर पाठक ने आर्य जाति के महत्व का उल्लेख किया है।[४]

प्रेमघन जी ने जिस प्रकार काव्य में हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर बल दिया है उसी प्रकार निबन्धों में भी। मुसलमानों का भारत में अस्तित्व वह ठीक ऐसा ही मानते हैं जैसे बौद्ध, जैन, वैष्णवों और शाक्तों का, परन्तु उनका विचार है कि विदेशी राजा के अनेक कूटनीति-विशारदों ने प्रजा में फूट फैलायी।

प्रथम चरण की भाँति इस द्वितीय चरण में भी साहित्यकारों में हिन्दू जातीयता की भावना प्रधान रही। 'प्रेमघन' के अतिरिक्त अन्य सभी कवियों ने हिन्दू जाति को ही भारतीयों का समानार्थक माना है। 'प्रेमघन' के साहित्य पर कांग्रेस का विशेष प्रभाव है अतः उन्होंने विशुद्ध राष्ट्रीय-दृष्टिकोण अपनाया है। काव्य और निबन्ध के अतिरिक्त साहित्य के अन्य रूपों में इस सम्बन्ध में विचार नहीं प्रकट किए गए हैं।

१—भारत भारती, भविष्यत् खण्ड, 'उद्‌बोधन,' पृ० १५३;
२—वर्तमान खण्ड, 'गोवध,' पृ० ९८
३—भारत गीतांजलि, (१८) देश तथा (२३) चेतावनी आदि
४—मनोविनोद (नवीन संस्करण), 'आर्य जाति,' 'आर्य सुन्दरी'

अध्याय ३

असहयोग-आन्दोलन का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

१९१८–१९२८ ई०

●

१९१८ ई० में महायुद्ध समाप्त हो गया। भारतीय जिस आशा से युद्ध की समाप्ति की ओर देख रहे थे वह १९१९ ई० के अपर्याप्त सुधारों के कारण निराशा में परिणत हो गई। मुसलमान खिलाफ़त के प्रश्न पर चिन्तित थे ही।

१९१९ की फ़रवरी में रालेट-बिल प्रकाशित किए गए। इनसे सम्बन्धित जालियानवाला बाग के हत्याकांड (१९१९ ई०) ने भारतीय-राजनीति के इतिहास को एक नई ही दिशा दे दी। रालेट-बिल दो थे। एक अस्थायी था, जिसमें यह विधान था कि क्रान्तिकारियों के मुकदमे हाईकोर्ट के तीन जजों की अदालत में पेश हों और वे शीघ्र ही उनका फ़ैसला कर दिया करें तथा जिन स्थानों में क्रान्तिकारी अपराध अधिक हों वहाँ अपील का भी अधिकार न दिया जाये। जिन व्यक्तियों पर सन्देह हो उनसे जमानत ले ली जाय या उन्हें किसी विशेष स्थान में रहने या किसी विशेष कार्य करने से रोका जाय। परन्तु ऐसा हुक्म देन से पहले उनके ऊपर लगाए गए आरोपों की जाँच एक गैरसरकारी व्यक्ति तथा एक जज कर लिया करें। खतरनाक व्यक्ति, जो पहले से जेल में हों, उन्हें लगातार जेल में रोका भी

जा सकता है। दूसरा बिल साधारण फ़ौजदारी कानून में एक स्थायी परिवर्तन चाहता था जिसके द्वारा किसी राजद्रोही सामग्री का प्रकाशन या वितरण करने के उद्देश्य से उसे पास रखना ऐसा अपराध माना जा सकता था जिसमें जेल की सज़ा हो सकती थी। पहला बिल मार्च में पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया। महात्मा गांधी ने कहा कि यदि रालेट कमीशन की सिफारिशों को ऐक्ट बनाया गया तो वे सत्याग्रह-युद्ध छेड़ देंगे। उनके आन्दोलन में देश ने पूर्ण साथ दिया। सत्याग्रहियों ने किसी को भी जानमाल की हानि न पहुँचाने की प्रतिज्ञा की थी तथा नम्रतापूर्वक इन कानूनों को मानने से इन्कार कर दिया था। इस समय हिन्दू और मुसलमानों में उच्च कोटि का सहयोग था और छोटे दलों ने भी भेद-भाव भुला दिए थे। मुसलमानों को युद्ध के बाद टर्की की अस्त-व्यस्त अवस्था तथा खिलाफ़त के लिये खतरे के कारण बहुत क्षोभ था। हिन्दुओं ने मुसलमानों के प्रति सहानुभूति रक्खी। हिन्दू मुस्लिम एकता का यह मुख्य कारण था।

पहले ३० मार्च तथा बाद में ६ अप्रैल हड़ताल, प्रार्थना, प्रायश्चित आदि का दिन निश्चित हुआ था। इस बार कांग्रेस अमृतसर में होनेवाली थी। पंजाब के शासक सर माइकेल ओडायर यह नहीं चाहते थे कि पंजाब में भी उत्तेजना फैले। अमृतसर के ज़िलाधीश ने किचलू और सत्यपाल को जो वहाँ कांग्रेस का संगठन कर रहे थे, अपने स्थान पर बुलाकर किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। जब इसके विरोध में भीड़ ज़िलाधीश महोदय से उनका पता पूछने के लिए चली तो फौजी सिपाहियों ने उन्हें रोक लिया और भीड़ पर गोली चलाई गई। गुजरानवाला, कसूर, लाहौर, कलकत्ता, अहमदाबाद आदि स्थानों पर भी हिंसा-कांड हुए। गांधी जी ने पंजाब न जाने के हुक्म को मानना अस्वीकार कर दिया परन्तु उन्हें पंजाब न पहुँचने दिया गया और मार्ग से ही उन्हें बम्बई भेज दिया गया। गांधी जी की गिरफ़्तारी से देश में कई स्थानों में उपद्रव हुए और गांधी जी ने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया। १३ अप्रैल को अमृतसर में जालियानवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें लगभग २० हजार आदमी जमा थे। चूँकि यह डुग्गी पिटवा दी गई थी कि कोई सभा करने की अनुमति नहीं दी जायगी, फिर भी लोगों ने सभा की, अत: जेनरल डायर ने जालियानवाला बाग में प्रवेश करके लोगों को तितर-बितर होने की आज्ञा दी और उसके तीन मिनट बाद ही गोली चलवा दी हालाँकि जालियानवाला का प्रवेश द्वार इतना संकीर्ण था कि स्वयं जेनरल डायर को अपनी फौजी गाड़ी बाहर छोड़ देनी पड़ी थी। कुल १६०० फ़ायर किये गए और सरकार के आँकड़ों के अनुसार मृतकों की संख्या ४०० तथा घायलों की एक से दो हजार

के बीच में थी। घायलों को बिना डाक्टरी सहायता के, बिना पानी तक के रात भर वहीं पड़ा रहने दिया गया। इसके बाद तरह-तरह के अत्याचार पंजाब निवासियों के ऊपर किये गए। संक्षेप में कर्नल ओब्रायन ने गुजरानवाला में, कैप्टिन डोवटन ने कसूर में तथा मिस्टर बासवर्थ स्मिथ ने शेखूपुरा में अत्याचार करने में अपनी सारी बुद्धि और शक्ति व्यय कर दी। जलियानवाला बाग के हत्याकांड का राजनीतिक दृष्टि से तो देश पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा ही, साहित्य में भी जलियानवाला बाग के हत्या-कांड के अनेक उल्लेख तथा सरकार के दमन के बहुत से वर्णन प्राप्त होते हैं। इस नृशंस-हत्याकांड से भारतीयों को अंग्रेजों की न्यायशीलता का भरोसा नहीं रहा। सरकार की दमन-नीति के कारण शासन के प्रति तीव्र असंतोष का भाव साहित्य में भी अभिव्यक्त हुआ।

चारों ओर से पंजाब के अत्याचारों की जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त करने की माँग होने लगी। सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने हन्टर कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की परन्तु इसके साथ ही इंडेम्निटी बिल आया जिससे अधिकारी सजा पाने से बच सकते थे। यह बिल पास हो गया।

गांधी जी ने सत्याग्रह तो रोक ही दिया था। उन्होंने सत्याग्रहियों को स्वदेशी का प्रचार करने तथा हिन्दू-मुसलिम ऐक्य बढ़ाने की सलाह दी। कांग्रेस कमिटी ने हंटर कमिटी से स्वतंत्र रूप से पंजाब के अत्याचारों की जाँच की। १९१९ की कांग्रेस अमृतसर में ही हुई और अनेक प्रस्तावों के साथ युवराज के स्वागत के बारे में प्रस्ताव यहाँ पास हुआ। इस चरण के साहित्य में राजभक्ति की भावना नहीं मिलती, केवल एक दो स्थलों पर अंग्रेजों की प्रशंसा अवश्य की गई है। इसके अतिरिक्त स्वदेशी, किसानों, मजदूरों, यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति, प्रवासी-भारतीयों तथा तीसरे और मझले दर्जे की रेल-यात्रा के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पास हुए।

जनता पंजाब तथा खिलाफत के प्रश्न पर अत्यधिक चिन्तित थी। गाँधी जी अब असहयोग चाहते थे। मई में टर्की के साथ की गई शर्त्तें प्रकाशित हो गईं जिससे खिलाफ़त आन्दोलन और भी बढ़ा। गांधी जी आल इंडिया होमरूल लीग के प्रेसीडेन्ट हो गये थे। उस हैसियत से उन्होंने एक वक्तव्य निकाला जिसमें स्वदेशी, हिन्दू-मुसलिम एकता, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा मानना तथा प्रान्तों का भाषा के अनुसार निर्माण करना शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करने के साधन माने। कांग्रेस-लीग-योजना को देशी भाषाओं में अनुवादित कराने के बाद, हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा मानने का यह निर्णय, भाषा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। शर्त्तबन्दी-

कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन गांधी जी तथा श्रीमती बेसेन्ट ने किया। १ जनवरी १९२० को यह प्रथा समाप्त कर दी गई और वे कुली जिनकी पाँच साल की अवधि समाप्त नहीं हुई थी मुक्त कर दिए गए।

हंटर रिपोर्ट २८ मई, १९२० को प्रकाशित हुई। २ जून, १९२० को सब दलों के नेताओं की एक सभा इलाहाबाद में हुई और असहयोग करना निश्चित हुआ। असहयोग का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए गांधी जी तथा कुछ मुसलमान नेताओं की एक समिति नियुक्त की गई। इस कमिटी ने स्कूलों, अदालतों, कौंसिलों तथा विदेशी माल के बहिष्कार को असहयोग कार्यक्रम में शामिल किया। इसने उपाधियों तथा सरकारी उत्सवों का त्याग करने के लिए भी कहा। नागपुर कांग्रेस में इन सभी बातों को मान लिया गया। ड्यूक आफ केनाट के सम्मान में होने वाले उत्सवों में भाग लेने एवं सहायता देने की मनाही कर दी गई। कांग्रेस का ध्येय बदलकर 'शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना' घोषित किया गया। असहयोग के आकर्षक कार्यक्रम का प्रभाव इस चरण के साहित्य पर बहुत पड़ा है। साहित्यकारों ने स्वदेशी, बहिष्कार तथा स्वराज्य के उल्लेख किये हैं तथा इन सब में विश्वास प्रकट किया है।

नागपुर कांग्रेस में ही खाद्य पदार्थों के निर्यात् की नीति की निन्दा की गई तथा देशी नरेशों से भी प्रार्थना की गई कि वे अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी-शासन स्थापित करने का प्रयत्न करें।

नागपुर कांग्रेस के आदेश की प्रतिक्रिया बहुत अच्छी रही। कौंसिलों का बहिष्कार सफल रहा। जगह-जगह राष्ट्रीय स्कूल खोले गये, इन राष्ट्रीय-स्कूलों का विस्तृत पाठ्यक्रम तो नहीं बन पाया था परन्तु हिन्दुस्तानी भाषा तथा चर्खा कातना सिखाना तय हुआ। पंचायतों का संगठन किया गया और मद्य-निषेध-आन्दोलन चलाया गया। सरकार का दमन-चक्र चल रहा था और अली भाइयों को गिरफ्तार कर लिया गया था परन्तु देश ने अहिंसात्मक-वातावरण रक्खा था, अतः दिल्ली की ५ नवम्बर की महासमिति की बैठक ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को अपने उत्तरदायित्व पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में कर-बन्दी भी सम्मिलित थी। हर एक सत्याग्रही के लिए चर्खा चलाना, विदेशी वस्त्रत्याग, खद्दर पहनना, हिन्दू मुस्लिम एकता तथा अहिंसा में विश्वास करना आवश्यक था। चरखा, खादी, विदेशी-वस्त्र-त्याग, हिन्दू-मुस्लिम-एकता तथा अहिंसा आदि सभी विषयों के उल्लेख इस काल के साहित्य में बहुत प्राप्त होते हैं।

१७ नवम्बर, १९२१ को युवराज भारत में आये। उनके बम्बई आने के दिन ही शहर (बम्बई) में दंगा हुआ और कई दिन तक चलता रहा। विदेशी कपड़ों की होली भी जलाई गई। अहमदाबाद कांग्रेस में हिन्दी कांग्रेस की मुख्य भाषा रही। सत्याग्रहियों की संख्या २० हजार से बहुत ऊपर पहुँच गयी थी लेकिन सामूहिक सत्याग्रह लोगों को बहुत आकर्षित कर रहा था। गाँधी जी ने वाइसराय के पास एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने बारडोली में कर-बन्दी आन्दोलन करने का निश्चय किया परन्तु चौरीचौरा तथा मद्रास में हिंसा हो जाने के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। १३ मार्च, १९२२ ई० को गाँधी जी गिरफ़्तार कर लिए गए। चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू तथा विट्ठल भाई पटेल कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे। उनका विचार था कि असहयोगियों को कौंसिलों में प्रवेश करके अड़ंगा-नीति का पालन करना चाहिए तथा स्वराज्य, पंजाब और खिलाफत संबंधी प्रस्ताव ही उपस्थित करने चाहिए। अतः कौंसिल प्रवेश में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों ने स्वराज्य पार्टी बनाई।

नागपुर की पुलिस ने १ मई को जुलूस को झंडे सहित सिविल लाइन्स में जाने से रोक दिया। फलस्वरूप नागपुर झंडा-सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ जो शीघ्र ही एक अखिल भारतीय आन्दोलन हो गया और सत्याग्रहियों की विजय हुई।

फ़रवरी १९२४ ई० में गाँधी जी को छोड़ दिया गया क्योंकि इससे पहले वे भयानक रूप से बीमार पड़ चुके थे।

स्वराज्य-पार्टी बनने के बाद देश की विभिन्न कौंसिलों में निर्वाचन में भाग लिया गया। स्वराजी बड़ी संख्या में कौंसिल में पहुँचे और सरकार को कई बार हार खानी पड़ी। उसी वर्ष कोहाट तथा अन्य स्थानों में भयंकर दंगे हुए। हिंसा की प्रवृत्ति भी बढ़ रही थी। गोपीनाथ साहा ने आर्नेस्ट डे की हत्या कर दी थी। काँग्रेस ने इस हिंसात्मक-प्रवृत्ति का विरोध किया। बेलगाँव काँग्रेस में गाँधी जी ने स्वराज्य की जो योजना बताई उसमें देशी-भाषाओं द्वारा सरकारी काम-काज तथा हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा मानना भी था। १९२५ में भी काँग्रेस और महासमिति की कार्रवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनाई गई। स्वराजियों को कौंसिलों में बड़ी सफलता मिल रही थी। कानपुर काँग्रस (१९२५) के अवसर पर गाँधी जी ने यह भी बताया कि लोगों में जोश तथा उत्साह कम होने के कारण सत्याग्रह अभी नहीं आरम्भ हो सकता है। १९२५ और १९२६ में हिन्दू-मुस्लिम दंगे बहुत हुए, विशेषतः दिल्ली, कलकत्ता तथा इलाहाबाद में। १९२६ में कलकत्ता में बड़ा भयानक साम्प्रदायिक-दंगा हो गया। गोहाटी काँग्रेस में केनिया के प्रवासी

भारतीयों के लिए एक प्रस्ताव पास किया गया क्योंकि वहाँ का कानून भारतीयों के लिए अधिक कठोर होता जा रहा था।

काँग्रेस की महासमिति ने एक एकता-सम्मेलन किया। सम्मेलन ने महासमिति को यह अधिकार दे दिया कि वह एकता का प्रचार करने के लिए हर प्रान्त में एक एक कमेटी नियुक्त करे। हिन्दू-मुसलिम-एकता से इस चरण की राजनीति का प्रारम्भ हुआ था और उसके बाद हिन्दू-मुसलिम दंगा के कारण एकता का बहुत प्रचार किया गया। इस चरण के साहित्य में भी इसीलिए हिन्दू-मुसलिम-एकता का आग्रह बहुत किया गया है। इसी समय साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई जिसका सभी दलों ने विरोध किया क्योंकि इसमें एक भी भारतीय नहीं था। १९२७ की मद्रास-काँग्रेस में बर्मा को भारत से अलग करने के सरकारी प्रयत्नों की निन्दा हुई। साइमन कमीशन तथा ब्रिटिश माल के बहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ तथा काकोरी केस के अभियुक्तों को बर्बरतापूर्ण सजाएँ दिये जाने पर शोक प्रस्ताव पास हुआ। इसी काँग्रेस में भारतीय जनता का लक्ष्य 'पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता' घोषित किया गया। ३ फ़रवरी, १९२८ को कमीशन बम्बई आया अतः उस दिन देश भर में हड़ताल मनाई गई और कमीशन का बहिष्कार बहुत सफल रहा। दिल्ली में फरवरी-मार्च में सर्वदल-सम्मेलन की भी बैठक हुई। यह निश्चित हुआ कि भारतीय-विधान के सिद्धान्तों का मसविदा तैयार करने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त की जाय जो १ जुलाई, १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और यह मसविदा देश की विभिन्न संस्थाओं के पास भेजा जाय।

बारडोली में फिर से बन्दोबस्त होने तथा लगान बढ़ने की संभावना थी। बारडोली के किसान चाहते थे कि एक निष्पक्ष कमेटी नियुक्त की जाय और यह देखा जाय कि मालगुजारी बढ़ाई जाय अथवा नहीं और अगर बढ़ाई जाय तो कितनी? बारडोली में भी २५ प्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी गई अतः वहाँ कर-बन्दी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और सरदार पटेल ने आन्दोलन को संगठित किया। सरकार ने बाहर से पठान बुलाकर अन्धाधुन्ध कुर्कियाँ करने की नीति का प्रयोग किया। अन्त में सरकार ने शासन और न्याय विभाग के प्रतिनिधियों की एक अदालत बिठाई जिसने सवा ६ प्रतिशत मालगुजारी बढ़ाने की सलाह दी। बेची हुई जमीनें उनके मालिकों को वापस मिल गईं। 'बारडोली' के इस सत्याग्रह का उल्लेख भी साहित्य में मिलता है।

नेहरू कमेटी पर विचार करने के लिए सर्वदल सम्मेलन की बैठकें हुईं तथा इसने अपने को औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्रता

का लक्ष्य मानने वाले दलों को अपने मतानुसार कार्य करने की अनुमति दी गई थी। यद्यपि सामान्यतः स्वतंत्रता की कामना सभी साहित्यकारों ने की है फिर भी मैथिलीशरण गुप्त ने स्वदेश संगीत में औपनिवेशिक स्वराज्य का पक्ष लिया है।

कलकत्ता काँग्रेस ने यह निश्चय किया कि यदि ३१ दिसम्बर, १९२९ तक ब्रिटिश-पार्लमेन्ट, कमेटी द्वारा तैयार किये गये विधान को मान ले तो काँग्रेस भी उसे अपना लेगी। परन्तु यदि ऐसा न होगा तो काँग्रेस असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करेगी। ब्रिटिश माल के बहिष्कार पर जोर दिया गया। एक प्रस्ताव द्वारा देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की माँग की गई। काँग्रेस के भावी कार्यक्रम में निम्न बातें निश्चित हुईं :—

नशीली चीज़ों पर रोक की जाय, खादी का प्रचार तथा विदेशी कपड़े के बहिष्कार के लिए कौंसिल के भीतर तथा बाहर प्रयत्न किये जाँय, किसी भी शिकायत को दूर करने के लिए अहिंसात्मक उपाय काम में लाये जाँय—बारडोली की भाँति; स्त्रियों की अयोग्यताओं तथा देश की सामाजिक कुरीतयों को दूर करने के प्रयत्न किये जाँय, अछूतों की दशा सुधारने तथा अस्पृश्यता के निवारण की कोशिश की जाय।

इस वर्ष देश में छात्रों तथा युवकों ने भी आन्दोलन में खूब भाग लिया। देश में जगह-जगह युवक संघ और छात्र संघ बन गये।

काँग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है। मद्य-निषेध, खादी-प्रचार, विदेशी-वस्तु-बहिष्कार तथा सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिए साहित्यकारों ने बहुत आग्रह दिखाया है। अस्पृश्यता के निवारण तथा स्त्रियों की दशा में सुधार करने के लिए भी उत्साह दृष्टिगोचर होता है।

मातृभूमि के प्रति प्रेम

इस चरण के साहित्य को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो पिछले दोनों चरणों की अपेक्षा इस चरण के साहित्य में स्वदेश प्रेम की भावना से युक्त गीतों की अधिकता है।

'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त ने सीताहरण को मातृभूमि का अपमान माना है।[१] मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

१—साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४२६

'बोलचाल' (१९२८ ई०) की 'सुनहली सीख' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि हम लोग देश की प्रीति से मुँह न मोड़ें और प्रेम के साथ जाति-पग की सेवा करें।[१]

'पद्यप्रसून' (१९२५ ई०) की 'भारत' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं कि सम्पूर्ण देश प्यार का चँवर देश के सिर पर झलेगा।[२] जन्मभूमि की हितकामना को मानवता का मुख्य लक्षण मानते हुए एक अन्य कविता में वे लिखते हैं कि जो देश प्रेम की कलित कान्ति से कान्तिमान नहीं हुआ और जन्मभूमि की हितचिन्ता की चाह से नहीं चमका वह मानवता-रत मानव का मन मुदित नहीं बना सकेगा।[३] स्वदेश संगीत (१९२५ ई०) मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता सम्बन्धिनी कविताओं का संग्रह है। कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम अधिकांश कविताओं में प्रकट हुआ है। 'भारतवर्ष', 'मेरा देश', 'स्वर्ग सहोदर', 'मातृभूमि', 'भजन', 'मातृमूर्त्ति' आदि कविताएँ विशेष रूप से स्वदेश प्रेम से ओतप्रोत हैं। 'भारत वर्ष' शीर्षक कविता में भारत का गंगाजल स्वर्ग के जल से भी श्रेष्ठ बताया गया है।[४]

'स्वर्ग सहोदर' शीर्षक कविता में आज के अवनत भारत को भी कवि ने सर्वश्रेष्ठ और अनुपम बताया है।[५] भारत के गुणों की ओर भी कवियों की दृष्टि गयी है। स्वदेश संगीत की 'शिक्षण' शीर्षक कविता में ज्ञान, भक्ति, सदाचार, त्याग, उत्सर्ग, निर्मोह, प्रेम आदि भारत के श्रेष्ठ गुणों का वर्णन कवि ने किया है। 'मातृ-

---

१—बोलचाल, 'पोठ', 'सुनहली सीख', पृ० २२८

२—पद्यप्रसून, 'जीवन स्रोत', 'भारत', पृ० ६४;

३—'विविध विषय', 'विकच वदन', पृ० २०५–२०६

४—'मलय पवन सेवन करके हम नन्दन वन बिरसराते हैं,
हव्य भोग के लिए यहाँ पर अमर लोग भी आते हैं।
मरते समय हमें गंगाजल देना, याद दिलाते हैं,
वहाँ मिले न मिले फिर ऐसा अमृत जहाँ हम जाते हैं।'
—स्वदेश संगीत, 'भारतवर्ष', पृ० १२

५—'जितने गुण सागरनागर हैं,
कहते यह बात उजागर हैं—
अब यद्यपि दुर्बल, आरत है;
पर भारत के सम भारत है।।'
—गुप्त, मैथिलीशरण : स्वदेश संगीत, स्वर्ग सहोदर, पृ० १६

भूमि' तथा 'मातृमूर्त्ति' कविताओं में कवि ने मातृभूमि का दैवीकरण किया है।[1] 'गुरुकुल' के 'बन्दा बैरागी' प्रकरण में गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं कि जन्मभूमि स्वर्ग से भी बड़ी है उसी को विधर्मी और विजातीय लूट खसोट रहे हैं।[2] 'सुमन' (१९२३ ई०) में कवि महाबीर प्रसाद द्विवेदी जन्मभूमि की महिमा का उल्लेख करते हुए यहाँ तक लिखते हैं—

> 'जग में जन्मभूमि सुखदायी
> जिस नर पशु के मन न समाई।
> उसके मुख दर्शक नर नारी
> होते हैं अघ के अधिकारी ॥[3]

इस कविता में जन्मभूमि की कवि एक कुटुम्ब से उपमा देते हैं और लिखते हैं कि जिसे इस भारत-भूमि को विपत्ति में पड़ी हुई, निर्धन, अपढ़, निरन्न, देखकर भी दया नहीं आती क्या उसमें लज्जा शेष है ?[4] 'जै जै प्यारे भारत देश' तथा 'मेरे प्यारे हिन्दुस्तान' शीर्षक कविताओं में भी कवि ने भारतभूमि का गुणगान किया है और उसे मक्का, मसजिद, देवस्थान, काशी, प्रयाग, तथा भगवान के समान माना है।[5]

'राष्ट्रीय मंत्र' (१९२१ ई०) में गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' पहली ही कविता में मातृभूमि के प्रति प्रेम व्यक्त करते हैं। त्रिशूल तरंग (१९१९ ई०) की अधिकांश कवितायें देश-भक्तिपूर्ण भावों से ओतप्रोत हैं।[6] 'मातृगुण गान' शीर्षक

१—'जय जय भारत भूमि भवानी।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी।'
स्वदेश संगीत, मातृमूर्ति, पृ० १३२;

२—'मुझे उबारो मुझे बचाओ,
तुम्हें पुकार रही माँ भ्रान्त,
और पुत्र होकर तुम उसके
खोज रहे हो यह एकान्त ॥'
—गुरुकुल, पृ० १८५

३—सुमन, 'जन्मभूमि', पृ० ७६—७७

४-५—'मेरे प्यारे हिन्दुस्तान', पृ० १३५

६—'बागे जन्नत से भी पुरलुफ्त चमन अपना है,
खुल्द अपना है ये गुलजारे अदन अपना है।

कविता में कवि ने मातृभूमि का दैवीकरण किया है।[१] इस चरण के साहित्य में आत्म बलिदान की भावना प्रधान है। 'शैदाय वतन' शीर्षक कविता में कवि ने देश की स्वतंत्रता तथा सम्पन्नता को बहुत महत्व दिया है।[२] जैसे जैसे असहयोग आन्दोलन सामान्य जनता के बीच प्रवेश करता गया वैसे वैसे प्रमुख कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी स्वदेश प्रेम, त्याग तथा बलिदान की भावनाओं से पूर्ण कविताओं की रचना की। राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग) ऐसी ही देश भक्ति पूर्ण कविताओं का संग्रह है। शम्भुदयाल श्रीवास्तव ने यह आकांक्षा प्रकट की है कि जिस वस्तु से भी देश को लाभ हो मैं वही वस्तु बन जाऊँ।[३] जगमोहन 'विकसित' ने भी अपनी कविता 'शक्ति स्वागत' में स्वदेश हित के लिए मिटने और मरने की कामना की है।[४] रामनरेश त्रिपाठी ने 'मातृवन्दना' कविता में मातृ-भूमि का दैवीकरण किया है।[५] 'अभिलाषी' ने 'प्यारा देश', इलाचन्द्र जोशी ने 'राष्ट्रीय संदेश', राधावल्लभ पाण्डेय ने 'देशहित', 'हिन्दू राज' और 'भारत', शम्भु-दयाल श्रीवास्तव ने 'हमारा वतन', तथा 'हिन्दोस्ताँ अपना', प्यारेलाल वृष्णि ने 'देशछवि' , पाटेश्वरी प्रसाद ने 'हमारा भारत', जोशी ने 'स्वदेश', शिवदास गुप्त ने 'मातृभूमि', 'अनुज' ने 'अभिषेक' तथा ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'हिन्दुस्तान' शीर्षक कविताओं में मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना विशेष रूप से व्यक्त की

हमसरे अर्शमुअल्ला ये वतन अपना है,
जान अपनी है यही और यही तन अपना है।'

—त्रिशूल, गयाप्रसाद शुक्ल, त्रिशूल तरंग, 'यादे वतन', पृ० ३१;

१—'मातृगुणगान', पृ० ४०–४१;

२—'हम उजड़ते हैं तो उजड़ें वतन आबाद रहे
हों गिरफ्तार तो हों पर वतन आजाद रहे।'

—'शैदाय वतन', पृ० ३५

३—श्रीवास्तव, शम्भुदयाल, राष्ट्रीय वीणा, द्वितीय भाग 'मेरी हवस', पृ० १५

४—शक्ति स्वागत', पृ० २१

५—'आर्य मम मातृ भारत धरणि,
मंगल करणि, संकट हरणि।
चरण रत्न-निवास-सेवित, शीश मुकुट हिमाद्रि शोभित,
प्रकृति पौरुष से सुरक्षित, शत्रु सागर-तरणि'॥

—'मातृवंदना', पृ० २२

है। साधारणतया इस संग्रह की समस्त रचनाओं में देश प्रेम की भावना दृष्टिगोचर होती है। इनमें से अधिकांश कविताओं में भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा अन्य विभूतियों का वर्णन कवियों ने किया है। कुछ कविताओं में मातृभूमि की माता और देवी के रूप में वंदना की गयी हैं।

रामनरेश त्रिपाठी ने 'मानसी' में मातृभूमि का दैवीकरण किया है। वे लिखते हैं कि इस देश का मुकुट हिमालय है, रत्नाकर इसके चरण धो रहा है, तथा नदियाँ इसमें अमृत की धारा बहा रही हैं।[1] 'आह्वान' शीर्षक कविता में उन्होंने भारत को सब देशों में श्रेष्ठ सिद्ध किया है। 'मातृभूमि की जय' शीर्षक कविता में कवि ने मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट किया है तथा 'स्वदेश गीत' में भी कवि ने कामना की है कि हमारा तन स्वदेश की सेवा में ही छूटे।[2] 'विधवा का दर्पण' शीर्षक कविता में कवि ने एक ऐसे देश-प्रेमी की कथा का वर्णन किया है जो देश के लिए अपने प्राण निछावर कर देता है। रामनरेश त्रिपाठी के 'स्वप्न' नामक खण्डकाव्य (१९२८ ई०) में एक ओर तो देश के दुःख-दैन्य का वर्णन है दूसरी ओर प्रकृति के सौन्दर्य का। वे लिखते हैं कि 'हाँफ-हाँफ कर जीने वाला विषुवत्-रेखा का निवासी मनुष्य भी अपनी मातृभूमि से प्रेम करता है और ध्रुव-प्रदेश का निवासी भी अपनी मातृ-भूमि पर प्राण निछावर करता है। परन्तु हे बन्धु ! तुम तो स्वर्ग सी सुखद, सकल विभवों की आकर, धरा-शिरोमणि-मातृभूमि में जन्मे हो।'[3]

'जागृत भारत अर्थात् भारत गीतांजलि का दूसरा भाग' में कवि माधव शुक्ल ने अनेक कविताओं में मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट किया है। भावनाओं की तीव्रता के कारण ये कविताएँ पाठकों को बहुत आकर्षित करती हैं। 'भारती वन्दना', 'स्वदेश वन्दना', 'बलिदान', 'सच्चा स्वराज्य' आदि कविताओं में कवि ने देश-प्रेम की भावना प्रकट की है। कुछ कविताओं में शुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है।[4]

१—मानसी, 'वह देश कौन सा है ?' पृ० ३४;

२—'स्वदेश गीत', पृ० १०९–११०;

३—'स्वप्न', सर्ग ५, पृ० ९०–९१

४—जयति भारती वसुन्धरे ॥

आर्य सुपूजित चरणे ! शरणे ! भरणे ! सुखाकरे ! वसु० ॥ जयति भारती० ॥
वेदश्रुति परिनन्दिनि ! विश्व स्त्रजनि ; आनन्दिनि !
देवाराधित प्रतिमे ! कमले ! विमले ! दयाकरे। वसु० ॥
जयति भारती० ॥

—जागृत भारत, 'भारती वन्दना', पृ० १

'स्वदेश-वन्दना' में कवि ने स्वदेश का जयगान किया है और भारत की प्राकृतिक सुन्दरता का वर्णन तथा प्रत्येक प्रान्त का नामोल्लेख किया है।[1] उत्सर्ग की भावना इन कविताओं में भी है।[2] कुछ कविताएँ गजलों में हैं जिनमें उर्दू का पर्याप्त प्रयोग हुआ है परन्तु अनुभूति की गहराई से ये सभी कविताएं समान रूप से अनुप्राणित हैं :

> **'मेरी जाँ न रहे, मेरा सर न रहे,**
> **समाँ न रहे, न ये साज रहे।**
> **फ़क़त हिन्द मेरा आज़ाद रहे**
> **माता के सर पर ताज रहे॥'[3]**

भारत-स्तुति के गीतिकारों में इस चरण में मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल तथा गया प्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' आदि कवि प्रमुख हैं। इस चरण में मातृभूमि का दैवीकरण तो किया ही गया, उसे देवी, माता, तीर्थ और भगवान के समकक्ष माना गया है। भारत के प्राकृतिक-सौन्दर्य का कवियों ने वर्णन किया है और देश की भौगोलिक एकता में विश्वास प्रकट किया है। स्वदेश का गुणगान लगभग प्रत्येक कवि ने किया है। असहयोग के कारण जनता में बलिदान, त्याग और उत्सर्ग की भावना प्रधान थी इसीलिए इस काल के काव्य में स्वदेश के लिए आत्म-त्याग की भावना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नाटकों के नायकों के चरित्र में भी नाटककारों ने विशेष रूप से यह दिखाया है कि वे देश के कल्याण के लिए व्यक्तिगत सुख और ऐश्वर्य को त्यागने तथा मर मिटने तक के लिये कटिबद्ध हैं। प्रसाद का स्कन्द गुप्त विक्रमादित्य (१९२८ ई०) ऐतिहासिक नाटक है। इसमें भारत के इतिहास के स्वर्णकाल का चित्र है परन्तु उस समय का जब कि देश विदेशी-आक्रमणों से पद दलित हो रहा था। देश-प्रेम की भावना पूरे नाटक में व्याप्त है। नाटक के द्वितीय अंक के पाँचवें दृश्य में बन्धुवर्मा सुव्यवस्था के लिए अपना मालव राज्य स्कन्दगुप्त को देने को उद्यत हो जाता है। उसका कथन है कि क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि वे विपन्नों के लिए, अपने देश के लिए, धर्म के लिए प्राण दे दें। उसका छोटा भाई भीम कहता है 'देखो—हमारा आर्यावर्त्त विपन्न है, यदि हम मर-मिट कर भी इसकी कुछ सेवा कर सकें—।' इसी प्रकार चतुर्थ अंक के छठे दृश्य में विजया, मातृगुप्त से कहती है कि मिलन, संगीत और प्रेम के गान बहुत गा चुके, अब ऐसा

१—स्वदेश वन्दना, पृ० २;
२—बलिदान, पृ० ४;
३—सच्चा स्वराज्य, पृ० ३६

उद्बोधन का गीत गा दो जिससे भारतीय अपनी नश्वरता पर विश्वास करके अमर-भारत की सेवा के लिए सन्नद्ध हो जाँय। पाँचवे अंक के दूसरे दृश्य में स्कन्द-गुप्त भी भटार्क से कहता है 'रणभूमि में प्राण देकर जननी जन्मभूमि का उपकार करो। भटार्क! यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिए नहीं—जन्म भूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा और तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी, पुरगुप्त को सिंहासन देकर मैं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करूँगा।' द्वितीय अंक के सातवें दृश्य में गोविन्द गुप्त स्कन्दगुप्त से कहते हैं कि इस समय जाति तुम्हें पुकारती है—सम्राट होने के लिए नहीं, उद्धार युद्ध में सेनानी बनने के लिए। स्कन्दगुप्त गोविन्द गुप्त से आशीर्वाद माँगता है कि वह अपने कर्त्तव्य से, स्वदेश सेवा से कभी विचलित न हो।[1]

कर्बला (१९२४ ई०) के प्रथम अंक, सातवें दृश्य, में देश प्रेम का एक गीत है परन्तु वह श्रीधर पाठक की भारत स्तुति है।[2] नाटकों में ऐसी नायिकाओं का भी चित्रण हुआ जो स्वदेश-प्रेमी नायकों के लिए प्राण त्याग करने को प्रस्तुत हो जाती हैं जैसे सुदर्शन के 'छाया' में।[3]

राष्ट्रीय-आन्दोलन के द्वितीय चरण तक मातृ-भूमि के प्रति प्रेम की भावना प्रमुख रूप से कविता में ही अभिव्यक्त हुई। तृतीय चरण में इस सम्बन्ध में महत्व-पूर्ण विकास यह हुआ कि साहित्य के अन्य रूपों में भी इस भावना का यथेष्ट चित्रण हुआ। उपन्यास और कहानी साहित्य की धारा ने भी सामाजिक जीवन से पूर्ण सामंजस्य प्राप्त कर लिया।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विदा' (१९२८ ई०) उपन्यास में चपला मातृभूमि छोड़ते समय बहुत दुखी होती है। उसे लगता है जैसे वह अपनी माँ की

१—स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य, द्वितीय अंक, दृश्य ७

२—प्रेमचन्द, कर्बला, प्रथम अंक, दृश्य ७

३—छाया कहती है 'वह भारत वर्ष के लिए लड़ रहे थे, विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण को रोकने के लिए अपने प्राणों को हथेली पर लिए हुए थे। ऐसी अवस्था में यदि मैंने उनकी रक्षा के लिए कुछ किया तो वह उन पर कोई उपकार नहीं, यह मेरा धर्म था। क्या मैंने भारत की मिट्टी से जन्म नहीं लिया? क्या मैंने इसका अन्न नहीं खाया, इसका जल नहीं पिया, इसकी हवा में श्वास नहीं लिया?'

—सुदर्शन, सुदर्शन सुधा, 'छाया,' पृ० २७९

गोद छोड़ रही हो।[१] 'प्रेम प्रसून' (१९२४ ई०) की 'यही मेरी मातृभूमि है' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना व्यक्त की है। 'परिवर्तन' (१९२६ ई०) में हरिसेन कल्पना करता है कि उसकी जन्मभूमि बड़ी पवित्र, बड़ी रमणीक, बड़ी सुन्दर और शस्य श्यामला होगी।[२] 'परिवर्तन' में लेखक ने भारत को यूरोप से हर प्रकार से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। उनके विचार से यूरोप की स्त्रियाँ सम्पत्ति पर मुग्ध होने वाली हैं परन्तु भारतीय स्त्री के लिए पति ही सब कुछ है। उन्होंने भारत की आध्यात्मिकता तथा यहाँ की स्त्रियों के उच्चादर्श का वर्णन विशेष रूप से किया है।[३]

सुप्रभात (१९२६ ई०) की 'अमरीकन रमणी' शीर्षक कहानी में भी लेखक ने भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता दिखाई है। भारतीय नवयुवक मदनलाल के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे अमीरी का कोई दिखावा नहीं करते थे क्योंकि वे इसे भारतीय-सभ्यता से गिरा हुआ समझते थे। मदन लाल की ओर संकेत करते हुए यह भी कहा गया है कि जहाँ के पुरुष इतने साहस वाले हैं वहाँ की स्त्रियों की क्या दशा होगी ? इस बात का प्रतिवाद किया गया है कि भारतीय असभ्य हैं।[४] भारतीयों की विनम्रता की प्रशंसा की गई है और भारतीय स्त्री को धन-सम्पत्ति को तुच्छ समझने वाली कहा गया है।[५] इस बात का लेखक ने उल्लेख किया है कि मदन लाल ने एक निस्सहाय आदमी को बचाने के लिए अपने प्राणों पर खेल कर सब अमरीकनों की नाक काट डाली है।[६] भारतीय स्त्री के पति-प्रेम को ही देखकर मेरीन को भारत के गौरव का बोध होता है और वह यह समझती है कि पति-पत्नी का सम्बन्ध शारीरिक नहीं, प्रत्युत आत्मिक होता है।[७] इस बात का भी उल्लेख है कि भारत के सम्बन्ध में बाहर सहस्रों प्रकार की झूठी, निर्मूल और अप्रासंगिक बातें प्रसिद्ध हैं। मेरीन कहती है कि अगर उसके बस में होता तो वह भारत की आत्मपरायणता पर अमरीका और फ्रांस की ऐश्वर्यमय और दिखावे की सभ्यता

१—श्रीवास्तव, प्रतापनारायण, विदा, पंचम खण्ड, पृ० ४२४
२—सुदर्शन, 'परिवर्त्तन,' पृ० ६९;
३—पृ० २७;
४—सुदर्शन, सुप्रभात, 'अमरीकन रमणी', पृ० ११;
५—पृ० १७–१८;
६—पृ० ३३;
७—पृ० ३०

को निछावर कर देती। वह कामना करती है कि उसके जीवन की अन्तिम घड़ी उसी पुण्य भूमि में आये जिसको प्रकृति ने अपने अनन्त भण्डार से भरपूर कर रक्खा है और जिसको आध्यात्मिकता ने अपना आश्रय बनाया है तथा अगले जन्म में उसे भारत में ही जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हो।[१] विदेशियों को भी भारत के श्रेष्ठ गुणों से प्रभावित दिखाकर साहित्यकारों ने हर प्रकार से भारत की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

स्वर्णिम अतीत का चित्रण

आन्दोलन के पिछले दोनों चरणों के साहित्य में प्राचीन भारतीय-संस्कृति के प्रति साहित्यकारों ने विशेष प्रेम प्रकट किया। तृतीय चरण में भी साहित्यकारों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने में विशेष रूप से रुचि ली है।

'पद्य प्रसून' (१९२५ ई०) में 'हरिऔध' ने वेदों की प्रशंसा में लिखा है कि ये हमारे वेद विचारों से भरे हुए हैं, सभी भावों के सहारे, बड़े दिव्य, पूत, और न्यारे हैं, मानो स्वर्ग से उतारे गये हों। इन्ही से सब जगह ज्ञान धारा बही, इन्हीं ने धरा पर धर्म को पसारा।[२] 'वेद और दूसरे पंचमत' तथा 'वेद सबके हैं' शीर्षक कविताओं में वेदों की प्रशंसा, 'वेदों की उदारता' शीर्षक कविता में उनकी उदारता तथा 'वेद और धर्म' शीर्षक कविता में वेदों की सार्वभौमिकता का वर्णन कवि ने किया है। 'भारत' शीर्षक कविता में कवि ने भारत की प्रशंसा में कहा है कि कब किसने तुझे जी में जगह न दी ? किसकी आँख का तारा तू न रहा ? अमन का दिया तेरे बाले से ही बलेगा।[३] 'पूर्व गौरव' शीर्षक कविता में भारत के अतीत-गौरव का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि बल और विभूति में हमें कौन पाता था ? हमारा यश वसुधातल तक गाता था। हमारे छूने से मिट्टी भी सोना बन जाती थी।[४] 'दमदार दावे' शीर्षक लावनी में कवि लिखते हैं कि हम उन महान व्यक्तियों की संतति हैं जिन्होंने बार-बार बहुत सी जातियों को उबारा। हमारी रगों में उन मुनिजनों का लहू है जिनकी पग-रज राज से भी अधिक प्यारी है। हमारे एक

१—सुदर्शन, सुप्रभात, 'अमरीकन रमणी,' पृ० ३७–३९

२—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पद्य प्रसून, 'पावन प्रसंग', 'हमारे वेद', पृ० १२;

३—जीवन स्त्रोत, 'भारत' पृ०, ६२–६३;

४—जातीयता ज्योति, 'पूर्व गौरव,' पृ० १६२–१६३

मुख था परन्तु हमने दशमुख को मारा था, दो बाहुओं से सहस्त्र बाहु को हराया था। ठोकरें मार कर हम मेरु पर्वत को भी चूर करते थे, जहाँ हम पैर रखते थे वहीं हुन बरसता था।[१] 'क्या से क्या' शीर्षक लावनी में भी अतीत गौरव का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि हम ही जगत में उजाला करने वाले थे और रगों में बिजली भरने वाले थे। यहाँ जाति प्रेम का प्याला लबालब भरा था और जन-जन देशानुराग का मतवाला था। हम धीर-वीर, साहसी और सूरमा थे।[२] 'प्रेम' शीर्षक कविता में भी अतीत-गौरव के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि हम अंधेरे घरों का उजाला थे, प्यार का रंग ऐसा चढ़ाते थे कि पशु भी अपना पशुत्व नहीं दिखाते थे।[३]

मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वदेश संगीत' की 'ब्रह्मचर्याश्रम' तथा 'प्राचीन भारत' शीर्षक दो कविताओं में विशेष रूप से तथा अन्य कविताओं में साधारण रूप से भारत के अतीत-गौरव का गुणगान हुआ है। 'ब्रह्मचर्याश्रम' शीर्षक कविता में प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक संक्षिप्त चित्र उपस्थित करते हुए उसकी महत्ता बतायी गयी है। अन्य सभी कविताओं में भारत का गौरव प्रकट करने वाली पंक्तियाँ स्थान-स्थान पर आयी हैं, जैसे 'महत्ता' शीर्षक कविता में कवि ने भारत की वास्तु-कला की प्रशंसा की है।

साकेत में पौर जनों का वर्णन करते हुए कवि ने उन्हें स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी और सम्पन्न बताया है। उनमें परस्पर भ्रातृभाव भी है।[४] राजा और प्रजा में प्रेम है। राम के वन जाने के समय प्रजा मार्ग में लेट जाती है।[५] राजपरिवार भी प्रजा का निरन्तर ध्यान रखता है। दशरथ की मृत्यु के उपरान्त वशिष्ट भरत को स्थिर चित्त होने का उपदेश देते समय उनसे प्रजा की ओर देखने का भी आग्रह करते हैं।[६] उर्मिला विरहावस्था में देवर से यह पूछना नहीं भूलतीं कि कपास, ईख, धान आदि की खेती कैसी हुई।[७] प्राचीन भारत में राजा और प्रजा के इस आदर्श-संबंध को कवि ने दिखाया है।

१—दमदार दावे, पृ० १६४–१६५

२—पद्यप्रसून, 'जातीयता ज्योति', 'क्या से क्या', पृ० १६६;

३—प्रेम, पृ० १७०

४—साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० ६–७;

५—पंचम सर्ग, पृ० ११२;

६—सप्तम सर्ग, पृ० १९७;

७—नवम सर्ग, पृ० २८८

गुप्त जी की 'पत्रावली' में सात पत्र हैं—महाराज पृथ्वीराज का महाराणा प्रतापसिंह के लिए, राणा प्रताप का उत्तर, शिवाजी का औरंगजेब के लिए, औरंगजब का पुत्र के लिए, महारानी सीसोदनी का महाराज जसवंत सिंह के नाम, रूपवती का महाराज राजसिंह के नाम आदि। महारानी सीसोदनी के पत्र से एक क्षत्राणी के अनुरूप ही ओजस्विता तथा आत्म-सम्मान की भावना व्यक्त होती है। महाराज जसवन्तसिंह दारा की ओर से युद्ध कर रहे थे। उनके हार कर लौट आने पर महारानी को अत्यन्त क्षोभ होता है और वे उन्हें धिक्कारती हैं। रूपवती महाराज राजसिंह से सहायता की प्रार्थना करती है क्योंकि उसे मुगल सम्राट् की बेगम बनना स्वीकार नहीं है। सामूहिक रूप से अधिकतर पत्रों में राजपूतों के गौरवशाली चित्र हैं।

मैथिलीशरण गुप्त का 'हिन्दू' (१९२७ ई०) हिन्दुओं के उद्बोधन का काव्य है। कवि के विचार से हिन्दू उन वीर पुरुषों की सन्तान हैं जिनकी सभ्यता अपने समय में सर्वश्रेष्ठ थी। वह हिन्दुओं के उत्कर्ष का काल था। 'हमारा हिन्दुस्तान' शीर्षक कविता में कवि ने स्वदेश गौरव का गान किया है। 'शकुन्तला' एक छोटा खंड-काव्य है जिसकी कथा भी भारत के गौरवमय अतीत काल से ली गयी है। इसमें शकुन्तला तथा दुष्यन्त की कथा है। 'गुरुकुल' में बन्दा-वैरागी प्रकरण में ही गुरु गोविन्द सिंह भारत के अतीत-गौरव का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन भारत के ब्राह्मण त्यागी थे, वैश्यों ने व्यवसाय की वृद्धि की थी तथा देश में राजसूय और अश्वमेध यज्ञ होते थे।[१]

'वन वैभव' (१९२८ ई०) एक खण्ड काव्य है। इसमें चित्ररथ तथा अन्य गंधर्वों से कौरवों के युद्ध तथा अर्जुन द्वारा कौरवों को छुड़ाने और गंधर्वों को युद्ध में हराने की कथा है। इसी प्रकार 'सैरन्ध्री' (१९२८ ई०) में भीम द्वारा कीचक के वध की कथा है। 'वकसंहार' (१९२८ ई०) में भी भीम द्वारा वक दैत्य के वध तथा उसके पहले की कथा वर्णित है। प्राचीन भारतीय-संस्कृति के आतिथ्य की प्रशंसा इस पुस्तक में है। 'पंचवटी' (१९२५ ई०) खण्ड काव्य है। इसमें शूर्पणखा की राम और लक्ष्मण से भेंट की कथा है। वह लक्ष्मण से विवाह का प्रस्ताव करती है, पुनः राम की ओर भी आकृष्ट होती है। दोनों ओर से निराश होने पर वह अपने दानवी रूप में प्रकट होती है। लक्ष्मण उसके नाक-कान काट लेते हैं, जिससे वह और किसी को अपने कृत्रिम रूप से धोखा न दे सके। 'अनघ'

१—गुरुकुल, पृ० १८९

(१९२५ ई०) में भगवान बुद्ध के एक साधनावतार 'मघ' की कथा है। इस प्रकार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों के कथानक अधिकतर पौराणिक अथवा राम, कृष्ण तथा बुद्ध के काल के हैं। स्पष्ट है कि भारत की प्राचीन संस्कृति पर उनका अखण्ड विश्वास और उनकी अडिग श्रद्धा है। महावीरप्रसाद द्विवदी ने 'सुमन' में भारत के प्राचीन गौरव तथा वर्तमान अवनति दोनों का ही वर्णन किया है। कवि को इससे क्षोभ होता है कि भारत ने ही जिन देशों को विद्या, कला आदि गुण दिए और सभ्य भाव सिखाया वे ही देश अब भारत को असभ्य बताते हैं।[1] 'आर्यभूमि' शीर्षक कविता में भी भारत के अतीत गौरव का वर्णन है। परन्तु वह मौलिक कृति नहीं है।

कवियों ने भारत के पूर्व-पुरुषों का गुणगान किया है। राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग) में गणेश दत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र' ने 'आकांक्षा' शीर्षक कविता में भीष्म पितामह, अर्जुन, भीम, अभिमन्यु, ध्रुव, प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, वाल्मीकि, व्यास, पतंजलि, गौतम, सीता, दयानन्द, रामानुज, शंकर, बुद्ध, प्रताप आदि की जन्म-भूमि भारत में शरीर त्यागने की कामना की है।[2] रामचरित उपाध्याय लिखते हैं कि भीष्म और भीम यहीं हुए थे जिनके समान वीर और कहीं नहीं हुए। हम लोग अपने पुरखाओं को भूल गये हैं।[3] गया प्रसाद त्रिपाठी ने बाबर, अकबर, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि का उल्लेख किया है[4] और 'अष्टावक्र' ने वीर शिवाजी, राणा प्रताप, स्वामी दयानन्द आदि का वर्णन किया है।[5]

रामनरेश त्रिपाठी 'मानसी' (१९२७ ई०) में लिखते हैं कि भारत ने ही सारे संसार को पहले जगाया और शिक्षित किया है। राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, हनुमान, भीष्म, शंकर, कृष्ण, द्रोण, भीम, अर्जुन, दधीचि, हरिश्चन्द्र, वाल्मीकि व्यास, कालिदास आदि सभी का कवि ने गौरव के साथ स्मरण किया है।[6] 'अतीत चिन्ता' शीर्षक कविता में भी कवि ने वर्णन किया है कि मंगोलिया, असीरिया, यूनान, अरब, ईरान आदि के मुकुट भारत के चरण चूमते थे, भारत के छत्र तले

१—सुमन, 'देशोपालम्भ', पृ० ८५;
२—'आकाँक्षा', पृ० ५८;
३—'हाय हमारे हिन्दुस्तान', पृ० ७२;
४—'काल परिवर्तन', पृ० ७६;
५—'कीर्ति गान', पृ० ७६–८७;
६—'वह देश कौन सा है ?', पृ० ३७–३९

चीन और खुरासान के मुकुट थे और हम लोग मनुष्य-सन्तान में श्रेष्ठ थे।[१] 'सीता' शीर्षक कविता में कवि ने भारतीय-ललनाओं के पातिव्रत्य की प्रशंसा करते हुए उन्हें सारे संसार की नारियों में श्रेष्ठ माना है।[२]

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में भारत के वीर पुरुषों और वीर स्त्रियों का वर्णन किया है। पाँचवे शतक में कर्मदेवी, वीरा, पन्ना, दुर्गावती, चाँदबीबी, नील देवी, लक्ष्मी बाई आदि भारत की वीर नारियों की कवि ने प्रशंसा की है।

गया प्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने 'त्रिशूल तरंग' की 'गुज़रा हुआ जमाना' शीर्षक कविता में राम, कृष्ण, सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मण, बलराम, अर्जुन, बालिसुत, हनुमान आदि सब का उल्लेख गौरव सहित किया है। 'भारत सन्तान' शीर्षक कविता में भी कवि ने प्राचीन भारतीय-संस्कृति के उत्कर्ष का वर्णन करते हुए लिखा है कि हमने अमरों में सम्मान बढ़ाया था और मनुष्यता का उत्थान किया था, हम सभ्यता के आधार और आगार थे।[३] माधव शुक्ल ने 'जागृत भारत' में प्राचीन काल में देश की आर्थिक व नैतिक उन्नति का वर्णन किया है।[४]

प्रसाद ने अपने नाटकों के कथानक भारत के गौरवपूर्ण अतीत काल से ही लिये हैं। यद्यपि स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव उनके नाटकों पर दिखाई नहीं पड़ता है फिर भी भारत के स्वर्णिम-अतीत-काल का चित्रण उनके लगभग सभी नाटकों में मिलता है। इससे इतना स्पष्ट है कि प्राचीन भारत की संस्कृति से उन्हें अत्यधिक प्रेम है। उनके 'अजात शत्रु' नाटक में मगध के सम्राट् बिम्बसार के पुत्र अजात शत्रु की कथा है। कौशाम्बी के राजा उदयन तथा कोशल के राजा प्रसेनजित् की कथा भी सम्बन्धित है। लेखक का बुद्ध की अहिंसा में पूर्ण विश्वास प्रकट होता है। 'जनमेजय का नाग यज्ञ' (१९२६ ई०) में आर्य और नाग जातियों के आपसी वैर और वैमनस्य का चित्र है। विशाख (१९२१ ई०) नाटक में राजा नरदेव की कथा है। इस कथा में प्रजा का राजा से विरोध करने और आग लगा देने का उल्लेख है। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य भी ऐतिहासिक नाटक है।

सुदर्शन के 'अंजना' नाटक के कथानक से भी लेखक का हिन्दू धर्म तथा प्राचीन संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है।

१—मानसी, 'अतीत चिन्ता', पृ० ४६;

२—'सीता', पृ० १३८

३—त्रिशूल तरंग, 'भारत सन्तान', पृ० १९

४—जागृत भारत, 'चरखे से स्वराज्य', पृ० ६७

काव्य और नाटक साहित्य में तो प्राचीन काल के कथानक लिए ही गए कहानी साहित्य में भी लेखकों ने भारत की प्राचीन संस्कृति से प्रेम तथा अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध की है। उन्होंने यूरोप की सभ्यता से भारत की सभ्यता की तुलना की है और भारतीय सभ्यता को ही श्रेष्ठ माना है।

'परिवर्तन' में हरिसेन कहता है कि मैं आज उसी धरती के दर्शन करने जाता हूँ जहाँ मदन मोहन ने बांसुरी बजाई, पशु चराये और बालक्रीड़ा की तथा राम ने वाण चलाये और राक्षसों से पृथ्वी स्वच्छ की।[1]

'सुप्रभात' की 'पंथ की प्रतिष्ठा' कहानी में महाराणा रणजीतसिंह के एक वेश्या से पन्द्रहवाँ विवाह करने की कथा है। पंथ ने जब इस बात पर आपत्ति की और अपने अपराध के लिए महाराणा रणजीतसिंह को संगत के सामने कोड़े लगाने का दंड दिया तो महाराणा ने उसे स्वीकार कर लिया। इसी प्रसंग में अकाली फूलासिंह कहते हैं कि हम उस देश के रहने वाले हैं जहाँ के राजा रामचंद्र जी ने प्रजा के आचार की रक्षा के लिए अपनी निर्दोष पत्नी को वनवास दे दिया था।[2] अपने देश के प्रजावत्सल सम्राटों की ओर लेखकों का ध्यान जाने का प्रमुख कारण सरकार की दमन-नीति थी।

महाबीरप्रसाद द्विवेदी के निबन्धों से भी उनका भारत की प्राचीन संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है। 'अद्भुत आलाप' (१९२४ ई०) के प्रथम लेख 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि' में उन्होंने लिखा है कि ब्राउन साहब ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि आध्यात्मिक बातों में भारत ने जितनी उन्नति की उतनी किसी और देश नहीं की।[3] महाबीरप्रसाद द्विवेदी की 'अतीत स्मृति' (१९२४ ई०) के भी अधिकाँश लेखों का विषय भारत की प्राचीन संस्कृति से सम्बान्धत है जिससे परोक्ष रूप से लेखक का उससे अनुराग ही प्रकट होता है। उनके 'साहित्य संदर्भ (१९२८ ई०) में वैदिक और संस्कृत साहित्य का विवेचन है।

उपन्यास साहित्य की धारा में इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण उल्लेख नहीं प्राप्त होते। कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त और नाटककारों में जयशंकर प्रसाद ही भारत की प्राचीन संस्कृति के उपासकों में सर्वप्रमुख हैं।

१—सुदर्शन, 'परिवर्त्तन', पृ० ६९

२—सुप्रभात, 'पंथ की प्रतिष्ठा', पृ० ५२;

३—अद्भुत आलाप, 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि', पृ० १८

हिन्दी भाषा के महत्व के सम्बन्ध में विचार

पिछले चरणों में हिन्दी के लेखक और पाठक राजनीति से स्वतंत्र रूप से 'हिन्दी आन्दोलन' चला रहे थे। सरकारी विद्यालयों के बहिष्कार के फलस्वरूप देश में राष्ट्रीय विद्यालय खुले। उनका सविस्तर-पाठ्यक्रम तो निश्चित नहीं था परन्तु हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग तथा चर्खा कातना सिखाना निश्चित हुए थे। इस प्रकार राजनीति में राष्ट्रीय-आन्दोलन ने हिन्दी भाषा को अपनाना स्वीकार कर लिया। कवियों ने इस तृतीय चरण में भी हिन्दी भाषा के प्रति आग्रह दिखाया। इन कवियों ने एक तो हिन्दी की दीन-दशा का वर्णन किया है। यह वर्णन कभी तो स्वयं कवि ने किया है और कभी हिन्दी भाषा की ओर से किया गया है। दूसरे, इन कवियों ने देशवासियों से यह आग्रह और अनुरोध किया है कि वे हिन्दी भाषा के उद्धार के प्रयत्न करें और उसके भक्त बनें। भाषा के सम्बन्ध में विशेष रूप से गंभीर विचार इस चरण के साहित्य में भी प्राप्त नहीं होते हैं यद्यपि राजनीति में उसे राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो गया था।

'पद्यप्रसून' में कवि ने लिखा है कि भला कौन सी लिपि नागरी सी भली है? सरलता और मृदुलता में तो हिन्दी ढली हुई है।[1] इसी पुस्तक की 'जातीय भाषा' 'हिन्दी भाषा', 'उद्‌बोधन', 'अभिनव कला', आदि कविताओं में भी कवि ने हिन्दी का पक्ष लिया है।

'सुमन' की 'ग्रन्थकारों से विनय' शीर्षक कविता में महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने मातृभाषा का पक्ष लिया है और उसे माता के समान पूज्य माना है। कवि ने देशहितकारियों से हिन्दी भाषा के प्रति भक्ति करने का आग्रह किया है।[2] 'संदेश' शीर्षक कविता में भी हिन्दी ने अपनी दशा की ओर ध्यान देने की प्रार्थना की है।[3]

राष्ट्रीय वीणा (द्वि० भा०) में 'सनेही' लिखते हैं कि कब हम एकभाव भाषा की प्रबल धारा बहाएंगे?[4] बदरी विशाल शुक्ल कामना करते हैं कि भारत और हिन्दी सभी के प्यारे बनें।[5] 'राष्ट्रीय संदेश' शीर्षक कविता में भी कवि इलाचन्द्र

१—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पद्य प्रसून, 'जीवनीधारा', 'एक विनय', पृ० १२५

२—सुमन, 'ग्रंथकारों से विनय', पृ० ८४;

३—'संदेश', पृ० १२४

४—राष्ट्रीय वीणा, (द्वि० भाग), 'शुभदिवस की प्रतीक्षा', पृ० १०

५—'जब प्राण तन से निकलें', पृ० ४२

जोशी का हिन्दी से प्रेम प्रकट होता है।[1] कवि राधावल्लभ पाँडेय लिखते हैं कि जो हिन्द में रहें, हिन्दू बनें, फिर भी हिन्दी न जानें उन्हें हम क्या कहें ? वे देश का अपमान करते हैं।[2] स्वामी दयालु श्रीवास्तव लिखते हैं कि तुम्हारी मातृभाषा हिन्दी है अतः तुम उसके भक्त बनो। बिना इसके अब भारत का उत्थान संभव नहीं है।[3] शिवदास गुप्त ने भी कामना की है कि सभी मातृभाषा के गुण गायें और उसे अपनायें।[4]

गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने भी 'त्रिशूल तरंग' में हिन्दी का समर्थन किया है और अपनी भाषा, अपने भाव तथा अपना वेश अपनाने का आग्रह किया है।[5] वे लिखते हैं—

'भजसि मन हिन्दी, हिन्दू, हिन्द।
जननी सदृश मातृभाषा है कहिंगे कोटिक विन्द।'[6]

'हिन्दी का पश्चाताप' शीर्षक कविता में हिन्दी ने अपनी दीन-दशा का वर्णन किया है और कहा है कि ये हिन्दू होकर भी मुझसे घबड़ाते हैं।[7]

यद्यपि इस चरण में राजनीति में भी हिन्दी भाषा को स्थान मिल गया फिर भी हिन्दी आन्दोलन की गति को तीव्रता नहीं प्राप्त हुई। साधारणतः कवियों ने हिन्दी भाषा को अपनाने का आग्रह तो किया किन्तु कविता के अतिरिक्त साहित्य के अन्य रूपों में भाषा के संबंध में विचार नहीं हुए। रचनात्मक कार्यक्रम, असहयोग तथा बहिष्कार के नवीन आकर्षक रूपों के कारण संभवतः पुराने हिन्दी-प्रचार आन्दोलन की ओर लोग उतने आकृष्ट नहीं हो सके।

सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार

देश में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों की ओर आन्दोलन के प्रथम तथा द्वितीय दोनों चरणों में साहित्यकारों ने बहुत ध्यान दिया था। तृतीय चरण के साहित्य

१—'राष्ट्रीय सन्देश', पृ० ४५
२—'देश हित', पृ० ४७
३—'प्रार्थना', पृ० ७०
४—'विनय', पृ० ८१
५—त्रिशूल तरंग, 'राष्ट्रीय शिक्षा पंचक', पृ० २८;
६—'जातीयगीत', पृ० ३५
७—'हिन्दी का पश्चाताप', पृ० ६८

में उपन्यास तथा कहानी साहित्य की अधिकता हो गई। यह उपन्यास साहित्य जासूसी और ऐयारी का न था इसीलिए इसकी जड़ें सामाजिक-जीवन की धरती में गहरी जमी हुई थीं। सामाजिक-जीवन का वर्णन उपन्यास और कहानी साहित्य में सबसे अधिक हुआ और इसी कारण समाज के दोषों का भी उल्लेख विशेष रूप से इस साहित्य में अधिक होने के कारण सम्पूर्ण साहित्य में एक प्रकार से समाज-सुधार की भावना प्रधान हो गई। काँग्रेस के रचनात्मक-कार्यक्रम के कारण भी सामाजिक ढांचे में आमूल-परिवर्तन की आवश्यकता साहित्यकारों ने अनुभव की। यों तो १९१७ में ही स्त्रियों तथा दलित जातियों के लिए प्रस्ताव पास हुआ था परन्तु १९२८ ई० में, स्त्रियों की अयोग्यताएं दूर करना, देश की सामाजिक कुरीतियों को दूर करना तथा अस्पृश्यता के निवारण, इन तीन प्रस्तावों को काँग्रेस के भावी कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया। असहयोग-आन्दोलन के समय से ही काँग्रेस ने व्यापक दृष्टिकोण अपना लिया।

'बोलचाल' में कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपनी अवनति के प्रति क्षोभ व्यक्त किया है। 'कान' शीर्षक के अन्तर्गत 'हित की बातें' में कवि ने विधवाओं के लिए कहा है कि विधवाएं बेतरह बिलख रही हैं पर हमसे कान नहीं दिया जाता।[1]

'पद्यप्रसून' में 'हरिऔध' ने सामाजिक-कुरीतियों में मुख्य रूप से विधवाओं तथा अछूतों की समस्या पर ध्यान दिया है परन्तु साथ ही बाल-विवाह का भी उल्लेख किया है। सामान्य रूप से सभी कुरीतियों के लिए कवि लिखते हैं कि जो कुचालें हमें चाव की बात बताती हैं, जो रस्में हमें रसातल को ले जाती हैं, जो कुरीतियाँ विपद् के बीज बोती हैं, आज तक छटपटा-छटपटा कर भी हम उनसे नहीं छूटे। अछूतों के सम्बन्ध में कवि लिखते हैं कि जिस अछूत को हम छूआछूत में पड़कर नहीं छूते हैं, उसके नष्ट हो जाने पर हम भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे परन्तु अभी भी हमें छूत-छात से छुटकारा नहीं मिल सका।[2] कुछ कुत्सित सामाजिक नियम एवं छूत-छात के अति संकुचित विचार आज हमारा सर्वस्व हरे ले रहे हैं। अछूत जो परम पतित माने गए हैं उनके भी हृदय होता है, वेदनाओं से वे भी व्यथित होते हैं।[3] हम अछूत कह कर अछूत से क्यों किनारा करें? निश्चय

१—'बोलचाल', पृ० ७८

२—पद्यप्रसून, 'जीवन स्त्रोत', 'परिवर्तन', पृ० ४१—४२;

३—'जीवनी धारा', 'वक्तव्य', पृ० १३४—१३५

ही हमें हित प्यारा नहीं है। पृथ्वी पर अगर छूतछात से छुटकारा नहीं मिल सका तो हम रसातल कैसे नहीं जायेंगे ?[१] हम बाल-विवाह कर-करके निर्बल बनते हैं और विधवाओं के वैधव्य से दुखी नहीं होते।[२] हम क्यों अछूतों के छिन जाने से दिन-दिन नष्ट हों ? विधवाओं से हीन होकर हम क्यों हाथ मलें ?[३] विधवाओं के आँसू नहीं पुछे और हम दिन-दिन घटे ही जा रहे हैं।[४] क्यों अब तक छूतछात की छूत हमसे नहीं छूटी ?[५]

'चुभते चौपदे' (१९२३ ई०) में भी 'हरिऔध' ने 'छूतछात' शीर्षक के अन्तर्गत अछूतों की समस्या को उठाया है और कहा है कि अछूतों में छूत क्या है ? जाति-पाँति के पचड़े और छूतछात हमें बेतरह बाँध देते हैं।[६] 'बेवायें' में कवि ने विधवाओं के प्रति सहानुभूति रखते हुए कहा है कि जाति जिनसे चल बसना चाहती है वे कुचालें आज भी कहाँ छूटी हैं ? विधुर तो बीसियों शादियाँ कर सकते हैं परन्तु विधवायें सदा विधवायें ही रहती हैं।[७] वह जाति भला क्यों नहीं डूबेगी जहाँ चार और पाँच साल की विधवायें हृदय को दुख नहीं पहुंचातीं ?[८] कवि ने वृद्ध-विवाह[९] करने तथा विधवाओं को तीर्थों में छोड़ आने की रीति पर क्षोभ प्रकट किया है।[१०] एक बेजोड़ ब्याह की जोड़ी सारी जाति को तबाह कर देती है। छोटी वय के लड़कों से अधिक वय की कन्याओं का विवाह भी अनुचित है।[११] 'चुभते चौपदे' में उन्होंने विदेशी-संस्कृति का विरोध किया है। वे लिखते हैं कि हमें यूरोपयन रंगत भली लग गयी है। हम साहबियत के रंग में मस्त रहेंगे। लोग अगर हम पर थूकते हैं तो थूके।[१२]

१—'जातीयता ज्योति', 'भगवती भागीरथी', पृ० १४३;
२—'गौरव गान', पृ० १४९;
३—'अपने को न भूलें', पृ० १६०;
४—'लानतान', पृ० १६८;
५—'घर देखो भालो', पृ० १५८
६—चुभते चौपदे अथवा देश दशा, 'छूतछात', पृ० १४६;
७—'बेवायें', पृ० १९१–१९२;
८—'बेटियाँ', पृ० १९३;
९–१०—'नापाकपन', पृ० २०५ तथा १९६ क्रमश;
११—'बेजोड़ ब्याह', पृ० २०१–२०३;
१२—'नाड़ी की टटोल', 'हमारे मनचले', प० १४९

'स्वदेश संगीत' में मैथिलीशरण गुप्त ने सामाजिक-अवनति पर क्षोभ व्यक्त किया है। 'प्राचीन भारत' शीर्षक कविता में प्रत्येक छंद की अन्तिम पंक्ति है 'अब हरे! वह भारत है कहाँ ?' 'ब्रह्मचर्य का अभाव' शीर्षक कविता में कवि ने बाल-विवाह पर क्षोभ व्यक्त किया है और अपने दुर्गुणों पर ग्लानि।[१]

'अनिश्चय' कविता में भी भारत की अधोगति पर आँसू बहाये गए हैं।[२] छुआछूत मिटाने पर विशेष बल दिया गया है।[३]

'स्वदेश संगीत' में नारियों को सम्बोधित करके भी दो कविताएं हैं।[४] 'हिन्दू', हिन्दू जातीयता का काव्य है। इसमें हिन्दू जाति की अवनति पर दुख और क्षोभ प्रकट किया गया है और उसकी कुरीतियाँ बतायी गई हैं। कवि के मतानुसार विदेश यात्रा-निषेध, विधवा-विवाह-निषेध, स्त्रियों की अवनत दशा, छूतछात, चौका पद्धति आदि हिन्दू समाज के ऐसे अवगुण हैं जिन्हें दूर करना नितान्त आवश्यक है। मन्दिरों, साधुओं, गाँवों, कृषि आदि का सुधार करने का आग्रह किया गया है। कवि के विचारानुसार हिन्दू धर्म संकीर्ण नहीं है, वह विजातियों को ग्रहण करने की शक्ति भी रखता है। हिन्दुओं को कलह दूर करके धर्मोद्धार तथा समाज सुधार में लगना चाहिए। उन्हें मितव्ययी, स्वावलम्बी तथा आत्मरक्षा में तत्पर होना चाहिए। 'शकुन्तला' की अन्तिम पंक्तियों में सामान्य रूप से देश की वर्तमान अधो-गति पर दुःख प्रकट किया गया है। महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सुमन' की 'ठहरौनी' शीर्षक कविता में कान्यकुब्जों में प्रचलित लड़के के विवाह में दहेज ठहराने की प्रथा का बहुत विरोध किया है और कहा है कि महामूढ़ अविवेकी जन ही रूढ़ रीतियों के दास बन कर आँखें बन्द करके अपना और अपने वंश का नाश कर लेते हैं। अभी तक तो बीघे और बिस्वे की मर्यादा नापी जाती थी परन्तु अब तो एम० ए०, बी० ए० की सनदों से करार होने लगे हैं।[५] 'कान्यकुब्ज कन्या विलाप' शीर्षक

१—स्वदेश संगीत, 'ब्रह्मचर्य का अभाव', पृ० ४०

२—स्वदेश संगीत, 'अनिश्चय', पृ० ५७–५९;

३—हम अछूत जब तक हिन्दू हैं,
अचरज है अब तक हिन्दू हैं।
मुसलमान ईसाई हैं तो
देखें फिर कब तक हिन्दू हैं। —'अछूत', पृ० १०८

४—'आर्यभार्या', 'मातृमंगल', पृ० ८१, ८२–८४

५—सुमन 'ठहरौनी', पृ० ९१, ९३

कविता में कवि ने कान्यकुब्ज कन्याओं की दुर्दशा—बाल विवाह, अशिक्षा, पति-गृह में अनादर तथा विधवा होने पर नारकीय जीवन व्यतीत करना—आदि का सहानुभूति के साथ विशद् वर्णन करते हुए कनौजियों से स्त्रियों की दशा पर ध्यान देने की प्रार्थना की है। 'कान्यकुब्ज बन्धुओं से प्रार्थना' शीर्षक कविता में कवि ने अशिक्षा पर क्षोभ प्रकट किया है।[१]

'मानसी' में रामनरेश त्रिपाठी ने यह कामना की है कि कोई हमें जगत में दलित न दिखायी पड़े और सारे अछूत भाई स्वाधीन और सुखी हों।[२] 'स्वप्न' में भी उन्होंने विधवाओं की दीन दशा का उल्लेख किया है।[३]

माधव शुक्ल ने 'जागृत भारत' में इस बात पर दुख प्रकट किया है कि हम भारतीयों ने अपने समाज का सुधार नहीं किया। अगर सब शिक्षित होते और निर्भय होकर देश सेवा करते तो क्षण भर में सभी मुसीबतों का अन्त हो जाता।[४] अछूतों को कवि ने देश-सेवा का उतना ही अधिकारी माना है जितना पुजारी या सन्यासी को।[५] अस्पृश्यता-निवारण में कवि ने दृढ़ विश्वास प्रकट किया है।[६]

'त्रिशूल तरंग' में भी अछूतों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कवि लिखते हैं कि हमने यह नहीं सोचा कि अछूत देश का ही सपूत है और सदैव दीन-भाव से युक्त होकर सेवा में तत्पर है।[७] किसानों की दीन दशा का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि करोड़ों कृषक पशु-तुल्य जीवन बिताते हैं और निपट-निरक्षर-बैल बने हुए दिन-रात कमाते हैं, फिर भी पेट भर भोजन नहीं पाते।[८]

'जागृत भारत' में किसानों तथा मज़दूरों के प्रति कवि माधव शुक्ल ने सहानुभूति प्रकट की है, उनकी दीन दशा का वर्णन किया है और उनके हक उन्हें दे

१—सुमन, 'कान्यकुब्ज बन्धुओं से प्रार्थना', पृ० १००-१०१

२—मानसी, 'स्वदेश गीत', पृ० १०९

३—स्वप्न, सर्ग ५, पृ० ९२

४—जागृत भारत, 'पश्चाताप', पृ० ४९

५—'हो चमार भंगी या पासी, विप्र पुजारी या सन्यासी।
धनी दरिद्री हो उपवासी, सबका भाग समान॥'
—जागृत भारत, 'बलिदान', पृ० ४

६—जागृत भारत, पृ० ५१

७—त्रिशूलतरंग, 'विविध विचार', पृ० ५७

८—राष्ट्रीय वीणा, द्वितीय भाग, 'पुकार', पृ० ३८

देने का आग्रह भी किया है। 'सचेत श्रमजीवी', 'श्रमजीवियों की मातृवन्दना' आदि कविताओं में इसी प्रकार के भाव कवि ने व्यक्त किए हैं। 'साकेत' के नवें सर्ग में उर्मिला राज-परिवार को किसानों का प्रहरी तथा उनका अन्नदाता कहती है। कवि ने किसानों को पूर्ण सुखी और सम्पन्न वर्णित किया है।[१] इस प्रकार के उल्लेख राजनीति में कृषकों की समस्या के प्रमुख हो जाने के कारण तुलनात्मक दृष्टिकोण से साहित्य में आये हैं।

'वियोगी हरि' ने 'वीर सतसई' के छठे शतक में अछूतों को अपनाने का आग्रह किया है।[२] उन्होंने विधवाओं के अमंगला कहे जाने पर दुःख प्रकट किया है और बाल-विधवाओं से सहानुभूति प्रकट की है।[३] विदेशी सभ्यता के प्रभाव को उन्होंने चिन्ता की दृष्टि से देखा है। वह लिखते हैं कि पर भाषा, पर भाव, पर भूषण और पर परिधान ही पराधीन जन की पहचान है। वे भारतीयों को सम्बोधित करके लिखते हैं कि तुम्हें पर वेश, पर भाषा तथा पर भाव धारण किए हुए देख कर हृदय में घाव क्यों न हो?[४] 'स्वाधीनता' शीर्षक कविता में भी कवि ने निज भाषा, निज भाव और निज चाल ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की है।[५] 'मानसी' में राम-नरेश त्रिपाठी ने 'ज्ञान का दंड' तथा 'किसान' शीर्षक कविताओं में किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है।[६] त्रिशूल तरंग में 'किसान का आर्त्तनाद' शीर्षक एक कविता है। एक अन्य कविता में कवि किसानों की दुर्दशा के संबंध में लिखते हैं कि जमींदार, कारिन्दे और निलहे साहब तक किसानों पर अत्याचार करते हैं।[७]

गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने 'त्रिशूलतरंग' की 'विविध विचार' शीर्षक कविता में समाज के द्वारा पाश्चात्य सभ्यता ग्रहण किए जाने का उपहास किया है। उन्होंने हैट लगाने, 'फिट' कपड़े पहनने तथा गिट-पिट अंग्रेजी बोलने का वर्णन किया है।[८]

१—साकेत, नवम् सर्ग, पृ० २८९
२—वीर सतसई, छठा शतक, 'अछूत', पृ० ९४
३—'मंगला और अमंगला', पृ० ९५ तथा 'बाल विधवा', पृ० ९५;
४—तीसरा शतक, 'पराधीनता', पृ० ४६-४७;
५—'स्वाधीनता', पृ० ४८
६—मानसी, 'ज्ञान का दंड', 'किसान', पृ० ९-१०, ३३
७—त्रिशूल तरंग, 'दम गनीमत है किसानों का', पृ० ४९;
८—'विविध विचार', पृ० ५७

'जागृत भारत' में भी कवि ने पाश्चात्य सभ्यता पर भारतीयों के मुग्ध हो जाने का वर्णन किया है।[१]

'रंगभूमि' (१९२५ ई०) में प्रेमचन्द ने विवाह के सम्बन्ध में उदार दृष्टिकोण अपनाया है। कुंवर भरत सिंह के विचार में वह विवाह केवल जत्थे बंदी है जहाँ अपनी बिरादरी से बाहर विवाह करना वर्जित हो। उन्हें सोफ़िया और विनय के विवाह में कोई आपत्ति नहीं है। प्रेमचन्द ने 'निर्मला' (१९२८ ई०) में भी समाज की कुछ कुरीतियों का भयंकर परिणाम दिखाया है। दहेज-प्रथा के कारण विवाह में लड़की का रूप, गुण, शील सब नगण्य हो जाता है। निर्मला की शादी जहाँ तय होती है, पिता की मृत्यु के बाद वहाँ के लोग संबंध तोड़ देते हैं। इसी के कारण निर्मला का जीवन नष्ट हो जाता है और जिस व्यक्ति से उसकी शादी पहले निश्चित हुई थी वह भी आत्महत्या कर लेता है। वृद्ध-विवाह और दूसरे विवाह के कारण सौतेली माँ और बच्चों में स्नेह नहीं हो पाता और नवविवाहिता पत्नी को सदैव असंतोष रहता है। यही परिवार के विनाश का कारण होता है। अवस्था के अन्तर के कारण पुरुष सदा पत्नी पर सन्देह करता रहता है। स्त्रियों में फैले हुए अन्धविश्वास का भी लेखक ने चित्रण किया है। सुधा के बालक को जब बुखार आता है तो स्त्रियाँ उसे नज़र समझती हैं और झाड़-फूँक होती रहती है। दो ही दिन के अन्दर बालक मर जाता है। इस उपन्यास में विशेष रूप से लेखक की दृष्टि सामाजिक-कुरीतियों पर केन्द्रित रही है। वृन्दावनलाल वर्मा के 'लगन' उपन्यास में भी दहेज-प्रथा का उल्लेख है परन्तु वह प्रासंगिक रूप से ही है। प्रेमचन्द की तरह सामाजिक-दृष्टिकोण प्रधान नहीं है। प्रेमचंद के साहित्य में समकालीन सामाजिक-जीवन के सम्पूर्ण चित्र मिलते हैं। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि विनय का विश्वास सद्वैद्यों के रहते हुए भी पाश्चात्य चिकित्सा पर ही अधिक था।[२] स्त्रियों में अन्धविश्वास होने का उल्लेख रंगभूमि में भी है। ताहिरअली के घर

१—'तरह तरह के कपड़े चीजें देख यहाँ तक फूल गये।
मोटा भोजन मोटा छादन सरल सादगी भूल गये॥
रेल तार मोटर सिनेमा इनने ऐसा भरमाया है।
ये नहिं समझे उसके अन्दर छिपी राक्षसी माया है॥
—शुक्ल, माधव, जागृत भारत, 'चैतन्य भारत', पृ० १०

२—रंगभूमि, दूसरा भाग, पृ० ३२७

के सभी बच्चे गंडे ताबीज़ों से मढ़े हुए हैं[1] तथा जमुनी भी अन्य स्त्रियों की भांति भूत-प्रेतों से बहुत डरती है।

अंग्रेजों के सुदीर्घ शासनकाल के पश्चात् भारतीय समाज में हिन्दुस्तानी ईसाइयों का एक वर्ग अलग बन गया। शासकों के ही धर्म के अनुयायी होने के कारण इस वर्ग को राज-कर्मचारियों की ओर से कुछ विशेष सुविधायें प्राप्त हुईं। राज-कृपा के बल पर यह वर्ग भी अपने को इतर धर्मावलम्बियों से कुछ श्रेष्ठ समझने लगा। हिन्दुस्तानी ईसाइयों की विचारधारा का भी सुन्दर वर्णन रंगभूमि उपन्यास में प्रेमचंद ने किया है। मिसेज़ सेवक योरोपीय सभ्यता की भक्त हैं और भारतीयों से उन्हें चिढ़ है क्योंकि खुदा ने भारतीयों को दिव्य गुणों से वंचित रक्खा है।[2] जनसेवक भी अंग्रेजों से मेल जोल बढ़ाने में ही अपना भला समझते हैं। मिसेज़ सेवक भारतीयों को अपना शत्रु समझती हैं और शासक बनकर रहना चाहती हैं, शासित बनकर नहीं। केवल वे अपने काले रंग से मजबूर हैं। प्रभु सेवक का इसके विपरीत यह मत है कि पहले चाहे भारतीयों को ईसाइयों से कितना ही द्वेष रहा हो परन्तु अब स्थिति दूसरी है, अब ईसाई स्वयं अंग्रेजों की नकल करके भारतीयों को चिढ़ाते हैं। गोरी जातियाँ केवल धर्म के नाते भाईचारे का व्यवहार नहीं कर सकतीं। अमेरिका के हब्शी भी ईसाई हैं परन्तु वहाँ की गोरी जातियाँ उन पर अत्याचार करती हैं।[3] ईसाई धर्म-प्रचार का भी वर्णन करते हुए प्रेमचन्द ने दिखाया है कि ईश्वर सेवक ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहते हैं। प्रभु सेवक जब पांडेपुर जाते हैं तो बच्चे समझते हैं कि पादरी गायेगा, तस्वीरें दिखायेगा तथा मिठाइयाँ और पैसे बाँटेगा।[4] विदेशी-सभ्यता के कुप्रभाव का वर्णन कायाकल्प उपन्यास (१९२६ ई०) में भी लेखक ने किया है। ठाकुर गुरुसेवक सिंह डिप्टी होकर उस समाज में घुल-मिल जाते हैं जिसकी वाणी में, वेश में, व्यवहार में पराधीनता का चोखा रंग चढ़ा होता है। उन्हें लोग साहब कहने लगते हैं।[5] एक युवक विदेशी पोशाक पहनकर मुंशी जी के पास किसी नौकरी की सिफ़ारिश के लिए आता है। अंग्रेजी पढ़ कर वह जीवन की व्यावहारिक बातों से अनभिज्ञ है। उसे

१—रंगभूमि, प्रथम भाग, पृ० १०७;
२—पृ० १७४;
३—पृ० २३२–२३३;
४—पृ० २१३;
५—कायाकल्प, दूसरा भाग, पृ० ७८

कुश्ती लड़ना तैरना आदि नहीं आता।[१] विवाह के सम्बन्ध में लेखक के विचार सुधारवादी हैं। इस उपन्यास का नायक अहल्या से विवाह करता है जो दंगे में पकड़ कर ले जाई गई थी। प्रेमाश्रम उपन्यास में लेखक ने किसानों की दुर्दशा का वर्णन किया है और दिखाया है कि जमींदार किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने 'विदा' नामक उपन्यास में पाश्चात्य-सभ्यता का कुप्रभाव दिखाया है। माधव बाबू व उनकी पुत्री कुमुदिनी दोनों ही पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में हैं परन्तु अन्त में कुमुदिनी की विचार धारा में परिवर्तन होता है और वह भारतीय स्त्रियों के अनुकूल ही पातिव्रत को अपनाती है। पाश्चात्य-सभ्यता के पुजारी मि० वर्मा के व्यक्तिगत जीवन को दुराचारमय दिखाकर लेखक ने भीतर से खोखली इस सभ्यता का विरोध किया है।

स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण प्रेमचन्द ने 'बेटों वाली विधवा' कहानी में किया है। इसका कारण पति की सम्पत्ति में उसकी विधवा का रोटी-कपड़े के अतिरिक्त अन्य अधिकारों का न होना ही दिखाया गया है।[२] विधवाओं की कठिनाइयों का वर्णन 'नैराश्य लीला' कहानी में भी है। लेखक ने वर्णन किया है कि विधवा चाहे आमोद-प्रमोद में जीवन बिताये, चाहे सन्यासिनी हो जाये, चाहे अध्यापिका हो जाये, प्रत्येक परिस्थिति में समाज उसकी निन्दा ही करता है। उनके विचार से विधवा-विवाह ही एक मात्र उपाय है परन्तु समाज के डर से हम उसे कर नहीं सकते।[३] अछूतों के कष्टों का वर्णन 'ठाकुर का कुआँ' कहानी में है। वे चाहे कितनी ही मुसीबतें उठाएँ परन्तु ऊँची जाति वालों के कुओं से पानी तक नहीं भर सकते।[४] 'सद्गति' कहानी में भी अछूतों की समस्या ली गई है। इस कहानी में एक चमार अपनी जाति के कारण तरह-तरह के कष्ट और अपमान सहन करता है और एक पंडित के द्वार पर लकड़ी चीरते-चीरते ही उसकी मृत्यु हो जाती है। लेखक के विचार से सबसे बड़े दुख की बात तो यह है कि इन अछूत जातियों में हीन-भावना भर गई है और वे अपने को इसी व्यवहार के योग्य समझती हैं। इसका कारण उनके धार्मिक अन्ध-विश्वास हैं जो उन्हें अपमान सहने का अभ्यस्त बना देते हैं।[५]

१—कायाकल्प, दूसरा भाग, पृ० ११०-१११
२—मानसरोवर, प्रथम भाग, 'बेटों वाली विधवा'
३—प्रेम पचीसी, 'नैराश्य लीला'
४—मानसरोवर, प्रथम भाग, 'ठाकुर का कुआँ';
५—चौथा भाग, 'सद्गति'

अछूतों की अवनत दशा का वर्णन 'दूध का दाम' शीर्षक कहानी में भी लेखक ने किया है। मंगल की माँ भूँगी ज़मीदार के बच्चे को दूध पिलाती है। धर्मात्मा लोग ज़मीदार की इस उदारता पर आश्चर्य करते हैं कि उनके द्वार से पचास हाथ की दूरी पर ही मंगल पड़ा रहता है।[१] विवाह के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया है। 'कायर' कहानी में नायिका तो साहस करके अन्तर्जातीय विवाह के लिए तैयार हो जाती है परन्तु नायक ऐसा साहस नहीं कर पाता। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि नायिका आत्महत्या कर लेती है।[२]

'दो कब्रें' तथा 'आगा-पीछा' कहानियों में लेखक ने वेश्या-समस्या को लिया है। सुधारवादी कुछ व्यक्ति वेश्याओं से विवाह कर लेते हैं किन्तु समाज में ऐसे विवाहों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता और ऐसे व्यक्ति समाज में घुल-मिल नहीं पाते। 'आगा-पीछा' कहानी में भगतराम जाति के चमार हैं परन्तु शिक्षित होने के कारण सुधार में विश्वास करते हैं। वे एक वेश्या की कन्या से विवाह करने को तैयार हो जाते हैं परन्तु सन्देह का बीज उनके हृदय से दूर नहीं होता।[३] 'वेश्या' कहानी में लेखक ने दिखाया है कि जो व्यक्ति वेश्या का उद्धार करता है उसके मन में अभिमान की भावना रहती है। उनके विचार से उद्धार वही कर सकता है, जो उद्धार के अभिमान को हृदय में न आने दे।[४] हिन्दू समाज की विवाह सम्बन्धी कुरीतियों की ओर प्रेमचन्द का ध्यान बहुत गया है। 'नरक का मार्ग' कहानी में लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार अनमेल विवाह के कारण लड़कियाँ पतन के मार्ग पर अग्रसर होती हैं। 'उद्धार' कहानी में भी हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा के दोष दिखाये गये हैं।[५] दहेज प्रथा का विरोध लेखक ने 'कुसुम' कहानी में किया है। कुसुम का पति विवाह के बाद कुसुम का कोई समाचार नहीं लेता क्योंकि वह चाहता है कि कुसुम के पिता उसे विलायत भेज दें। कुसुम इसे उसी तरह की डाकाजनी समझती है जैसे डाकू किसी व्यक्ति को पकड़ कर ले जायें और उसके मुक्तियन की तरह उसके घर वालों से रुपया ऐठें। वह ऐसे स्वार्थी और

१—मानसरोवर, चौथा भाग 'दूध का दाम';
२—प्रथम भाग, 'कायर';
३—भाग चार, 'दो कब्रें', 'आगा-पीछा';
४—भाग दो, 'वेश्या';
५—भाग तीन, 'नरक का मार्ग', 'उद्धार'

नीच व्यक्ति के साथ रहना नहीं पसन्द करती और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती है ।[1]

'एक आँच की कसर' कहानी में लेखक दिखाते हैं कि जो व्यक्ति सुधार का ढोंग करके दहेज में कुछ नहीं लेते, वे भी लड़की वाले से गुप्त रूप से दहेज लेते हैं ।[2] 'विद्रोही' कहानी में भी लड़के की शादी जहाँ वर्षों से निश्चत थी, वहाँ से केवल इसलिए तोड़ ली जाती है कि एक दूसरे सज्जन दहेज में आठ हज़ार रुपया देने को तैयार हो जाते हैं । इस पर कोई विचार नहीं किया जाता कि इसके फलस्वरूप लड़के का जीवन नष्ट हो जायगा ।[3] अन्धविश्वासों का वर्णन भी 'आगा-पीछा' कहानी में लेखक ने किया है । भगतराम मर जाता है और उसके माता-पिता मंत्र और बलि आदि में ही लगे रहते हैं । 'मृतक-भोज' कहानी में बिरादरी के व्यक्ति दूसरों की मुसीबतों से लाभ उठाते हैं और अनाथों का रक्त चूस-चूस कर मोटे होते हैं ।[4] विदेशी-संस्कृति का कुप्रभाव 'उन्माद' कहानी में भी दिखाया गया है । मनहर विलायत से मेम लाने पर अपनी पहली भारतीय पत्नी को भूल जाते हैं परन्तु मेम जेनी की स्वार्थान्धिता देखकर उनकी आँखें खुलती हैं ।[5] पाश्चात्य-सभ्यता का कुप्रभाव 'यही मेरी मातृभूमि है' शीर्षक कहानी में भी दिखाया गया है । जब कहानी का नायक बहुत समय तक योरप में रहने के बाद भारत लौटता है तो वह अपनी जन्मभूमि को बहुत परिवर्तित पाता है जिससे उसे बड़ा क्षोभ होता है । उसे अपने गाँव में ये वस्तुएँ मिलती हैं—मशीन, दुर्बल और कान्तिहीन बालक, थाना और लाल पगड़ी, दुर्भिक्षग्रस्त मनुष्य । गाँवों की सरलता नष्ट हो जाती हैं, आतिथ्य की भावना भी नहीं रहती । धर्मशाला मद्यपान, दुराचार और जुआ खेलने का अड्डा बन जाती है । 'राज्यभक्त' कहानी में भी लेखक ने लिखा है कि १९ वीं शती का प्रारम्भ ही था परन्तु नवाब ने विदेशी रहन-सहन अपना लिया था ।[6] 'प्रेमप्रसून' की 'शाप' कहानी में प्रेमचन्द ने एक यूरोपीय को भारत के पातिव्रत धर्म की प्रशंसा करते हुए दिखाया है। लेखक के विचार से यूरोप की सभ्यता

१—मानसरोवर, भाग दो, 'कुसुम';
२—भाग तीन, 'एक आँच की कसर';
३—भाग दो, 'विद्रोही';
४—भाग चौथा, 'मृतक भोज';
५—भाग दो, 'उन्माद'
६—प्रेम प्रसून, 'यही मेरी मातृभूमि है' तथा 'राज्य भक्त'

ने ऐसा मार्ग ग्रहण कर लिया है कि दूर भविष्य में भी पातिव्रत धर्म पर मर मिटने वाली देवियों के जन्म लेने की संभावना नहीं है। भारतीय संस्कृति से लेखक का प्रेम मानसरोवर (प्रथम भाग) की 'गुल्ली डंडा' कहानी में प्रकट हुआ है। लेखक कहते हैं कि हम अंग्रेज़ी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो गये हैं कि हमें अपनी सभी चीज़ों से अरुचि हो गई है। 'दुराशा' (प्रहसन) में परदा-प्रथा के दोष दिखाते हुए लेखक ने उसका विरोध किया है। 'आभूषण' कहानी में एक ऐसी युवती का चित्र है जो आभूषणों के आगे पति को भी कुछ नहीं समझती।[१] देश की सामाजिक कुरीतियों की ओर सुदर्शन ने भी ध्यान दिया है। 'पुष्पलता' की 'पतितोद्धार' कहानी में नायक एक वेश्या से विवाह करके उसका उद्धार करता है।[२] 'सुदर्शन सुधा' की 'एक गरीब की आत्मकथा' कहानी में लेखक ने बाल-विवाह का विरोध किया है। इस बात का उल्लेख किया गया है कि भारतीय भूखे मरते हुए भी अपने बच्चों का विवाह करना पुण्य समझते हैं और उनको जीते जी नरक में ढकेल देते हैं।[३] पश्चिमी सभ्यता के अंधाधुन्ध अनुकरण पर सुदर्शन ने भी खेद प्रकट किया है। रईस हरद्वारी लाल के सम्बन्ध में वे लिखते हैं 'उसकी कोठी भी सोलहों आना पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगी हुई थी, वही रविशें, वही रेशमी पर्दे, वही गद्देदार कुर्सियाँ, वही भारी और लम्बी चौड़ी मेजें, वही चीनी की रकाबियाँ, वही अंगरेज़ी के समाचार पत्र, फ़र्श पर दरियाँ, दीवारों के साथ शेक्सपियर के नाटकों के चित्र। यह सब देखकर किसी को कल्पना न हो सकती थी कि यह किसी भारतीय की कोठी है।[४] इसी कहानी में लेखक ने दिखाया है कि सुशीला पर भी पश्चिमी सभ्यता का यह प्रभाव होता है कि वही सुशीला जो पहले प्रातःकाल भोजन बनाती थी दोपहर को चर्खा कातती थी और सायंकाल पति के आने की राह देखा करती थी अब इन कामों को अपमान का कारण समझने लगी।[५] 'माया' कहानी में भी विद्यावती स्वप्न में देखती है कि उसके पति को लाटरी मिलने के बाद उनकी यह इच्छा होती है कि उनकी पत्नी विलायती वेश धारण करे।[६] 'परिवर्त्तन' में भारतीय

१—प्रेमचन्द, 'दुराशा', 'आभूषण'
२—सुदर्शन, 'पुष्पलता', 'पतितोद्धार'
३—सुदर्शन सुधा, 'एक गरीब की आत्म कथा';
४—'लोकाचार', पृ० २२७;
५—पृ० २४३
६—'माया', पृ० ८०

स्त्रियों के सम्बन्ध में विचार करते समय हरिसेन यह कहते हैं कि भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में यह धारणा है कि उन्हें किसी बात का सलीका नहीं है परन्तु यदि उनको शिक्षा नहीं दी जाती, यदि उन्हें सभ्य बनाने का यत्न नहीं किया जाता तो क्या यह उनका दोष है।[1] 'सुप्रभात' की 'अमरीकन रमणी' शीर्षक कहानी में कहा गया है कि कदाचित भारतवर्ष ही एक ऐसा अभागा देश है जहाँ कन्याओं के लिए विवाह में भी राय देना एक भारी अपराध है। देश की दुरवस्था का भी उल्लेख है।[2]

बेचनशर्मा 'उग्र' ने 'दोज़ख की आग' नामक कहानी संग्रह की कहानियों में हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-जाति की अवनत दशा का ही चित्रण विशेष रूप से किया है। 'आँखों में आँसू' कहानी में उन्होंने दिखाया है कि हिन्दू ललनायें मुसलमान हो रही हैं क्योंकि हम अपने कुसंस्कारों से बुरी तरह जकड़े हुये हैं।

स्त्रियों की दीन-दशा की ओर लेखकों ने बहुत ध्यान दिया है। विश्वम्भर-नाथ शर्मा 'कौशिक' के 'चित्रशाला' कहानी संग्रह की 'नरपशु' कहानी में एक स्त्री की दीन दशा का चित्रण है। उसके पति मनुष्य मात्र के समान अधिकार के ि द्धान्त को मानते हैं और प्रत्येक प्राणी के स्वाधीनता के अधिकार में विश्वास करते हैं परन्तु अपनी पत्नी के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उसका देहान्त हो जाता है।[3] 'करुणा की मूर्ति' कहानी में विधवाओं की दीन-दशा का चित्रण है और 'पगली' नामक कहानी में अछूतों की समस्या ली गई है। सुधिया चमारिन से जब उसके मालिक राधाकान्त अच्छा व्यवहार करते हैं और उसे पढ़ाते-लिखाते हैं तो वह समझती है कि उसके प्रति दूसरों का व्यवहार अनुचित है। इस सत्य का अनुभव होने पर वह पागल हो जाती है।[4] 'उद्धार' कहानी में 'कौशिक' ने दिखाया है कि किस प्रकार मजदूरों और कारीगरों को कम मज़दूरी देकर अधिकांश मुनाफा दूकानदार हड़प जाते हैं।[5] 'मनुष्य का मूल्य' शीर्षक कहानी में भी मज़दूरों की समस्या उठाई गई है। शादी-व्याह में उन्हे मालिकों से पेशगी रुपया नहीं मिलता। इसी कारण मज-

१—'परिवर्त्तन', पृ० २५
२—सुप्रभात, 'अमरीकन रमणी', पृ० २०, २५
३—चित्रशाला, 'नरपशु', पृ० ८२–९५;
४—'पगली', पृ० २३३–२४६;
५—'उद्धार', पृ० १५–३२

दूर हड़ताल करते हैं और अन्त में दोनों पक्षों में समझौता हो जाता है।[१]

नाटकों में भी सामाजिक अवनति का चित्रण हुआ। 'गरीब हिन्दुस्तान' नाटक में लेखक किशनचन्द ज़ेबा ने पाश्चात्य सभ्यता का कुप्रभाव दिखाया है। उन्होंने विलायत से पढ़कर आये हुये व्यक्तियों की परिवर्त्तित मनोवृत्ति का चित्रण किया है।[२] सूर्यसिंह विलायत से आते हैं तो पूरे साहब बन कर। वे कहते हैं 'हिन्दुस्तान का पानी खराब, हिन्दुस्तान का हवा खराब, हिन्दुस्तान का मट्टी खराब। हम लोग का बूट खराब हो जाता है। जिहडर देखो मजुर लोग अपना मकान कच्चा बनाटा है।[३] लगभग सम्पूर्ण नाटक में सूर्यसिंह की देशी रीति-रिवाज़ों, देशी-वस्तुओं तथा देशी रहन-सहन से घृणा प्रकट होती है।

किशनचन्द ज़ेबा के 'शहीद सन्यासी' नाटक में श्रद्धानन्द की कथा है। नाटक में हिन्दू-जाति के उद्धार और आर्य-समाज-आन्दोलन की कथाप्रमुख है। इसी सम्बन्ध में अछूत-समस्या भी ली गई है। श्रद्धानन्द का अछूतोद्धार में विश्वास दिखाया गया है।[४] शुद्धि की ओर भी उनका आग्रह दिखाई पड़ता है।[५]

किसानों की अवस्था का चित्रण प्रेमचन्द ने 'संग्राम' के पहले अंक के तीसरे दृश्य में किया है। महाजन गरीब किसानों को लूटते हैं। नज़राना, लिखाई, स्टाम्प, दस्तूरी आदि सब मिलाकर आधा तो वह कर्ज़ के रुपयों में से पहले ही काट लेते हैं। साधू सन्यासियों की धूर्तता संग्राम के एक पात्र सन्यासी चेतनदास में दिखाई गई है। वे भोली-भाली स्त्रियों को ठगते हैं।

स्वातंत्र्य-आन्दोलन के प्रथम और द्वितीय दोनों चरणों में सामाजिक-कुरीतियों में विशेष रूप से स्त्रियों की अवनति और विवाह सम्बन्धी कुरीतियों जैसे बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, अनमेल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि की ओर कवियों का बहुत ध्यान गया। स्त्रियों की अशिक्षा, अन्धविश्वास आदि विषयों पर भी साहित्यकारों ने लिखा। विदेशी सभ्यता के कुप्रभाव के विरोध में साहित्यकारों ने पहले और दूसरे दोनों चरणों में आवाज़ उठाई। १९०५ ई० से जो बहिष्कार आन्दोलन आरम्भ हुआ उसमें सरकारी स्कूलों और कालेजों का बहि-

---

१—'मनुष्य का मूल्य', पृ० १७३–१८६

२—'गरीब हिन्दुस्तान', पृ० १–१२;

३—गरीब हिन्दुस्तान, पृ० ९

४—शहीद सन्यासी, पृ० ८९;

५—एक्ट तीसरा, सीन दूसरा

ष्कार भी सम्मिलित था। दूसरे चरण में कवियों ने शिक्षा के स्वरूप पर ध्यान दिया और यह अनुभव किया कि इस शिक्षा के द्वारा हमें अपने देश से अनुरक्ति नहीं होती, बल्कि हम दासता की ओर अधिक बढ़ते हैं। अंग्रेजी भाषा का कुप्रभाव स्पष्ट होता गया क्योंकि अंग्रेजी सभ्यता के साथ-साथ भारतीयों ने अंग्रेज़ी-वस्तुयें क्रय करने की ओर रुचि दिखाई। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिये अंग्रेजी मुख्य भाषा हो गई और हिन्दी गौण। स्त्रियों ने भी थोड़ा पढ़कर भारतीय आदर्शों को भुला दिया। इसी लिए विदेशी-संस्कृति का साहित्यकारों ने एक स्वर से विरोध किया। विदेशी वस्तु बहिष्कार के कारण भी विदेशी संस्कृति का अनुकरण उपहास का विषय हो गया। तृतीय चरण में वैवाहिक कुरीतियों, स्त्रियों की अवनत दशा, पाश्चात्य-सभ्यता के कुप्रभाव के साथ-साथ साहित्यकारों ने अछूतों, किसानों और मज़दूरों की अवनत दशा की ओर बहुत ध्यान दिया। काव्य में विशेष रूप से तथा साहित्य के अन्य रूपों में सामान्यतः अछूत समस्या पर साहित्यकारों ने विचार किया। अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन के कारण साहित्य में अछूतों की समस्या प्रधान हो गई। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' माधव शुक्ल, प्रेमचन्द आदि साहित्यकारों ने इस समस्या को काव्य और कहानी साहित्य में चित्रित किया और विभिन्न पहलुओं से इस समस्या पर विचार किया। इसी प्रकार राजनीति में किसान और मज़दूरों की समस्या प्रमुख हो जाने के कारण साहित्यकारों ने उसका भी चित्रण किया। वैवाहिक कुरीतियों में से बाल-विवाह, बेजोड़-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध तथा दहेज-प्रथा की समस्यायें इस काल में प्रमुख रहीं। स्त्री के अधिकारों, समाज में उसकी अवनत दशा तथा वेश्या-समस्या की ओर भी साहित्यकारों का ध्यान गया। अन्धविश्वास, विदेश-यात्रा-निषेध, पर्दा प्रथा, चौका पद्धति आदि का भी विरोध हुआ। सामाजिक अवनति का चित्रण इस चरण में अधिक मात्रा में हुआ है। इसका कारण यही है कि इस चरण में काँग्रेस ने भी सामाजिक कुरीतियाँ दूर करना रचनात्मक कार्यक्रम का एक अंग बना लिया था। असहयोग-आन्दोलन के कारण जनता में जोश तो था ही, रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने में सभी जी-जान से जुट गये।

देश की नैतिक अवनति का चित्रण

भारतीयों की नैतिक अवनति की ओर पिछले दोनों चरणों में साहित्यकारों ने ध्यान दिया था। इस चरण में भी भारतीयों की नैतिक अवनति का चित्रण

हुआ। हरिऔध 'पद्यप्रसून' में लिखते हैं कि उस विद्यालय को विद्यालय कैसे मानें जिसमें कलह और फूट अपनी तानें सुनावें ?[१] हिन्दुओं के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि कायरता होड़ करके इनसे नाता जोड़ बैठी है, फूट आज पाँव तोड़ कर इनके घर बैठी है।[२] लोहा छूते ही हिन्दुओं के हाथ कपते हैं। मन मरा हुआ है और तन में तनिक भी ताब नहीं रही। वीरता समाप्त हो गई है और धीरता धरा में धंस गई है। हम बहुत सी जातियों में बँटे जा रहे हैं और एकता के रंग में नहीं रंगेंगे। हमारा बुरा हाल है फिर भी फूट अभी भी नहीं छूटी है।[३] कवि ने कामना की है कि हम काहिली और कलह से मुँह मोड़ और मिल-जुलकर मिलाप-तरु के न्यारे फल तोड़ें।[४] अब तो हम कायर और कपूत कहलाते हैं।[५] बैर ने अब बहुत पाँव पसारा है और हमें फूट का ही सहारा रह गया है।[६] यह फूट कब तक फूट डालती रहेगी ? यह सूट-बूट की टूट कब तक रहेगी ?[७] 'चुभते-चौपदे' में कवि लिखते हैं कि हममें डाह, फूट, बैर आदि सभी अवगुण हैं।[८]

राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग) में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने घूसखोरी, फूट, ईर्ष्या आदि अवगुणों का उल्लेख किया है।[९] शम्भुदयाल श्रीवास्तव लिखते हैं कि स्वाभिमान, समता, गौरव सब हम खो बैठे हैं और कुटिल कलह ने देश में डेरा डाल लिया है।[१०] मुरारीलाल शर्मा ने द्वेष, मात्सर्य, स्वार्थ, दुराचार

१—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पद्यप्रसून, 'जीवन स्त्रोत', 'विद्यालय', पृ० २९;
२—जातीयता ज्योति, 'जीवन मरण', पृ० ३०-३२;
३—जीवन स्त्रोत, 'दिल के फफोले', पृ० ५५-५६;
४—जातीयता ज्योति, 'अपने को न भूलें', पृ० १६१;
५—'क्या से क्या', पृ० १६७;
६—'प्रेम', पृ० १७१;
७—'घर देखो भालो', पृ० १५८
८—चुभते चौपदे, 'परिशिष्ट', पृ० २३७
९—राष्ट्रीय वीणा, द्वितीय भाग, 'पुकार', पृ० ३०;
१०—'करुणा क्रन्दन', पृ० ३९

आदि अवगुणों[1] का तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने ईर्ष्या, द्रोह, अहंकार आदि अवगुणों का उल्लेख किया है।[2]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' में भी झूठ, दम्भ, विश्वासघात आदि अवगुणों का उल्लेख किया है।[3] यद्यपि 'पथिक' की कथा को स्पष्ट रूप से भारत की कथा नहीं कहा गया है, फिर भी वर्णनों से स्पष्ट है कि भारत को लक्ष्य करके ही यह काल्पनिक कथा लिखी गई है।

'त्रिशूल तरंग' में गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने सामाजिक-अवनति से अधिक भारतीयों की नैतिक तथा आर्थिक अवनति का वर्णन किया है। कवि लिखते हैं कि वह ईमान अब नहीं रहा, सब स्वार्थ के नशे में दीवाने हो रहे हैं।[4] एक दिन वह था जब हिन्द की तूती बोलती थी परन्तु वह प्रतिष्ठा अब नहीं रही।[5] विद्या, धीरता और साहस नष्ट हो गये हैं।[6] हम पर-सेवक होकर केवल अनुकरण करते रहते हैं और इस भूल से भयंकर ठोकरें खाते हैं।[7] आज कल अविद्या का अंधकार छा रहा है।[8] लज्जा, शूरता, ज्ञान, ईमानदारी, बल, स्नेह तथा दान आदि गुण नष्ट हो गये हैं।[9] बहिष्कार-आन्दोलन में उपाधियों को भी त्यागने की सम्मति देश के नेताओं ने दी थी। इससे उपाधियों को घृणा तथा उपहास की दृष्टि से देखा जाने लगा। कवि ने उपाधियों का उपहास किया है, उन्हें निस्सार बताया है और राय बहादुरों की चापलूसी पर व्यंग्य किया है।[10]

प्रसाद के 'स्कंदगुप्त विक्रमादित्य' की कथा वर्त्तमान काल की नहीं है परन्तु भारतीयों की आपसी कलह और फूट का इसमें सुन्दर चित्रण है।[11] एक दृश्य

१—'भारत दुर्दशा', पृ० ५४
२—'होली', पृ० ९३
३—त्रिपाठी, रामनरेश, 'पथिक', पृ० ४३
४—त्रिशूल तरंग, 'गुजरा हुआ जमाना', पृ० ३;
५—'वह नहीं है', पृ० १२;
६—'क्या हुआ ?', पृ० २२;
७—'राष्ट्रीय शिक्षा पंचक', पृ० २८;
८—'आजकल', पृ० ३६;
९—'प्रार्थना', पृ० ३७;
१०—'क्या करूं', पृ० ३९, 'राष्ट्र निर्माण', पृ० ५१, 'राय बहादुर', पृ० ९१
११—स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य, तृतीय अंक, छठा दृश्य

ब्राह्मणों और बौद्धों के झगड़े का है। यह दृश्य नाटक की प्रगति में कोई महत्व नहीं रखता परन्तु हिन्दू-मुस्लिम दंगों का प्रभाव इस पर स्पष्ट दिखाई देता है।[१] लगभग १९२५ ई० से ही भारत में हिन्दू-मुसलिम दंगों की बहुलता हो गई थी। भारतीयों की आपसी फूट ने सदैव भारत की प्रगति में रोड़े अटकाये हैं अतः इस ओर साहित्यकारों का ध्यान जाना स्वाभाविक था। कांग्रेस के रचनात्मक-कार्यक्रम में भी हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य बढ़ाने को स्थान दिया गया था। इसी दृश्य में बहुत से व्यक्ति यह भी कहते हैं कि हम लोग व्यर्थ ही आपस में झगड़ते और आततायियों को देखकर घर में घुस जाते हैं। किशनचन्द ज़ेबा ने 'गरीब हिन्दुस्तान' नाटक के पहले बाब के दूसरे सीन में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच छूत-छात की समस्या ली है। हिन्दुओं के मुसलमानों को अछूत न समझने पर मुसलमान भी गोवध न करने का वचन देते हैं।[२] 'शहीद सन्यासी' नाटक में भी उन्होंने हिन्दू-मुसलिम संगठन पर बल दिया है।[३]

रंगभूमि में प्रेमचन्द ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि मि० क्लार्क शराब पीते थे किन्तु इतनी नहीं कि काबू के बाहर, भारतीयों की तरह।[४] १९२० के लगभग, असहयोग के प्रारंभ होने पर रचनात्मक-कार्यक्रम में मद्य-निषेध को भी स्थान दिया गया था। प्रत्येक रचनात्मक-कार्यक्रम के लिये अलग-अलग समितियाँ बनाई गई थीं। इसीलिए साहित्य में भी मद्यपान का विरोध किया गया है। रंगभूमि में जनसेवक देश-सेवा के बहाने अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं। वे देश की व्यावसायिक उन्नति के लिये नहीं वरन् अपने स्वार्थ के लिये कारखाना खोलना चाहते हैं।[५] नैतिक-पतन ऐसा है कि कुंवर भरतसिंह मुनीम से नायकराम को रुपये देने को कहते हैं तो मुनीम जी उसमें से कुछ रुपया आपस में बाँटना चाहते हैं।[६] राजा महेन्द्र सिंह कहते हैं कि हमारे भद्र-समाज की नैतिक दुर्बलता अत्यन्त लज्जाजनक है। उनकी यही दुर्बलता और स्वार्थ लोलुपता हमारे निर्भीक, सत्यवादी, साहसी नेताओं को हताश कर देती है।[७]

१—चतुर्थ अंक, पाँचवाँ दृश्य

२—गरीब हिन्दुस्तान, पृ० १३–२५

३—शहीद सन्यासी, एक्ट दूसरा, सीन छठा, पृ० ९२

४—रंगभूमि, दूसरा भाग, पृ० ६०;

५—प्रथम भाग, पृ० ७८;

६—पृ० ४२७;

७—पृ० ३६७

राजा भरतसिंह इस पर लज्जा प्रकट करते हैं कि हम शिक्षा, ऐश्वर्य, या धन के बल पर हाकिमों के दाहिने हाथ बनकर प्रजा का गला काटें। उनके विचारानुसार शिक्षित वर्ग जब तक शासकों के आश्रित रहेगा हम अपने लक्ष्य के जौ भर भी निकट न पहुँच सकेंगे।[१] 'कायाकल्प' में भी इस वर्ग के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं कि यह वर्ग जिनसे लड़ना चाहिये उनके तो तलवे चाटता है और जिनसे गले मिलना चाहिये उनकी गरदन दबाता है। इस शिक्षा ने हमें पशु बना दिया है। जिसे कोई अधिकार मिल गया वह तुरन्त दूसरों को पीसकर पी जाने की फ़िक्र करने लगता है।[२] साहित्य में प्रारम्भ से ही शिक्षा-पद्धति और शिक्षा-व्यवस्था से साहित्यकारों ने असन्तोष व्यक्त किया। इस असन्तोष का मुख्य कारण यही था कि अधिकांश शिक्षितों ने देश के लाभ के लिये व्यक्तिगत लाभ को बलिदान करने का साहस नहीं किया। ऊँची नौकरी या अन्य किसी लोभ से वे सरकार से ही सहयोग करते रहे। इसके अतिरिक्त उन्होंने विदेशी रहन-सहन भी अपना ली। देशवासियों का उनसे चिढ़ने का यह भी एक कारण था। स्त्रियों के अवगुणों के सम्बन्ध में रनिवास का वर्णन करते हुये लेखक लिखते हैं कि ऐसा मालूम होता था कि ईश्वर ने स्त्रियों को निन्दा और परिहास के लिये ही रचा है।[३] मनोरमा भारतीयों की कायरता के वर्णन में कहती है कि अगर एक गोरा आ जाय तो सब दुम दबाकर भागें—लेकिन दीनों को सताते हैं। हिन्दुस्तानी किस प्रकार लज्जा को तिलांजलि देकर अंग्रेज़ों की खुशामद करते हैं इसका बड़ा सजीव वर्णन इस उपन्यास में लेखक ने किया है। मुंशी बज्रधर मि० जिम के पैरों पर पगड़ी रख देते हैं और कहते हैं 'हुजूर, यह गुलाम का लड़का है। हुजूर इसकी जाँबख्शी करें। हुजूर का पुराना गुलाम हूँ।'[४] जब चक्रधर का मुकदमा मि० ज़िम के इजलास में चलता है तो मुंशी जी दिन भर मि० जिम के बंगले पर खड़े रहते हैं और उनके बच्चों को खिलाते हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं, 'मेरे देवता, ईश्वर, जो कुछ हैं आपही हैं।'[५] 'राजा

१—रंगभूमि, प्रथम भाग, पृ० ४१८

२—कायाकल्प, प्रथम भाग, पृ० १८०-१८१;

३—पृ० १८५;

४—पृ० २१०;

५—दूसरा भाग, पृ० १८

साहब भी मि० जिम की बहुत खुशामद करते हैं।[१] देश में व्यभिचार इतना अधिक हो गया है कि बनारस के व्यक्तियों को दालमंडी की सैर से ही फुरसत नहीं मिलती।[२] निर्मला मुंशी जी से कहती है कि रिश्वतें लेते, शराब पीते, झूठ बोलते धर्म नहीं जाता, एक अनाथिनी की रक्षा में ही धर्म जाता है।[३]

भारतीयों की भीरुता का वर्णन करते हुये 'विदा' में भी डिक कहता है कि अब भारत छोड़कर कौन विलायत जाये ? यहाँ न पुलिस का डर है, न और लोगों का। पिस्तौल-बन्दूक कोई हिन्दुस्तानी रख ही नहीं सकता। यों ही गोरा चमड़ा देख कर सब डरते हैं।[४]

१९२० के असहयोग आन्दोलन में अन्य बहिष्कारों के साथ उपाधियों का वहिष्कार भी अपनाया गया था। उपाधिधारियों को जनता अच्छी दृष्टि से नहीं देखती थी और उन्हें सरकारी पिट्ठू समझती थी। 'विदा' उपन्यास में माधव बाबू को 'सर' की उपाधि मिलती है। लेखक की सहानुभूति माधव बाबू के साथ नहीं है। वे व्यंग्य में लिखते हैं कि माधव बाबू के तमाम एहसानों को, तमाम दावतों के भार को सरकार से माधव बाबू को 'सर' बना कर अदा कर दिया।[५] 'सुप्रभात' की 'सत्यमार्ग' कहानी में सुदर्शन मुहम्मद अब्बास के उपाधि-प्रेम तथा देश-भक्ति के संघर्ष के संबंध में लिखते हैं कि जब कभी उपाधि की बात भूल जाती थी तब वे देश की अधोगति पर आँसू बहाते थे।[६]

पिकेटिंग के संबंध में कहीं-कहीं दूकानदारों के नैतिक-पतन का भी लेखकों ने चित्रण किया है। 'प्रेम प्रसून' की 'चकमा' कहानी में दिखाया गया है कि दूकानदार किस प्रकार स्वयंसेवकों को धोखा देकर अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

बेचन शर्मा 'उग्र' के 'दोज़ख़ की आग' शीर्षक कहानी संग्रह की 'खुदा के सामने' कहानी में हिन्दू-मुसलिम दंगों के चित्र हैं। हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य और द्वेष की समस्या की ओर 'उग्र' विशेष रूप से आकर्षित हुए हैं। दंगों के

१—कायाकल्प, दूसरा भाग पृ० ७८;
२—पृ० १३७;
३—पृ० १३९
४—श्रीवास्तव, प्रतापनारायण, 'विदा', चतुर्थ खंड, पृ० २३३
५—द्वितीय खण्ड, पृ० ११८
६—सुदर्शन, सुप्रभात, 'सत्यमार्ग', पृ० ५८

चित्र अंकित करके उन्होंने हिन्दू-मुसलिम-भ्रातृभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की है। 'खुदाराम' कहानी के अन्त में वे लिखते हैं :—

'इस पवित्र जुलूस के नेता थे खुदाराम, उनके पीछे हिन्दू मुसलमान बच्चे, बच्चों के पीछे दोनों जाति की माताएँ और सबके पीछे मुसलमान पुरुष-जलूस के सशस्त्र रक्षकों की तरह चल रहे थे। प्रकृति पुलकित कलेवरा थी, तारिकायें खिलखिला रही थीं, चन्द्रमा हँस रहे थे। वह दृश्य पृथ्वी का स्वर्ग था।'[१]

इस चरण के साहित्य के सभी रूपों में भारतीयों की नैतिक-अवनति का चित्रण मिलता है। साहित्य में भारतीयों की आपसी फूट, कलह, लड़ाई-झगड़े आदि का चित्रण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ईर्ष्या और फूट की ओर प्रमुख रूप से साहित्यकारों का ध्यान जाने का कारण यही है कि भारत की परतंत्रता का मुख्य कारण आपसी फूट ही था। दूसरे, राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू-मुसलिम द्वेष की समस्या उग्र रूप धारण करती जा रही थी। बिना हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के स्वतंत्रता की आकांक्षा करना हास्यास्पद था। इसके अतिरिक्त भारतीयों की कायरता, झूठ, दंभ, अहंकार आदि अवगुणों का उल्लेख भी साहित्यकारों ने किया है। भारतीयों के हाकिमों तथा अंग्रेजों की खुशामद करने के सुन्दर चित्र इस काल के साहित्य में उपलब्ध हैं।

देश की आर्थिक-अवनति का वर्णन

स्वदेशी तथा खादी-प्रचार की आर्थिक-योजनाओं ने इस चरण की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। भारत की अवनत आर्थिक दशा का वर्णन पिछले दोनों चरणों के साहित्य में हुआ था। इस चरण में असहयोग-आन्दोलन के कारण आर्थिक-दशा के उल्लेख बहुत कम मिलते हैं।

'पद्यप्रसून' में 'हरिऔध' लिखते हैं कि पेट की ज्वाला से विवश होने के कारण हम हिन्दुओं के बहुत से लाल लूटे जा रहे हैं।[२] इसका भी कवि ने उल्लेख किया है कि भारत-विपिन की जनता जल रही है तथा मंहगी, रोग और दुर्भिक्ष से वह आर्त्त है।[३] स्वदेश संगीत की 'व्यापार' शीर्षक कविता में मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं:—

१—दोजख की आग, 'खुदाराम', पृ० २१९
२—पद्यप्रसून, 'वक्तव्य', पृ० १३५
३—पावन प्रसंग, 'प्रार्थना', पृ० ४–६

'भारत जननी के अंचल का अल्प नहीं विस्तार।
बहती है अब भी उसमें से सरस सुधा की धार॥
दूध बहुत है, पर हा मक्खन कौन करे तैयार।
मथ लेते हैं उसे विदेशी छांछ छोड़कर छार॥[१]

'हिन्दू' में भी जनता की दरिद्रता, मानसिक तथा नैतिक पतन का उल्लेख करते हुये कवि ने स्वदेशी-शासन का पक्ष लिया है।[२]

'सुमन' में महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने भारत की आर्थिक-अवनति का वर्णन करते हुए लिखा है कि सुई, घड़ी और दियासलाई तक भारत दूसरों से लेता है और व्यर्थ ही अपना अपार धन लुटाता है। तातार, गोर, गजनी आदि सभी ने भारत को लूटा परन्तु आजकल जो लूट हो रही है वह उससे कहीं बढ़कर है। प्राचीन-धन-धान्य का कहीं पता नहीं है और अपार दरिद्रता छाई हुई है। जहाँ पेट भर दाना भी न मिल सके वहाँ क्या धन इस प्रकार लुटाना चाहिये? वे देश से कहते हैं कि विदेशी वस्तुओं को त्याग देना चाहिये, ये वस्तुयें विष-तुल्य हैं।[३] 'कर्तव्य पंचदशी' शीर्षक कविता में भी आर्थिक-अवनति का वर्णन है परन्तु वह एक मराठी पत्रक का भावार्थ है, मौलिक कविता नहीं।

राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग) में कवि रूपनारायण शर्मा ने लिखा है कि योरप और अमेरिका से अपार माल आता है, जर्मनी की चीजों से भारत का बाज़ार भरा हुआ है और जापानी माल भी बहुत आता है।[४] शम्भुदयाल शर्मा ने भी भारतीयों के अधपेट भूखों मरने, साग-रोटी पर लड़ने, चिथड़े लपेटे रहने, शीत में ऐंठने, दिन भर कुलियों की तरह काम करने तथा उपवास करने का उल्लेख किया है।[५] पारसनाथ त्रिपाठी ने भी उपवास का उल्लेख किया है।[६] शम्भुदयाल श्रीवास्तव ने 'करुणा क्रन्दन' में वर्णन किया है कि हम दर-दर ठोकरें

१—गुप्त, मैथिलीशरण, स्वदेश संगीत, 'व्यापार', पृ० ९९

२—"सुनो स्वदेशी शासन मात्र
कर सकता है तुम्हें सुपात्र।"
—गुप्त, मैथिलीशरण, 'हिन्दू' पृ० २५८

३—सुमन, 'देशोपालम्भ', पृ० ८७, ८८

४—राष्ट्रीय वीणा, द्वितीय भाग, 'भारत माता की पुकार', पृ०, १८

५—'कब तलक ?', पृ० २२;

६—'बैठे हैं', पृ० ३२

खाते हैं और दीन-दरिद्री बने दाँत दिखलाते फिरते हैं ।[१] कवि हीरालाल ने लिखा है कि भारत को विदेशी से प्यार है और व्यवसाय में यह धूल छानता है । वे प्रश्न करते हैं कि भारत में शिल्प-शिक्षा का कब तक प्रचार होगा ?[२] कवि जगन्नाथ जोशी का विचार है कि भारतीय विद्या और कलाकौशल से शून्य हैं । दुष्ट-रोग-राक्षस हमको निरन्तर नष्ट कर रहा है और दुर्भिक्ष भी भयंकर कष्ट दे रहा है ।[३] 'विकसित' में संकल्प किया गया है कि छोटी-बड़ी सब वस्तुएँ हम घर में बनायेंगे और अब विदेशी वस्तुओं पर धन नहीं लुटायेंगे ।[४] स्वामी-दयालु श्रीवास्तव् ने भारत को सम्बोधित करके लिखा है कि तुम्हारे ही प्रचुर धन से अन्य देशों ने घर भर लिया है । तुम विदेशी वस्तु का आदर मत करो, ऐसा प्रयत्न करो कि तुम्हारा कला-विज्ञान जीवित हो ।[५] कवि रामचरित उपाध्याय ने लिखा है कि गोरस भारत को कहाँ मिले । अन्न तक नहीं मिलता । भूखे रहकर हम किसान बन गये ।[६] कवि शम्भु दयाल श्रीवास्तव ने महंगी और भूख के सम्बन्ध में लिखा है कि अब गेहूँ कस्तूरी है और आतें पेट में बजती हैं ।[७] अन्य अनेक कविताओं में इसी प्रकार कवियों ने भारत की दीनता और दरिद्रता का उल्लेख किया है ।

'जागृत भारत' में कवि माधव शुक्ल ने अकाल, प्लेग आदि का उल्लेख करते हुये लिखा है कि यदि यह सब न होता तो आज हक का सवाल क्यों होता ।[८] लेखक ने निर्धनता का वर्णन इस प्रकार किया है :—

'अमन रहेगी कब तक कायम चार सेर आटा खाकर ।
फाके की तकलीफ़ कहाँ तक सहें हिन्दवासी घर घर ।'[९]

१—'करुणा क्रन्दन', पृ० ३९
२—'कब तक सुधार होगा ?', पृ० ५३
३—'प्रार्थना', पृ० ६४;
४—'हो नहीं सकता', पृ० ६८;
५—'प्रार्थना', पृ० ७०;
६—'हाय हमारे हिन्दुस्तान', पृ० ७२
७—'रंग में है भंग होली में', पृ० ९५
८—जागृत भारत, 'हक का हवाल', पृ० ४२
९—'भयंकर आह', पृ० ५२

भारतीय कलाकौशल के विनाश का भी वर्णन कवि ने किया है।[1]

'लो० तिलक स्मृति' शीर्षक कविता में विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के समर्थन में कवि लिखते हैं कि यदि कहीं विदेशी-वस्त्रों का बाज़ार देखो तो उसे कसाई-खाना समझो। राजनीति में इस समय विदेशी-वस्तु-बहिष्कार उग्र रूप में अपनाया जा रहा था और विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं। इसी कारण इस चरण के साहित्य में सभी साहित्यकारों ने विदेशी-वस्तु-बहिष्कार को साहित्य में स्थान दिया है। कौंसिल-प्रवेश की मनाही भी कवि ने इस आधार पर की है कि इसमें हम अन्न विलायत जाना नहीं रोक सकेंगे, टैक्स घटाने का हमें कोई अधिकार न होगा, अपने वाणिज्य-व्यापार को बढ़ाने की शक्ति हमारे हाथ में नहीं होगी। इस कौंसिल में हमें केवल कर्ज़ चुकाने का अधिकार होगा।[2] कौंसिल-प्रवेश का प्रश्न इस समय राजनीत में बहुत महत्वपूर्ण था। चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू आदि कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे और उन्होंने स्वराज्य पार्टी इसी मतभेद के कारण बनाई थी। दूसरी ओर गाँधी कौंसिल-प्रवेश का विरोध कर रहे थे। ये उल्लेख राजनीति से बहुत प्रभावित हैं। कवि ने यह भी

१—'हाथ कटवा दिया भारत के उन जुलाहों का।
कर दिया ठीकरा हम सब को आज राहों का॥
बनिज और व्यापार मिटाकर—
मिट्टी में हमको मिलाय दिया है॥
गान्धी बाबा ने०॥
ले गये ह्याँ से रुई उसकी बनाई धोती।
जो यहाँ बनती तो कीमत दो रुपैया होती॥
भेजा उसको वहाँ से दाम लिये साढ़े सात।
काट लिया इस तरह गर्दन को सफ़ाई के साथ॥
भड़क दिखा के मूर्ख बना के—
कैसा चकमा दे पैसा छिनाय लिया है॥
गान्धी बाबा ने०॥
इस तरह आबखां अद्धी बनाई मलमल।
हिन्द के लोग इस दलदल में गिरे मुंह के बल॥

—जागृत भारत, 'चरखे से स्वराज्य', पृ० ६८;

२—'इस कौंसिल में मत जाना', पृ० ८१

कहा है कि शासक ने हमें शिक्षा देकर भिक्षा मँगवाई और हमें शस्त्र-विहीन कर दिया। धन, जन और बल सभी घट गया, भारत श्रीहत हो गया और लन्दन की झोली भर गई।[१]

'पथिक' में भी कवि ने दरिद्रता का वर्णन किया है।[२] इस कविता में इसके आगे मज़दूरों, किसानों और रोगों का वर्णन कवि ने किया है।

गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने 'त्रिशूल तरंग' में भारत की आर्थिक अवनति का विशद वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि चक्रवर्तियों के घरों में दाने तक नहीं रहे।[३] हिन्द की दौलत कहाँ गई? अन्न, वस्त्र और धन का टोटा हो गया है।[४] माल तो हम देते हैं और मज़ा सनाअत वाले लूटते हैं। हम तो कोरे मज़दूर या ज़राअत वाले बने हैं और गल्ला विलायत वाले खींचकर लिये जाते हैं। कभी सैलाब है तो कभी पाला पड़ता है। कभी कपड़ों का रोना रहता है तो कभी नमक का, कभी ताऊन होता है तो कभी हैजा।[५] मेवों के भाव तो आजकल मटर बिक रही है और बनियों की बन आई है। किसान और मज़दूर भूख के मारे मरते हैं। घास तक भी नहीं बची है कि वे उसी को खाते।[६] अब वह गोधन की भीड़ कहाँ है? अब तो बस जर्जर शरीर वाले दो-चार पशु रह गये हैं।[७] देशी-व्यापार और कला-कौशल के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि व्यापार पर बज्र पड़ गया है और शिल्प का नाश हो गया है। लाभ का तो नामोनिशान तक नहीं है और उस पर व्यय का विशेष भार गज़ब करता है।[८] खेती, कारीगरी आदि को हम अधम काम समझते हैं।[९] 'होली है' शीर्षक कविता में भी कवि

१—'सावधान', 'होली', पृ० ७७

२—अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना।
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना॥
—त्रिपाठी, रामनरेश, 'पथिक', तीसरा सर्ग पृ० ४१

३—त्रिशूल तरंग, 'गुज़रा हुआ ज़माना', पृ० ४;

४—'क्या हुआ ?', पृ० २२-२३;

५—'इफ़लास की घटा', पृ० २५;

६—'गरीबों की गुहार', पृ० ४५;

७—'किसान', पृ० ४७;

८—'दुखियों का संदेश', पृ० ५५;

९—'विविध विचार', पृ० ५७

ने भारतीयों की निर्धनता का वर्णन इस प्रकार किया है ——

'यद्यपि न घरों में दाने हैं, पर प्रकृति साज मनमाने हैं।'[१]

देश की आर्थिक दुरवस्था का वर्णन नाटककारों ने भी किया है। किशनचन्द जेबा ने 'ग़रीब हिन्दुस्तान' में भारत सरकार के शस्त्र-कानून, इनकम्-टैक्स, स्टाम्प, रजिस्ट्री तथा नमक, रुई, शक्कर आदि के महसूलों का उल्लेख किया हैं।[२] लेखक ने गोरक्षा के प्रति भी आग्रह प्रकट किया है।[३] 'प्रसाद' के नाटकों में भी आर्थिक दशा के उल्लेख हैं परन्तु वे बहुत परोक्ष रूप में ही हैं जैसे 'कामना' में वन लक्ष्मी कहती है 'देखो, तुम्हारी कर लेने की प्रवृत्ति ने नाजों का सत्व हलका कर दिया, कृषक थकने लगे हैं।'[४] 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटक के चतुर्थ अंक में प्रसाद ने प्राचीन भारत में 'कर' के उद्देश्य तथा उच्चादर्श का वर्णन किया है। मालिनी वेश्या के अपहृत धन का पता न लगने पर मातृगुप्त दंडनायक देवनंद से कहता है कि तुम गुप्त-साम्राज्य का विधान भूल गये। कर, प्रजा की रक्षा के लिये लिया जाता है। यदि तुम रक्षा न कर सके तो अपहृत-धन तुम्हारी भृत्ति से काटकर इस रमणी को दिया जायेगा। टैक्सों का विरोध काँग्रेस ने भी किया था। यह कथन ब्रिटिश-शासन की अन्धाधुन्ध कर लगाने की नीति के विरोध में किया गया है।

'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि जनसेवक का मुख्य उद्देश्य तो अपना स्वार्थ है फिर भी कहते वह यही हैं कि वे स्वदेशी-व्यापार की रक्षा के हेतु कौंसिल में जाना चाहते हैं। उनका विचार है कि भारत में करोड़ों रुपये के सिगरेट और सिगार आते है। इस धन को विदेश जाने से रोकना भारतीयों का कर्तव्य है।[५] वह विदेशी वस्तुओं पर कठोरता से कर लगाने के पक्षपाती हैं और इंगलैंड की व्यवसायिक-दासता के घोर विरोधी हैं।[६] उपन्यासों के नायक और नायिकाओं को लेखकों ने विदेशी-वस्तुओं से घृणा करने वाला चित्रित किया है, जैसे 'कायाकल्प' में मनोरमा को या 'पिया' में पपीहरा को। असहयोग-

---

१——त्रिशूल तरंग, 'होली है', पृ० १०५
२——'गरीब हिन्दुस्तान', बाब पहला, सीन दूसरा;
३——सीन सातवाँ
४——'कामना', तृतीय अंक, दृश्य ४
५——'रंगभूमि', प्रथम भाग, पृ० ७८;
६——द्वितीय भाग, पृ० १३५

आन्दोलन में रचनात्मक-कार्यक्रम क्रमशः उन्नति कर रहा था। इसमें विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार और स्वदेशी-प्रचार विशेष महत्वपूर्ण था। यही कारण है कि लेखकों ने स्वदेशी में आस्था प्रकट की है और नायक-नायिकाओं के रूप में ऐसे व्यक्तियों का चित्रण किया है जो राष्ट्रीय विचारों के समर्थक हों।

'सुप्रभात' की 'हारजीत' कहानी का कथानक भी स्वदेशी से सम्बन्धित है। सेठ नरोत्तमदास का पुत्र लखमीचन्द स्वदेशी-आन्दोलन का समर्थक है और वह अपने विदेशी कपड़े जला देता है। पिता की सहानुभूति उसके साथ नहीं है। वे विदेशी वस्त्र अपनी दुकान पर बेचते हैं परन्तु स्वयं सेवकों के साथ अपने पुत्र को भी पिकेटिंग करते देखकर उनके विचार बदल जाते हैं। फलस्वरूप वे खद्दर पहनना प्रारम्भ कर देते हैं और चर्खे के समर्थक बन जाते हैं। 'अन्तिम साधन' कहानी में भी लेखक ने दिखाया है कि रायबहादुर देवीचन्द सरकार के पुछल्ले हैं। उनकी पत्नी विदेशी वस्त्र स्वयं-सेवकों को जलाने के लिये दे देना चाहती है, परन्तु वह ऐसा नहीं करने देते। पत्नी के देहान्त के बाद वे अपनी भूल समझकर स्वदेशी आन्दोलन के कट्टर समर्थक बन जाते हैं।

'पुष्पलता' की 'प्रतिकार' तथा 'पाप का पैसा' कहानियों में पंजाब में प्लेग फैलने का उल्लेख मिलता है। स्वातंत्र्य-आन्दोलन के इस तृतीय-चरण में, पहले दोनों चरणों के समान ही साहित्यकारों का ध्यान देश की दरिद्रता, महँगी, अकाल तथा रोगों आदि की ओर गया। कला-कौशल के विनाश पर लगभग सभी साहित्य-कारों ने दुख प्रकट किया। स्वदेशी का आग्रह और विदेशी-बहिष्कार का वर्णन इस चरण के साहित्य में बहुत हुआ है।

परतंत्रता सम्बन्धी उद्गार

देश की पराधीनता पर साहित्यकारों ने स्वातंत्र्य आन्दोलन के प्रथम और द्वितीय दोनों चरणों में क्षोभ व्यक्त किया था। १९२८ ई० तक राजनीतिक-क्षेत्र में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य ही रक्खा था।

'स्वदेश संगीत' में देश की परतन्त्रता पर विशेष रूप से विचार नहीं व्यक्त किये गये हैं यद्यपि परोक्ष रूप से 'पराधीनता पाश' आदि का उल्लेख कवि ने किया है।[१] 'स्वराज्य की अभिलाषा' शीर्षक कविता में कवि की स्वराज्य की कल्पना

१—गुप्त, मैथिलीशरण, स्वदेश संगीत, 'भाषा का सन्देश', पृ० ७७, तथा 'जय बोल', १२७

ब्रिटिश-शासन से पूर्ण स्वाधीनता की न होकर ब्रिटिश-साम्राज्य के सम्मानपूर्ण ऐसे नागरिक होने की लगती है जिन्हें सब अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हों। यह कल्पना राजनीतिक-क्षेत्र में औपनिवेशिक-स्वराज्य के पूर्ण सामंजस्य में दिखाई देती है।[१] 'पत्रावली' का पहला पत्र महाराणा पृथ्वीराज ने राणाप्रताप को लिखा है और इस पत्र का विषय स्वाधीनता से सीधा सम्बन्ध रखता है, यद्यपि यह घटना मुगल काल की है। 'गुरुकुल' में भी परतंत्रता पर दुख प्रकट करते हुए गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं कि हमारे करोड़ों भाई-बन्धु दासता के बन्धन में बंधे हुए हैं।[२] यह कथा भी मुगल-काल की ही है।

महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सुमन' में स्वतंत्रता को अमूल्य रत्न कहा है और परतंत्र अवस्था में स्वर्ग-निवास से अधिक श्रेष्ठ स्वतंत्रता के सहित नरक-निवास को माना है।[३] परतन्त्रता पर दुख प्रकट करते हुए कवि ने लिखा है—

'स्वाधीनता सदृश वस्तु न और प्यारी,
हे दीन-देश ! वह भी न रही तुम्हारी !'[४]

गयाप्रसाद शुक्ल ने 'राष्ट्रीय-मंत्र' में स्वतंत्रता का गुणगान करते हुए लिखा है कि चिड़ियाँ गगन में उड़कर स्वतंत्रता के ही गीत सुनाती हैं और स्वर्ग की देवियाँ भी स्वतंत्रता देवी के गुण गाती हैं।[५] 'असहयोग' शीर्षक कविता में कवि ने लिखा है कि हमें दास्य का रोग ऐसा लगा कि फिर वह नहीं छूटा। किसी ने भी ऐसा दुख भोग नहीं भोगा होगा। अगर हम चाहते हैं कि अब दासता में न रहें और स्वाधीन हो जायें तो असहयोग कर देना चाहिए।[६]

'त्रिशूल तरंग' में भी गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने कई स्थानों पर परतंत्रता पर क्षोभ और दुख प्रकट किया है। 'प्रकृति सन्देश' कविता में कवि ने स्वतंत्रता का आवाहन किया है और परतंत्रता से मुक्त होने की कामना की है।[७] एक अन्य कविता में वे क्षोभ के साथ लिखते हैं कि दुनिया से अब तक गुलामी नहीं उठ सकी

१—स्वदेश संगीत, 'स्वराज्य की अभिलाषा', पृ० ११८–११९
२—गुरुकुल, पृ० १८६
३—सुमन, 'सेवावृत्ति की विगर्हणा', पृ० ७३
४—'देशोपालम्भ', पृ० ८५
५—राष्ट्रीय मंत्र, 'स्वतंत्रता', पृ० ४५
६—'असहयोग', पृ० ४३
७—त्रिशूल तरंग, 'प्रकृति सन्देश', पृ० ५

है।[१] 'गज़ल' में वे दुःख के साथ लिखते हैं :—

'लुत्फ़ आज़ादी का हमने पाया नहीं,
कुछ मज़ा जिन्दगी का उठाया नहीं।'[२]

'फ़रियादे बुलबुल' में भी कवि लिखते हैं कि आज़ादी के लुत्फ़ की तो अब याद तक दिल में नहीं है क्योंकि कफ़स में रहते-रहते मुद्दतें हो गईं।[३] 'क्या हुआ ?' शीर्षक कविता में भी कवि लिखते हैं कि हमें तो कदम उठाना तक दूभर हो गया है क्योंकि हमारे पैरों में दासता की बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं।[४] 'यादे वतन' में भी कवि की यही कामना है कि—

'इस गुलामी के गमोरंज से आज़ाद रहें।'[५]

'परतंत्रता' शीर्षक एक कविता भी इस संग्रह में है।[६] अन्य कवियों ने भी देश की परतंत्र अवस्था पर दुख प्रकट किया है। 'स्वप्न' में रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि कहीं पर पद-दलित, पर-मुखापेक्षी, पराधीन और परतंत्र होकर आर्य भी जीते हैं ?[७]

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में पराधीनता पर क्षोभ व्यक्त किया है। वे दुख के साथ लिखते हैं कि पराधीनता के दुख से भरी हुई यह रात नहीं कट रही है। जाने कब स्वतंत्रता का पुण्य प्रभात होगा।[८] 'स्वाधीनता' शीर्षक भी एक कविता है। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' कविता यद्यपि १८५७ ई० की क्रान्ति में लक्ष्मी बाई के महान त्याग के विषय को लेकर लिखी गई है फिर भी वह समकालीन राष्ट्रीय-आन्दोलन से प्रभावित है। स्वाधीनता को इस कविता में विशेष महत्व दिया गया है।[९] विद्यार्थियों के वर्ग ने इसे बहुत अपनाया।

१—त्रिशूल तरंग, 'वह नहीं है', पृ० १२;
२—'गज़ल', पृ० १७;
३—'फ़रियादे बुलबुल', पृ० १८;
४—'क्या हुआ ?', पृ० २२;
५—'यादे वतन', पृ० ३२;
६—'परतंत्रता', पृ० ४०
७—स्वप्न, पाँचवाँ सर्ग, पृ० ९१
८—वीर सतसई, तीसरा शतक, पृ० ४६–४७
९—महलों ने दी आग, झोपड़ों ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आयी थी,

'राष्ट्रीय वीणा' में रामकृष्ण दास की 'स्वतंत्रता का जन्म स्थान' तथा दशरथ प्रसाद द्विवेदी की 'स्वतंत्रता का आह्वान' शीर्षक कविताओं में स्वतंत्रता के सुख और परतंत्रता के कष्ट का वर्णन करते हुए स्वतंत्रता की कामना की गई है। राधा-वल्लभ पांडेय लिखते हैं कि जिसे अपनी परतंत्रता पर दुख तथा स्वतंत्रता का कुछ भी ध्यान नहीं है वह नर-पशु है और मृतक के समान है।[१] शम्भुदयाल श्रीवास्तव ने 'महाराणा प्रताप और स्वतंत्रता' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता के प्रति प्रेम प्रकट किया है और 'करुणाक्रन्दन' शीर्षक कविता में देश के पराधीनता-रोग-ग्रस्त होने का उल्लेख किया है।[२] शिवराम शुक्ल ने 'स्वातंत्र्य प्रेम' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता को तन से, धन से और धर्म से बढ़कर माना है।[३] प्यारेलाल वृष्णि ने 'राष्ट्रगान' शीर्षक कविता में पराधीनता-अग्नि को दुखदायी बताते हुए भारत-उपवन में स्वातंत्र्य-समीर के संचरित होने की कामना की है।[४]

'जागृत भारत' में माधव शुक्ल ने भारत की परतंत्रता पर बहुत दुख प्रकट किया है और भारतीयों से इस दासता-दुख को हरने का आग्रह किया है। कवि के मतानुसार पराधीनता में मरना देव नियम के विपरीत है।[५] इसी प्रकार अनेक कविताओं में परतंत्र अवस्था पर क्षोभ, स्वतंत्रता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प तथा इस उद्देश्य के लिए सब कुछ होम कर देने की इच्छा प्रकट की गई है। 'जागृत भारत' की अधिकांश कविताओं में भावनाओं की जो तीव्रता मिलती है वह अन्य कविताओं से इन्हें पृथक कर देती है, जैसे—

> 'छोड़ दे यह चोला बन्दे–यह न तेरे काम का।
> दाग लग गया है इसमें दासता के नाम का॥

झांसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छायी थीं,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचायी थी।
—सुभद्रा कुमारी चौहान, मुकुल, झांसी की रानी, पृ० ५३

१—राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग), 'आत्मगौरव,' पृ० २८

२—'महाराणा प्रताप और स्वतंत्रता', पृ० ९९–१०० तथा 'करुणा क्रन्दन', पृ० ४०;

३—'स्वातंत्र्य प्रेम', पृ० ४६

४—'राष्ट्रगान', पृ० ६१

५—जागृत भारत, 'स्वर्ण अवसर', पृ० १२

हाथ पाँव बानी तेरी, सभी हैं परायी चेरी ।
बना है खिलौना चाभीदार कोई नाम का ॥
*　　　　*　　　　*
तेरी छाया से हत्यारी, दुनिया है घिनाती सारी ।
पर्स न करेंगे गीध, तेरे दास चाम का ॥
*　　　　*　　　　*
विश्व को तेरी हासी, मा बनी परायी दासी ।
तुझ सा कौन पापी 'माधो' आज धरा धाम का ॥[1]

'भयंकर आह' में भी कवि लिखते हैं कि पराधीनता का दुख जीवित मनुष्य कहाँ तक सह सकता है ।[2]

'मानसी' में परतंत्रता पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कवि ने लिखा है कि हम घर को भूल गये और पराये लोग गृह स्वामी बन गये हैं, हम उजड़ गये हैं और अन्यों ने पैर जमा लिये हैं ।[3] कवि लिखते हैं कि शूर-वीर जग में उजाला करने के लिए अपने शोणित से स्वतंत्रता का दीपक संजोते हैं ।[4] उन्होंने स्वतंत्र देश में जागने की कामना की है[5] और लिखा है कि हम अमर हैं, परन्तु हम पराधीन हो गये हैं ।[6]

'पथिक' में रामनरेश त्रिपाठी ने परतन्त्रता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। वे लिखते हैं कि अपना शासन अपने आप करने में ही शान्ति और सुख है तथा पराधीनता से बढ़कर जगत में और कोई दुख नहीं है। एक घड़ी की परवशता भी कोटि नरक के समान है और पल भर की स्वतंत्रता भी सौ स्वर्गों से उत्तम है ।[7]

'पुष्पलता' में सुदर्शन लिखते हैं कि पराधीनता की विजय से स्वतंत्रता की हार हज़ार गुना अच्छी है। उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया है कि राजपूत

१—जागृत भारत, 'धिक् दासत्व', पृ० २०–२१;
२—'भयंकर आह', पृ० ५२
३—मानसी, 'दुर्भाग्य', पृ० २३
४—'स्वतंत्रता का दीपक', पृ० ९७
५—'कामना', पृ० २८;
६—'अतीत चिन्ता', पृ० ४७
७—पथिक, तीसरा सर्ग, पृ० ४९

मातृभूमि के लिए लड़ रहे थे, अतः उनकी जीत हुई।[1]

देश की पराधीनता पर सामान्यतः कवियों ने अत्यधिक क्षोभ व्यक्त किया है और स्वतंत्रता की आकांक्षा की है। स्वतंत्रता के लिए बलिदान की भावना भी काव्य में दृष्टिगोचर होती है परन्तु स्वतंत्रता का क्या स्वरूप होना चाहिए अथवा स्वतंत्रता प्राप्ति के साधन क्या होना चाहिए आदि स्वतंत्रता से सम्बन्धित समस्याओं पर कवियों ने गम्भीर विचार नहीं व्यक्त किये। मैथिलीशरण गुप्त ने अवश्य एक कविता में स्वतंत्रता के स्वरूप को औपनिवेशिक-स्वराज्य के समकक्ष रक्खा है।

काव्य के अतिरिक्त अन्य साहित्य-धाराओं में लेखकों ने परतंत्रता के सम्बन्ध में विचार नहीं प्रकट किये।

उद्‌बोधन

उद्‌बोधन की कवितायें आन्दोलन के दोनों चरणों में लिखी गई थीं और इस चरण के साहित्य में भी उनकी रचना हुई है।

'स्वदेश संगीत' में उद्‌बोधन की भी कुछ कवितायें हैं जिनमें भारतीयों को आशा का सन्देश दिया गया है। 'चेतना', 'जगौनी', 'प्रेरणा' आदि ऐसी ही कवितायें हैं। 'वैतालिक' मैथिलीशरण गुप्त की उद्‌बोधन की एक लम्बी कविता है। इसमें भी भारतवासियों को आशा का संदेश दिया गया है। कविता में कला की प्रधानता है, विषय गौण-सा है। कविता के प्रारम्भ में सुन्दर प्रकृति-वर्णन है। भारतीयों से अपनी अवनति में संतोष न करके उद्यम करने का आग्रह किया गया है। पाश्चात्य देशवासियों की प्रशंसा की गई है पर साथ ही चेतावनी भी दे दी गई है कि उनका केवल साहस, श्रम और उद्योग ग्रहण करना चाहिए, लक्ष्य या दृष्टि-कोण नहीं।

मैथिलीशरण गुप्त की 'शक्ति' की कथा शक्ति द्वारा दैत्यों की पराजय की है। देवों का घर-बार और अधिकार छिन जाता है तथा हरि, ब्रह्मा, रुद्र आदि की शक्ति, सम्मिलित शक्ति बनकर दैत्यों का संहार करती है। इस प्रकार उन्होंने सम्मिलित-शक्ति द्वारा शत्रुओं से लोहा लेने की प्रेरणा दी है।

'पद्यप्रसून' में भी हरिऔध ने एकता पर बहुत बल दिया है।[2] कवि लिखते

१—'राजपूतानी का प्रायश्चित्त', पृ० १४४ तथा १४७

२—'कुछ भेद हो भले ही उनकी रहन सहन में।
पर एक अस्ल में हैं हिन्दू तुरुक नसारा।

हैं कि बौद्ध, जैन, और सिक्ख सभी हमारे प्यारे हैं। आर्य समाजी हिन्दुओं से अलग नहीं हैं। नाना मत होने से हम मतवाले नहीं बने। इन सब प्यालों में एक ही दूध है।[१]

'त्रिशूल तरंग' की अधिकांश कविताओं में कवि गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने भारतीयों को जागृत करने का प्रयत्न किया है।[२] कई कविताओं में आशा का संदेश कवि ने दिया है और आगे बढ़ने का आग्रह किया है।[३] उन्होंने भारतीयों को उत्साहित किया है।[४]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'स्वप्न' में वीरों को जागृति का संदेश दिया है।[५]

'राष्ट्रीय मंत्र' में कवि ने जागृति का संदेश दिया है और युवकों को उत्साहित किया है।[६]

है एक गोद तेरी जिसमें हरक हिन्दू।
अंगरेज और मुसलमाँ प्यारों सहित पलेगा।'

—पद्यप्रसून, 'जीवन-स्रोत,' 'भारत', पृ० ६२, ६४

१—जातीयता ज्योति, 'घर देखो भालो', पृ० १५८–१५९

२—त्रिशूल तरंग, 'दृढ़ बनो', 'सान्त्वना'

३—राष्ट्रीय शिक्षा पंचक, 'कौमी गजल', जातीय गीत'

४—'इसलिए याद हम दिलाते हैं, नींद से ही तुम्हें जगाते हैं।'

—त्रिशूल तरंग, 'जीवनोद्देश', पृ० ११

'हिम्मत हो अगर तुममें तो क्या कर नहीं सकते।'

—त्रिशूल तरंग, 'क्या कर नहीं सकते ?', पृ० १६

'हाँ बढ़ाये कदम ऐ सपूतों चलो,
सख्त मंजिल थी पर अब तो सर हो गई।'

—त्रिशूल तरंग, 'गजल', पृ० १८

५—'देश आत्म बलिदान तुम्हारा
माँग रहा है आज वीरवर !
दिग्विजयी वीरों के वंशज !
युवकों ! उठो संगठित होकर॥'

—स्वप्न, पाँचवाँ सर्ग, पृ० ९३

६—'उठो युवकगण उठो, भेद का भंडा फोड़ो,
आड़े आयें अगर रूढ़ि के बन्धन तोड़ो।'

—राष्ट्रीय मंत्र, 'जातीयता', पृ० ३०

एकता पर सभी कवियों की भाँति 'त्रिशूल' ने भी बहुत बल दिया है।[१]

राष्ट्रीय वीणा (द्वि० भा०) में दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने स्वतंत्रता से निन्द्य निराशा के नाश करने तथा हृदय में उत्साह भर देने की प्रार्थना की है। वह कामना करते हैं कि हम लोग स्वतंत्रता की गुण-गाथा गाकर पृथ्वी और आकाश को हिला दें।[२] 'चेतावनी' तथा 'हिन्दोस्तान वालों' : ले० राधा वल्लभ पांडेय; 'आकांक्षा' : ले० अभिलाषी; 'उठो' : ले० मुकुन्दराम जाट, आदि कविताओं में उद्बोधन के गीत हैं। शिवदुलारे वाजपेयी ने 'विश्वास' शीर्षक कविता में भारत की उन्नति होने में पूर्ण विश्वास प्रकट किया है।

'जागृत भारत' की अधिकांश कविताओं में कवि ने देश को जागृत करने का प्रयत्न किया है और ओजमयी वाणी में जनता को स्वातंत्र्य-आन्दोलन में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया है।[३]

'एकता' पर माधव शुक्ल भी बहुत बल देते हैं।[४]

बेचन शर्मा उग्र के 'चन्द हसीनों के खतूत' उपन्यास में उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं और मुसलमानों में भ्रातृभाव उत्पन्न करना है। उपन्यास की नायिका मुसलमान है जो एक हिन्दू नवयुवक से प्रेम करती है, परन्तु दंगों में नायक की हत्या हो जाती है। उपन्यास का अंत बहुत करुण दिखाकर लेखक ने हिन्दू-मुसलिम एकता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

'कायाकल्प' उपन्यास में प्रेमचन्द ने भी हिन्दू-मुसलिम दंगों का वर्णन किया है और एकता की प्रेरणा दी है। आगरे में भयानक हिन्दू-मुसलिम दंगे होते हैं।

१—'ठीक समय है यही वीर ! अवसर मत चूको,
फूंको फूंको शंख एकता का अब फूंको।'
—राष्ट्रीय मंत्र, 'जातीयता' पृ० ३३

२—राष्ट्रीय वीणा, (द्वि० भा०), 'स्वतंत्रता का आह्वान,' पृ० १४

३—'तुम्हारी यही आज पहिचान।
धनी जनों सम्पत्ति लगा दो, बली लड़ा दो जान।
विद्वानों ! तुम बुद्धि लगाकर रख लो भारत मान॥
—जागृत भारत, 'परीक्षा', पृ० १६

४—'स्वार्थ और मतभेद मिटाओ, बैर फूट को दूर भगाओ।
फहराओ जग आज हिन्द में, इक जातीय निशान॥
—जागृत भारत, 'बलिदान', पृ० ५

उपन्यास का नायक चक्रधर इनको रोकने का प्रयत्न करता है। ऐसे ही एक दंगे में यशोदानंदन की मृत्यु हो जाने पर ख्वाजा साहब को बहुत दुःख होता है और वे अहल्या की रक्षा करते हैं। धर्म की विभिन्नता होते हुये भी यशोदानंदन तथा ख्वाजा साहब की अनुपम मित्रता का वर्णन उपन्यासकार ने किया है।

मानसरोवर (द्वि० भा०) में प्रेमचन्द ने अपना यह विचार व्यक्त किया है कि केवल कानून से सामाजिक सुधार नहीं हो सकते। शिक्षा और जागृति फैलानी चाहिये जिससे अपने आप यह सुधार हों।[1] सुप्रभात की 'सत्यमार्ग' कहानी में मुहम्मद अब्बास के मित्र उन्हें देश-सेवा के लिये उत्साहित करते हैं। वे कहते हैं कि अगर सचमुच देश के साथ प्रेम है तो कुछ करके दिखाओ और जाति-सेवा का कार्य हाथ में लो।[2]

साहित्यकारों ने एकता का विशेष रूप से आग्रह किया है क्योंकि उनका विश्वास है कि जब तक विभिन्न धर्मावलम्बियों तथा विभिन्न मतानुयायियों की शक्ति सम्मिलित होकर ब्रिटिश शासन से मुक्ति का प्रयत्न नहीं करती, तब तक उसकी आशा करना दुराशा मात्र है। राष्ट्रीय-आंन्दोलन में भी इस काल में एकता पर विशेष रूप से बल दिया गया। प्रत्येक सत्याग्रही के लिये हिन्दू-मुसलिम ऐक्य में विश्वास करना आवश्यक माना गया। कोहाट आदि स्थानों में भयंकर हिन्दू-मुसलिम दंगे भी हुये थे। इसीलिये कवियों का ध्यान एकता की ओर बहुत अधिक गया।

राजभक्ति की भावना

साहित्य में राजभक्ति की भावना किस प्रकार क्रमशः क्षीण होती चली गई है इसका अध्ययन बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। द्वितीय चरण तक भारतीयों की राजभक्ति की भावना सुदृढ़ बनी रही परन्तु तृतीय चरण में इस भावना में उल्लेखनीय परिवर्तन हो गया। इसका कारण बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियाँ ही थीं। अभी तक हमारे कवि राजा के प्रति भक्ति प्रकट करते आये थे। यह भक्ति इस चरण में समाप्त हो गई है। दो एक कविताओं में अंग्रेज-जाति के गुणों का उल्लेख कवियों ने अवश्य किया है। अंग्रेज जाति की प्रशंसा अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'चुभते चौपदे अथवा देश दशा' में की है। कवि लिखते

१—मानसरोवर, (द्वि भा०), 'कानूनी कुमार'
२—सुप्रभात, 'सत्यमार्ग, पृ० ५८

हैं कि वे तो सूबे चला रहे हैं और हमारे पास मनसूबे भी नहीं हैं। उनकी दौड़ 'बिराने' देस तक है, जब कि हम लोग घूम-फिर कर घर में ही रह जाते हैं। वे तो जहाँ जाति का पसीना गिरता है, वहाँ लहू गिराते हैं और हम जाति के लहू को चूस लेने के लिये हूबहू जिन्द बनते हैं।[१] 'अनामिका' की एक कविता 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम् के प्रति' में कवि ने उनके प्रणय की सराहना की है। अंग्रेजों के गुणों का उल्लेख प्रेमचन्द ने भी किया है। 'रंगभूमि' में विनय कहते हैं कि अंग्रेज़ रिश्वत लेते हैं लेकिन अपने राज्य का अपकार करके नहीं।[२] डॉ० गांगुली अंग्रेजों से निराश नहीं होते और उनका विश्वास यही रहता है कि भारत का उद्धार अंग्रेज़ जाति के ही द्वारा होगा।[३]

ब्रिटिश शासन से असंतोष

'मानसी' में 'नानी का घर' तथा 'हैट के गुण' शीर्षक कविताओं में कवि ने अंग्रेज साहबों की निन्दा की है। 'हैट के गुण' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि यह अपढ़ देहातियों में भय उत्पन्न करता है और योरप-निवासियों की दृष्टि में इसकी एक उपयोगिता यह भी है कि सिर पर हैट रखकर चाहे जो अनर्थ करो, यह हैट ईश्वर की दृष्टि से बचा लेता है। दूसरी कविता में कवि ने वर्णन किया है कि किस प्रकार अंग्रेज साहब लोग यहाँ मौज उड़ाने के बाद धन बटोर कर स्वदेश भाग जाते हैं।[४]

१—चुभते चौपदे अथवा देश दशा, 'वे और हम', पृ० १६६-१६७

२—रंगभूमि, द्वितीय भाग, पृ० १८७;

३—प्रथम भाग, पृ० २६५

४—'मैंने कहा साहब ! यहाँ ही बस जाइये,
बहुत धन माल यहाँ आपने कमाये हैं।
पेंशन भी लीजिये, तिजारत भी कीजिए,
समस्त अधिकार आपने ही अपनाये हैं॥
बोला वह बिगड़ गंवार सी न बातें करो,
जीने यहाँ आये हम मरने न आये हैं।
खाते हैं उड़ाते हैं बटोर धन भागते हैं
नानी का सा घर ये निगोड़े देख पाये हैं॥'

—मानसी, 'नानी का घर', पृ० २४

शासकों के हृदय में देश की भलाई की कितनी क्षीण भावना है इस पर भी कवि ने व्यंग्य किया है।[1]

'जागृत भारत' में कवि माधव शुक्ल ने विदेशी-शासन को व्यर्थ बताया है। वे लिखते हैं कि जागते भारत में बेकार बाहरी पहरेदार क्यों हो जो हितेच्छु बनकर अपकार तथा पैशाचिक अत्याचार करे।[2] कवि लिखते हैं कि महारानी की घोषणा निष्फल हो गई। कुटिल नौकरशाही ने छलकर हमको मारा है। ब्रिटिश-मान-रक्षा के हित हमने अपने लाखों भाई कटा डाले, अपना पेट काटकर धन दिया और खजानों के ताले खोल दिये, उस पर भी हम 'डैमफूल' और 'कुली' कहकर पुकारे जाते हैं और अपनी राजभक्ति का प्रतिफल रोलेट बिल पाते हैं।[3] हम धनीतन्त्र नहीं चाहते हैं और स्वार्थी सरकार भी नहीं चाहते, प्रजा का नाश करने वाले कर्मचारियों की भी हमें आवश्यकता नहीं है। प्रजा का स्वत्व हरने वाली, पक्षपातयुक्त, भेदभावनापूर्ण, स्वार्थ के साँचे में ढली हुई नीति हमें अभीष्ट नहीं है। अब अन्यायपूर्ण अत्याचार हम सहन नहीं कर सकते हैं।[4] शासकों को कवि ने भेदभाव के भक्त, स्वार्थ के सुदृढ़ उपासक, दैवी-नियम नष्ट करने वाले, स्वेच्छाचारी, शासन के शौकीन, दीनों को कष्ट देने वाले, दूसरे के मुख से ग्रास छीनकर अपना पेट भरने वाले कहा है।[5]

जालियानवाला बाग के हत्याकांड में ब्रिटिश शासकों के दमन के नये-नये रूप दृष्टिगोचर हुये। अंग्रेजों के न्याय, उनकी उदारता तथा उनकी दयालुता पर से भारतीयों का विश्वास उठ गया और उसके विपरीत उनकी स्वार्थलोलुपता, कठोरता, लूट-खसोट आदि का वर्णन साहित्य में होने लगा। दमन के सम्बन्ध में भी कवि कहते हैं कि अब भारत के दीनों की भयंकर आह निकल पड़ी है, तोप और संगीन की मार अब शान्ति नहीं रख सकती है। नारी और बच्चों पर अत्याचार देखकर मनुष्य कब तक चुप रह सकता है। मार खाते-खाते धैर्य का

१—'साहब के दिल में दिमाग में दिखावे में भी
हिंद की भलाई के खयाल सी कमर हो।'
—मानसी, 'नया नखशिख', पृ० १०२

२—जागृत भारत, 'जागृत भारत', पृ० ६;

३—'हमारा जन्म सिद्ध अधिकार', पृ० ७;

४—'हमारी आकांक्षा', पृ० ५३;

५—'भारत और भविष्योदय', पृ० ३४

भी धीरज हट जाता है। जले, कलपते हुये हृदयों की दवा, दमन कभी नहीं है। एक अदना सिपाही भी हमें 'ताबेदार' समझता है।[1] नौकरशाही के नये-नये जुल्मों से घर की दीवारें तक काँप गई हैं। पंजाब पर जैसा अत्याचार हुआ वह किसी से छिपा नहीं है। जालियानवाला बाग में भयानक हत्याकांड हुआ। इनका न्याय देखकर सूर्य और चन्द्रमा भी लज्जित हैं जिसका उदाहरण यही है कि दुष्ट डायर अभी तक जीवित है। असहयोग की अमृतधारा ने आज हमारा उद्धार कर लिया। राष्ट्रीय-आंदोलन की सत्याग्रह-नीति के अनुसार कवि नें दमन का स्वागत किया है।[2]

कवि ने स्पष्ट कहा है कि हमारा दल शान्त तपस्वियों का है और हिंसा हमारा काम नहीं है। अगर जर्मनी के बाद भी तुममें मारने की इच्छा अवशिष्ट है तो तुम अपनी इच्छापूरी कर लो।[3] 'गोली सों खेलेंगे होली' शीर्षक कविता में कवि ने सरकार के दमन और अत्याचारों से जनता का होली खेलने का संकल्प व्यक्त किया है। अन्य कविताओं में भी सरकार की दमन-नीति और जनता का वीरता से डटकर उसका मुकाबला करना दोनों का सुन्दर वर्णन मिलता हैं।

'त्रिशूल तरंग' में भी कवि ब्रिटिश राज्य के दमन की ओर संकेत करते हुये लिखते हैं कि 'शौक जिनको हो सताने का सतायें आयें।'[4]

'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द दिखाते हैं कि राष्ट्र-सेवकों से शासकों को कितना द्रोह है। उन्होंने वर्णन किया है कि हाकिमों की खुशामद की बदौलत लोग बड़े आदमी बन जाते हैं जैसे जान सेवक। मिस्टर सेवक कहते हैं कि जो आदमी हाकिमों की खुशामद न करे वह उनकी दृष्टि में राजद्रोही है। जो व्यक्ति राष्ट्रसेवा करना चाहे, भारत के व्यवसाय और कलाकौशल को पुनः जीवित

१—जागृत भारत, 'भयंकर आह', पृ० ५२;

२—'वीर बृटिश अब शान्त प्रजा के खूं की नदी बहा डालो।
गिरफतार कर लो गाँधी को जिन्दा उसे जला डालो॥
हम मरते ही नहीं जीव फिर नया वस्त्र पहिरायेंगे।
अब तो अड़कर—'

—'चैतन्य भारत', पृ० १०–११;

३—'दमन स्वागत', पृ० १३–१४

४—त्रिशूल तरंग, 'शैदाय वतन', पृ० ३३

करना चाहे तो वह दंडनीय है।[१] हाकिमों का दृष्टिकोण यह है कि वे ही सरकार हैं, वे ही कानून बनाते हैं और उन्हें सब अधिकार प्राप्त है।[२] मिस्टर क्लार्क स्पष्ट करते हैं कि उनके वर्ग का मुख्य उद्देश्य शासन करना है। उनके न्याय, सदिच्छा, सहृदयता सब का एक ही उद्देश्य है—शासन करना। जहाज़ से उतरते ही वे अपने व्यक्तित्व को मिटा देते हैं।[३] वे कहते हैं कि अंग्रेज जाति भारत को अनंत काल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाये रखना चाहती है। कंज़रवेटिव, लिबरल, लेबर, नैशनलिस्ट, सोशलिस्ट इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं।[४]

प्रेमचन्द के मानसरोवर (द्वितीय भाग) की 'उन्माद' कहानी में लेबर-दल वालों पर व्यंग्य किया गया है। जब कंज़रवेटिव तथा लिबरल-दलों का अधिकार था तब लेबर-दल वाले उन पर कटाक्ष करते थे। मज़दूर-दल के सचिव लार्ड बारबर एक बार भारत भी आये और कांग्रेस में सम्मिलित हुये। पर अधिकार पाते ही सद्भाव, उदारता, न्यायपरायणता सब समाप्त हो गई। दो साल में एक भी हिन्दुस्तानी अफ़सर नहीं नियुक्त किया। 'मोटर की छींटें' कहानी में अंग्रेजों का उपहास किया गया है। बहुत से लोग मिलकर एक अंग्रेज से उसके दुर्व्यवहार के लिये बैठकें लगवाते हैं। इसके पहले अंग्रेज जाति का जो आतंक भारतीयों पर था वह समाप्त हो गया और इसके विपरीत उनके उपहास में भारतीयों को आनंद मिलने लगा। अंग्रेजों का आतंक समाप्त होने का मुख्य कारण जालियानवाला बाग़ के फलस्वरूप हुआ असहयोग-आंदोलन था। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार, विदेशी कपड़ों की होली जलाना, कौंसिलों में प्रवेश न करना, सरकारी-स्कूल कालेजों को छोड़ देना आदि आन्दोलन के विभिन्न अंग ऐसे थे जिनसे अंग्रेजों की शान बहुत घट गई थी। मानसरोवर (तृतीय भाग) की 'विचित्र होली' शीर्षक कहानी में दिखाया गया है कि लाला उजागर लाल शहर के सहयोगी समाज के नेता हैं—अफ़सरों से मिलते-जुलते रहते हैं और असहयोगियों को बुरा बताते हैं परन्तु बाद में अंग्रेज अफ़सर उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं जिससे उनकी आँखें खुलती है और वे कांग्रेस कमेटी के सदस्य हो जाते है।

१—रंगभूमि, प्रथम भाग, पृ० ११२;
२—पृ० ३४५;
३—द्वितीय भाग, पृ० ३४२;
४—पृ० १८५

समकालीन घटनाओं, समस्याओं तथा व्यक्तियों के उल्लेख

समकालीन घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण इस काल के साहित्य में बहुत मिलता है। 'साकेत' पर समकालीन घटनाओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है। राम के बन जाते समय प्रजा 'विनत विद्रोह' करती है और मार्ग में लेट जाती है। यहाँ असहयोग तथा पिकेटिंग का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रजा यह भी कहती है कि हमने राम को ही राजा चुना है। लोकमत को अनसुना नहीं करना चाहिये।[1] शत्रुघ्न भी नवयुग की विचारधारा का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि यदि राज्य को हम लोग भोग बना लें तो उस समय राजद्रोह धर्म हो जाता है। राज्य, प्रजा का व्यवस्थागार है। यह भी असहयोग का प्रत्यक्ष प्रभाव है। शत्रुघ्न समाजवादी विचारधारा से भी सहमत हैं। वे कहते हैं कि अब राज-पद ही क्यों न हट जाये। कोई नरपति न हो, सब नर हों और इस प्रकार रहें जैसे एक बड़े परिवार के सदस्य।[2] साकेत में चर्खे का भी उल्लेख समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव है।[3]

प्रवासी भारतीयों की समस्या कांग्रेस ने अनेक बार अपने प्रस्तावों में उठाई थी। 'स्वदेश संगीत' में दो ही कवितायें स्पष्ट रूप से राजनीतिक-क्षेत्र की घटनाओं से सम्बन्धित हैं 'अफ्रीका प्रवासी भारतवासी' तथा 'ओ बारडोली'। बारडोली तहसील में किसानों ने कर-बन्दी आन्दोलन प्रारम्भ किया था और उसका नेतृत्व सरदार वल्लभ भाई पटेल ने किया था। इस सत्याग्रह में बारडोली को बहुत सफलता मिली। 'अनघ' में मैथिलीशरण गुप्त ने भगवान बुद्ध के एक साधनावतार मघ की कथा का वर्णन किया है। मघ अपने मित्रों के साथ समाज-सुधार और परोपकार में संलग्न रहता है। वह और उसके सभी साथी अहिंसा व्रत का पालन करते हैं तथा मदिरा-निषेध और अछूतोद्धार में संलग्न रहते हैं। वह अहिंसा और प्रेम से सबको अपनाता है और सबके दोषों को छुड़ाकर अपना भक्त बना लेता है। ग्रामभोजक को इससे भय उत्पन्न होता है कि कहीं प्रजा राज-कर देना न बन्द कर दे—अतः मघ और उसके मित्र राज-द्रोह में पकड़े जाते हैं परन्तु बाद में सत्यता का बोध होने पर राजा उन्हें छोड़ देता है। राजा प्रजा से उदासीन है। इस कथा में व्यक्ति और काल प्राचीन हैं परन्तु समस्यायें

१—साकेत, पंचम सर्ग, पृ० ११२;
२—सप्तम सर्ग, पृ० १८४–१८५;
३—अष्टम सर्ग, पृ० २१०

सभी नवीन हैं। इस दृष्टि से इस पुस्तक पर समकालीन घटनाओं का बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मघ का अहिंसावादी होना, मद्य-निषेध तथा अछूतोद्धार में संलग्न रहना, दमन का सामना अहिंसा से करना, राजा का प्रजा से उदासीन होना आदि सभी बातें समकालीन परिस्थितियों के मेल में हैं। धरना देने का भी उल्लेख हुआ है, जो पिकेटिंग से प्रभावित जान पड़ता है।

सुमित्रानन्दन पंत की 'वीणा' की एक कविता (१९१९ ई०) प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर लिखी गई प्रतीत होती है।[१]

'हिन्दू' में मैथिलीशरण गुप्त ने शासक अंग्रेजों को सम्बोधित करके अपने अधिकारों की माँग की है। कवि लिखते हैं कि यदि अब भी हम अयोग्य हैं तो यह रोग अंग्रेज नहीं दूर कर सकते। स्पष्ट कहा गया है कि स्वराज्य से कम में हम सन्तुष्ट न होंगे—

हम निश्चित हैं कृत संकल्प
लेंगे क्या स्वराज्य से अल्प ?[२]

राजनीतिक-क्षेत्र में भी इस काल में बड़े निश्चित रूप से औपनिवेशिक-स्वराज्य की माँग की गई थी। यह कथन कांग्रेस के इसी निश्चय की ओर संकेत करता है।

राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग) में समकालीन परिस्थिति की ओर संकेत करते हुये 'एक भारतीय आत्मा' लिखते हैं कि नया कार्य, नई दिशा और नई उमंग है। नये शिक्षक ने हँसकर कहा कि मैं बलिदान होता हूँ। नया विद्यार्थी दल भी कह उठे कि लो हम भी बलिदान हुये।[३] 'स्वराज्य लेंगे' शीर्षक कविता में कवि 'वल्लभ' लिखते हैं कि हम स्वराज्य लेंगे, स्वराज्य प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में से भारत किसी से कम नहीं है। यह प्रेस एक्ट हमारा गला दाब रहा है, अस्त्र-कानून के कारण डाकुओं से चैन नहीं है और हमारी शिक्षा का ढंग भी उत्तम नहीं है।[४] 'प्रतिज्ञा' शीर्षक कविता में कवि लक्ष्मण सिंह क्षत्रिय 'मयंक' ने 'वन्देमातरम् गान' के ध्वनित होने की प्रार्थना की है[५] तथा 'वीरत्व' में कवि

१—वीणा, पृ० ६३
२—हिन्दू, पृ० ३४०
३—राष्ट्रीय वीणा, (द्वि० भा०), 'बलिदान', पृ० १७
४—'स्वराज्य लेंगे', पृ० ७५
५—'प्रतिज्ञा', पृ० ८२

पूर्णचन्द्र शर्मा ने भी 'वन्देमातरम्' गाने का उल्लेख किया है।[1] स्पष्ट है कि इस समय तक 'वन्देमातरम गान' बहुत ही लोकप्रिय हो चुका था।

'राष्ट्रीय मंत्र' में कवि गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने खेड़ा-सत्याग्रह तथा रोलेट बिल का उल्लेख किया है और सत्याग्रह के दर्शन को स्पष्ट किया है। सत्याग्रही का क्या व्रत है, उसका चरित्र कैसा होना चाहिये आदि का सविस्तार वर्णन इस कविता में है।[2] इस पुस्तक की सभी कविताएँ समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित हैं परन्तु विशेष रूप से 'सत्याग्रह' तथा 'असहयोग' शीर्षक कविताओं में कवि ने खिलाफ़त तथा पंजाब के असंतोष का वर्णन किया है।[3]

कुल सात कवितायें इस संग्रह में हैं और सभी राष्ट्रीयता के भावों से ओत-प्रोत हैं।

समकालीन घटनाओं का सबसे अधिक प्रभाव त्रिशूल की 'त्रिशूल तरंग' पर पड़ा है। कवि ने अकाल, रोग, युद्ध तथा प्रेस ऐक्ट आदि का उल्लेख किया है —

'वबा है, कहत है, जंगोजदल भी बाहम है,
है एक जान पै सदमें हजार क्या लिक्खूं !

१—'वीरत्व', पृ० ८५

२—राष्ट्रीय मंत्र, 'सत्याग्रह', पृ० ५;

३—'मनाते हो घर घर खिलाफ़त का मातम,
अभी दिल में ताजा है पंजाब का गम।
तुम्हें देखता है खुदा और आलम,
यही ऐसे जख्मों का है एक मरहम।
असहयोग कर दो असहयोग कर दो।

—राष्ट्रीय मंत्र, पृ० ३५

* * *

बड़े नाजों से जिनको माओं ने पाला,
बनाये गये मौत के वे निवाला।
नहीं याद क्या बागे जलियान वाला,
गये भूल क्या दागे जलियान वाला।
असहयोग कर दो असहयोग कर दो।

—राष्ट्रीय मंत्र, पृ० ३६

जुबाने खामा पै की प्रेस एक्ट है मुहर,
नहीं है लिखने का कुछ इख्तियार क्या लिक्खूं।[1]

होम-रूल का उल्लेख भी कवि ने इस प्रकार किया है—'हम होते और ही कुछ गर होमरूल होता।'[2] असहयोग के समय और उसके पूर्व से ही हिन्दू और मुसलमानों में एकता और सहयोग बहुत बढ़ गया था। खिलाफ़त के असंतोष के कारण असहयोग को और भी बल प्राप्त हुआ। १९२५ ई० तक हिन्दुओं और मुसलमानों में बड़ा मेल रहा। हिन्दू-मुसलिम एकता की ओर संकेत करते हुए कवि ने कहा है कि आज हम आपस में मिल-जुल गये हैं और वैध आन्दोलन पर तुल गये हैं।[3] अस्त्र-कानून के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि इसने हमें इतना निहत्था कर दिया है कि हमारा वेश जनाना हो गया है।[4] शर्तबन्दी-कुली-प्रथा को लक्ष्य करके कवि ने लिखा है कि रत्नगर्भा के लालों को परदेश में कौड़ियों के कुली बनकर जाना पड़ता है।[5] वे लिखते हैं कि बाढ़ें आती हैं, पाला पड़ता है और नमक की कमी है।[6] नमक-कर घटाने के लिए देश में जो आन्दोलन हो रहा था, यह कथन उसकी ओर संकेत करता है। कवि ने राष्ट्रीय-शिक्षा का समर्थन किया है और यह विश्वास प्रकट किया है कि जब राष्ट्रीय-विद्यालय नगर-नगर में खुल जायेंगे तब वह प्रत्येक हृदय में राष्ट्रभाव उत्पन्न करेंगे।[7] वे उपदेश देते हैं कि अपने स्वत्व प्राण के समान हैं, उन्हें मत छोड़ो और मोह में कातर होकर इस प्रकार स्वराज्य मत त्यागो।[8] शासकों की नीति के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि कौंसिल में जब प्रजा-हित के प्रस्ताव उपस्थित होते हैं तो शासक उन्हें नहीं मानते।[9] स्वराज्य का भी उल्लेख कवि ने किया है।[10]

१—त्रिशूल तरंग, 'क्या लिखूं', पृ० १;
२—'गुज़रा हुआ ज़माना', पृ० ५;
३—'भारत सन्तान', पृ० १९;
४-५—'क्या हुआ ?', पृ० २२-२३;
६—'इफ़लास की घटा', पृ० २५;
७-८—'राष्ट्रीय शिक्षा पंचक', पृ० २९-३०;
९—'स्वराज्य संदेश', पृ० ५३;
१०—'नई बंशी ध्वनि बाज रही ॥
घर घर में स्वराज्य की चर्चा सज सुख साज रही।'
—'बंशी की ध्वनि', पृ० ५२

आत्म-गौरव के साथ कवि ने अपनी योग्यता में विश्वास प्रकट किया है—

'योग्यता में भी हमारी है जरा भी शक नहीं।
देखिये ! शासक कहेंगे नाज से कब तक नहीं।' [1]

कांग्रेस ने भी १९१८ ई० में ही यह बात कही थी कि भारत स्वराज्य के योग्य है। यह कथन उसी से प्रभावित है।

रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' खंडकाव्य की कथा काल्पनिक है और प्रत्यक्ष रूप से भारतीय जीवन से सम्बन्ध नहीं रखती परन्तु परोक्ष रूप से कथानायक पथिक के चरित्र, उसकी कार्यावली आदि से जितना सम्बन्ध भारतीय जीवन का है उतना और किसी का नहीं। काव्य के नायक पथिक को एक सन्यासी के द्वारा कर्म मार्ग की शिक्षा मिलती है जिसको पाकर वह स्वदेश सेवा की ओर आकृष्ट होता है। स्वदेश की दरिद्र दशा का कारण राजा की निरंकुशता है। राजा से पथिक प्रजा की दुर्दशा का वर्णन करता है, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं होता अतः वह अपना जीवन देकर प्रजा को जाग्रत करता है—सशस्त्र आन्दोलन के लिए नहीं वरन् चरित्र-बल से शत्रु को जीतने के लिए। अन्त में प्रजा मार्ग में राजा की जीवन रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करके उसे देश से बाहर निकल जाने की आज्ञा देती है और देश में प्रजा के प्रतिनिधियों का शासन स्थापित होता है। इस प्रकार एक सत्य-व्रती, स्वदेशानुरागी व्यक्ति आत्मशक्ति-साधन से एक देश को नारकीय-शासन से मुक्त कर देता है। स्वयं पथिक के चरित्र पर भी भारत के किस गौरवशाली नेता के व्यक्तित्व की छाप है, यह स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त चरित्र बल से प्रजा की राजा पर विजय गांधीवादी विचारधारा से पूर्णतः प्रभावित है जिसमें स्वयं कष्ट सहन करके विपक्षी के हृदय परिवर्तन की अहिंसात्मक नीति प्रमुख है।

जागृत भारत में सबसे अधिक समकालीन राजनीतिक घटनाओं और परि-स्थितियों का वर्णन मिलता है। कवि ने लिखा है कि महारानी की घोषणा का हमें दृढ़ विश्वास था परन्तु उसे अधिकारी वर्ग ने रौलेट बिल पास करके नष्ट कर दिया। पंजाब को श्मशान बना दिया गया और खिलाफ़त के सम्बन्ध में मुसलमानों का अपमान किया गया। सत्यता का प्रत्यक्ष अवतार गांधी हमारा सरदार है और

त्रिशूल तरंग की अन्य कविताओं में भी स्वराज्य तथा भारतीयों का उसकी राह देखने का वर्णन कवि ने किया है। जैसे, 'स्वराज्य संदेश', पृ० ५३, 'दुखियों का सन्देश', पृ० ५५, 'स्वराज्य संगीत', पृ० ५६

१—त्रिशूल तरंग, 'कब तक नहीं', पृ० ५५

अब हम असहयोग का शस्त्र ग्रहण करेंगे जिसके सम्मुख सब अस्त्र तुच्छ हैं। सरकार से असहयोग करके हम लन्दन का द्वार हिला देंगे। हम किसी को क्लेश नहीं देंगे, परन्तु अन्याय समाप्त कर देंगे।[१] 'सत्याग्रही भारत', 'सत्याग्रह महिमा' आदि कविताओं में सत्याग्रह का वर्णन है। कवि का कथन है कि स्वार्थी नृप जब दीन-प्रजा का धन-बल सब हर लेते हैं और शस्त्र छीनकर उन्हें अपंग कर देते हैं तथा बिना किसी अपराध के उन पर गोलियाँ और गोले बरसाते हैं, उस क्षण सत्याग्रह ही उनका उद्धार करता है। सच्चा सत्याग्रही तो वही है जिसे रक्तपात देखकर भी क्रोध न आये।[२] वे असहयोग के सम्बन्ध में लिखते हैं कि भारत को स्वतंत्र करने का शान्तिमय संग्राम छिड़ा हुआ है। इससे जो प्राणी भी दूर हटेगा वह नमक-हराम कहलायेगा। विद्यार्थी-वर्ग को पढ़ना तथा व्यापारियों को व्यापार छोड़ देना चाहिए।[३] 'प्रोत्साहन' शीर्षक कविता में कवि ने जालियानवाला बाग के हत्या-कांड का उल्लेख किया है। 'श्री १०८ लो० तिलक वन्दना' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा हिन्दी में स्वराज्य इन चारों ग्रंथों के प्रचारक लोकमान्य तिलक हैं। 'गांधी गुणानुवाद' में कुछ समकालीन परिस्थितियों का कवि ने उल्लेख किया है। गांधी ने विदेशी का शौक खत्म कर दिया, हिन्दुओं और मुसलमानों में सौहार्द्र पैदा कर दिया, सिर्फ चर्खे के सूत से जालियों की शान मटियामेट कर दी।[४] 'भारत और भविष्योदय' शीर्षक कविता में गुलामी के नष्ट होने तथा साम्यवाद के आने का उल्लेख कवि ने किया है। यह भी कहा है कि अभी तक सारी प्रजा राजा की ही सम्पत्ति मानी जाती थी किन्तु महासमर के रक्त से यह भ्रम धुल गया।[५] 'लेंगे होमरूल अपना' शीर्षक कविता में कवि ने होमरूल लेने का दृढ़ संकल्प व्यक्त किया है। कवि ने यह भी कहा है कि हम जितने अधिक दबाये गये उतने ही उभड़ आये, जितने सिर से छंटे उतने ही फूले नजर आये।[६] 'सच्चा स्वराज्य' में कवि ने हिन्दू और मुसलमानों के एक रहने,

---

१—जागृत भारत, 'राजभक्ति का उपहार भारतीयों का असहयोग स्वीकार', पृ० ८-९;

१—'सत्याग्रह महिमा', पृ० १७;

२—'स्वर्ण अवसर', पृ० १२;

३—'गाँधी गुणानुवाद', पृ० ३१;

४—'भारत और भविष्योदय', पृ० ३३;

५—'लेंगे होमरूल अपना', पृ० ३५-३६

किसानों के खुशहाल रहने, अपने ऊपर गाढ़े का कफ़न पड़ने तथा 'वन्देमातरम्' शब्द की कामना की है। 'कारागार' कविता में कवि ने 'वन्देमातरम्' को ही एक-मात्र मंत्र माना है। 'वन्देमातरम्' बंकिम बाबू के आनन्दमठ का एक गीत है जो इस समय बहुत ही प्रिय हुआ।

'एकता प्रार्थना' शीर्षक कविता में हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता का उल्लेख और उसके बने रहने की प्रार्थना, पंजाब हत्याकाँड तथा खिलाफ़त का भी उल्लेख है।[1] 'नई जान' शीर्षक कविता समकालीन परिस्थिति का यथातथ्य चित्र उपस्थित करती है।[2] 'बढ़े चलो' शीर्षक गज़ल में कवि ने खिलाफ़त तथा पंजाब का उल्लेख किया है। रोलेट एक्ट ने दिल दुखाया और जलील डायर ने खून बहाया इसका भी उल्लेख है।[3] 'हक का सवाल' शीर्षक गज़ल में भी प्लेग, अकाल, अफ्रीका की ज़िल्लत, कर्ज़न की क्रूर लीला, बंग-भंग, स्वदेशी आदि सभी मुख्य घटनाओं का उल्लेख कवि ने किया है।[4] 'खूं मुबारक' शीर्षक गज़ल में जालियानवाला बाग के हत्याकांड का सविस्तार उल्लेख है।[5] 'खूने नाहक' (गज़ल) में भी जालि-

---

१--जाग्रत भारत, 'एकता प्रार्थना', पृ० ३८;

२--'जिस दिन मिले हिनूदो मुसलमाँ गले गले,
उस दिन से गुनहगारों में दहशत समा गई॥
हालाँकि गोलियाँ चलीं गोले बरस गये,
फल ये हुआ एक जान में सौ जान आ गई।
कुछ दिन से जो मरने से डरा करता था भारत,
मरना उन्हें वतन पै ये जुरमत सिखा गई॥'

--'नई जान', पृ० ४०

३--'बढ़े चलो', पृ० ४१;

४--'हक का सवाल', पृ० ४२;

५--'ब्रिटिश को चेम्सफोर्ड हो मुबारक,
वो खुदगरज़ कौंसिल मुबारक।
वे आर्म्स प्रेस ऐक्ट ओ सिडीशन,
ये जुल्मी रौलट बिल का मुबारक॥
* * *
हमारे अहले हिनूदो मुस्लिम,
वो नीज बाशिन्दगाने भारत।

यानवाला बाग के हत्याकाँड का वर्णन है। कवि लिखते हैं कि जब यूरोप की शान जा रही थी तब उस मुसीबत के समय हमने धन और प्राण से उनकी सहायता की। यह किसे मालूम था कि उस उपकार के बदले में हम पर गोले बरसेंगे। इस शाइस्त: कौम के खून से लिखे हुए कारनामे जालियानवाला बाग में पढ़ लीजिए।[१] 'इन्तहा' शीर्षक गजल में ब्रिटिश राज्य के दमन का उल्लेख कवि ने किया है। 'गज़ल' में कवि ने आन्दोलन में भाग लेने वालों से क्रोध न करने का आग्रह किया है। 'हमारी आकांक्षा' शीर्षक कविता में कवि ने कई अन्य मुख्य आपत्तियों का वर्णन किया है। दूसरों के हाथों से निर्मित न्याय हमें स्वीकार नहीं है, अनुचित कर से देश को दबा कर दुर्बल करना हमें मंजूर नहीं है, विदेश को हम अपने मज़दूर और अपना धन नहीं देना चाहते, सैन्य-दल संग्रह करके हम मान बढ़ाना नहीं चाहते, कारखाने, कल-घर भारत की परिस्थिति के अनुकूल नहीं हैं। हमें तो अपनी सभा बनाकर अपने सब झगड़े निपटाना है।[२] 'विद्यार्थियों को माता का सन्देश' शीर्षक कविता में विद्यार्थियों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने का निमंत्रण दिया गया है। 'छात्र व्रत' में छात्र सत्याग्रह का पथ ग्रहण करता है। '३२वीं नेशनल कांग्रेस कलकत्ता, स्वागत गान' में हिन्दुओं और मुसलमानों के स्नेह-मिलन का कवि ने स्वागत किया है। '१९२० कलकत्ता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन पर गाया हुआ गान' में तिलक के देहान्त, जालियानवाला बाग के हत्याकाँड तथा असहयोग का उल्लेख कवि ने किया है।[३] 'नवीन संस्कार' में भी रोलेट एक्ट का उल्लेख है। 'चरखा वेदान्त' में चरखे की चारों वेदों तथा असहयोग की ब्रह्मा से उपमा

सबों को उन्नीस सन् बतारीख छः
वीं अप्रैल का दिन मुबारक॥

*　　*　　*

जमीन जलियान : बाग तुझको,
जबाँ में ताकत नहीं कहूँ क्या।
हमारे उन देश भक्त कुर्बान,
हमारे बच्चों का खूं मुबारक॥

—जागृत भारत, 'खूं मुबारक', पृ० ४४;

१—'खूने नाहक', पृ० ४५;
२—'हमारी आकांक्षा', पृ० ५३;
३—१९२० कलकत्ता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन पर गाया हुआ गान, पृ० ६१।

दी गई है। 'चरखे की बरखा से तिरखा मिटायेंगे' तथा 'चरखे से स्वराज्य' आदि कविताओं में कवि ने चरखे का महत्व प्रदर्शित किया है। 'असहयोगामृत' में कवि ने असहयोग को ही एक रक्षक धर्म बताया है। इस पुस्तक में सिविल डिस्ओबिडियेन्स इन्क्वायरी कमिटी के सदस्यों के कलकत्ता आगमन के उपलक्ष में 'स्वागत गान' शीर्षक एक कविता है तथा सत्याग्रह-जाँच कमिटी के माननीय सदस्यों के कलकत्ता पधारने पर उनके स्वागतार्थ 'मलार' शीर्षक एक दूसरी कविता है। 'फुटकर शेर' में हिन्दुओं और मुसलमानों के मिलन का उल्लेख है। 'सावधान' (होली) में कवि ब्रिटिश-शासन का विरोध करते हैं। वे 'डायर' को अत्याचार का प्रतीक मानकर लिखते हैं :—

> **करियो जिन बिसास इनके चहुँ सपथ गहैं कर जोरी।**
> **हमरे हित सबरे ही डायर, सकल जाति यह गोरी—**
> **निदय स्वारथ की बोरी।[1]**

'जेल से रिहाई के दिन स्वयं सेवकों का गाना' होली में भी विदेशी-वस्त्रों के जलाने, पंजाब, स्वराज्य और खिलाफ़त का कवि ने उल्लेख किया है। 'इस कौंसिल में मत जाना' में कवि ने इस आधार पर कौंसिल-प्रवेश का निषेध किया है कि इसमें हम अन्न विलायत जाना नहीं रोक सकेंगे, टैक्स नहीं घटा सकेंगे, डायर से पापी को दंड नहीं दिलवा सकेंगे, खिलाफ़त की समस्या हल नहीं कर सकेंगे, व्यापार और वाणिज्य नहीं बढ़ा सकेंगे, केवल कर्ज़ चुकाने का अधिकार हमें प्राप्त होगा। वहाँ केवल आत्मा की हत्या करना पाप तथा अधर्म कमाना होगा।[2] 'नई कौंसिल' में इन कौंसिलों का एवं माँटेग्यू-चेम्सफोर्ड तथा उनके नये 'रिफ़ार्म' का कवि ने उपहास किया है। कवि कहते हैं कि तैंतिस कोटि प्रजा की जानों में से जो कुछ बच गई हैं उन्हें ये नये सुधारों के सौदाई निकाल लेंगे।[3] 'होली' में कवि कहते हैं कि एक स्थान पर पंचमजार्ज अधिकार देने की तैयारी करते हैं तो कर्मचारी-गण उसे मिटा देते हैं, यह तुम्हारी अच्छी रीति है। अभी तुम्हारे लिए हमने जो युद्ध किया था उसका रक्त भी न सूखा था कि विनाशकारी रोलेट बिल हमें उसके पुरस्कार में मिला। अब भारत के लोग तुम्हारी चतुराई जान गये हैं। इसी

१—जागृत भारत, 'सावधान', पृ० ७७;
२—'इस कौंसिल में मत जाना', पृ० ८१;
३—'नई कौंसिल', पृ० ८२

दी गई है। 'चरखे की बरखा से तिरखा मिटायेंगे' तथा 'चरखे से स्वराज्य' आदि कविताओं में कवि ने चरखे का महत्व प्रदर्शित किया है। 'असहयोगामृत' में कवि ने असहयोग को ही एक रक्षक धर्म बताया है। इस पुस्तक में सिविल डिस्ओबिडियेन्स इन्क्वायरी कमिटी के सदस्यों के कलकत्ता आगमन के उपलक्ष में 'स्वागत गान' शीर्षक एक कविता है तथा सत्याग्रह-जाँच कमिटी के माननीय सदस्यों के कलकत्ता पधारने पर उनके स्वागतार्थ 'मलार' शीर्षक एक दूसरी कविता है। 'फुटकर शेर' में हिन्दुओं और मुसलमानों के मिलन का उल्लेख है। 'सावधान' (होली) में कवि ब्रिटिश-शासन का विरोध करते हैं। वे 'डायर' को अत्याचार का प्रतीक मानकर लिखते हैं :—

करियो जिन विसास इनके चहुँ सपथ गहैं कर जोरी।
हमरे हित सबरे ही डायर, सकल जाति यह गोरी—
निदय स्वारथ की बोरी।[1]

'जेल से रिहाई के दिन स्वयं सेवकों का गाना' होली में भी विदेशी-वस्त्रों के जलाने, पंजाब, स्वराज्य और खिलाफ़त का कवि ने उल्लेख किया है। 'इस कौंसिल में मत जाना' में कवि ने इस आधार पर कौंसिल-प्रवेश का निषेध किया है कि इसमें हम अन्न विलायत जाना नहीं रोक सकेंगे, टैक्स नहीं घटा सकेंगे, डायर से पापी को दंड नहीं दिलवा सकेंगे, खिलाफ़त की समस्या हल नहीं कर सकेंगे, व्यापार और वाणिज्य नहीं बढ़ा सकेंगे, केवल कर्ज़ चुकाने का अधिकार हमें प्राप्त होगा। वहाँ केवल आत्मा की हत्या करना पाप तथा अधर्म कमाना होगा।[2] 'नई कौंसिल' में इन कौंसिलों का एवं माँटेग्यू-चेम्सफोर्ड तथा उनके नये 'रिफ़ार्म' का कवि ने उपहास किया है। कवि कहते हैं कि तैंतिस कोटि प्रजा की जानों में से जो कुछ बच गई हैं उन्हें ये नये सुधारों के सौदाई निकाल लेंगे।[3] 'होली' में कवि कहते हैं कि एक स्थान पर पंचमजार्ज अधिकार देने की तैयारी करते हैं तो कर्मचारीगण उसे मिटा देते हैं, यह तुम्हारी अच्छी रीति है। अभी तुम्हारे लिए हमने जो युद्ध किया था उसका रक्त भी न सूखा था कि विनाशकारी रोलेट बिल हमें उसके पुरस्कार में मिला। अब भारत के लोग तुम्हारी चतुराई जान गये हैं। इसी

१—जागृत भारत, 'सावधान', पृ० ७७;
२—'इस कौंसिल में मत जाना', पृ० ८१;
३—'नई कौंसिल', पृ० ८२

लिए आज भारत ने सत्याग्रह का व्रत धारण किया है। यह आक्षेप कवि ने शासन की नीति के सम्बन्ध में किया है।

'रंगभूमि' उपन्यास में डा० गांगुली कौंसिलों की परिस्थिति स्पष्ट करते हैं। वहाँ भाषण देना, प्रश्न करना, बहस करना तो हो सकता है किन्तु देश का कोई उपकार नहीं हो सकता। पहले तो भारतीयों में एका होना कठिन है, यदि यह हो भी गया तो सरकार प्रस्ताव खारिज कर देती है। 'मिलटरी' का खर्च बढ़ता जाता है किन्तु सरकार नहीं सुनती। बजट की हर एक मद में सरकार कुछ रुपया बढ़ाकर लिखती है। विरोध करने से वही कट जाता है। अगर बहुत कुछ कहने-सुनने से किफ़ायत हुई भी तो भी हमारे ही भाइयों का नुकसान होता है। छोटे आदमियों के वेतन से वह किफ़ायत की जाती है, बड़े-बड़े व्यक्तियों के वेतन और भत्ते से नहीं। कौंसिलें सरकार द्वारा बनाई गई हैं—इससे वे सरकार की ही मुट्ठी में भी हैं। मिस्टर गांगुली, मिस्टर क्लार्क के विरुद्ध कौंसिल में बड़ा शोर मचाते हैं, किन्तु सरकार उनकी नहीं सुनती और मिस्टर क्लार्क की पदवृद्धि हो जाती है।[1] कौंसिल-प्रवेश का लगभग सभी साहित्यिकों ने विरोध किया है। प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में गंभीर विचार प्रकट किये हैं। रियासतों की स्थिति पर भी 'रंगभूमि' उपन्यास में विचार किया गया है। वीरपाल सिंह डाकू उदयपुर के राजा के बारे में कहता है कि वह काठ का उल्लू है। उसे विलायत में जाकर व्याख्यान देने की धुन है या अंग्रेजों की जूतियाँ सीधी करने की।[2] पुलिस आदि विभागों में न्याय नहीं है—रिश्वत चलती है। न्यायालयों से न्याय की कोई आशा नहीं है। रेजिडेंट साहब की इच्छा के विरुद्ध रियासतों में तिनका भी नहीं हिल सकता। दीवान साहब स्वयं कहते हैं कि सरकार की रक्षा में हम मनमाने कानून बनाते हैं, मनमाने दंड देते हैं मगर कोई चूं तक नहीं कर सकता। इसी के उपलक्ष में हमें बड़ी-बड़ी उपाधियाँ मिलती हैं। मिस्टर क्लार्क भी कहते हैं कि रेजिडेंट को बहुत अधिकार है, यहाँ तक कि वह राजा के खाने, पीने, सोने और आराम करने का समय तक नियत कर सकता है। वह रियासत का खुदा होता है।[3] इस चरण के साहित्य में रियासतों की ओर साहित्यकारों का ध्यान गया है। इसका कारण यही है कि कांग्रेस ने भी इस चरण में देशी-राज्यों में उत्तरदायी-शासन स्थापित करने की माँग रक्खी थी।

१—रंगभूमि, द्वितीय भाग, पृ० १३३;
२—प्रथम भाग, पृ० २९८;
३—पृ० ४०९

नई विचारधारा का उल्लेख भी 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने किया है। पहले राजा और प्रजा का भोक्ता और भोग्य का सम्बन्ध था अब सेवक और सेव्य का है। अब जनता उसी का सम्मान करती है जिसने सेवा-मार्ग ग्रहण किया हो। कानून-भंग के सम्बन्ध में भी प्रभु-सेवक कहते हैं कि प्रजा की सहन शक्ति की भी कोई सीमा होती है। जब कानून बहुत ही बुरा हो तो उसकी उपेक्षा करना हमारा धर्म हो जाता है। यह कथन स्पष्ट रूप से असहयोग आन्दोलन से प्रभावित है। गांधीवाद तथा सत्याग्रह का प्रभाव इस उपन्यास पर विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। मिस्टर क्लार्क कहते हैं कि एक सेना का मुकाबला करना इतना कठिन नहीं है, जितना ऐसे गिने-गिनाये व्रतधारियों का जिन्हें संसार में कोई भय ही नहीं है।[1] सूरदास भी सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त के समर्थक हैं। उनकी दृष्टि में अगर सरकार के हाथ में मारने का बल है तो हमारे हाथ में और कोई बल चाहे न हो, पर मर जाने का बल तो है।[2] वह हाकिमों का हृदय परिवर्तन करना चाहते हैं। 'मैं हाकिमों को दिखा देता कि एक दीन आदमी एक फ़ौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुँह कैसे बन्द कर देता है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धर्म के बल से लड़ना चाहता था।'[3] पिकेटिंग का भी उल्लेख लेखक ने किया है। भैरों कहता है कि वालेंटियरों के मारे ताड़ी की बिक्री कम है। इन उल्लेखों पर असहयोग-आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

'कायाकल्प' उपन्यास में प्रेमचन्द ने जेलों के निकृष्ट भोजन और वस्त्र तथा कठोर परिश्रम लेने का भी वर्णन किया है।[4] जेलों की दशा तथा जेलों के प्रबन्ध की ओर ध्यान जाने का भी कारण राजनीतिक सत्याग्रहियों का बन्दी होना ही है।

उषादेवी मित्रा के 'पिया' उपन्यास की नायिका पपीहरा विदेशी कपड़े की दूकान पर पिकेटिंग करती है। लेखिका ने इस बात का उल्लेख किया है कि कुछ ग्राहक उस तरुणी के अनुरोध से, कुछ उसके चाचा सुकान्त साहब के लिहाज़ से एवं कुछ अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से लौट रहे थे।[5] एक आपत्तिजनक भाषण

१—रंगभूमि, द्वितीय भाग, पृ० २७;
२—पृ० २९७;
३—पृ० ३४४
४—द्वितीय भाग, पृ० ४२ तथा ९२
५—पिया (तृ० सं०), पृ० १३४

देने के कारण नायिका को पकड़ लिया जाता है और डरा-धमका कर उसे शहर से बाहर छोड़ दिया जाता है।[१]

कभी-कभी समकालीन परिस्थितियों के उल्लेख गोपालराम गहमरी जैसे साहित्यकारों के उपन्यासों में भी मिल जाते हैं। 'कर्म मार्ग' गोपालराम गहमरी द्वारा अनूदित उपन्यास है परन्तु इसके निवेदन में उन्होंने लिखा है कि 'बम और बायकाट का निन्दित मार्ग त्यागकर निर्दोष रूप से स्वदेशी होने के लिये संसार में किसी देश की न्यायी-सरकार किसी को किसी तरह बाधा नहीं दे सकती। हमारी बुलन्द अकबाल ब्रिटिश सरकार भी स्वदेशी के लिये अभी तक सहायक है।' 'चन्द हसीनों के खतूत' उपन्यास में बेचन शर्मा 'उग्र' ने असहयोग का उल्लेख किया है। गोविन्द और मुरारी दोनों असहयोग के समर्थक हैं। मुरारी के पिता जो एक रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर हैं, उसका विरोध करते हैं। गोविन्द और मुरारी के 'यंग इंडिया' पढ़ने का उल्लेख भी लेखक ने किया है।[२]

राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'तरंग' उपन्यास असहयोग-आन्दोलन पर ही लिखा गया है। इसीलिये इसमें समकालीन घटनाओं, परिस्थितियों और विचार-धाराओं का बहुत वर्णन किया गया है। इसमें लेखक ने उल्लेख किया है कि स्त्रियों की स्वाधीनता का आँदोलन जोरों से चल रहा है और कुछ लोगों के लिये पर्दा-प्रथा तोड़ना ही बड़ा सुधार हो गया है।[३] हरिजनों को शिक्षित करने के प्रयत्न का भी उल्लेख किया गया है।[४] असहयोग, जालियानवाला बाग़ के हत्या-काँड तथा नवयुवकों के अचानक असहयोगी और त्यागी हो जाने का भी उल्लेख लेखक ने किया है।[५] राय साहब का विचार है कि छः महीने में असहयोग की अधिक प्रगति नहीं हुई परन्तु रमेश बाबू यह उत्तर देते हैं कि साधारण लोगों पर असहयोग का बहुत प्रभाव पड़ा है। उन व्यक्तियों की आत्म-शुद्धि में अवश्य देर लगेगी जिनके तन-मन में यूरोपीय-सभ्यता का रंग फैल चुका है।[६] इस पुस्तक में कोई कथा न होकर समकालीन असहयोग-आन्दोलन पर वाद-विवाद है।

१—रंगभूमि, द्वि० भा०, पृ० १७५
२—चन्द हसीनों के खतूत, पृ० ६०;
३—तरंग, पृ० ३
४—पृ० ५;
५—पृ० ३३, ३५, ५१;
६—पृ० ५२—५४

लेखक ने अंत में किसी भी पक्ष को दूसरे पक्ष के विचारों से सहमत होते नहीं दिखाया है।

चित्रशाला की 'लीडरी का पेशा' कहानी में लेखक विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक' ने नेताओं पर व्यंग्य किया है। शुक्ल जी लीडर बन जाते हैं यद्यपि उनमें ऐसा कोई विशेष गुण नहीं है।[१] असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप देश में बहुत से व्यक्ति नेताओं की श्रेणी में आ गये। उनमें से कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जिनमें नेताओं के गुणों का अभाव था। यह कहानी ऐसे ही व्यक्तियों को लक्ष्य करके लिखी गयी है। सत्याग्रह का उल्लेख इस कहानी में है। 'वंदेमातरम्' धीरे-धीरे अभिवादन के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इस कहानी में वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। लोक-दिखावे के लिये देश-भक्त और दानी बनने वाले एक वकील साहब का चित्र 'बगला भगत' कहानी में है।[२] अस्त्र-कानून के प्रति जनता के रोष का उल्लेख साहित्य में पर्याप्त मात्रा में हुआ है। इसी संग्रह की एक कहानी में शेरसिंह कहता है कि सरकार अंग्रेज़ बहादुर ने सब हथियार तो छीन लिये, अब क्या हम लट्ठ बाँधने से भी गये ?[३]

मानसरोवर (द्वि० भा०) में रियासतों में प्रेमचन्द ने राजाओं का स्वेच्छाचार दिखाया है। 'रियासत का दीवान' कहानी में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि राजा साहब विचारों में केवल देश-भक्त ही नहीं हैं, वरन् क्रान्ति के भी समर्थक हैं परन्तु पोलिटिकल एजेन्ट के आने पर हर एक किसान और ज़मींदार से जबरदस्ती रुपया (चन्दा) लिया जाता है। राजा साहब अपने भाषण में राष्ट्रीय-आन्दोलन की खूब खबर लेते हैं और हरिजनोद्धार पर भी छींटे कसते हैं।[४] "डामुल का कैदी' कहानी पर मज़दूर-आन्दोलन का प्रभाव दिखाई पड़ता है। सेठ खूबचन्द की स्वदेशी मिल में मज़दूरी घटाने के कारण हड़ताल होती है। मज़दूरों में हिंसा की भावना उत्पन्न होने पर गोपीनाथ उन्हें रोकता है और स्वयं सेठ जी को गोली का शिकार होता है।[५] प्रेम पचीसी की 'दुस्साहस' कहानी में पिकेटिंग का वर्णन है। शराब की दूकानों पर स्वराज्य वाले धरना देते हैं।

१—चित्रशाला, 'लीडरी का पेशा', पृ० ४८–५६;
२—'बगला भगत', पृ० २०७–२१९;
३—'नमक हलाल नौकर', पृ० २५९
४—मानसरोवर (द्वि० भा०), 'रियासत का दीवान';
५—'डामुल का कैदी'

मुंशी मैकूलाल और उनके मित्र अन्त में शराब त्याग देते हैं। रामबली कहते हैं कि पिछले साल उनके घर में आग लग जाने पर इन्हीं सेवा-समिति वालों ने आकर बचाया था।[१] प्रेम पचीसी की 'आदर्श विरोध' कहानी में वाइसराय श्री दयाकृष्ण मेहता को अपनी कार्यकारिणी सभा का सदस्य नियुक्त करते हैं। इसके पूर्व श्री मेहता सार्वजनिक-कार्यों में संलग्न रहते थे और शासन के निर्भय समालोचक थे। कार्य-कारिणी के सदस्य होते ही उनके विचार बदल जाते हैं। बजट में सेना की मद के खर्च का विरोध जब कार्यकारिणी के गैर सरकारी सदस्य करते हैं तब श्री मेहता इसका समर्थन करते हैं। उनके विचार में शिक्षा और चिकित्सा, उद्योग-व्यवसाय, शासन के गौण कर्त्तव्य हैं। लेखक का विचार है कि भारत का उद्धार केवल स्वराज्य से हो सकता है जिसका आशय है मन और वचन की पूर्ण स्वाधीनता। क्रमागत उन्नति (इवोल्यूशन) पर से उनका विश्वास उठ जाता है। श्री मेहता स्वयं कहते हैं कि सरकारी-सदस्य यह कैसे भूल सकते हैं कि कौंसिल में उनकी उपस्थिति केवल सरकार की कृपा और विश्वास पर निर्भर है। यदि आधे नहीं पूरे सदस्य भी भारतीय हो जायं तो भी वे किसी नई नीति का उद्घाटन नहीं कर सकते।[२] कौंसिलों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ काँग्रेस ने यह भी प्रस्ताव किया था कि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में भारतीयों की नियुक्ति हो परन्तु असहयोग आन्दोलन तथा स्वराज्य का आग्रह बढ़ता जा रहा था। १९२८ में भी यह प्रस्ताव भी पास हो गया था कि यदि १९२९ ई० के अन्त तक ब्रिटिश सरकार नेहरू-कमिटी के विधान को स्वीकार न करे तो कांग्रेस असहयोग-आन्दोलन करेगी। इस इस समय साहित्य में इसीलिये कौंसिलों तथा स्वराज्य आदि के सम्बन्ध में लेखकों के विचार प्राप्त होते हैं। प्रेमचन्द के साहित्य में तो विशेष रूप से राजनीतिक-परिस्थितियों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया गया है। 'सत्याग्रह' कहानी में वाइसराय के बनारस आने के समय काँग्रेस नगर में हड़ताल करा देती है।[३] असहयोग-आन्दोलन के साथ ही सरकारी-उत्सवों आदि का बहिष्कार भी प्रारंभ हो गया था। साइमन-कमीशन का बहिष्कार अत्यधिक सफल रहा था। इन्हीं समकालीन घटनाओं से प्रभावित होकर लेखकों ने इस प्रकार के वर्णन किये हैं।

१—प्रेमपचीसी, 'दुस्साहस';
२—'आदर्श विरोध'
३—मानसरोवर (तृ० भा०), 'सत्याग्रह'

'लाग डाट' कहानी पर समकालीन-परिस्थितियों का पूरा प्रभाव है। इस कहानी में लेखक ने चौधरी को स्वराज्यवाद का समर्थक तथा भगत को राजभक्त दिखाया है। चौधरी काँग्रेस के रचनात्मक-कार्यक्रम, स्वदेशी, अदालतों का बहिष्कार, मद्य-निषेध, सरकारी स्कूलों आदि के बहिष्कार का समर्थन करते हैं और उन्हीं की अन्त में जय भी होती है।[१]

कहानी-संग्रहों में से सुदर्शन के 'सुप्रभात' की सभी कहानियाँ समकालीन राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित हैं और प्रत्येक कहानी का कथानक राष्ट्रीय-आन्दोलन से लिया गया है। 'अमरीकन रमणी' कहानी में इसका उल्लेख है कि देश-भक्ति का समय है और लीडर कैद हो रहे हैं। यह बात भी कही गई है कि देश को इस समय कानून जानने वालों की अधिक आवश्यकता है तथा देश-सेवा के क्षेत्र में जितने व्यक्ति कार्य कर रहे हैं सभी कानून जानने वाले हैं।[२] यह कथन भी इस तथ्य से प्रभावित है कि राष्ट्रीय-आन्दोलन में भाग लेने वालों में वकील-बैरिस्टरों की एक बड़ी संख्या थी।

'भग्न हृदय' कहानी का कथानक जालियानवाला बाग के हत्याकांड से सम्बन्धित है। लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार इस हत्याकांड के कारण एक पूरा परिवार विनष्ट हो जाता है। चमनलाल के पिता 'रोलेट बिल' के सम्बन्ध में जनसाधारण में फैली इस किंबदन्ती का उल्लेख करते हैं कि इस कानून से सिपाही जिसे चाहें पकड़ लेंगे और जब शादी-व्याह होगा तो टैक्स देना पड़ेगा। चमनलाल पिता और पत्नी के मना करने पर भी जालियानवाला बाग के 'जलसे' में चला जाता है। जब चमनलाल के पिता को पता चलता है कि जालियानवाला बाग में गोली चल गई तो वे उसे लेने जाते हैं और रास्ते में देखते हैं कि हज़ारों आदमी सहमें हुये भागते चले आ रहे हैं। चमनलाल के गोली लग जाती है। घर आने पर बाहर निकलने की मनाही होने के कारण उसके पिता डाक्टर को नहीं ला पाते। सुबह डाक्टर को बुलाने के लिये जाने पर चमनलाल के पिता पकड़ लिये जाते हैं। इस बात का उल्लेख है कि फौजी लोग नगर में घूम रहे थे। दूसरे दिन चमनलाल के पिता, छज्जूमल, छोड़ दिये जाते हैं क्योंकि वे भूल से पकड़ लिये गये थे परन्तु घर आकर देखते हैं कि चमनलाल व उसकी पत्नी दोनों बिना दवा और डाक्टरी सहायता के मर चुके हैं।[३] इस प्रकार की कहा-

१—प्रेम प्रसून, 'लागडाट'
३—सुप्रभात, 'अमरीकन रमणी', पृ० २४–२५;
४—'भग्न हृदय'

नियों पर समकालीन-घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव है। जालियान वाला बाग के भयानक हत्याकांड में इसी प्रकार न जाने कितने परिवार विनष्ट हुये होंगे। 'अन्धेरे में' कहानी में असहयोग के सम्बन्ध में लेखक लिखते हैं कि 'देश में असहयोग की पुकार उठी तो नगर-नगर जलसे होने लगे। भगतराम बेकार थे, इस क्षेत्र में चले आये।'[१] इसी कहानी में इस बात का भी उल्लेख है कि देश में असहयोग आन्दोलन चल रहा है और सरकारी नौकरी करना जातीय पाप है।[२] अतः सरकारी नौकरी मिलने पर भगतराम उसे अस्वीकार कर देते हैं और दारिद्रय के अनेकों कष्ट सहना स्वीकार कर लेते हैं। 'कैदी' कहानी में भी अब्दुल वहीद असहयोग में भाग लेते हैं, भाषण देते हैं और उनके दरवाज़े पर विदेशी वस्त्रों की होली मनाई जाती है।[३] वे कैद हो जाते हैं परन्तु माफ़ी माँगकर रिहा होना नहीं चाहते। 'अन्तिम साधन' शीर्षक कहानी में समकालीन-परिस्थिति के उल्लेख हैं।[४] 'सुभद्रा का उपहार' कहानी यद्यपि दो व्यक्तियों के पारस्परिक झगड़े से सम्बन्ध रखती है फिर भी इसमें दिखाया गया है कि अदालतें सदा सत्य का पक्ष नहीं लेतीं। इस बात का भी उल्लेख है कि इसी कारण महात्मा गाँधी कहते हैं कि अदालतों का बहिष्कार हो और झगड़ों का फ़ैसला जातीय पंचायतें किया करें।[५] 'जब आँखें खुलती हैं' शीर्षक नाटक में दिखाया है कि स्वयंसेवक रचनात्मक-कार्य में संलग्न हैं और वेश्याओं के घरों पर पिकेटिंग कर रहे हैं। वे अछूतों को ऊंचे उठाना और जाति के कुपथ में पड़ी हुई पुत्रियों को विनाश से बचाकर किनारे पर लगाना चाहते हैं।[६] इसका भी उल्लेख

१—२—सुप्रभात, 'अन्धेरे में', पृ० ८९, ९४

३—'कैदी', पृ० ९६;

४—'समय ने रंग बदला, और देश की परिस्थिति ने भी दूसरा रूप धारण किया। बाजारों में महात्मा गाँधी की जय के जयकारे गूंजने लगे। घरों में स्त्रियाँ खद्दर पहनने लगीं। गवर्नमेंट ने धर-पकड़ आरम्भ की। परन्तु लोगों पर इसका प्रभाव उलटा हुआ। जोश और भी बढ़ गया जिस प्रकार नीम का पेड़ छाँटने से और भी बढ़ जाता है। छोटे-छोटे बालक भी बाजार से निकलते तो जातीय-गीत गाते हुए।'

—'अन्तिम साधन', पृ० ११४;

५—'सुभद्रा का उपहार', पृ० १३७;

६—'जब आँखें खुलतो हैं', पृ० १५३

है कि स्वयंसेवकों ने अहिंसा का व्रत धारण किया है, 'सिविल नाफ़रमानी' प्रारम्भ हो गई है और सरकार ने जुलूस की मनाही की है ।[१] स्वयंसेवक कहते हैं कि वे होमरूल के बदले बहिश्त भी लेना नहीं चाहते हैं ।[२] स्वयंसेवक हरिचरणसिंह की इच्छा है कि उन लोगों के पकड़े जाने के बाद भी उनका कार्य न रुके, और स्वयंसेवक भर्ती हों, स्वदेशी की उन्नति हो तथा हिन्दु-मुसलिम-एकता के महत्व को समझा जाय ।[३] ये सभी उल्लेख समकालीन-घटनाओं और परिस्थितियों से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द के 'संग्राम' नाटक में फत्तू कहता है कि सरकार अफ़ीम, दारू, गाँजा, भांग, चरस सब बेचती है, यहाँ तक कि नमक भी बेचती है। इस तरह रुपया न खींचे तो अफ़सरों की बड़ी-बड़ी 'तलब' कहाँ से दे । इस पर हलधर कहता है कि बिना 'सुराज' मिले हम लोगों की दशा न सुधरेगी । फत्तू कहता है कि सरकार ने 'हुकुम' दे दिया है कि जो लोग नशे का विरोध करते हों उनका नाम बागियों में लिखा जाय । छोटे-छोटे अफ़सर भी बादशाहों की तरह रहते हैं ।[४] सुपरिन्टेन्डेन्ट कहते हैं कि 'देहातों में पंचायत खोलना बगावत है, लोगों को शराब पीने से रोकना बगावत है, उन्हें अदालत में जाने से रोकना बगावत है और सरकारी आदमियों की रसद बन्द करना बगावत है ।'[५] ये सभी कथन राष्ट्रीय-आन्दोलन, विशेष रूप से असहयोग से प्रभावित हैं। 'निराला' के "महाराणा प्रताप' पर भी समकालीन स्वतंत्रता-आन्दोलन का प्रभाव है क्योंकि यह कथा उस वीर पुरुष की है जिसने स्वतंत्रता के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया ।

राष्ट्रीय-आन्दोलन के इस तृतीय चरण में समकालीन-घटनाओं की ओर साहित्यकारों का विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट हुआ । जालियानवाला बाग का हत्याकाँड, खिलाफ़त तथा असहयोग और सत्याग्रह आदि की महत्वपूर्ण घटनायें हो चुकी थीं । साहित्य में कवियों और लेखकों ने इन सभी घटनाओं का उल्लेख किया । कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का वर्णन भी कहानियों और उपन्यासों

१—सुप्रभात, 'जब आँखें खुलती हैं,' पृ० १७५;
२—पृ० १८१;
३—पृ० १८३
४—संग्राम, पहला अंक, सप्तम दृश्य;
५—चतुर्थ अंक, द्वितीय दृश्य

में विशेष रूप से हुआ। गाँधीवादी विचारधारा से साहित्यकार बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भारत के लिये गाँवों की प्राचीन सीधी-सादी सभ्यता को ही उचित माना तथा मशीन-युग का विरोध किया। नायक और नायिकाओं को सत्याग्रही और स्वराज्य-प्राप्त करने की आकाँक्षा रखने वाले स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओं के रूप में साहित्यकारों ने चित्रित किया और अहिंसा में पूर्ण विश्वास प्रकठ किया। विदेशी-माल, सरकारी विद्यालयों, अदालतों तथा उपाधियों के बहिष्कार, मद्य-निषेध, हिन्दू-मुसलिम-एकता, अस्पृश्यता-निवारण आदि सभी में साहित्यकारों ने आस्था प्रकट की है। कांग्रेस के कार्यक्रम का विरोध किसी भी स्थान पर नहीं मिलता। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के सम्बन्ध में जितने भी उल्लेख साहित्य में मिलते हैं उनमें सदैव स्त्रियों को इसके पक्ष में ही दिखाया गया है। यह केवल संयोग मात्र होना सम्भव नहीं जान पड़ता वरन यह तथ्य की ओर संकेत प्रतीत होता है कि स्त्रियों ने विदेशी-वस्त्र-वहिष्कार में विशेष रुचि ली। रोलेट बिल, खेड़ा तथा बारडोली के सत्याग्रह के उल्लेख भी साहित्य में मिलते हैं। वस्तुतः प्रथम असहयोग-आन्दोलन के पश्चात् हिन्दी साहित्य पर राजनीति का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सरकार की दमन-नीति तथा पिकेटिंग आदि का वर्णन कहानी-साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

रियासतों की स्थिति पर भी लेखकों ने विचार प्रकट किया।

साहित्यकारों का विचार है कि कौंसिलों में भारतीय-सदस्य देश का कोई विशेष हित नहीं कर सकते। प्रथम असहयोग-आन्दोलन के फलस्वरूप जनता नेताओं के निकट संपर्क में आई। पिछले दोनों चरणों के साहित्य में कवियों ने विशेष रूप से नेताओं के प्रति आदर नहीं व्यक्त किया था। इस चरण में सभी साहित्यकारों ने गांधी तथा तिलक के प्रति विशेष रूप से तथा देश के अन्य नेताओं के प्रति साधारण रूप से आदर और श्रद्धा प्रकट की है।

सुमित्रानन्दन पंत की 'वीणा' की ५३ वीं कविता बाल गंगाधर तिलक के देहावसान पर लिखी गई है। कवि कहते कि किस अकरुण कर ने यह भाल तिलक शोभालंकार छुटा दिया। उसी से जाति में आशा का संचार था।[1] 'पद्यप्रसून' में 'हरिऔध' ने दयानन्द की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि उन्होंने हमें आत्मगौरव का प्याला पिलाया तथा मान-ममता का मतवाला बना दिया। हृदय में जातीय-भाव भरकर हमें सजग किया और देश-प्रेम के महामंत्र से मुग्ध

१—वीणा, पृ० ७०

कर दिया।[१] 'स्वदेश संगीत' में गुप्त जी ने समकालीन नेताओं में से केवल गाँधी जी का उल्लेख किया है।[२] मानसी की 'तिलक स्वर्गारोहण' लोकमान्य के देहान्त पर लिखी गई, शोक से ओतप्रोत, भावपूर्ण कविता है।[३] 'आह्वान' कविता में कवि लिखते हैं कि भारत में ही गरीब गांधी पर गर्व करने वाला गुजरात खड़ा है।[४] 'तेजस्वी बालक की एकान्त चिन्ता' में भी बालक कामना करता है कि वह गांधी के समान लोक शोकहारी बने।[५] 'अन्वेषण' कविता में कवि लिखते हैं कि ईश्वर आखिर गाँधी की हड्डियों में चमक पड़ा।[६]

'राष्ट्रीय वीणा' में शम्भुदयाल श्रीवास्तव लिखते हैं कि एक-एक करके गोखले और मेहता से जीवन-दीपक बुझे जा रहे हैं।[७] अष्टावक्र ने दादा भाई नौरोजी, बालगंगाधर तिलक, गोखले, मालवीय, वसन्ती देवी तथा गांधी जी सभी नेताओं का गुणानुवाद किया है।[८] 'जागृत भारत' की अधिकाँश कविताओं में माधव शुक्ल ने तिलक और गांधी के प्रति आदर और श्रद्धा प्रकट की है। 'श्री १०८ लो० तिलक वंदना', 'तिलक महानुभावता', 'लो० तिलक सन्मान', 'लो० तिलक स्मृति', शीर्षक कवितायें लोकमान्य तिलक के गुणानुवाद में लिखी

१—पद्यप्रसून, 'जातीयता ज्योति', 'गौरव गान', पृ० १५०

२—स्वदेश संगीत, 'गान्धीगीत', पृ० १२२

३—'रोओ अभागे भारत। ऐ बदनसीब रोओ।
टूटी भुजा तुम्हारी गांधी जी आज रोओ॥
खोकर के सच्चा साथी रोओ ऐ मालवी जी!
ऐ लाजपत! अकेले अब फूट फूट रोओ॥
रोओ, ऐ मुल्क! रोओ जी भर के आज रोओ।
हम मंद भाग्य सारे बह जायँ आसुंओं में॥
ऐसा रतन गँवा के चुप कौन रह सकेगा?'
—मानसी, 'तिलक स्वर्गारोहण', पृ० ५५-५६;

४—'आह्वान', पृ० ४५;

५—'तेजस्वी बालक की एकान्त चिन्ता', पृ० १०१;

६—'अन्वेषण', पृ० ३

७—राष्ट्रीय वीणा, (द्वि० भा०), 'करुणा क्रन्दन', पृ० ४०;

८—'कीर्तिगान', पृ० ८७-८८

गई हैं। 'गांधी शरण', 'गांधी स्तव', 'गांधी गुणानुवाद', 'गांधी महिमा' आदि कविताओं में कवि ने गाँधी जी के गुणों का गान किया है और उनके प्रति आदर तथा श्रद्धा प्रकट की है।[1]

तिलक तथा गांधी की लोकप्रियता अत्यधिक थी इसमें कोई सन्देह नहीं। साथ ही 'मानसी' की 'अन्वेषण' कविता तथा 'जागृत भारत' की कुछ कविताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि १९२० के लगभग, असहयोग के प्रारम्भ के साथ ही गाँधी की देवता या अवतार के रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी थी।[2] इसकी पुष्टि राजनीति से भी होती है।[3] सीतारामय्या ने लिखा है कि गाँधी जी ने १९२२ ई० में यह इच्छा प्रकट की कि रचनात्मक-कार्यक्रम को पूरा किया जाय तथा उनकी गिरफ्तारी के समय शांति रक्खी जाये। उन्होंने सोचा कि इससे उनके दैवी-शक्ति-सम्पन्न होने के सम्बन्ध में जो धारणा फैली हुई है, उसका अन्त हो जायेगा।[4] 'स्वदेश संगीत' में मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं कि गांधी के

१—'ऐसी अभेद्य उच्च अविचल हिये सी शक्ति,
हमने न देखी कहीं विश्व के पहाड़ में।
त्योंही निर्भीक घोर, क्रूर कम्पकारी स्वर,
दुर्लभ सिंधु गर्जन में सिंह के दहाड़ में॥
सत्यता न देखी ऐसी हरिचन्द दधीचिहू में,
देशभक्ति हू ना लखी जीवित मेवाड़ में।
कंह ते बटोर विश्व शक्ति भर दीन्हों नाथ।
माधव या गान्धी के मूठी भर हाड़ में॥'

—जागृत भारत, 'गांधी स्तव', पृ० २९;

२—'तू सत्य अहिंसा दया निस्वार्थ त्याग से।
इस आज मृत्यु लोक में भगवान बन गया॥

—'गांधी महिमा,' पृ० ३२

'यदुपति ने सुमिरन करि जिन प्रन गीता माँहि कह्योरी।
असहयोग लै चक्र सुदर्सन गांधी रूप धरयो री॥
हिन्द को भाग जगो री॥ ऐसो०॥'

—'सावधान', पृ० ७७

३—सीतारामय्या, पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, पृ० १५१ तथा १३०;

४—पृ० १९८

कारण ईश्वर का आसन भी डोल गया।[1] 'जागृत भारत' में गाँधी के गुणों का वर्णन करते हुये कवि लिखते हैं कि उन्होंने भारत रूपी गोबर्धन को छिगुनी पर धारण कर लिया।[2] 'हक का सवाल' शीर्षक गज़ल में कवि ने लिखा है कि अगर तिलक एवं और लाल न होते तो आज अपने अधिकारों का प्रश्न नहीं उठता।[3] 'स्वराज्य गायन' में गोखले का श्रद्धा पूर्वक उल्लेख है।[4] कवि ने तिलक और गांधी की सूर्य और चन्द्रमा से उपमा देते हुये उनका स्वागत किया है।[5] एक अन्य कविता में गांधी, तिलक तथा मदनमोहन मालवीय के प्रति कवि ने श्रद्धा प्रकट की है।[6] अन्य कविताओं में भी भारत के अन्य नेताओं का उल्लेख कवि ने किया है।[7] स्वतंत्र भारत की कल्पना में कवि माधव शुक्ल ने लिखा है :—

१—'देखकर बैर, विरोध, विनाश,
पड़ गया है नीला आकाश!
किन्तु अब पशु बल हुआ हताश,
कटेगा पराधीनता पाश।
उठा ईश्वर का आसन डोल
महात्मा गांधी की जय बोल!'

—स्वदेशसंगीत, 'जयबोल,' पृ० १२७

२—जागृत भारत, 'जेल का खेल', पृ० ७०;
३—'हक का सवाल', पृ० ४२;
४—'स्वराज्य गायन', पृ० ५९;
५—३२वीं नेशनल कांग्रेस कलकत्ता, 'स्वागत गान', पृ० ६०
६—'३४वीं काँग्रेस की सफलता पर बधाई', पृ० ६२
७—'चित्तरंजन हैं यही मोती जवाहर हैं जड़े।
लाजपत भारत की माता माल पहने है गले॥
वीरवर शौकत मुहम्मद शेरेनर इस्लाम के।
फिर रहे आज़ाद बन्दे सब रहीमो राम के॥'

—'कारागार', पृ० ७१

'क़दर खद्दर की भी है दर से पर लाचार बैठे हैं॥
सबब अनमोल मोती आज खद्दर में समाया है।

....

'पेशानी में सोहे तिलक जिसके,
औ गोद में गान्धी विराज रहे।
न ये दाग बदन में सुफेद रहे,
न तो कोढ़ रहे न ये खाज रहे॥'[1]

यह पंक्तियाँ इस दृष्टि से भी बड़ा महत्व रखती हैं कि इनके द्वारा निर्भयता का जो स्वर व्यक्त होता है वह भारतीय-राजनीति में नवीन है। राजनीतिक दृष्टिकोण के समानान्तर साहित्यिक-दृष्टिकोण भी निडरता, कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना करने का साहस, असहयोग में दृढ़ विश्वास तथा ब्रिटिश राज्य और नीति में अनास्था का हो जाता है। प्रारम्भिक कवियों का विनय, झिझक और संकोच का स्वर अधिकार का स्वर बन जाता है। 'त्रिशूल तरंग' की 'राष्ट्रीय होली' शीर्षक कविता में कवि गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' ने बाल-गंगाधर तिलक तथा श्रीमती बेसेन्ट का आदर के साथ उल्लेख किया है और गांधी जी की भी प्रशंसा की है।[2] दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी के लौटने पर भारत-माता की ओर से उनके स्वागत में 'महत्मा गांधी का स्वागत' शीर्षक कविता लिखी गई है।

'वीर सतसई' की 'सत्यवीर' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि इस कलि-युग में एक गांधी ही सत्याग्रह वीर हैं। असह्य दुख-द्वंद्व सहन करके भी वे सत्य

अयंगर से तवंगर जिसमें तारोतार बैठे हैं॥
पिन्हा दे ऐ पटेल इस हिन्द माता को सुअन सारी।
कि जिसके गोद में गोपाल से आचार बैठे हैं॥
स्वराजी ऐ हकीम अजमल तेरा हम गान गाने को।
मिलाये दीन के हिन्दू मुसल्मां तार बैठे हैं।'

——जागृत भारत, सिविल डिस्ओबिडियेन्स इन्क्वायरी कमिटी के सदस्यों के कलकत्ता आगमन के उपलक्ष में स्वागत गान, पृ० ७३

'जीवहु लाल जननि दुखहारी मोती अजमल प्रिय अंसारी।
आयंगर गोपालाचारी – श्री पटेल व्रत धारी॥'

——जागृत भारत, सत्याग्रह जाँच कमिटी के माननीय सदस्यों के कलकत्ता पधारने पर उनके स्वागतार्थ मलार, पृ० ७४

१——जागृत भारत, 'सच्चा स्वराज्य', पृ० ३६

२——त्रिशूल तरंग, 'राष्ट्रीय होली', पृ० १०१-१०२

के पथ से विचलित न हुये। मानो हरिश्चन्द्र कलियुग में गांधी के रूप में अवतरित हुये हैं।[1] पाँचवें शतक में 'लोकमान्य तिलक' और 'देशबन्धु दास' शीर्षक कविताओं में कवि ने दोनों नेताओं के प्रति श्रद्धा प्रकट की है।[2]

गांधी की तो 'अवतार' रूप में काव्य में प्रतिष्ठा हुई ही है, राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'तरंग' में भी राय साहब कहते हैं कि गांधी के सम्बन्ध में बहुत से चमत्कारों को मशहूर कर दिया गया है। रमेश इसके उत्तर में कहते हैं कि गाँधी का जादू गंवारों पर ही नहीं चला, न जाने कितने समय से अंगरेज़ गांधी-फ़ोबिया के मर्ज़ में मुब्तला हैं।[3]

सुदर्शन के 'सुप्रभात' कहानी संग्रह में 'जब आँखें खुलती हैं' शीर्षक नाटक में तारा कहती है 'जिस पवित्र-भूमि में महात्मा गाँधी जैसे देवता, पंडित मोतीलाल जैसे त्यागी और डाक्टर अंसारी जैसे वीर पुत्र उत्पन्न हो वहीं मेरी जैसी निर्लज्ज स्त्रियाँ हों, यह कैसी अपमानजनक बात है।'[4] विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'बगलाभगत' कहानी में महात्मा गाँधी तथा लोकमान्य तिलक के महान त्याग का उल्लेख है।[5]

'सुप्रभात' की 'सत्यमार्ग' कहानी में तिलक के देहान्त का हृदय-विदारक वर्णन है : 'उस दिन ३१ जुलाई थी। बम्बई का बच्चा-बच्चा व्याकुल था। मन्दिरों में दीपक जल रहे थे, मसजिदों में दुआयें माँगी जा रहीं थीं। प्रत्येक मुख उदासीन था, प्रत्येक आँख भीगी हुई थी। घड़ी ने रात के साढ़े बारह बजाये, बम्बई की दीवार हिल गई, लोक मान्य चल बसे। दूसरे दिन बम्बई में प्रलय मची हुई थी। हर एक गली-कूचे से करुणा-रोदन का शब्द निकलता था। लोग इस तरह रोते थे, जैसे उनका कोई निकट सम्बन्धी मर गया हो। जब अर्थी उठी तो साथ लाखों की भीड़ थी। किसी राजे-महराजे के मरने पर भी इतने लोग कम साथ गये होंगे। —हलचल सी हुई और एक नौजवान मुसलमान लोकमान्य की चिता में कूद पड़ा।[6] तिलक की मृत्यु से मुहम्मद

१—वियोगीहरि, हरिप्रसाद द्विवेदी, वीरसतसई, पहला शतक, पृ० ६;
२—पाँचवा शतक, पृ० ६८-६९
३—'तरंग', पृ० ७२-७३
४—सुप्रभात, 'जब आँखे खुलती हैं', पृ० १५६
५—चित्रशाला, 'बगलाभगत', पृ० २१२
६—सुप्रभात, 'सत्यमार्ग', पृ० ६३-६५

अब्बास का यह भ्रम दूर हो जाता है कि देश अपने सेवकों का सम्मान नहीं करता और वे देश-सेवा का व्रत ले लेते हैं।

राष्ट्रीयता का स्वरूप

हिंदू-जातीयता और भारतीय-राष्ट्रीयता की भावनायें इस चरण के साहित्य में भी व्यक्त हुईं। जो साहित्यकार कांग्रेस के अधिक संपर्क में आये उन्होंने राष्ट्रीय-दृष्टिकोण अपना लिया परन्तु पुराने कवियों ने हिंदू-जातीयता के दृष्टि-कोण को नहीं छोड़ा और वे पुराने ढंग की कवितायें करते रहे।

हरिऔध के 'पद्यप्रसून' की अधिकांश कवितायें हिन्दू-जातीयता विषयक हैं। जीवन स्रोत के अंतर्गत 'विद्यालय' शीर्षक कविता में कवि ने कहा है कि आदर्श-विद्यालय में जाति संगठन की शुभ पूजा होगी। वहाँ सरस जातीय-तान रस बरसायेगी। उस विद्यालय में महत्ता कहाँ है जहाँ रही-सही जातीयता भी नष्ट हो जाय? जातीय सभाओं के द्वारा जाति का अध:पतन हो रहा है। जाति-जाति के विद्यालय और सभायें अति निन्दित हैं यदि वे संघ शक्ति का संचय न करें। उन विद्यालयों और सभाओं से क्या होगा जिनसे हिन्दू-गौरव का डोंगा डूब जाय। अंत में कवि ने प्रार्थना की है कि देश में जितने हिन्दू विद्यालय हों सभी एक सूत्र से बंधे एकतामय हों। छात्रवृन्द जाति-भाव से पूरित हों। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी भिन्नता तजकर मिल जायें।[1] 'जीवन मरण' शीर्षक कविता में हिन्दुओं की दीन-दशा का चित्र है। सम्पूर्ण कविता से कवि का जाति-प्रेम प्रकट होता है। कवि लिखते हैं कि मन्दिर टूटते हैं परन्तु हमारा कलेजा नहीं टूटता, ललनायें छिनती हैं परन्तु हमारा खून नहीं खौलता, लाल लुटते हैं परन्तु हमारी आँख तक लाल नहीं होतीं।[2] 'परिवर्तन' कविता में कवि लिखते हैं कि हम में परिवर्तन पर परिवर्तन होते हैं परन्तु वे जातीय-भाव के गौरव को खोते हैं।[3] 'समझ का फेर' शीर्षक कविता में कवि ने उस राष्ट्रीय-भावना के प्रति क्षोभ प्रकट किया है जो जाति को मिटाती है। कवि लिखते हैं कि जाति मिटी जा रही है तो उससे क्या? हम तो यूनिटी के रंग में मस्त हैं। माँ-बहन और बेटियाँ लुट जायें, परन्तु मेल का मुँह देखकर हम उसे भी सह लेते हैं। धड़ल्ले

१—पद्यप्रसून, 'जीवन स्त्रोत', 'विद्यालय', पृ० २७-३०;
२—'जीवन-मरण', पृ० ३५;
३—'परिवर्तन', पृ० ४३

से मन्दिरों पर सत्याग्रह हो रहा है।[1] 'सेवा' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि अगर जाति की कुछ भी सेवा न की गई और ऐसी बात जी में बनी जिसमें जाति-हित का कुछ भी रंग न हो तो क्या बनी ।[2] 'एक विनय' शीर्षक कविता में कवि सपूतों से कहते हैं कि तुम्हीं आज जाति का हित कर रहे हो, अगर जातीयता को बचाना चाहते हो तो मृदुल बालमति को सम्हालो ।[3] 'वक्तव्य' शीर्षक कविता में कवि ने कहा है कि संघ-शक्ति इस युग का मुख्य धर्म है। जातीय-सभायें तथा जाति-जाति के समाज जिस प्रकार आज संचालित हो रहे हैं उस प्रकार तो वे सहकारिता का संहार कर देंगे । हिन्दू-जाति आज जरा से जर्जरित है। कवि यह भी विचार रखते हैं कि जिस काव्य से जातीय-उत्थान न हो वह काव्य भी काव्यता नहीं प्राप्त कर सकता तथा जिस कविता में जातीय-तान न हो वह कविता ही नहीं है ।[4] 'गौरव गान' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि स्वामी दयानंद ने हृदय में जातीय-भाव सजग करके हमें जगाया और देश-प्रेम के महामंत्र से मुग्ध बनाया । आगे कवि लिखते हैं कि मन्दिर धूल में मिलते हैं, देवमूर्ति टूटती है और भारत-जननी अपनी छाती कलप-कलप कर कूटती है । परन्तु हिन्दू जाग-जागकर आज भी नहीं जागे ।[5] 'आती है' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि हम कम नहीं, बहुत सोये । अब जाति की याद आकर जगाती है । वह तरंग क्यों नहीं आती जो जाति के रंग में रंगी हो ।[6] 'प्रेम' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि बहुत सी जातियों की बहुत सी सभायें बलायें बन गई हैं । अगर हमें हिन्दू नाम नहीं प्यारा है तो रसातल क्यों नहीं चले जायेंगे ? अन्त में कवि ने हिन्दुओं के जगने की कामना की है ।[7] 'माता का प्यार' शीर्षक कविता में बच्चे को सम्बोधित करके कवि कहते हैं कि जाति की सकल आशाओं का स्थल तेरा कोमल मुख है ।[8]

१—'समझ का फेर', पृ० ६१
२—'सेवा', पृ० ६६
३—जीवनी धारा, 'एक विनय', पृ० १२२, १२५;
४—पृ० १३३, १३६-१३७
५—पद्य प्रसून, 'जातीयता ज्योति', 'गौरवगान', पृ० १५०-१५१;
६—'आती है', पृ० १५६
७—'प्रेम', पृ० १७१, १७४, १७५;
८—बाल विलास, 'माता का प्यार', पृ० २४२

'चुभते चौपदे अथवा देश दशा' में 'चेतावनी' शीर्षक के अंतर्गत कवि ने जाति-प्रेम प्रकट किया है। कवि कहते हैं कि दादरे, खेमटे बहुत गा चुके। अब जाति-हित के गीत गा चलो।[१] पूरी पुस्तक में कवि का जाति-प्रेम व्यक्त हुआ है। कहीं भी सम्पूर्ण भारत की राष्ट्रीय कल्पना नहीं मिलती। कवि ने सामाजिक-समस्यायें आदि भी हिन्दू-जाति की ही उठाई हैं।

'चोखे चौपदे' में भी कवि ने जाति के सम्बन्ध में कहा है कि जाति के पाँव का सहारा पाकर ही जाति का पाँव जमकर बैठता है और जाति ही जाति की जड़ खोदती है।[२] 'बोलचाल' में भी हरिऔध ने जाति की अवनति का ही उल्लेख किया है, सम्पूर्ण राष्ट्र की समस्या की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में उर्मिला आर्यकुल की प्रशंसा करती है।[३]

गुप्तजी के 'स्वदेश संगीत' की कविताओं की पृष्ठभूमि में हिन्दू राष्ट्रीयता है। किसी भी कविता में हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य पर बल नहीं दिया गया है। जब वे अपना आदर्श सम्मुख रखते हैं तो कहीं भी विधर्मियों और विजातियों का उल्लेख नहीं करते :—

> **'ब्राह्मण व्रती शुभाचारी हों,**
> **क्षत्रिय तेजोबल धारी हों,**
> **वैश्य सदाशय व्यापारी हों,**
> **शूद्र करें उपचार।'**

अपने को आर्य कहने में वे गौरव का अनुभव करते हैं। जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, मैथिलीशरण गुप्त की 'हिन्दू' में हिन्दू जाति के उत्कर्ष के लिए उद्-बोधन है। यह हिन्दू जातीयता का ही काव्य है।

> **'ऐसा है वह कौन विवेक**
> **करता हो जो हमको एक ?**
> **और बढ़ा सकता हो मान ?**
> **केवल हिन्दू हिन्दुस्तान।**[४]

राजनीतिक-दृष्टिकोण की अपेक्षा इस पुस्तक में जातीय तथा सामाजिक

१—चुभते चौपदे अथवा देश दशा, 'चेतावनी', पृ० ३६
२—चोखे चौपदे, 'अनमोल हीरे', पृ० ८०
३—'साकेत', द्वादश सर्ग, पृ० ४२६-४२७
४—'हिन्दू', पृ० १००

दृष्टिकोण ही मुख्य है। हिन्दुओं के त्योहारों को लेकर उद्‌बोधन का गान हुआ है। हिन्दू-संस्कृति पर कवि को अभिमान है तथा परिशिष्ट के गीतों में हिन्दू-देवी-देवताओं की स्तुतियाँ हैं।

'हरिऔध' की इस काल में प्रकाशित काव्य-रचनाओं में हिन्दू-जातीयता का स्वर सबसे ऊँचा है। मैथिलीशरण गुप्त को भी हिन्दू-जातीयता ने विशेष आकर्षित किया है। परन्तु इसी काल में प्रकाशित अन्य कविता-पुस्तकों में इस दृष्टि से भावनाओं में कुछ अन्तर मिलता है। त्रिशूल के 'राष्ट्रीय मंत्र' में 'जातीयता : राष्ट्रीयता' शीर्षक भी एक कविता है। स्पष्ट है कि इस काल तक राष्ट्रीयता और जातीयता शब्द बहुत अंशों में समानार्थक समझे जाते थे। इस पुस्तक में कोई ऐसी कविता नहीं है जो हिन्दू-जातीयता के अनुकूल और राष्ट्रीयता के प्रतिकूल हो। 'मानसी' की 'हिन्दुओं का एक नेता' शीर्षक कविता में कवि ने दयानन्द के प्रति आदर व्यक्त करते हुए उनके गुणों का स्मरण किया है।[1]

'जागृत भारत' में माधव शुक्ल ने राष्ट्रीय-विचारधारा के पूर्णतः अनुकूल सभी भारतीयों—हिन्दू-मुसलमान-इसाइयों आदि—का समान रूप से जयगान किया है।[2]

राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग) में एक भारतीय आत्मा ने हिन्दू और मुसल-

---

१—मानसी, 'हिन्दुओं का एक नेता', पृ० ११९

२—'जयति हिन्द जन सुजान ख्रीष्ट हिन्दु मुसलमान।
थित सुभारती जहाज, पथिक सकल जन स्वराज॥'

—जागृत भारत, 'स्वदेश वंदना', पृ० २२

'उठो अपढ़ मूरख विद्वानों, हिन्दू मुस्लिम औ क्रिस्तानों।
जैन पारसी सिक्ख महानों, प्यारी मा के प्रान॥
जवानो उठो॥'

—जागृत भारत, 'बलिदान', पृ० ४

'चढ़े हिन्दु, सिख, यवन, जैन, बुध नरम, गरम सब भैया।
तिनके रहते बूड़ गई तो कहा कहेगी मैया॥'

—जागृत भारत, 'गांधी शरण', पृ० २८

'जुग जुग जियो हिन्द सन्तान—
सिक्ख, हिन्दू, मुस्लिम, क्रिस्तान॥'

—जागृत भारत, '३४ वीं कांग्रेस की सफलता पर बधाई', पृ० ६२

मानों को हिन्द-माता की दो आँखें माना है।[१] परन्तु इसके साथ ही 'हिन्दू, हिन्दी और हिन्द' के पारस्परिक सम्बन्ध की परम्परा भारतेन्दु काल से ही ऐसी चली आ रही थी कि वह छूट नहीं सकी। शालिग्राम वर्मा लिखते हैं 'हिन्दू, हिन्दी, हिन्द देश की वंशी मधुर बजावेंगे।'[२] भगवन्नारामण भार्गव इसी प्रकार लिखते हैं 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्द हितैषी सब बोलो हरसाई।'[३]

सामूहिक रूप से देखें तो इस चरण के साहित्य में साहित्यकारों का दृष्टि-कोण बदल गया है। असहयोग-आन्दोलन का ही प्रभाव साहित्य पर सबसे अधिक पड़ा है। प्रार्थनाओं और निवेदनों के स्थान पर स्वावलम्बन, उत्तरदायित्व, तथा सरकार का सामना करने का भाव प्रधान हो गया है।

———

१—राष्ट्रीय वीणा (द्वि० भा०), 'जीवित जोश', पृ० ९;
२—'शुभकामना', पृ० ८६;
३—'परमोत्सव', पृ० ७८

अध्याय ४

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन तथा समकालीन हिन्दी-साहित्य

१९२८-१९३८ ई०

●

कलकत्ता कांग्रेस में भविष्य के लिए रचनात्मक-कार्यक्रम की योजना बनाई गई थी। इसे पूरा करने के लिए विदेशी-वस्त्र बहिष्कार, मादक द्रव्य निषेध, अस्पृश्यता निवारण, महासभा के संगठन तथा स्वयंसेवकों और स्त्रियों की बाधाओं को दूर करने के लिए उप-समितियाँ बनीं। विदेशी-वस्त्र बहिष्कार-समिति के अध्यक्ष गाँधीजी थे। स्पष्ट है कि वातावरण इन्हीं कार्यक्रमों से व्याप्त था। साहित्य पर भी कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का बहुत प्रभाव पड़ा है। इंगलैंड में सन् १९२९ ई० में अनुदार दल की सरकार चुनाव हार गई और मजदूर दल का मंत्रिमण्डल बना। इससे भारतीयों में आशा का संचार हुआ।

१९२९ ई० में बम्बई में महासमिति की बैठक हुई और उसमें निश्चय किया गया कि पूर्व अफ्रीका में भारतीयों की राजनीतिक और आर्थिक समानता की लड़ाई में काँग्रेस पूरी मदद करे। यह भी तय हुआ कि बंगाल और आसाम को छोड़ कर अन्य स्थानों में कांग्रेस-सदस्य कौंसिल की बैठकों में कोई भी भाग न लें।

बलिदान की भावना देश में व्याप्त थी। गोरे और हिन्दुस्तानी कैदियों में

भेद करने का विरोध यतीन्द्रनाथ दास ने अपने अनशन द्वारा किया और अपने प्राणों की बलि दी। सरकार ने अन्तिम दिनों में उनकी माँगे स्वीकार कर ली थीं। अक्टूबर १९२९ ई० में लार्ड अर्विन ने ब्रिटिश सरकार के आदेशानुसार यह घोषणा की कि १९१७ ई० की घोषणा में भारत को उपनिवेश का दर्जा देने का अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है। परन्तु गाँधी और जवाहरलाल तो यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज़ परिषद् की कार्रवाई औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मान कर होगी और यह आश्वासन वाइसराय न दे सके।

सन् १९२९ ई० का कांग्रेस अधिवेशन लाहौर में हुआ। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव पूर्ण स्वाधीनता के सम्बन्ध में पास हुआ और यह भी कहा गया कि नेहरू कमिटी की रिपोर्ट में वर्णित सारी योजना रद्द समझी जाय। काँग्रेसी निर्वाचनों में भाग न लें और त्यागपत्र दे दें। इसके साथ ही महासमिति को यह अधिकार दे दिया गया कि वह जब और जहाँ चाहे आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ सविनय अवज्ञा और कर-बन्दी तक का आन्दोलन शुरू कर दे। पूर्व अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पास हुआ। सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का प्रभाव इस चरण के साहित्य पर पड़ा है।

देश का एक वर्ग हिंसा में विश्वास रखता था। २३ दिसम्बर, १९२९ को ही वाइसराय की गाड़ी के नीचे एक बम फटा परन्तु सौभाग्य से वे बाल-बाल बच गए। क्रान्तिकारियों के इस दल का वर्णन समकालीन-साहित्य में हुआ है।

इस तरह एक प्रकार से भावी सत्याग्रह-संग्राम की पूरी तैयारी हो गई। १४, १५ तथा १६ फरवरी, १९३० को कार्यसमिति की बैठक हुई जिसमें गाँधीजी व उनके साथियों को सविनय-अवज्ञा का कार्यक्रम प्रारम्भ करने का अधिकार दे दिया गया।

१२ मर्च,।१३० ९ को गाँधी जी अपने ७९ साथियों के साथ दाण्डी की कूच पर निकल गए। ५ अप्रैल को प्रातः काल वे दाण्डी पहुँच गए और समुद्रतट से नमक बीन कर नमक कानून तोड़ने निकले। दाण्डी-कूच तथा नमक-सत्याग्रह के उल्लेख साहित्य में भी आए हैं। दण्डी-यात्रा से पहले ही गाँधी जी ने पत्र द्वारा वाइसराय को अपना निश्चय प्रकट कर दिया था और अब एक और पत्र द्वारा धारासना तथा छरसाड़ा के नमक-कारखानों पर धावा करने के अपने इरादे को उन्होंने प्रकट कर दिया। कार्यसमिति ने करबन्दी आन्दोलन प्रारम्भ करने की अनुमति दे दी और यह निश्चय हुआ कि रैयतवारी प्रान्तों में भूमि-कर न दिया जाय तथा बंगाल, बिहार और उड़ीसा आदि प्रान्तों में चौकीदारी कर। जनता से यह अनुरोध किया

गया कि वह अंग्रेजी माल का बहिष्कार शीघ्रातिशीघ्र कर दे। जनता द्वारा हिंसा हो जाने पर कार्यसमिति ने खेद प्रकट किया।

२१ मार्च को धारासना पर सामूहिक धावा हुआ। इसमें सारे गुजरात से आए हुए २५०० स्वयंसेवकों ने भाग लिया। बड़ाला के नमक के कारखानों पर कई धावे हुए। सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जोर-शोर से प्रारम्भ हो गया। स्त्रियों को मदिरा-निषेध तथा खादी-प्रचार का कार्य करने की सलाह दी गयी। छात्रों से भी कहा गया कि वे सरकारी स्कूल-कालेजों से हट जाँय और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लें। आन्दोलन के साथ-साथ हर जगह आन्दोलन का दमन करने के लिए गिरफ्तारियाँ, लाठी-चार्ज हुए। पेशावर में तो कानून-भंग के ही संबंध में गोलियाँ भी चलीं। प्रमुख नेताओं को तो गिरफ्तार कर ही लिया गया था।

१९३० ई० में गोलमेज परिषद् हुई और प्रधानमंत्री मि० मैकडोनेल्ड ने एक घोषणा की। इसके बाद ही गवर्नर जनरल ने भी घोषित किया कि कांग्रेस कार्यसमिति को गैरकानूनी करार करने वाला एलान प्रान्तीय सरकारों ने वापस ले लिया है। गाँधीजी और उनके सहयोगियों को भी बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिया गया जिससे वे प्रधान मंत्री के वक्तव्य पर विचार कर सकें। गाँधी जी के छूटने के बाद ही कार्यसमिति की बैठक में यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि जब तक स्पष्ट रूप से आन्दोलन बन्द करने के लिए न कहा जाय तब तक सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलता रहेगा। ऐसे वातावरण में गाँधी जी और वाइसराय के बीच समझौते की बातचीत चल पड़ी और ५ मार्च, सन् १९३१ को बहुत वादविवाद के बाद अन्त में गाँधी-अर्विन समझौता हो ही गया। समझौते में नमक के बारे में यह तय हुआ कि जिन जगहों में नमक अपने आप तैयार होता है वहाँ से स्वतंत्रता-पूर्वक नमक लिया जा सकेगा। यह बहुत बड़ी बात थी। गाँधी जी ने भगतसिंह व उनके साथियों की फांसी की सजा बदल देने का भी अनुरोध किया लेकिन यह न हो सका और कराँची-काँग्रस के पहले ही उन्हें फांसी दे दी गयी। राष्ट्रीय-आन्दोलन के इतिहास से पता चलता है कि कुछ समय के लिए भगतसिंह की लोकप्रियता भी सम्पूर्ण देश में उतनी ही थी जितनी गाँधी की[1], परन्तु साहित्यकारों ने उन्हें देश के नेता के रूप में ग्रहण नहीं किया है। क्रान्तिकारी-दल का वर्णन, अथवा ऐसे चरित्रों का चित्रण जो एक ओर तो धनवान को लूटते हैं और दूसरी ओर दीन-

---

१—सीतारामय्या, पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, पाँचवा भाग, पृ० ३६४

दरिद्र जनता की सहायता करते हैं, अवश्य इस काल के साहित्य में प्राप्त होता है।

हिन्दू-मुस्लिम दंग होते रहे। कानपुर में बड़ा भयानक दंगा हुआ जिसमें गणेश-शंकर विद्यार्थी जी को प्राणों की आहुति देनी पड़ी। हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर इस चरण में भी साहित्यकारों का ध्यान गया।

यह निश्चय हुआ कि द्वितीय गोलमेज-परिषद में भारत का प्रतिनिधित्व केवल गाँधी जी करें। लार्ड अरविन की जगह लार्ड विलिंग्डन वाइसराय नियुक्त हुए। गाँधी–अरविन समझौते की शर्तों का स्थान-स्थान पर उल्लंघन होने लगा। बारडोली में भी कर के संबंध में शिकायत हुईं। गाँधी जी ने इन शिकायतों के संबंध में बम्बई सरकार को लिखा। बम्बई सरकार का उत्तर असन्तोषजनक था, अतः ये शिकायत भारत सरकार तक पहुँचायी गई, परन्तु भारत सरकार ने भी बम्बई सरकार का साथ दिया। तब गाँधी जी ने पंच नियुक्त करने के लिए आग्रह किया। गाँधी जी पहले द्वितीय गोल-मेज-परिषद् में भाग लेने के लिये तैयार न थे परन्तु अन्त में वे सम्मिलित हुए। इधर भारत में स्थिति बिगडती गई। युक्त प्रान्त में किसानों पर अत्याचार हो रहा था। खुदाई खिदमतगारों को गाँधी जी ने काँग्रस का एक अंग बना लिया था परन्तु सरकार ने खान साहब तथा उनके एक लाख खिदमतगारों को जेल में बन्द कर दिया। जवाहरलाल और शेरवानी जी गिरफ्तार कर लिए गए थे। गाँधी जी जब वापस लौटे तब ऐसी परिस्थिति थी। गाँधी जी ने वाइसराय से तार द्वारा इस सम्बन्ध में बातचीत भी की परन्तु ४ जनवरी, सन् १९३२ को सरकारी प्रहार प्रारम्भ हो गया। गाँधी जी व वल्लभ-भाई पटेल को शाही कैदी बना लिया गया। चार नए आर्डिनेन्स लागू किए गए।[1]

शराब और विदेशी माल की पिकेटिंग सभी जगह हुई। लगानबन्दी आन्दोलन पूर्ण रूप से युक्त प्रान्त तथा आँशिक रूप से बंगाल में हुआ। नमक-कानून तो भंग हुआ ही। प्रेस पर नियंत्रण होते हुए भी संवादपत्र, रिपोर्टें आदि छपती रहीं तथा मनाही के होते हुए भी काँग्रेस का अधिवेशन सन् १९३२ के अप्रैल में दिल्ली में हुआ। मदनमोहन मालवीय दिल्ली अधिवेशन के मनोनीत सभापति थे परन्तु

१—(१) इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स (२) अनलाफुल इन्सटिगेशन आर्डिनेन्स (३) अनलाफुल एसोसियेशन आर्डिनेन्स तथा (४) प्रिवेन्शन आव मोलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स।

उन्हें रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया था अतः सेठ रणछोड़दास अमृतलाल सभापति हुए ।

गाँधी जी ने भारत मंत्री सर सम्युअल होर को पत्र लिखा कि यदि दलित जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन रक्खा गया तो वे आमरण अनशन करेंगे । मि० मैकडोनेल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार दलित जातियों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार मिला । गाँधी जी ने इसके विरोध में उपवास आरम्भ कर दिया । सब दलों के नेताओं ने मिल कर आपस में समझौता किया और इस समझौते के अनुसार दलित-जातियों ने पृथक् निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया तथा उच्च-जातियों के हिन्दुओं ने उन्हें महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किए । इस समझौते को 'पूना पैक्ट' का नाम दिया गया । दलित जातियों के अधिकारों के पक्ष में इस चरण के साहित्यकारों ने भी साहित्य रचना की है और इस प्रश्न को साहित्य के सभी रूपों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

निषेधाज्ञा के होते हुए भी कांग्रेस का कलकत्ते का अधिवेशन हुआ । इसमें "व्हाइट पेपर' की योजना को बेकार ठहराया गया ।

वाइसराय गाँधी जी से तब तक समझौते की बातचीत करने के लिए तैयार नहीं थे जब तक सत्याग्रह रोक न दिया जाय । अतः सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग सत्याग्रह करने के लिए तैयार थे उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गयी । २० मई, सन् १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और कौंसिल-प्रवेश का निश्चय हुआ और १२ जून, १९३४ को अधि-कांश कांग्रेस-संस्थाओं पर से प्रतिबन्ध हट गया । मई, १९३४ में समाजवादी-पार्टी का भी जन्म हुआ जिसका पहला अधिवेशन पटना में, आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ । उधर ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट ने भारत का शासन-विधान पास कर दिया और उसे सम्राट् की स्वीकृति भी मिल गयी ।

लगभग १५० वर्षों से विदेशी शासन होने के कारण भारत में सामाजिक और आर्थिक-पुनर्निर्माण के बिना स्वतंत्रता प्राप्त करना बहुत कठिन था और इसी कारण काँग्रेस ने रचनात्मक-कार्यक्रम अपना कर समाज के आर्थिक और सामाजिक-जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की सलाह दी थी । नयी समाजवादी विचारधारा नवयुवकों में बडी प्रिय बनी रही थी और जगह-जगह विद्यार्थी-संघ और यूथ-लीग की स्थापना हो रही थी । एक और साम्यवादी पार्टी ने भी जन्म लिया और यह समाजवादी-पार्टी से भी अधिक बलशाली बन गई ।

कांग्रेस ने ठीक अवसर पर खतिहर कार्यक्रम अपनाया था क्योंकि किसानों

में इस समय बहुत अशान्ति थी। रियासतों के बारे में काँग्रेस ने यह स्वीकार किया कि रियासती जनता को भी आत्म-निर्णय का उतना ही अधिकार है जितना कि शेष भारत की जनता को परन्तु साथ ही कांग्रेस ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि रियासतों के भीतर स्वतंत्रता की लड़ाई रियासती जनता को स्वयं ही लड़नी होगी। रियासतों की परिस्थितियों का चित्रण इस चरण के साहित्य में भी हुआ है।

सन् १९३५ के ऐक्ट से कांग्रेस बहुत असंतुष्ट थी। परन्तु यह तय हुआ कि चुनाव लड़ा जावे। कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम में ये बातें रखीं : मद्यनिषेध करना, मजदूरों और किसानों के हित में कानून बनाना, दलित-जातियों को ऊपर उठाना, साँप्रदायिक झगड़े दूर करना आदि। धारा-सभाओं में स्थान पाने के बाद कांग्रेसी सदस्यों को ये सारे कार्य करने थे। धारासभाओं में कांग्रेस का उद्देश्य नये विधान का विरोध और उसके संघीय भाग को लागू होने देने से रोकना था। महा-समिति ने यह भी कहा था कि खिताबों से देश का नैतिक अध:पतन होता है अत: कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बनने पर उन्हें इसके विरोध के प्रस्ताव पास करने चाहिए।

सुभाष बोस को सरकार ने नज़रबन्द कर लिया था जिसके विरोध में 'सुभाष दिवस' मनाया गया। इस समय देश में समाजवादी विचारधारा बहुत अपनाई जा रही थी। कांग्रेस ने जो मज़दूर-कमेटी नियुक्त की थी उसने बहुत परिश्रम से कार्य किया और विस्तृत रिपोर्ट उपस्थित की जिसे काँग्रेस ने स्वीकार कर लिया। मज़दूरों के प्रश्नों की ओर साहित्यकार भी आकृष्ट हुये।

किसानों को कांग्रेस में रहकर ऐसा मालूम हुआ कि उनकी माँगों की पूर्ति में देर होगी अत: उन्होंने लाल रंग का झंडा अपनाया और साम्यवादियों का साथ देना प्रारंभ किया। कांग्रेस ने चुनाव लड़े और अपने मंत्रिमंडल बनाये जिन्होंने बहुत अच्छा कार्य किया।

सन् १९३८ की हरिपुरा कांग्रेस में रचनात्मक-कार्यक्रम की एक और बड़ी कमी दूर हुई और अखिल भारतीय राष्ट्रीय-शिक्षा-संघ की स्थापना हुई। सन् १९२० के असहयोग आन्दोलन में सरकारी स्कूल-कालेजों का बहिष्कार बहुत अंशों में सफल हुआ था और राष्ट्रीय स्कूल खुले भी थे परन्तु अभी तक राष्ट्रीय शिक्षा के संचालन के विस्तृत-कार्यक्रम पर विचार नहीं हुआ था। इतना अवश्य निश्चित था कि बुनियादी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, और वह अनिवार्य तथा नि:शुल्क हो। इस समय तृतीय महायुद्ध की संभावना बहुत अधिक दिखायी

दे रही थी अतः कांग्रेस ने अपनी नीति विदेशों के प्रति सद्भावना तथा सहयोग की बताई और यह भी कहा कि द्वितीय महायुद्ध में भारत भाग नहीं लेगा।

मातृभूमि के प्रति प्रेम

पिछले चरण के साहित्य में स्वदेश-प्रेम से युक्त गीतों की प्रधानता रही थी। इस चरण के साहित्य में स्वदेश-प्रेम की भावनाएं तो अभिव्यक्त हुई हैं परन्तु स्वदेश-प्रेम से युक्त स्वतंत्र गीतों का बाहुल्य समाप्त हो गया है। देश-प्रेम की भावना काव्य तथा नाटक साहित्य की धाराओं में अभिव्यक्त हुई है।

'कल्पलता' (१९३७ ई०) में कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने मातृभूमि की प्रशंसा तथा उसके प्रति प्रेम प्रकट करते हुए लिखा है कि भारत, विधिकान्त का संवारा, संसार का सहारा तथा भुवनाभिराम है। वह वेदगान से मुखरित, उन्नत, उदार और सुचरित्र है। वह देवताओं और सिद्धों के द्वारा वन्दित है और सभी दिव्यताओं का निकेतन है। भारत सुन्दर विचारों का सहचर, शुचि-रुचि का निकेत, देवताओं का पालक तथा दुष्टों का घालक है। सज्जित वसुन्धरा का वही सौन्दर्य-साज है।[१] देश-प्रेम के अभाव पर दुःख प्रकट करते हुए 'त्यागभूमि' शीर्षक कविता में कवि क्षोभ के साथ लिखते हैं कि देश जिससे स्वर्ग बनता है वह अनुराग कहाँ है ?[२] 'भारत के नवयुवक' शीर्षक कविता में कवि ने नवयुवकों से प्राथना की है कि उनका त्याग देश के लिए अतुल हो।[३] 'कुल ललना' शीर्षक कविता में भी कवि ने कामना की है कि सदैव हृदय में देश की ममता की धारा बहती रहे।[४] 'राजस्थान' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि भारतमाता मुग्ध खड़ी हैं और जन-जन-मन आशावान् है। भारत आकुल होकर राजस्थान का मुख देख रहा है।[५] 'कान्त कवित्त' शीर्षक कविताओं में एक कवि स्वदेश-प्रेम प्रकट करते हुए लिखते हैं कि यदि भारतीयों को परम दुखित देखकर तू विचलित नहीं होता, यदि देश दुःख देखकर तेरा रोम-रोम खड़ा नहीं होता, यदि तेरा चित्त जाति-हित का चेरा नहीं है तो तू महाभारती

१—कल्पलता, 'जातीय संगीत', 'विशाल भारत', पृ० ३०-३१;
२—'त्यागभूमि', पृ० ४०;
३—'भारत के नवयुवक', पृ० ८७;
४—'कुल ललना', पृ० ११२;
५—'राजस्थान', पृ० १३५

का पुतला, खलता का निकेतन और अधमता का बसेरा है। काठ से, कमठपीठ से भी कठिन तेरा मन है और पाहन और पवि से भी कठोर उर है।[१] 'राजस्थान' शीर्षक कविता में कवि ने यह भी लिखा है कि वहाँ देश का प्रेम सुरपुर का सुखमय सोपान बना था।[२] भारत की प्रशंसा में 'भारत भूमि' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि सर्वभूत-हित की विभूति, विश्व बन्धुता, मानवता, दिव्यता मंजुलता सभी भारत में है।[३] 'विजयिनी विजया' के अन्तर्गत 'विजया' शीर्षक कविता में कवि ने कामना की है कि निज भाषा, निज देश तथा निज वेश के सभी प्रेमी बनें।[४]

मैथिलीशरण गुप्त रचित सिद्धराज (१९३६ ई०) में वीर जगद्देव अपनी मातृभूमि से बड़ा प्रेम रखता है। वह कहता है—

> **'मेरी यह जन्म भूमि जननी जगत में**
> **मेरे प्राण रहते रहेगी महारानी ही,**
> **किंकरी न होगी किसी और नर-पाल की।**
> **पंचतत्व मेरी मातृभूमि के हैं मुझमें,**
> **कहला रहे हैं वही मुझ से पुकार के—**
> **हम परतंत्र नहीं, सर्वथा स्वतंत्र हैं।'**[५]

परिमल (१९२९ ई०) की 'जलद के प्रति' शीर्षक कविता में निराला ने परोक्ष रूप से मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट किया है। कवि वर्णन करते हैं कि जब भौंहें तानकर दिवाकर ने भू का भूषण जला दिया तब माँ की दशा देख कर तुमने विदेश प्रस्थान किया। तुम्हारे चारुचित्त पर सदा माँ की तस्वीर खिंची रही। पवन-शत्रु ने तुम्हें उतरते देख पथ-अंबर उड़ाया परन्तु तुम उतर पड़े और माँ को सुन्दर हरा वसन पहनाया।[६] गीतिका (१९३६ ई०) में भी निराला ने भारत का जयगान किया है। वे लिखते हैं—

१—ब्रजभाषा के पद, 'कांत कवित्त', पृ० २१८-२१९
२—कल्पलता, 'राजस्थान', पृ० १३४
३—'भारत भूमि', पृ० २०३
४—विजयिनी विजया, 'विजया', पृ० १३८
५—सिद्धराज, द्वितीय सर्ग, पृ० ४७
६—परिमल, 'जलद के प्रति', पृ० ५६-५७

'भारति, जय, विजय करे।
कनक शस्य कमल धरे।
लंका पदतल - शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहुअर्थ भरे।'[1]

चंद्रगुप्त मौर्य (१९३१ ई०) में लेखक ने कार्नेलिया को भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य से बहुत प्रभावित दिखाया है। वह कहती है, लंबी यात्रा करके, जैसे मैं वहीं पहुँच गयी हूँ जहाँ के लिए चली थी। यह कितना निसर्ग सुन्दर है, कितना रमणीय है।[2] तृतीय अंक में भी वह कहती है 'नहीं चंद्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है।...यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि, भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं, यह भारत मानवता की जन्म भूमि है।'[3]

प्रेमचंद रचित 'दुर्गादास' (१९३८ ई०) नामक उपन्यास में राजपूताने के एक वीर दुर्गादास का जीवन-चरित अंकित है। इसकी रचना लेखक ने बालकों में राष्ट्र-प्रेम और साहस का संचार करने के लिए की है। वीर दुर्गादास अपनी जन्मभूमि से अपूर्व प्रेम करता है। मातृभूमि के लिए वह अनेक आपदाएं सहर्ष सहन करता है।

स्वर्णिम अतीत का चित्रण

कांग्रेस कार्यसमिति ने १९३० ई० में २६ जनवरी को पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाने का निश्चय किया। उस दिन की स्वाधीनता के घोषणा-पत्र में भारत की सांस्कृतिक अवनति का भी उल्लेख किया गया और शिक्षा-प्रणाली का विरोध इस आधार पर किया गया कि उससे हममें दासत्व की भावना बढ़ती है। सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करने से पूर्व महात्मा गाँधी ने जो पत्र वाइसराय को लिखा उसमें भी इसका उल्लेख किया गया कि हमारी संस्कृति की जड़ ही काट दी गयी

१—'गीतिका', पृ० ७३

२—प्रसाद, जयशंकर, 'चंद्रगुप्त मौर्य', द्वितीय अंक, प्रथम दृश्य

३—तृतीय अंक, द्वितीय दृश्य

है। पिछले चरणों के समान साहित्य में कवियों ने देश के स्वर्णिम-अतीत का चित्रण किया और प्राचीन भारतीय-संस्कृति के प्रति प्रेम प्रकट किया है। प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण इतिहास तथा विशेष रूप से राजपूतों के शौर्य की कथाओं ने साहित्यकारों को बहुत आकृष्ट किया।

अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कवि 'हरिऔध' 'कल्पलता' में लिखते हैं कि यहीं साम्यवाद के सिद्ध थे और यहीं का स्वतंत्र मत था।[1] 'राजस्थान' शीर्षक कविता में राजस्थान की प्रशंसा करते हुए कवि लिखते हैं कि वहाँ वीरता मूर्तिमन्त होकर भूतल का भार हरती थी, वहाँ धीरता धर्मधुरीण कंठ का हार थी, वीर सदा जाति-हित-बलिवेदी पर बलिदान होते थे, वहाँ बच्चों ने भी बलवानों के कान काटे थे और वीरबालायें रणभूमि में करवाल के समान चमकीं थीं।[2] 'दीपावली' शीर्षक कविता में कवि दीपावली से पूछता है कि क्या तू भारत के भवनों और कोनों में उस पुरातन-वैभव को खोज रही है जो विश्व को विमोहित करने वाला था।[3] 'दीपमालिका' शीर्षक कविता में भी कवि ने भारत के विगत वैभव का स्मरण करते हुए कहा है कि कभी लक्ष्मी परम मनोरम बन कर घर-घर में बिराजती थीं, नगर-नगर विभव निकेतन था, प्रत्येक जन प्रमुदित था, गिरिवर रत्नराजि देते थे तथा धरा सोना उगलती थी।[4] 'भारत विभूति' शीर्षक कविता में राणाप्रताप का यशोगान किया गया है।[5]

अधिकांश कथानक भारत के गौरवपूर्ण अतीत काल से लिए गए हैं। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित यशोधरा (१९३६ ई०) में बुद्ध की कथा है और विशेषरूप से उनकी पत्नी यशोधरा का त्याग ही कविता का विषय है। इससे भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति कवि का प्रेम प्रकट होता है। इसी प्रकार उनके 'द्वापर' (१९३६ ई०) में कृष्ण की कथा अनेक पात्रों के मुख से वर्णित है। कथा में कोई आधुनिकता का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। कवि ने अधिकतर भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के उत्कर्ष-काल को अपनी कविता का विषय बनाया है।

'चित्तौड़ की चिता' (१९२९ ई०) में रामकुमार वर्मा ने इस बहादुरशाह

१—कल्पलता, 'त्यागभूमि', पृ० ३९
२—'राजस्थान', पृ० १३४
३—'दीपावली', पृ० १४५
४—'दीपमालिका', पृ० १५१
५—'भारत विभूति', पृ० २०४

तथा राणासांगा के युद्ध और रानी करुणादेवी तथा अन्य स्त्रियों के जौहर का वर्णन किया है। प्रस्तावना में कवि स्वदेश के प्राचीन गौरव का उल्लेख करते हैं।[१]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'सिद्धराज' में अपनी संस्कृति की उच्चता दिखायी है। पहले सर्ग में महारानी को एक यात्री से पता चलता है कि सोमनाथ के यात्रियों से राज-कर लिया जाता है। यह जानकर वह दुखित हो जाती हैं और उपवास प्रारम्भ कर देती हैं। मंत्रीं के यह कहने पर कि राज्य ने यात्रियों के लिए सुविधा भी तो की है, वह व्यंग्य में उत्तर देती हैं :—

'साधु-साधु ! सुविधा क्या साधारण ? तुम तो
अपनी अवनि पर, अपने गगन के
नीचे उन्हें आश्रय दे अपने पवन में
साँस लेने देकर न केवल जिलाते हो,
अपने महेश से भी उनको मिलाते हो।'[२]

वे आगे भी कहती हैं कि 'डाकिनी नहीं है राजनीति, वह धात्रा है।'[३] जयसिंह जब इस यात्रा-कर को बन्द कर देते हैं तो रानी पूछती हैं कि फिर राजकोष की वृद्धि कैसे होगी ? राजा जयसिंह का उत्तर है—

'राज्य में प्रजा की सुख-सिद्धि, निधि वृद्धि हो,
पुष्ट प्रजाजन ही है सच्चे धन राजा के।'[४]

'विकट भट' (१९२९ ई०) में कवि ने क्षत्रियों की वीरता और साहस का वर्णन गौरव सहित किया है।

प्रसाद ने अपने ध्रुवस्वामिनी (१९३४ ई०) तथा चंद्रगुप्त मौर्य नाटकों के कथानक भी गुप्तयुग से लिए हैं। प्राचीन-भारत के गौरवपूर्ण इतिहास के प्रति उनकी विशेष रूप से अनुरक्ति प्रकट होती है। रामकुमार वर्मा ने भी

१— **'अरे, भारत भू के इतिहास !**
अचल विद्युत् रेखा अनुरूप
दिखा गौरव प्राचीन अनूप
हृदय नभ उज्ज्वल करे सहास।'

—चित्तौड़ की चिता, प्रस्तावना, पृ० १

२—**'सिद्धराज', प्रथम सर्ग, पृ० २०;**

३—**पृ० २;**

४—**पृ० २७**

'पृथ्वीराज की आँखें' (१९३३ ई०) शीर्षक नाटक में पृथ्वीराज के दृढ़ चरित्र का वर्णन किया है।

'सुदर्शन सुमन' नामक कहानी संग्रह की 'पराजय' नामक रचना में सुदर्शन ने राजपूत स्त्रियों के स्वाभिमान का सुन्दर वर्णन किया है। जसवंत सिंह के रण से प्राण बचाकर भाग आने पर उनकी पत्नी तथा माँ उन्हें धिक्कारती हैं और इस प्रकार उत्तेजित होने पर उनका क्षात्रधर्म जागृत हो उठता है।[1]

'प्रबुद्ध यामुन' में वियोगी हरि ने प्रसिद्ध विद्वान यामुनाचार्य का आदर्श चरित्र चित्रित किया है। 'इरावती' जयशंकर प्रसाद की अन्तिम एवं असमाप्त कृति है। इसमें भी बौद्ध भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के संघों का वर्णन है।

बेचनशर्मा 'उग्र' 'घंटा' में भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

'उन दिनों का भारतवर्ष ? उसका एक-एक प्रदेश स्वतंत्रता की कीमत जानता था। युद्धों में मरने वाले 'वीर' तो आज भी माने जाते हैं, लेकिन वीर गति की इज्जत इस देश में अब उतनी नहीं, जितनी उस जमाने में थी—जिसका गुणगान आज भी होता है।[2]

महाबीरप्रसाद द्विवेदी के 'प्राचीन चिह्न' निबंध संग्रह के निबन्धों के अधिकांश विषय ऐसे हैं जिनसे उनका भारत की प्राचीन संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है। अधिकतर निबन्ध प्राचीन भारत की स्थापत्य तथा वास्तुकला से संबंधित है।

सुदर्शन ने आँजनेय में हनुमान की कथा का वर्णन किया है जिससे उनका हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है।

हिंदी भाषा के महत्व के संबंध में विचार

भाषा के संबंध में साहित्यकारों ने विचार नहीं प्रकट किए हैं। गौण रूप से हिन्दी भाषा को अपनाने का आग्रह दो-एक स्थलों पर अवश्य मिल जाता है।

'कल्पलता' में हरिऔध ने 'विजयिनी विजया' के अन्तर्गत 'विजया' कविता में कामना की है कि सभी निज भाषा के प्रेमी होवें।[3] मुकुल (१९३१ ई०) में कवियित्री सुभद्राकुमारी चौहान हिन्दी भाषा को संबोधित करके लिखती हैं कि

१—सुदर्शन सुमन, 'पराजय'

२—घंटा, 'अशोक शोक में', पृ० ४७

३—कल्पलता, विजयिनी विजया, 'विजया', पृ० १३८

मुझ सी एक-एक की बन कर तू आज तीस कोटि की भाषा हो गयी है और सभी भाषाओं की सिरताज है। तेरे ही द्वारा भारत में स्वातंत्र्य-प्रभात होगा।[१]

'कुछ विचार' में प्रेमचंद ने भाषा के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं। 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्याएं' शीर्षक भाषण में लेखक ने स्पष्ट कहा है कि जिस दिन हम लोग अँग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे उसी दिन हमें स्वराज्य के दर्शन हो जायेंगे। उसका विचार हिन्दी और उर्दू के बीच की एक ऐसी राष्ट्रभाषा बनाने का था जो वास्तव में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर सके, चाहे उस भाषा का नाम कुछ भी हो।[२]

प्रेमचंद का विचार है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार की ओर हमारे नेताओं ने 'मुजरिमाना गफ़लत' दिखायी है। उन्होंने अभी तक इस काम का महत्व नहीं समझा, नहीं तो शायद यह उनके प्रोग्राम की पहली पाँती में होता। इस निबन्ध से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय भाषा, चाहे उसे हिन्दी या हिन्दुस्तानी किसी भी नाम से पुकारा जाय, के महत्व और अँग्रेजी के स्थान पर उसकी प्रतिष्ठा की आवश्यकता का अनुभव हमारे साहित्यकार कर रहे थे परन्तु इस विषय पर विशेष रूप से लेखकों ने अपने विचार नहीं प्रकट किए हैं।

असहयोग-आन्दोलन के समय से ही हिन्दी भाषा को राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान मिल चुका था। काँग्रेस के कार्यकर्ता ग्रामों में शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित कर रहे थे। १९३८ ई० में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-संघ की स्थापना हुई थी और मातृभाषा को बुनियादी शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जा चुका था। साहित्यकार, इस चरण में, भाषा की समस्या की ओर विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुए हैं।

सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार

आन्दोलन के तृतीय चरण में सामाजिक-अवनति का चित्रण विशेष रूप से हुआ था और सामाजिक सुधार का कार्यक्रम साहित्यकारों को विशेष आकर्षक लगा था। राजनीतिक क्षेत्र में सामाजिक सुधार का कार्यक्रम १९२८ ई० के प्रस्तावों के उपरान्त और भी महत्वपूर्ण हो गया। अन्य उपसमितियों के साथ ही अस्पृश्यता-निवारण तथा स्त्रियों की बाधाओं को दूर करने के लिए उप-

१—मुकुल, 'मातृ मंदिर,' पृ० ९९

२—कुछ विचार, 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्याएँ', पृ० १८६,१९६

समितियाँ बनीं। स्त्रियों ने राष्ट्रीय-आन्दोलन में उत्साह से भाग भी लिया जिसके लिए काँग्रेस कार्यसमिति ने १९३० ई० में उन्हें बधाई दी। हरिजनोद्धार का विषय राजनीति में इस समय बहुत महत्वपूर्ण हो गया। सांप्रदायिक निर्णय के विरोध में महात्मा गाँधी ने उपवास प्रारम्भ किया और पूना का समझौता हुआ। इस पुनीत तप का प्रभाव यह हुआ कि हरिजनों के लिए मंदिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने के हेतु देश में कई व्यक्तियों ने सत्याग्रह किया। १९३३ ई० के नवम्बर से महात्मा गाँधी ने हरिजनोद्धार के लिए दौरा प्रारम्भ किया। हरिजन-आन्दोलन से सत्याग्रह आन्दोलन की गति में बाधा भी पहुँची। अस्पृश्यता-निवारण के लिए प्रस्ताव निरन्तर पास होते रहे। यही कारण है कि आन्दोलन के इस चरण में दलित-जातियों के प्रश्न में साहित्यकारों ने विशेष रूप से रुचि ली है और स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं पर भी विचार किया है।

कवियों का ध्यान विधवाओं की दीन दशा की ओर विशेष रूप से गया है। कल्पलता में हरिऔध लिखते हैं कि विधवाओं का रुदन सुनकर कोकिल-रव नहीं सहा जाता तथा मन्द-मन्द चल कर मलय पवन वह मंदता बताती है जो कुल-बालाओं पर नित्य नई बलायें लाती हैं।[१] 'समाज' शीर्षक कविता में कवि ने सामान्य रूप से यह कामना की है कि सुजन-समाज सुधाकर-सा कमनीय बने और वसुधा को सरसता दान कर सुधारस बरसाए।[२] 'विविध विषय' शीर्षक कविता के अन्तिम चरणों में कवि ने आग्रह किया है कि छूतछात से बच कर अछूतों को उबारा जाय।[३]

परिमल की 'विधवा' शीर्षक कविता में दलित-भारत की विधवाओं की दीन दशा का चित्रण करते हुए कवि ने उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की है।[४]

वियोगी हरि के 'मन्दिर-प्रवेश' में अछूत समस्या ली गयी है। इसमें पद शैली में अछूतों की ओर से ईश्वर को संबोधित करके करुण भाव के पद लिखे गए हैं। अछूत ईश्वर से कहते हैं कि 'शबरी-अतिथि' और 'निषाद बन्धु' आपके पुराने नाम हैं। अब तो आप उच्चकुलीन मित्र और अछूत-रिपु हैं।[५] अछूत

१--कल्पलता, 'हृदयवेदना', पृ० ९०-९१;
२--'समाज', पृ० १३२;
३--'विविध विषय', पृ० २१३
४--निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, परिमल, 'विधवा', पृ० ९९-१०२
५--'मंदिर प्रवेश', पद १

कहते हैं कि हमारा कौन सा काम घृणित है ? यह सेवा-कार्य कब से निन्दित हो गया ? सेवा का पुरस्कार हमें यह मिला है कि द्विज-महाराज मार्ग पर चलने नहीं देते । स्पर्श करने का तो प्रश्न ही कहाँ है, जब वे अपने कुओं से जल भी नहीं भरने देते और नाथ-निकेतन में विनती सुनाने के लिए भी घुसने नहीं देते ।[१] पुस्तक के उत्तरार्द्ध में भगवान की ओर से कुछ पद हैं जिनमें वे उत्तर देते हैं कि मेरे दरबार में दीन का ही आदर है ।[२] मेरा प्रिय गाँधी चिरजीवी हो । वह सत्य-स्वरूप, भारत का भाग्य तथा गरीबों का गर्व है ।[३] इस पुस्तक पर राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

सुमित्रानंदन पंत के 'ज्योत्सना' (१९३४ ई०) नाटक में ज्योत्सना कहती है कि नास्तिकता और संदेहवाद से पीड़ित, पशुओं के अनुकरण में लीन, मानव-जाति का परित्राण करना है। धर्मान्धता, रूढ़िप्रियता, प्रेतपूजा, निर्मूल-प्रथाओं एवं निरर्थक राजनीतियों के बन्धनों से मुक्त करना है ।[४] यद्यपि यह कथन स्पष्ट रूप से भारत के लिए नहीं है परन्तु अभिप्राय यही प्रतीत होता है ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सिन्दूर की होली' (१९३४ ई०) नाटक में विधवा-विवाह की समस्या उपस्थित की है और 'राजयोग नाटक' (१९३४ ई०) स्त्रियों की सामाजिक-स्थिति के सम्बन्ध में लिखा है ।

यद्यपि पाश्चात्य-सभ्यता का भारतीयों पर बहुत प्रभाव पड़ा था, लेकिन भारतीयता भी शेष थी । सुदर्शन इस तथ्य का उल्लेख आँजनेय में करते हैं । वे यह विचार प्रकट करते हैं कि चाहे भारतीयों की श्रद्धा पर पाश्चात्य-सभ्यता की जितनी भी छाप पड़ी हो, चाहे वह कितनी भी दब चुकी हो, पर अब भी जीवित है ।[५]

'कंकाल' (१९२९ ई०) उपन्यास में प्रसाद की दृष्टि भी हिन्दू समाज के अवगुणों की ओर गयी है । ये अवगुण हिन्दू-धर्म के स्वरूप में विकार आ जाने के कारण उत्पन्न हुये हैं। साधु-सन्तों के मठ दुराचार के केन्द्र बन गए हैं। लड़-कियाँ अपहृत की जाती हैं । इस उपन्यास में तारा वेश्याओं के चंगुल में फँस

१—'मंदिर प्रवेश', पद ७;

२—उत्तरार्ध, पद ३;

३—पद ५;

४—'ज्योत्स्ना', तीसरा अंक, पृ० ५७

५—'आंजनेय', पृ० २०५

जाती हैं। आर्यसमाजी विचारधारा से प्रभावित मंगलसिंह स्वयंसेवक उसका उद्धार करता है। परन्तु उसके साथ विवाह करने का साहस उसमें भी नहीं होता और वह विवाह से पहले ही भाग जाता है। दुराचारी महन्त और साधु अछूतों का तिरस्कार करते हैं। देवनिरंजन तारा को देवगृह में नहीं जाने देते। पुस्तक के अन्त में भारत-संघ की स्थापना के द्वारा उपन्यासकार ने हिन्दू जाति के उत्थान का मार्ग दिखाया है। भारत-संघ आर्य-संस्कृति का प्रचारक है और हिन्दू-धर्म तथा समाज के अवगुणों को दूर करने वाला है।

प्रेमचंद ने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में विशेष रूप से विधवाओं की समस्या ली है। एक विधवा यदि आश्रयहीन हो जाय तो वह किस प्रकार पतन के मार्ग की ओर अग्रसर हो सकती है इसका चित्र खींच कर समाज को विधवा-समस्या का कोई हल निकालने पर विवश किया है। उस नवयुवती विधवा के मार्ग में कठिनाइयाँ तो है हीं, उसकी अपनी दुर्बलता भी है। सुधारवादी-नेताओं का दृष्टिकोण है कि किसी विधुर को कुमारी से विवाह करने का अधिकार नहीं है। यह विचार लेखक का प्रतीत होता है। लेखक ने वनिताश्रम खोलने की सम्मति दी है, जहाँ विधवाएँ सिलाई आदि का कार्य करके अपनी जीविका चला सकें।

प्रेमचंद ने 'गोदान' (१९३६ ई०) में भी समाज के अवगुणों की ओर ध्यान दिया है। बहुविवाह की प्रथा के कारण समाज में व्यभिचार और दुराचार फैल रहा है। झिंगुरी सिंह की प्रथम पत्नी पाँच बच्चे छोड़ कर मरी थीं। उस समय झिंगुरी सिंह की अवस्था ४५ वर्ष के लगभग थी। परन्तु उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया और जब दूसरे विवाह से कोई संतान न हुई तो तीसरा विवाह कर डाला। दहेज की कुप्रथा ने भी समाज की दुर्दशा कर दी है। होरी, सोना के विवाह में ही बहुत खर्च कर देता है। फलतः दहेज प्रथा के कारण रूपा का विवाह उसे एक बूढ़े आदमी के साथ करना पड़ता है। पं० दातादीन भी पुत्र के विवाह में दहेज माँगते हैं और उनका तर्क यह है कि 'किसी ने सेतमेत में मेरी लड़की ब्याह ली होती तो मैं भी सेत में लडका ब्याह लेता।'[१]

'कर्मभूमि' (१९३२ ई०) में प्रेमचन्द ने अछूतों की समस्या ली है। ब्रह्मचारी जी अछूतों को मन्दिर में प्रवेश नहीं करने देते। इसका विरोध अछूत, उनके सहायक प्रोफेसर शान्तिकुमार तथा श्रीमती सुखदा देवी आदि करते हैं।

१—प्रेमचंद, 'गोदान', पृ० ३३५

इसी संबंध में गोली भी चलती है परन्तु इन अछूतों के बलिदान का इतना प्रभाव पड़ता है कि मंदिर के द्वार अछूतों के लिए खुल जाते हैं।[१]

'अलका' (१९३३ ई०) में 'निराला' ने अपना यह विचार व्यक्त किया है कि धर्म के ठेकेदारों ने यहाँ स्त्रियों की दशा पर कटी हुई चिड़ियों के समान कर रक्खी है।[२] प्रभाकर भारत की स्त्रियों को अशिक्षा के कारण ठुकराई हुई बताते हैं।[३] वीणा के विवाह के द्वारा लेखक ने विधवा-विवाह में आस्था प्रकट की है।

जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' (१९३७ ई०) में भी स्त्रियों की समस्या ही प्रधान है। उपन्यास की नायिका मृणाल समाज के अत्याचारों से पीड़ित और अपनी ही दुर्बलताओं से जर्जर एक स्त्री है, जिसके जीवन का अन्त बड़ा करुणाजनक होता है। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि स्त्रियाँ किस प्रकार पतन के पथ की ओर अग्रसर होती जाती हैं। समाज में उनको उनके योग्य स्थान नहीं मिलता और उन्हें हर प्रकार के अत्याचार सहन करने पड़ते हैं।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'राम रहीम' (१९३७ ई०) उपन्यास में बेला के जीवन के द्वारा पाठकों का ध्यान विधवाओं की दीन-दशा की ओर आकृष्ट किया है। हिन्दू समाज में विधवाओं का कोई आदर नहीं, वे परिवार में बोझ के समान हैं। हर जगह वे ठुकराई जाती हैं। समाज की अव्यवस्थित दशा का भी इस उपन्यास में सुन्दर चित्रण है। लेखक ने पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव का भी वर्णन किया है। राय साहब के परिवार का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं: 'बस, बारहवें साल से अंग्रेजी तालीम का सिलसिला शुरू हुआ, और भीतर सोने के कमरे में ताक पर रक्खी रामायण और शाहनामा की पुस्तकें पड़ी-पड़ी कागज़ के कीड़ों की क्षुधा मिटाने लगीं।'[४] अपने लड़कों के संबंध में राय साहब कहते हैं--'उन्हें अभी से अँग्रेजी बोलचाल की लत देनी है। मेम-नर्स की निगरानी में पल रहे हैं। उन्हें साल-दो साल में इंग्लैंड भेज कर 'हैरो' या 'इटन' में भरती करना होगा।'[५] प्रतापनारायण

१--प्रेमचंद, 'कर्मभूमि', तीसरा भाग, तीसरा तथा चौथा परिच्छेद

२--निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'अलका', तेरहवां परिच्छेद, पृ० १२८;

३--तेइसवाँ परिच्छेद, पृ० २०३

४--सिंह, राधिकारमण प्रसाद, 'राम रहीम', प्रथम परिच्छेद, पृ० ४७;

५--द्वितीय परिच्छेद, पृ० ५५

श्रीवास्तव ने भी अपने 'विजय' उपन्यास में पाश्चात्य सभ्यता का विरोध किया है।[1]

प्रेमचंद ने 'गोदान' उपन्यास में किसानों की दीन-दशा का वर्णन किया है। मामूली नौकरी करने वाले व्यक्ति तथा मजदूर भी किसानों से अच्छा खाते-पहनते हैं। किसानों का शोषण करने के लिए जमींदार, कारिन्दे, पुलिस के अफ़सर, महाजन आदि सभी हैं। सभी किसान ऋण में डूबे हुए हैं। सब जगह धांधली चलती है। धर्म और बिरादरी का हौवा अलग उनको तबाह किए डालता है। पं० दातादीन कहते हैं कि 'जब तक हिन्दू जाति रहेगी तब तक ब्राह्मण भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी।' किसानों की समस्याएँ भी इस समय राजनीति में महत्वपूर्ण हो रही थीं। वैसे तो कांग्रेस ने प्रारम्भ से किसानों की समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया है पर इस समय खेतिहर-कार्यक्रम अपनाया गया था और समाजवादी-विचारधारा के कारण किसानों और मजदूरों के अधिकारों पर विशेष बल दिया जा रहा था। इसीलिए साहित्य में भी किसानों की समस्याएँ महत्वपूर्ण हो गयी हैं। गोदान एक कृषक, होरी, की जीवन-गाथा है और विशुद्ध साहित्यिक रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

'राम रहीम' में राय साहब को लेखक ने राजभक्त दिखाया है। खिताबधारी व्यक्तियों से लेखकों की सहानुभूति कहीं नहीं दिखायी पड़ती। राय साहब किस प्रकार सदैव अफसरों को डालियाँ भेजते हैं, किस प्रकार खिताब के जलसे में 'विलायती बोतलों के पर्वत से दरिया बहाते हैं', इसका वर्णन लेखक ने किया है। वे लिखते हैं 'राय साहब ने साहबों के सामने सर झुकाने में जो मश्शाक़ी हासिल की हो, पर अपने देश-भाइयों के सामने तो कभी आपके सर में बल तक न आने पाता था। उधर आजिजी, इधर हेकड़ी, यही शान थी।[2]

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक ने' 'भिखारिणी' उपन्यास में दिखाया है कि जाति-पाँति के बन्धनों के कारण बाबू रामनाथ तथा यशोदा का विवाह नहीं हो पाता। उपन्यास में यह समस्या गौण है, निराश प्रेम की संवेदना ही मुख्य है। चतुरसेन शास्त्री के 'आत्मदाह' उपन्यास में विधवाओं की समस्या तथा विधवा-विवाह पर विचार किया गया है और अनेक युक्तियों तथा दृष्टान्तों द्वारा विधवा-विवाह

१—श्रीवास्तव, प्रतापनारायण, 'विजय', प्रथम भाग, द्वितीय खण्ड, ११वाँ परिच्छेद, पृ० १८९

२—सिंह, राधिकारमण प्रसाद, 'राम रहीम', प्रथम परिच्छेद, पृ० ४३

का समर्थन किया गया है।[१] इसी प्रकार वेश्याओं की ओर भी लेखक का दृष्टि-कोण सहानुभूतिपूर्ण है।[२] 'अमर अभिलाषा' में भी लेखक ने सामाजिक-कुरीतियों का वर्णन किया है और विशेषतः विधवा-समस्या पर विचार किया है।

प्रसाद के 'इंद्रजाल' कहानी संग्रह में 'विराम चिह्न' कहानी है जिसमें अछूत-समस्या को उठाया गया है। राधे तथा अन्य अछूत मंदिर में प्रवेश करना चाहते हैं, दूसरी ओर लोग उन्हें रोकते हैं। अछूतों को रोकने के लिए लाठियाँ चलायी जाती हैं जिससे राधे घायल होकर गिर पड़ता है। उसकी माँ उसको गोद में लेकर मंदिर में प्रवेश करती है।

विदेशी सभ्यता के दोष 'प्रेमचतुर्थी' की 'शान्ति' शीर्षक कहानी में प्रेमचंद ने दिखाए हैं। एक नव-दम्पति विदेशी-सभ्यता का उपासक है परन्तु कुछ दिनों तक इस प्रकार के जीवन को अपना लेने के बाद उसे उसमें स्नेह की कमी और कृत्रिमता दिखायी पड़ती है और वह उसे त्याग कर फिर वही सरल जीवन प्रारम्भ कर देता है जिसमें सुख-शान्ति और आत्मा का विकास है। इसी संग्रह की 'लाल-फ़ीता' कहानी में शिवविलास विदेशी-सभ्यता का विरोध करते हैं। वे कहते हैं 'हम आँखें बन्द किये हुए पश्चिमी-जीवन की नकल कर रहे हैं। धन को हमने सर्वोच्च स्थान दे रक्खा है। हमारी कुलीनता, सम्मान, गौरव, प्रतिभा सब कुछ धन के आधीन हो गयी है। हम अपने पुरखाओं के संतोष, संयम और त्याग को बिल्कुल भूल गए हैं।'[३] प्रेमचंद ने 'नवजीवन' कहानी संग्रह की 'ब्रह्म का स्वांग' कहानी में छुआछूत तथा जातिभेद की समस्या ली है यद्यपि वह गौण है। इस कहानी में लेखक ने दिखाया है कि इन परम्पराओं का विरोध कुछ व्यक्तियों के लिए केवल व्यावहारिक है। आत्मा की एकता के आधार पर पूर्ण साम्यवाद का पालन वे नहीं कर सकते।

'मंदिर' कहानी में प्रेमचंद ने अछूतों की दीनदशा का वर्णन किया है। सुखिया को पुजारी मंदिर में प्रवेश नहीं करने देते। रात में चोरों की तरह वह मन्दिर में पूजा करने के लिए जाती है जिस पर उसे बहुत मार पड़ती है। वह तथा उसका बीमार बच्चा दोनों मर जाते हैं।[४]

१—शास्त्री, चतुरसेन, 'आत्मदाह', अध्याय १८, पृ० १३८-१५३;

२—अध्याय २३, पृ० १८७-१९३

३—प्रेमचंद, प्रेम चतुर्थी, 'लालफ़ीता'

४—मानसरोवर, भाग ५, 'मंदिर'

मानसरोवर, भाग ५ की 'मंत्र' कहानी में चौबे जी सभा की ओर से मद्रास प्रान्त में धर्म-विमुख बन्धुओं का उद्धार करने जाते हैं। चौबे जी और उनके जैसे अन्य उपदेशक हर प्रकार के आराम से रहते हैं और अपना कर्तव्य उपदेश देने तक ही सीमित रखते हैं। वे अछूतों के साथ भोजन करने को तो तैयार हैं परन्तु विवाह करने को नहीं। अछूतों का कहना है कि हिन्दू-समाज में रहकर उनका नीचता का कलंक कभी नहीं मिट सकता चाहे वे कितने ही विद्वान और आचार वान हो जायें। ऊँची जाति वालों का हृदय मिथ्याभिमान से भरा हुआ है। इस कहानी में शुद्धि-आन्दोलन के केवल प्रचारात्मक स्वरूप पर लेखक की आस्था नहीं प्रकट होती। राजनीति में हरिजनोद्धार के महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेने से कहानी साहित्य में इस आन्दोलन का विशेष रूप से वर्णन हुआ।

निराला ने 'लिली' नामक कहानी संग्रह की 'ज्योतिर्मयी' शीर्षक कहानी में विधवाओं की दीन-दशा के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। इसी संग्रह की 'कमल' कहानी में हिन्दू समाज की उस रूढ़िवादिता के प्रति क्षोभ व्यक्त किया गया है जिसके कारण किसी मुसलमान के घर एक दो दिन रह लेने से ही स्त्रियाँ त्याज्य समझी जाती हैं। 'श्यामा' कहानी में अछूतों की समस्या ली गयी है और उसके प्रति क्षोभ प्रकट किया गया है।

सुदर्शन ने 'सुदर्शन सुमन' नामक कहानी संग्रह की 'हंस की चाल' कहानी में लिखा है कि भागीरथी का नाम साहित्य जगत में विख्यात हो जाने के बाद स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती कहते थे कि क्या अभी लोग वही पुरानी रट लगाए जायेंगे कि स्त्रियों को विधाता ने केवल घर के आँगन में काम करने के लिए उत्पन्न किया है और इसका उत्तर स्त्री-शिक्षा के विरोधी देते थे।[1] स्पष्ट है कि स्त्री-शिक्षा का विषय बहुत समय तक विवादास्पद बना रहा था।

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक' ने 'मणिमाला' की 'पर्दा' शीर्षक कहानी में पर्दे के दोष दिखाए हैं। हरिद्वार में कुंभ के अवसर पर पर्दे के कारण श्यामाचरण को बहुत कठिनाई होती है और वे पर्दा प्रथा को छोड़ देते हैं।[2] 'नेत्रोन्मीलन' शीर्षक कहानी में विधवाओं की दीन-दशा का चित्रण है। कल्पित आशंका से कामता प्रसाद अपनी विधवा बहिन सरस्वती को बनारस में छोड़ आते हैं। एक नवयुवक उसका उद्धार करता है और उसका पुनर्विवाह हो जाता है। अन्त में कामता

१—सुदर्शन, सुदर्शन सुमन, 'हंस की चाल', पृ० १३१

२—कौशिक, विश्वम्भरनाथ शर्मा, मणिमाला, 'पर्दा', पृ० २४७-२७३

प्रसाद भी विधवा-विवाह के प्रचारक और समर्थक बन जाते हैं ।[1] 'संशोधन' शीर्षक कहानी में भी विधवा-समस्या ही दिखायी गयी है और विधवा-विवाह में विश्वास प्रकट किया गया है ।[2]

भारतीय राजनीति में यह वह समय था जब अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन चरम उत्कर्ष पर था । किसानों की समस्या ने भी प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था फलतः अछूतों तथा किसानों की दीन-दशा का चित्रण इस काल के साहित्य में अधिक मिलता है । वस्तुतः गाँधीवाद का मूलाधार दलित-वर्गों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण और उनके उद्धार का प्रयत्न ही है । यही कारण है कि यद्यपि विधवाओं तथा वेश्याओं की समस्या को राजनीति में प्रमुख स्थान कभी नहीं मिला फिर भी विधवाओं की ओर साहित्यकारों ने अत्यधिक सहानुभूति दर्शायी है । समाज में स्त्रियों की स्थिति के संबंध में भी साहित्यकारों ने विशेष रुचि ली है । समाज का एक वर्ग निरन्तर पाश्चात्य-सभ्यता की ओर आकृष्ट हो रहा था । यह वही वर्ग था जो उपाधियों का आकांक्षी और राजकर्मचारियों की कृपा-दृष्टि का इच्छुक था । साहित्य के विभिन्न रूपों और कालों में इस वर्ग की निन्दा और उपहास भी किया गया है । सामूहिक रूप से देखें तो पिछले चरण में समाज-सुधार-आन्दोलन साहित्य में जितना प्रिय हुआ था उतना इस चरण में नहीं हुआ ।

देश की नैतिक अवनति का चित्रण

राजनीति में इस समय देश में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का विरोध हुआ और १९३८ ई० में अखिल भारतीय राष्ट्रीय-शिक्षा-संघ की भी स्थापना हुई । भारतीयों की नैतिक अवनति का वर्णन करते हुए कल्पलता की 'शिक्षा' शीर्षक कविता में 'हरिऔध' लिखते हैं कि शिक्षा अब पतन के पाप-पंक में फँसाती है ।[3] 'देश' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि स्वराजी मदमत्त हैं । अनेकता प्यारी बहुत है और एकता पर सारा कोप है । भारतीयों की पोर-पोर में कपट भरा हुआ है, साधु का वेश है और अधम का काम । सभी अहंभाव में मस्त हैं और देश कलह

१--'नेत्रोन्मीलन', पृ० १४५-१७१

२--'संशोधन', पृ० १७३-१९८

३--हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता, 'शिक्षा', पृ० ४०

का क्रीड़ास्थल हो रहा है।[1] 'हृदय वेदना' शीर्षक कविता में भी कलह का उल्लेख है।[2] 'मनोवेदना' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि भारत-जननी अपने कपूतों की कपूती देखकर 'छन-छन' छीज रही है। घर-घर कलह और बैर फैला है, जन-जन मद-माता है, मनमानी की धूम मची है, नाता टूट रहा है और नये-नये नाना विचारों में कपटाचार समाया हुआ है। राजनीति में स्त्रियों के समानाधिकारों को स्वीकार कर लिया गया और स्त्रियों ने राष्ट्रीय आँदोलन में भाग भी लिया। 'हरिऔध' ने स्त्रियों के समता-भाव से असंतोष व्यक्त किया है। 'हरिऔध' लिखते हैं कि ललनायें लोलुपता में डूबी हुई हैं, उन्हें विलास-वासना लुभाती है और अहंभाव भाता है। उनमें त्याग रहित समता-भाव है।[3] 'करुण दशा' शीर्षक कविता में कवि प्रश्न करते हैं कि अगणित दीपावलि चमकेगी और चारु विगंत चमक उठेगा तो भी क्या तामस मानस के तमोभाव का अंत होगा।[4] 'विजया-गमन' शीर्षक कविता में कवि क्षोभ के साथ लिखते हैं कि भारत की जनता आज भी जाग नहीं पाई। वही चाल चलती है जिससे पतन होता है। कलह का बीज प्रत्येक व्यक्ति हर घर में बोता है। सुधार का नाम लेकर लोग काँटे बोते हैं और देश के नेता देश के पथ में लम्बी तान कर सोते हैं।[5] 'राजस्थान' शीर्षक कविता में कवि ने राजस्थान के पूर्व गौरव का स्मरण करने के पश्चात् लिखा है कि उसी भूमि में आज कलह-कंठ का प्रबल निनाद सुनाई पड़ता है। प्रपंचियों का प्रसाद बन रहा है और कायरता-विलासिता गान गा-गाकर थिरक रही है। राजस्थान आज निर्जीवों का सिरमौर बन गया है और मद-प्रवाह में बह रहा है।[6] 'विजयिनी विजया' के अंतर्गत 'विजया' शीर्षक कविता में कवि ने कामना की है कि कलह और फूट को तजा जाये और वैर का अन्त हो। मन की मलिनता नष्ट हो और मेल बढ़े। लोग बंधु-प्रीति में बंधकर निजता के प्रेमी हों।[7] 'दीप मालिका' में कवि ने दीपमालिका से भारत का ही नहीं, भारत-सुत-मानस का

१—'देश', पृ० ८९-९०
२—'हृदयवेदना', पृ० ९१
३—'मनोवेदना', पृ० ९५-९६
४—'करुण दशा', पृ० ९९
५—'विजयागमन', पृ १०५
६—विजयिनी विजया, 'विजया' पृ० १३८
७—'राजस्थान', पृ० १३४

तामस भी हर लेने की प्रार्थना की है।[१]

सुदर्शन ने 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' नामक प्रहसन में दो अमीरों, झंडूशाह तथा गंडूशाह का अंग्रेज़ों से डर दिखाया है। दोनों हाकिमों से बहुत डरते हैं। जब उन्हें पता चलता है कि उन्हें डिप्टी कमिश्नर ने बुलाया है तो दोनों घबड़ा जाते हैं। 'फड़ंगी साहब' के चपरासी होने के कारण वे चपरासियों को भी सलाम करते हैं। ये दोनों तो अंग्रेज़ों की इतनी चापलूसी करते ही हैं, उधर डिप्टी कमिश्नर का पेशकार भी डिप्टी कमिश्नर के यह कहने पर कि 'नेटिव लोग पागल के माफ़क है' यही उत्तर देता है कि 'हुजूर ठीक फ़रमाते हैं'। डिप्टी कमिश्नर कहते हैं कि यह सब लोग बिल्कुल 'गडा' है और उनका पेशकार उनके इस कथन का भी अनुमोदन करता है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' उपन्यास में समाज की धार्मिक और नैतिक अवनति का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। हम लोगों का धर्म केवल भोजन पर टिका हुआ है। मातादीन के मुंह में चमार जबरदस्ती हड्डी का टुकड़ा डाल देते हैं और उसका धर्म ले लेते हैं। नैतिक अवस्था यह है कि पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को रक्खे हुये हैं, नोखेराम का नोहरी तथा मातादीन का सिलिया से अनुचित सम्बन्ध है। शहरों में भी ऐसी ही अवस्था है। खन्ना साहब लेडी डाक्टर मिस मालती पर मुग्ध हैं यद्यपि वे स्वयं विवाहित हैं और पिता भी हैं। गरीबों का शोषण तथा बेईमानी गाँवों में बहुत चलती है। नोखेराम का वेतन बारह रुपये ही है परन्तु खर्च सौ रुपये से कम नहीं है। दरोगा पटवारी आदि सभी मिलकर मूर्ख किसानों को लूटते हैं।[२] होरी धर्म-भीरु है परन्तु बाँस के मामले में भाइयों के कुछ रुपये हड़प लेने में तथा झूठी कसमें खा जाने में उसे कोई संकोच नहीं होता।[३] गोदान उपन्यास में स्त्रियों के समता भाव का भी उल्लेख हुआ है।[४]

'निरुपमा' उपन्यास में निराला जी दिखाते हैं कि कई बंगाली युवकों में बहस होती है कि देश गिरा हुआ है, गुलामों की कोई जाति नहीं फिर भी जातीय उच्चता का अभिमान लोगों की नस-नस में समाया हुआ है। इससे मानसिक और

१—'दीपमालिका', पृ० १५१

२—प्रेमचन्द, गोदान, पृ० १६९, १७३;

३—पृ० ३९;

४—पृ० २५१

चारित्रिक पतन होता है। एक दूसरे से न मिल पाने, शक्तिशाली न हो पाने का यह मुख्य कारण है।[१]

उग्र के 'सरकार तुम्हारी आँखों में' शीर्षक उपन्यास में रियासतों में राजाओं के नैतिक पतन का चित्र उपस्थित किया गया है। इस उपन्यास में महाराज मदन सिंह की विलासिता और व्यभिचार का वर्णन मुख्य है। उनके 'शराबी' उपन्यास में भी भारतीयों की नैतिक अवनति, विशेष रूप से मद्यपान और व्यभिचार का चित्र है। रियासतों की ओर ध्यान जाने का कारण भी राजनीति में इस सम्बन्ध में प्रस्ताव होना ही था।

मानसरोवर, भाग ५ की 'हिंसा परमोधर्मः' कहानी में प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि धर्म के नाम पर क्या-क्या अत्याचार और अनाचार होते हैं। शहरों में हिन्दू तथा इस्लाम धर्म दोनों आडम्बरों से भरे हुए हैं। राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'गाँधी टोपी' संग्रह की 'इस हाथ दे उस हाथ ले' कहानी में एक साहब का अपने खानसामा से दुर्व्यवहार दिखाया गया है। साहित्यकारों ने भारतीयों की कलह, फूट, बैर, विलासिता तथा मिथ्याभिमान को ही उनकी अवनत दशा के लिये उत्तरदायी ठहराया है। नैतिक अवनति का वर्णन आन्दोलन के तृतीय चरन में विशेष रूप से हुआ था। इस काल में समाज की नैतिक अवनति का चित्रण उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता है यद्यपि उपन्यास, कहानी और नाटक साहित्य में सामान्य रूप से ऐसे पात्र मिलते हैं जिनका नैतिक चरित्र गिरा हुआ हो। मद्य-निषेध आन्दोलन देश में बहुत महत्वपूर्ण हो गया था परन्तु साहित्यकार उसकी ओर भी विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुये हैं।

देश की आर्थिक अवनति का वर्णन

भारत की आर्थिक अवनति का चित्रण इस चरण में पिछले चरणों के साहित्य की अपेक्षा और भी कम हुआ है।

गोरक्षा के प्रति हिन्दी के कवियों का आग्रह इस काल तक दिखाई पड़ता है। गोवध को वे भारत की आर्थिक अवनति के कारणों में से एक मानते हैं। भारत की आर्थिक अवनति का वर्णन करते हुये 'कल्पलता' में हरिऔध लिखते हैं कि 'गोधन विध्वंस हो रहा है और कुल-लाल दूध के लिये तरसते हैं।'[२]

१—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निरुपमा', पृ० २९

२—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता, 'हृदयवेदना', पृ० २७

मुकुल की 'विस्मृति की स्मृति' शीर्षक कविता में भी कवियित्री ने गोवध पर खेद प्रकट किया है।[१] सोहनलाल द्विवेदी की 'दूध बताशा' में चर्खे पर एक कविता है।

'निराला' ने 'प्रबन्ध पद्म' के 'राष्ट्र और नारी' शीर्षक लेख में स्वदेशी में आस्था प्रकट की है।[२]

राष्ट्रीय-आन्दोलन के फलस्वरूप नायक और नायिकाओं के रूप में लेखक ऐसे व्यक्तियों का चित्रण करते थे जो स्वदेशी-आन्दोलन के समर्थक और उसमें विश्वास रखने वाले थे।

प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' उपन्यास में वर्णन किया है कि अमरकान्त कालेज से आते ही चर्खा लेकर सूत कातने बैठ जाता है। लाला समरकान्त को यह अच्छा नहीं लगता और वह अपने लड़के से पूछते हैं कि उसने कितने दाम का सूत काता होगा। अमरकान्त उत्तर देता है कि चर्खा रुपये के लिये नहीं काता जाता। यह आत्मशुद्धि का एक साधन है।[३]

चतुरसेन शास्त्री के 'आत्मदाह' उपन्यास के नायक और नायिका, सुधीन्द्र तथा सुधा, दोनों विदेशी वस्त्र तथा वस्तुओं का बहिष्कार करते हैं।[४]

प्रेमचन्द के 'नवजीवन' शीर्षक कहानी संग्रह की 'सुहाग की साड़ी' कहानी में स्वदेशी-आन्दोलन का पक्ष लिया गया है। स्वदेशी-आन्दोलन से बहुतेरे व्यक्तियों को जीविका मिल जाती है और वे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगते हैं। गौरी जो पहले इसमें अधिक विश्वास न करती थी अन्त में इससे बहुत प्रभावित होती है और पति से यह भी आग्रह करती है कि कपास बोने वाले की बेगार माफ़ कर दी जाये और चरखे के लिये बिना मूल्य लकड़ी काटने का अधिकार दे दिया जाय। इस कहानी में विदेशी कपड़े की होलियाँ जलने का भी उल्लेख है।[५]

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'गाँधी टोपी' कहानी संग्रह की 'पैसे की घुघनी'

१—चौहान, सुभद्राकुमारी, मुकुल, 'विस्मृति की स्मृति', पृ० १२३
२—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध पद्म, 'राष्ट्र और नारी', पृ० १५१
३—प्रेमचन्द, 'कर्मभूमि', पहला भाग, पहला परिच्छेद, पृ० १७
४—शास्त्री, चतुरसेन, 'आत्मदाह', अध्याय ५३, पृ० ३६०
५—प्रेमचन्द, नवजीवन, 'सुहाग की साड़ी'

शीर्षक कहानी में देश के दरिद्रों का करुण वर्णन है और अमीरों के ऐश आराम का भी ।[1]

सत्याग्रह बन्द हो जाने के बाद खादी प्रचार, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धंधों की वृद्धि, ग्राम-जीवन का आर्थिक-पुनस्संगठन आदि रचनात्मक कार्य १९३४ ई० में काँग्रेस द्वारा अपनाये गये । महात्मा गाँधी का यह विचार था कि काँग्रेस में मताधिकार के लिये नित्य चरखा कातने की शर्त रक्खी जाय । १९३४ ई० में ही अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ की स्थापना हुई । १९३५ ई० में स्वराज्य-दिवस के दिन सम्पूर्ण भारत के लिये जो प्रस्ताव बनाया गया उसमें हाथ से कातने की कला तथा अन्य ग्राम उद्योगों को प्रोत्साहन देने का विचार भी व्यक्त किया गया । राष्ट्रीय-झंडे में चरखा होना भी इस बात का प्रमाण था कि काँग्रेस को चरखे में आस्था है । इस तरह, इस समय खादी और चरखा राष्ट्रीय-आन्दोलन में बहुत महत्वपूर्ण हो गये थे । यद्यपि चरखे तथा स्वदेशी के उल्लेख इस साहित्य में मिलते हैं परन्तु वे अत्यल्प हैं । अन्य ग्राम उद्योगों आदि का उल्लेख साहित्य में नहीं मिलता । विदेशी कपड़ों की होली के संबंध में ही १९२९ ई० में महात्मा गाँधी पर अभियोग लगाया गया था । विदेशी-कपड़ों की होली जलने का उल्लेख इस चरण के साहित्य में भी प्राप्त होता है ।

परतंत्रता सम्बन्धी उद्गार

परतंत्रता के सम्बन्ध में भी साहित्यकारों ने अधिक नहीं लिखा है । इसका कारण संभवतः यही है कि जनता पुराने कष्टों की अभ्यस्त हो चुकी थी और राजनीतिक क्षेत्र की नवीन समस्याओं की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हो रहा था । परतंत्रता के विषय में उल्लेख इस चरण में केवल काव्य में ही प्राप्त होते हैं ।

कल्पलता की 'त्यागभूमि' शीर्षक कविता में भारत की परतंत्रता पर खेद प्रकट करते हुये 'हरिऔध' लिखते हैं कि पराधीनता-वृत्ति पहनकर भारत का जन-जन परतन्त्र है ।[2] 'शिक्षा का उपयोग' शीर्षक कविता में वे शिक्षा के विषय में लिखते हैं कि शिक्षा अब दासता की बेड़ी कसती है ।[3] शिक्षा के सम्बन्ध में

१--सिंह, राधिकारमण प्रसाद, गांधी टोपी, 'पैसे की घुघनी'

२--हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता, 'त्यागभूमि', पृ० ३९

३--'शिक्षा का उपयोग', पृ० ४०

यही दृष्टिकोण राजनीतिक नेताओं का भी था। 'विजय विभूति' शीर्षक कविता में कवि कामना करते हैं कि ऐसा मंत्र सधे जो स्वतंत्रताओं का साधन हो।[१]

सुभद्राकुमारी चौहान ने भी भारतवर्ष के पराधीनता से मुक्त होने की कामना की है :—

'पराधीनता से छूटे यह
प्यारा भारतवर्ष सखी।'[२]

उद्‌बोधन

उद्‌बोधन के गीतों की रचना इस चरण के साहित्य में भी हुई है।

निराला के 'परिमल' में 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता उद्‌बोधन की है। कवि लिखते हैं कि 'शेर की माँद में आज स्यार घुसा है। तुम पशु नहीं हो, वीर हो, क्रूर नहीं हो, समर शूर हो, इसीलिये एक बार फिर से जागो।'[३]

हरिऔध कल्पलता में लिखते हैं :—

'निज मधुर उक्ति पर विभा से है उर तिमिर भगा रही,
जागो जागो भारत सुअन, है जग जननि जगा रही।'[४]

'भारत के नवयुवक' शीर्षक कविता में कवि ने भारत-भूतल का भाग्य जगने की प्रार्थना की है।[५] 'विजय विभूति' कविता में कवि ने कामना की है कि जनता-जीवन जीवनमय हो, सब योग कर्मयोगमय हो, सबके उर में वह भाग्य जगे जो कार्य-सिद्धि का मंत्र हो, मंत्र स्वतंत्रताओं के साधने का हो। भारत-सुअन-उर में अभयंकरी अतुल अनुभूति भर जाये और विजया से विजय विभूति लेकर भारत भूतिमान बन जाये।[६] 'विजया' कविता में भी कवि ने विजया से कहा है कि वीरता-विहीन को तू वंदनीय वीर बना दे और कायर को केसरी-किशोर जैसा कर जा, अगर तू आई है तो विजयिनी बना जा और विजय-विभूति जाति

१—'विजयविभूति', पृ० १३९

२—चौहान, सुभद्राकुमारी, मुकुल, 'विजयादशमी', पृ० ९२

३—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, परिमल, 'जागो फिर एक बार', पृ० १७६-१७९

४—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता, 'विबोधन', पृ० ८५

५—'भारत के नवयुवक', पृ० ८६;

६—'विजयविभूति', पृ० १३९

भावना में भर जा। वह ज्योति फैला दे जिससे तम भागे और जिसे लाभ करके दुख टले तथा वह विजय-विभूति भारत को दिला दे जिससे सुख का प्रसून घर-घर में खिले।[१] 'विविध विषय' शीर्षक कविता में भी कवि ने कामना की है कि युवक-समाज धीर-वीर तथा धर्मरत हो तथा सच्ची देश-सेवा और देश-सेवक का उसका व्रत हो।[२]

'सिद्धराज' में मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू-मुसलिम-एकता में विश्वास प्रकट किया है। राजा जयसिंह का खतीब आकर शिकायत करता है कि मसजिदें तोड़ डाली गई हैं। राजा जयसिंह उसे पुरस्कार देने के बाद यह आश्वासन देते हैं:—

'जाओ डर छोड़ तुम अपनी अजान दो,
और गा बजाकर उतारें हम आरती।
ऊंचे चढ़ देखो तुम उसकी अनन्तता,
और उसे खोजें हम आप अपने में ही।
कह दो पुकार कर तुम—वह एक है,
और हम पावें उसे चाहे जिस रूप में।
ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं,
देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।'[३]

काव्य के अन्त में भारतवर्ष की महत्ता दिखाई गई है।[४]

सुमित्रानन्दन पंत ने 'ज्योत्सना' नाटक के तृतीय अंक में एकता पर बल दिया है। जार्ज के पिता ने ही यमुना की माँ को कारागार में बन्द किया था परन्तु वे दोनों आपस में प्रेम करते हैं। लेखक का दृष्टिकोण यही है कि प्रेम में धर्म और जाति का कोई बन्धन नहीं है।[५]

प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त मौर्य' में एकता पर विशेष बल दिया है। चाणक्य

१—'विजया', पृ० १४२;

२—'विविध विषय', पृ० २१२

३—गुप्त, मैथिलीशरण, 'सिद्धराज,' पंचम सर्ग, पृ० ११३

४—'आर्यभूमि अन्त में रहेगी आर्य भूमि ही,
आकर मिलेंगी यहाँ संस्कृतियाँ सबकी,
होगा एक विश्वतीर्थ भारत ही भूमि का।'
—मैथिलीशरण गुप्त, 'सिद्धराज,' पृ० १३६

५—पंत, सुमित्रानन्दन, 'ज्योत्स्ना,' पृ० ७१

ऐक्य में विश्वास करते हैं। उनका कथन है कि 'मालव और मगध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।'[१]

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'राम रहीम' उपन्यास के द्वारा हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की भावना दृढ़ की है। वे लिखते हैं 'क्यों हम 'राम' के नाम पर सर झुकाते हैं और रहीम के नाम पर फब्तियाँ कसते हैं। बात यह है, चूँकि राम हमारा है, रहीम दूसरों का। राम और रहीम तो एक ही रहे, मगर हम और वे जो एक थे, दो हो गये। कुछ हमारी और उनकी दो समझ, दो जबान होने से वह तो दो होता नहीं।'[२] यही उपन्यास की मुख्य संवेदना है। हिन्दू और मुसलमानों में एकता उत्पन्न करना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है।

प्रसाद ने 'इन्द्रजाल' कहानी संग्रह की 'सलीम' कहानी में दिखाया है कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के एक गाँव में हिन्दू और मुसलमानों में आपस में कितनी एकता और सौहार्द्र है। सलीम हिजरत करके भारत से चला आता है पर मुसलमान देश में आकर तो वह आपस में और भी ऐक्य पाता है। वह वज़ीरियों के साथ उस गाँव को लूटना चाहता है परन्तु अमीर जो स्वयं मुसलमान है हिन्दू लड़की, प्रेमा की रक्षा करता है और सलीम से लड़ता है।

प्रबन्ध पद्म के 'एक बात' शीर्षक लेख में निराला लिखते हैं कि 'अपनी भौतिक स्वतंत्रता के अर्जन के लिये स्वतंत्र मन से हम अपने ही घर में सम्बन्ध स्थापित कर उसके इंगितों को समझ सकते हैं। वहीं हमें सम्राज्ञी-भारतीयता अपने कभी पराधीन न होने की शिक्षा देगी।'[३]

उद्‌बोधन की कविताओं में तथा इस काल के अन्य साहित्य में साहित्यकारों ने हिन्दू-मुसलिम-एकता के भाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है। लगभग १९२५ ई० से हिन्दू-मुसलिम दंगे स्थान-स्थान पर होने लगे। कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू-मुसलिम एकता स्थापित करना भी था। भारत के हिताकांक्षियों को यह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा कि भारत की इन दो महान् जातियों में ही यदि ऐक्य न स्थापित हो सका तो भारत का भविष्य अंधकारमय है। १९३२ ई० में जब हरिजनों की ओर गांधी जी ने विशेष ध्यान दिया, तब इस बात पर भी

१—प्रसाद, जयशंकर, 'चन्द्रगुप्त मौर्य', प्रथम अंक, दृश्य १

२—सिंह, राधिकारमण प्रसाद, 'राम रहीम', अष्टादश परिच्छेद, पृ० ४९१

३—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध पद्म, 'एक बात', पृ० ५०

जोर दिया जा रहा था कि हिन्दू-मुसलिम-समस्या भी समाप्त हो जाये। सभी का एकता के लिये विशेष आग्रह दिखाई पड रहा था।[१] इसीलिये साहित्य की प्रत्येक धारा में एकता का उपदेश प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दिया गया है। साहित्यकारों ने एकता उत्पन्न करने के लिये कभी तो हिन्दू-मुसलिम-दंगों या वैमनस्य का चित्र खींचा है और कभी दोनों जातियों के निश्छल प्रेम का। गाँवों के चित्रण में लेखकों ने अधिकतर यह दिखाया है कि वहाँ सभी जातियाँ प्रेमपूर्वक रहती हैं। यह चित्रण केवल काल्पनिक ही नहीं है इसमें यथार्थ का अंश ही अधिक है। शहरों में जातिगत वैमनस्य जितना था उतना गाँवों में नहीं था। लेखकों इसी प्रकार के तुलनात्मक चित्रण करके गाँवों की सरल-सभ्यता के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया है। ग्रामों की ओर यह झुकाव भी गाँधीवादी नीति का ही प्रभाव है।

ब्रिटिश शासन से संतोष

असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलनों के काल में राजभक्ति का तो प्रश्न ही नहीं था, शासन व्यवस्था से भी लगभग सभी साहित्यकारों ने असंतोष प्रकट किया है।

केवल पुरावृत्त के 'अंग्रेजी प्रजा का पराक्रम' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने 'मैग्नाकार्टा', 'हैबियस कार्पस' और 'बिल ऑव राइट्स' का उल्लेख करते हुये ब्रिटिश शासन की प्रशंसा की है। लेखक ने कहा है कि रेल, तार, छापेखाने, फोटोग्राफ़, फ़ोनोग्राफ़, टेलीफोन, बाइसिकिल, मोटरकार, पुतली-घर इत्यादि वस्तुयें अंग्रेज लोगों के परिश्रम से विलायत में प्रचलित हुई और अब हम लोग उनसे फ़ायदा उठा रहे हैं। अब एक साधारण व्यक्ति को भी बिना समन के नहीं पकड़ा जा सकता और पकड़ने के २४ घंटे के भीतर ही उसे न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित करना आवश्यक है।[२]

यह उल्लेख इस काल के साहित्य में अपवाद स्वरूप है।

१—सीतारामय्या, काँग्रेस का इतिहास, (१८८५-१९३५ ई०) छठा भाग, पृ० ४३७

२—द्विवेदी, महावीरप्रसाद, पुरावृत्त, 'अंग्रेजी प्रजा का पराक्रम', पृ० १४, १५, १६

ब्रिटिश शासन से असंतोष

इस काल के समस्त साहित्य में शासन व्यवस्था के प्रति रोष की भावना ही प्रमुख है।

निराला के 'अलका' उपन्यास में सामान्य रूप से शासन व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट किया गया है। जमींदार अपनी प्रजा के साथ दुर्व्यवहार करते हैं जिससे किसानों को बहुत कष्ट रहता है। डिप्टी साहब आदि हाकिम गाँव में आते हैं तो गाँव वालों को मुफ्त में सामान देना पड़ता है तथा बेगार करनी पड़ती है। पुलिस जनता की सेवक नहीं है और अदालतों में न्याय नहीं होता। १८९३ ई० में बेगार के सम्बन्ध में कांग्रेस ने भी प्रस्ताव पास किया था और अदालतों से तो प्रारम्भ से ही असंतोष व्यक्त किया था।

'ग़बन' (१९३१ ई०) उपन्यास में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि पुलिस किस प्रकार झूठे गवाहों को तैयार करती है। रमानाथ को पुलिस वाले अपने कब्जे में कर लेते हैं और वह सरकारी गवाह बन जाता है पर अन्त में अपनी आत्मा की पुकार सुनकर वह अपना बयान बदल देता है।

वृन्दावनलाल वर्मा का 'कोतवाल की करामात' (१९३१ ई०) उपन्यास तो पुलिस-विभाग के दुराचार पर ही लिखा गया है। पुलिस के पदाधिकारी ही अधिकतर चोरियों आदि में सम्मिलित रहते हैं। जुआ तो विशेष रूप से वहाँ खेला जाता है रिश्वत का बाज़ार गर्म रहता है। किसी को झूठ-मूठ ही किसी मामले में फँसा देना दरोग़ा जी के बायें हाथ का खेल है।

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से असंतोष व्यक्त किया है। वे लिखते हैं कि 'हमारे स्कूलों और कालेजों में जिस तत्परता से फ़ीस वसूल की जाती है, शायद मालगुज़ारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती।'[१] डा० शान्तिकुमार का कथन है कि ऊँची से ऊँची शिक्षा सबके लिये निःशुल्क होनी चाहिये जिससे दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति भी ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सके और उच्च पद पा सके। सारा खर्च सरकार पर पड़ना चाहिये। देश को फ़ौज से कहीं अधिक आवश्यकता शिक्षा की है।[२] निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने के सम्बन्ध में १९०८ ई० मे ही काँग्रेस ने प्रस्ताव पास किया

१—प्रेमचन्द, 'कर्मभूमि', पहला भाग, पहला परिच्छेद, पृ० १;

२—बारहवाँ परिच्छेद, पृ० ११५

था और राष्ट्रीय-शिक्षा की आवश्यकता भी अनुभव की गई थी। राजनीतिज्ञों का यही विचार था कि यह शिक्षा हमें दाता से प्रेम करना सिखाती है।

'कर्मभूमि' में गोरे सिपाही एक अबला पर अत्याचार करते हैं। प्रो० शान्ति कुमार सोचते हैं कि ये सिपाही इंगलैंड की निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका इतना साहस कैसे हुआ ? इसीलिये कि भारत पराधीन है।[१]

चतुरसेन शास्त्री ने अपने 'आत्मदाह' उपन्यास में ब्रिटिश-शासन के प्रति तीव्र असंतोष के भाव अभिव्यक्त किये हैं।[२]

प्रेमचतुर्थी की 'लाल फ़ीता' या 'मैजिस्ट्रेट का इस्तीफा' कहानी में प्रेमचन्द ने सरकार की नीति से असंतोष प्रकट किया है। बाबू हरिविलास को पहले यह दृढ़ विश्वास था कि स्थानीय अफ़सर चाहे कितने ही पक्षपाती हों किन्तु देश का शासन सत्य और न्याय पर स्थित है। शिक्षा की उन्नति, व्यापार का प्रसार, राष्ट्रीय-भावों की जागृति आदि से उनके ये विचार और भी दृढ़ होते थे। बाद को उन्हें कटु सत्य का पता चलता है। सरकार उन्हें आज्ञा पत्र भेजती है कि स्वदेशी का प्रचार अधिक न हो, मद्य बहिष्कार न होने पावे, चरखा चलाने वालों पर नज़र रक्खी जाय। असली स्थिति का पता चलने पर वह त्यागपत्र दे देते हैं।[३] इसी कहानी में लेखक ने वकालत और अदालत का भी विरोध किया किया है। वकालत के कारण ही न्याय सर्वसाधारण के लिये अलभ्य है।

सुदर्शन की 'चार कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह की 'पत्थरों का सौदागर' कहानी का कथानक एक रियासत से सम्बन्धित है जिसके राजा के पास प्रजा के बच्चों को शिक्षा देने के लिये रुपया नहीं है, परन्तु वेश्याओं के लिये है। राजा के पुत्र इसका विरोध करते हैं। यह कथन सांकेतिक रूप से ब्रिटिश सरकार पर भी घटित होता है। साथ ही रियासती प्रजा की दीन-दशा का भी इससे पता चलता है। रियासतों की ओर इस चरण में राजनीतिज्ञों ने भी ध्यान दिया था और इस सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये थे।

'सुदर्शन सुमन' की 'राजा' शीर्षक कहानी में रणजीत सिंह की प्रजावत्सलता का वर्णन करने के बाद लेखक लिखते हैं कि 'आज वह समय कहाँ चला गया ? आज ऐसे राजा लोग क्यों नहीं नज़र आते ? उनको भ्रमण का शौक है, विषय

१—'कर्मभूमि' पाँचवा परिच्छेद, पृ० ४१-४२

२—शास्त्री, चतुरसेन, 'आत्मदाह', अध्याय ५३, पृ० ३४५

३—प्रेमचन्द, प्रेमचतुर्थी, 'लालफ़ीता या मैजिस्ट्रेट का इस्तीफा'

वासना का चाव है, परन्तु अपनी प्रजा के हित-अहित का ध्यान नहीं।[1] इसी संग्रह की 'अमर जीवन' कहानी में लेखक दिखाते हैं कि अंग्रेज-साहबों को हिन्दी से कितनी घृणा होती है। वे कहते हैं, हिन्दी का पोयट्री क्या होगा! 'रब्बिश' होगा।[2]

प्रेमचन्द ने 'प्रेरणा और अन्य कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह की 'प्रेरणा' कहानी में शिक्षा के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। अनिवार्य-शिक्षा को वे भारत में आवश्यक नहीं समझते। उनका विचार है कि विवशता होने पर ही कोई मज़दूर अपने बच्चे को पढ़ने नहीं भेजता अतः उस पर कानून का प्रहार करना ठीक नहीं। अध्यापक भी अल्प शिक्षित और कम वेतन वाले होते हैं। अधिक से अधिक इतना ही होगा कि चार-पाँच वर्ष में बालक को अक्षर ज्ञान हो जाय। पाठशाला में बंद होकर वह प्राकृतिक-अनुभव से भी वंचित रह जायेगा। प्रेमचन्द का यह विचार मौलिक है। और इस पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता।

रायकृष्णदास ने 'अनाख्या' की 'न्यायपक्ष' कहानी में ब्रिटिश सरकार के न्याय में अविश्वास प्रकट किया है और पुलिस के दोषों को प्रकट किया है।[3] 'नरराक्षस' कहानी में भी पुलिस-कर्मचारियों का दरिद्र-जनता पर अत्याचार दिखाया गया है।[4]

सामूहिक रूप से इस काल के साहित्य में शासन के प्रमुख दोषों की ओर साहित्यकारों ने ध्यान दिया। न्याय-विभाग तथा पुलिस-विभाग के प्रति तीव्र असंतोष की भावना साहित्य में मिलती है। शिक्षा व्यवस्था से भी उन्हें संतोष नहीं है।

समकालीन घटनाओं, समस्याओं तथा परिस्थितियों के उल्लेख

समकालीन समस्याओं, घटनाओं और परिस्थितियों के उल्लेख इस काल के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। अंग्रेजों के दीर्घ शासनकाल से क्षुब्ध जनता अब किसी क्रान्ति की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। 'कल्प-

---

१--सुदर्शन, सुदर्शन सुमन, 'राजा', पृ० २२;

२--'अमर जीवन', पृ० १३१

३--रायकृष्णदास, अनाख्या, 'न्यायपक्ष', पृ० ६--३३;

४--'नरराक्षस', पृ० ७४-९३

लता' की एक कविता में कवि कामना करते हैं कि भारत-भूतल में वह क्रान्ति हो जिसकी कांति भवकमनीय हो, जिसके वदन पर शान्ति हो तथा जिसमें हितकर भाव भरे हों।[१] सुभद्राकुमारी चौहान ने 'मुकुल' की 'जालियाँ वाले बाग में बसन्त' शीर्षक कविता में जालियाँ वाले बाग के हत्याकांड पर शोक प्रकट किया है।[२] 'मेरी कविता' में भी इसका उल्लेख है।[३] 'राखी' शीर्षक कविता में भी इस हत्याकांड का उल्लेख करते हुये कवियित्री ने कृष्ण से कृपा की प्रार्थना की है। वे लिखती हैं :—

'डर है कहीं न मार्शल ला का
फिर से पड़ जावे घेरा।'[४]

कवियित्री ने असहयोग में पुरुषों के पीछे हटने पर भारत की स्त्रियों के असहयोग करने की कामना की है।[५] राष्ट्रीय-आन्दोलन में स्त्रियों ने भी उत्सुकतापूर्वक भाग लिया था। कवियित्री का यह कथन इसी ओर संकेत करता है।

'विदाई' शीर्षक कविता में कवियित्री ने प्रिय बन्धु को बिदाई देते हुये उनसे निर्भयता के साथ कृष्ण-मंदिर में पधारने का आग्रह किया है और यह कामना की है कि बन्दी की दुख की घड़ियाँ हमें स्वराज्य दिलाने वाली बनें। यदि कभी देश के भाई पीछे हटें तो बहनों को वरदान मिले कि वे निर्भय होकर युद्ध में मर मिटें। चाहे तीसों कोटि शीश कट जायें पर स्वराज्य की टेक न छूटे।[६] यह कथन भी स्त्रियों के सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के तथ्य की ओर संकेत करता है। 'स्वागत' शीर्षक कविता १९२० में नागपुर में होने वाली कांग्रेस के स्वागत में लिखी गई है। कवियित्री लिखती हैं कि हमें दमन-नीति के उन कानूनों का भय नहीं है जो प्रतिदिन खून बहाते हैं। हम हिंसा का भाव

१—हरिऔध, अयोध्या सिंह उपाध्याय, कल्पलता, 'क्रान्ति,' पृ० १३३
२—चौहान, सुभद्राकुमारी, मुकुल, 'जालियाँ वाले बाग में बसन्त', पृ० ८०-८१
३—'मेरी कविता', पृ० ८२;
४—'राखी', पृ० ८८-८९
५—'पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ
दहला दें ब्रह्मांड सखी'
—चौहान, सुभद्राकुमारी, 'विजया दशमी', पृ० ९३
६—चौहान, सुभद्रा कुमारी, मुकुल, 'बिदाई', पृ० १०९।

त्यागकर विजयी और वीर अशोक बन गये हैं ।[१] 'स्वागत गीत' कवितायें भी असहयोग आदि समकालीन परिस्थितियों का उल्लेख करती हैं ।[२]

सुमित्रानन्दन पंत के 'ज्योत्सना' नाटक में यमुना कहती है कि उसका जन्म कारावास में हुआ था । तब उसकी माँ राष्ट्रीय-स्वातंत्र्य-युद्ध के सम्बन्ध में कारावास दंड भोग रही थी ।[३]

प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त मौर्य' नाटक में प्राचीन भारत के इतिहास का ही चित्र है, किन्तु फूट और ईर्ष्या का जो चित्र खींचा गया है उस पर परोक्ष रूप से वर्तमान परिस्थितियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सिंहरण कहता है 'उत्तरा-पथ के खण्ड राज्य द्वेष से जर्जर हैं। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा ।[४] इसी प्रकार धार्मिक समुदायों में परस्पर जो विद्वेष है उसको लक्ष्य करके चाणक्य ने कहा है कि यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण में भेद न करेंगे ।[५] चन्द्रगुप्त भी इसका उल्लेख करता है कि दारुण द्वेष से सब जकड़े हैं ।[६] यह कथन परोक्ष रूप से भारत में होने वाले हिंदू-मुसलिम दंगों की ओर संकेत करता है । अलका राष्ट्रीय-जागरण के सम्बन्ध में कहती है कि 'राज्य किसी का नहीं है, सुशासन का है । जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है । . . . स्वतंत्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं ।'[७]

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'शिवा साधना' नाटक में शिवाजी की कथा का वर्णन किया है । उनके ऐतिहासिक नाटकों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो आधुनिक परिस्थितियों से प्रभावित हैं जैसे इस नाटक में यह कथन 'भैया, यह स्वराज्य साधना का कार्य, युग-युग की गुलामी की बेड़ियों को काटने का काम, एक दो दिन में नहीं होता । यह काँटों और बाधाओं से भरा हुआ पथ है । इस पथ पर चलने की दीक्षा लेने वाले को माँ-बाप, भाई-बहन, धन-संपत्ति, लोक-परलोक सभी से आँखें फेरनी होती हैं । स्वतंत्रता से अमूल्य वस्तु कोई नहीं—धर्म भी

१—चौहान, सुभद्राकुमारी, 'स्वागत', पृ० ११४;
२—'स्वागत गीत', पृ० ११८
३—पंत, सुमित्रानन्दन, 'ज्योत्स्ना', तृतीय अंक, पृ० २६६,
४—प्रसाद, जयशंकर, 'चन्द्रगुप्त मौर्य', प्रथम अंक, प्रथम दृश्य;
५—पंचम दृश्य;
६—द्वितीय अंक, तृतीय दृश्य;
७—चतुर्थ अंक, छठा दृश्य

नहीं ! इसके साधक को इस पर सब कुछ बलिदान कर देना पड़ता है।[१] इसी प्रकार के कथन 'प्रेमी' के 'रक्षाबन्धन' तथा 'प्रतिशोध' नाटकों में भी मिलते हैं।

'रक्षाबन्धन' नाटक में कर्मवती द्वारा हुमायूं को राखी भेजने, तथा उनके उचित समय पर न आ सकने पर राजपूत स्त्रियों के साथ उसके जौहर करने की कथा का वर्णन किया गया है। ये नाटक यद्यपि प्राचीन काल के हैं परन्तु बलिदान की जो भावना इनमें व्याप्त है वह सत्याग्रह आन्दोलन की ही आत्मा है। जैसे रक्षाबन्धन की ये पंक्तियाँ :—

'सोचो तो मेवाड़ निवासी
माँ को होने दोगे दासी !
ओ बलिदानों के विश्वासी !
आगे कदम बढ़ाओ।
वीरो समर भूमि में जाओ।'[२]

इसी प्रकार 'प्रतिशोध' नाटक में प्राणनाथ कहता है—'स्वतंत्रता देवी के मंदिर की यही विशेषता है। इसके निर्माण में जितने ही अधिक बलिदान देने पड़ें, उतना ही यह दृढ़ होता है।'[३] यह नाटक छत्रसाल के ऐतिहासिक कथानक को लेकर लिखा गया है।

उग्र जी के 'चार बेचारे' में चार प्रहसन हैं। 'बेचारा सुधारक' शीर्षक प्रहसन में उन्होंने असहयोग का उल्लेख किया है।[४]

प्रसाद ने 'तितली' उपन्यास में दिखाया है कि शैला यूरोप से आकर यहाँ गाँवों की दशा में सुधार करना चाहती है। वह ग्रामवासियों के लिये कोआपरेटिव बैंक तथा पाठशाला की स्थापना करती है। पहले इन्हीं गावों में नील की खेती होती थी। शैला की माता जेन भारत के एक नील व्यवसायी की कन्या थीं। नील की खेती के समय किसानों पर अत्याचार होते थे, इसका भी उल्लेख है।

इसी प्रकार ग्राम-सुधार के कार्यक्रम का उल्लेख प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' उपन्यास में भी है। अमरकान्त गाँव में जाकर रहने लगता है और वहाँ सुधार भी करना

१—प्रेमी, हरिकृष्ण, 'शिवासाधना', पाँचवा अंक, छठा दृश्य
२—'रक्षाबन्धन', दूसरा अंक, पाँचवा दृश्य।
३—'प्रतिशोध', तृतीय अंक, नवाँ दृश्य।
४—उग्र, बेचन शर्मा, चार बेचारे, 'बेचारा सुधारक', पृ० ८८

चाहता है। उसके आने के पहले चमार मृत जानवरों का मांस खाते थे परन्तु उसके समझाने से छोड़ देते हैं। यहाँ तक कि दूसरे गाँवों के चमार तक इससे प्रभावित होकर मृत जानवरों का मांस खाना छोड़ देते हैं। अशिक्षा को दूर करने के लिये वह गाँव में एक पाठशाला खोलता है जहाँ गाँव के बच्चे पढ़ने आते हैं। इसी प्रकार अमरकान्त मद्य निषेध आन्दोलन भी गाँव में चलाता है। उसका विचार है कि डांट फटकार से कुछ न होगा, ऐसी हवा फैलानी पड़ेगी जिससे ताड़ी शराब से लोगों को स्वयं घृणा हो जाय।[1]

कांग्रेस का रचनात्मक-कार्यक्रम तो असहयोग-आन्दोलन के समय से ही चल रहा था। परन्तु १९३४ ई० में कांग्रेस-कमिटियों के लिये जो कार्यक्रम बनाया गया उसमें ग्रामजीवन का आर्थिक, शिक्षण सम्बन्धी, सामाजिक और आरोग्य सम्बन्धी दृष्टि से पुनस्संगठन भी सम्मिलित किया गया था। ग्रामसुधार के कार्य-क्रम को इसीलिये साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। इस कार्यक्रम का उल्लेख प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास में भी है।[2]

'कर्मभूमि' में जगह-जगह किसान-सभाओं के होने का उल्लेख है।[3] सर-कार के दमन के सम्बन्ध में सुखदा देवी का कहना है कि जिस समाज का आधार ही अन्याय हो, उसकी सरकार के पास दमन के अतिरिक्त और क्या दवा हो सकती है, परन्तु इससे आन्दोलन दबेगा नहीं वरन और अधिक प्रतिक्रिया होगी। 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द ने अहिंसा में भी पूर्ण आस्था प्रकट की है। अमरकान्त को जब सलीम गिरफ्तार करके ले जाते हैं उस समय कई व्यक्ति उत्तेजित होकर मोटर की ओर बढ़ते हैं, परन्तु अमरकान्त उन्हें डाँट देते हैं। अमरकान्त कहते हैं 'यह हमारा धर्मयुद्ध है और हमारी जीत, हमारे त्याग, हमारे बलिदान और हमारे सत्य पर है।'[4] इसी प्रकार जेल में जेलर काले खाँ को नमाज़ पढ़ते समय बहुत मारता है परन्तु काले खाँ बराबर नमाज़ पढ़ता जाता है। यहाँ तक कि कठोर-आघातों के कारण उसका देहान्त भी हो जाता है। बलिदान का यह अपूर्व दृश्य है।[5] नैना देवी का भी बलिदान इसी प्रकार

१--प्रेमचन्द, 'कर्मभूमि', भाग ४, परिच्छद २, पृ० ४४१
२--'गोदान', अध्याय ६, पृ० ९५
३--'कर्मभूमि', भाग ४, परिच्छेद ५;
४--परिच्छेद ८, पृ० ५००;
५--भाग ५, परिच्छेद ६, पृ० ५५२-५५३

होता है। ये बलिदान सफल होते हैं क्योंकि इनसे बोर्ड के मेम्बरों की राय बदल जाती है।

इस प्रकार सविनय-अवज्ञा और सत्याग्रह-आन्दोलन का प्रभाव साहित्य पर पड़ा है। नायक और नायिकाओं को लेखकों ने राष्ट्रसेवक और राष्ट्रसेविकाओं के रूप में चित्रित किया है।

निराला के 'अलका' उपन्यास से उनकी राष्ट्रीय-स्वातंत्र्य-आंदोलन के प्रति सहानुभूति व्यक्त होती है। उपन्यास का नायक कांग्रेस का मेम्बर है और गाँवों में जाकर किसानों के बीच काम करता है। क्रान्तिकारी दल के राजनीति में बलशाली होने से और विशेषतः भगतसिंह की फाँसी के कारण क्रान्तिकारी व्यक्तियों को भी कुछ साहित्यकारों ने नायक के रूप में चित्रित किया है।

जैनेन्द्र के 'सुनीता' उपन्यास का नायक हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी दल का सदस्य है किन्तु उपन्यास में उस दल की बातों को प्रधानता नहीं दी गई है। इसी प्रकार उनके 'स्पर्द्धा' उपन्यास की रंगभूमि इटली है। इटली के एक क्रान्तिकारी दल के सदस्य ही इस उपन्यास के पात्र हैं, किन्तु वे केवल वातावरण उपस्थित करने के लिये हैं। मुख्य संवेदना अन्य है।

प्रेमचन्द के 'ग़बन' उपन्यास में देवीदीन खटिक अपने दोनों लड़के स्वदेशी की भेंट चढ़ा देता है। दोनों विदेशी कपड़े की दुकान पर पिकेटिंग करते हुये घायल हो जाते हैं और उसके बाद ही अस्पताल में मर जाते हैं। पिकेटिंग का वर्णन भी साहित्य में बहुत हुआ है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'पिपासा' उपन्यास का नायक कमलनयन गरीबों और मजदूरों का सुधारक है और उन्हीं में काम करता है।[१] १९३४ ई० में समाजवादी दल के जन्म लेने के कारण मज़दूरों की समस्यायें राजनीति में महत्वपूर्ण होती गईं। इसलिये साहित्य में भी मजदूरों की दीन दशा का चित्रण विशेष रूप से हुआ। मज़दूरों के प्रश्नों की ओर काँग्रेस ने भी ध्यान दिया और उनसे आठ घंटे दैनिक से अधिक काम न लेने तथा उन्हें अन्य सुविधायें देने के लिये निरन्तर प्रयत्न किये।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'त्यागमयी' उपन्यास पर राष्ट्रीय-आँदोलन का महत्वपूर्ण प्रभाव यही है कि नायक विजय क्रान्तिकारियों के दल का सदस्य

१—वाजपेयी, भगवतीप्रसाद, 'पिपासा', पृ० १३५

है और असहयोगियों की सहायता करता है। राजनीति में समाजवादी दल के साथ क्रमशः साम्यवादी दल भी बलशाली होता जा रहा था। इसीलिये क्रान्तिकारियों का वर्णन साहित्य में मिलता है। चतुरसेन शास्त्री ने 'आत्मदाह' उपन्यास में वातावरण की सृष्टि के उद्देश्य से राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन किया है। उन्होंने उल्लेख किया है कि युद्ध के बाद की शान्ति-सभा से भारत निराश हो गया और देश में उद्वेग उत्पन्न हो गया। पंजाब और बंगाल में क्रान्तिकारी दल बन गये। कांग्रेस शीघ्रता से गाँधी के हाथ में आ रही थी और असहयोग का नया शस्त्र धीरे-धीरे सब लोगों की चर्चा की वस्तु हो रहा था।[१] क्रान्तिकारी-दल का वर्णन अन्य स्थल पर भी है।[२] जालियाँ वाले बाग के हत्याकांड का भी उल्लेख है।[३] उपन्यास के नायक और नायिका दोनों देशभक्ति का व्रत लेते हैं।[४] इलाचन्द्र जोशी के 'घृणामयी' उपन्यास में भी वातावरण की सृष्टि के लिये राजनीतिक-परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।[५]

प्रसाद के 'आँधी' नामक कहानी संग्रह की 'नीरा' शीर्षक कहानी में कुली-प्रथा का उल्लेख है। नीरा का पिता मोरिशस से लौटा हुआ कुली है। नाना कष्टों को झेलने के बाद उसका ईश्वर पर विश्वास समाप्त हो गया है। प्रेमचन्द के 'नवजीवन' कहानी संग्रह की 'बूढ़ी काकी' शीर्षक कहानी में भी 'कुली डिपो के दलालों के दिखाये हुये सब्ज़-बाग़' का उल्लेख हुआ है। मानसरोवर, भाग ७ की 'जेल' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने राजनीतिक परिस्थिति का चित्र उपस्थित किया है। पुलिस जनता पर अत्याचार करती है और जुलूस पर गोली चलाती है। इसी कहानी संग्रह की 'शराब की दूकान' शीर्षक कहानी में शराब की दूकानों पर धरना देने और कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के अथक परिश्रम करने का उल्लेख है। अन्त में जीत काँग्रेस वालों की ही होती है। प्रेमचन्द के 'कफ़न और शेष रचनायें' नामक कहानी संग्रह की 'होली का उपहार' शीर्षक कहानी में एक युवक अपनी

१--शास्त्री, चतुरसेन, 'आत्मदाह', अध्याय ५०, पृ० ३२३;

२--अध्याय १९, पृ० १६०;

३--अध्याय ५२, पृ० ३३८;

४--'आओ सुधा, मेरी प्यारी सुधा, आज हम देशभक्ति का व्रत लें। हम प्रतिज्ञा करें कि हम अपने प्रेम को अपने देश के बच्चे-बच्चे के लिए प्रदान करते हैं।'
--'आत्मदाह', अध्याय ५३, पृ० ३६०

५--जोशी, इलाचन्द्र, 'घृणामयी', पृ० १२

पत्नी को उपहार देने के लिये विदेशी साड़ी लेता है, परन्तु उसकी पत्नी स्वयं पिकेटिंग करती है और विदेशी-वस्त्रों का विरोध करती है। अन्त में युवक भी स्वयं सेवकों के दल में सम्मिलित होकर गिरफ्तार हो जाता है। इसी कहानी संग्रह की 'आहुति' कहानी में कहानी का नायक विशम्भर पढ़ाई छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो जाता है और गाँवों में जाकर स्वदेशी का प्रचार करता है। वह अदालतों के बहिष्कार तथा मद्यनिषेध का भी प्रचार देहातों में करता है।

मानसरोवर (भाग ७) की 'पत्नी से पति' कहानी में मिस्टर सेठ बड़े राज-भक्त हैं, अंग्रेजों की चापलूसी करते हैं, पर उनकी पत्नी गोदावरी कांग्रेस को चन्दा दे देती है जिसके कारण उनके दफ्तर के साहब मि० सेठ का बहुत अपमान करते हैं। इससे क्षुब्ध होकर मि० सेठ त्यागपत्र दे देते हैं।

जैनेन्द्र के 'एक रात' कहानी संग्रह की 'क्या हो ?' शीर्षक कहानी का नायक दिनकर राष्ट्रसेवक है जिसे फाँसी की सजा होती है। 'एक रात' कहानी का नायक जयराज भी कांग्रेस-कमिटी का सदस्य है परन्तु दोनों कहानियों की मुख्य संवेदनायें प्रेम सम्बन्धी हैं। जैनेन्द्र के 'फाँसी' नामक कहानी संग्रह की 'ग़दर के बाद' शीर्षक कहानी में १८५७ ई० के ग़दर के दिनों का वर्णन है जब भयानक हत्याकांड हुये थे। 'फाँसी' कहानी में शमशेर डाकू का चित्रण है जो एक ओर डकैतियाँ करके दूसरी ओर दरिद्र जनता का हित करता है।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'बिखरे मोती' की 'पापी पेट' कहानी में समकालीन परिस्थितियों का चित्रण किया है। पुलिस लगभग पाँच हज़ार निहत्थे और शान्त मनुष्यों पर लाठी चलाती है। स्वराज्य की माँग करने वाले इस राष्ट्रीय दल पर लाठी-चार्ज करते हुये थानेदार, कोतवाल तथा मैजिस्ट्रेट तीनों अपनी आत्मा को किसी प्रकार समझाते हैं परन्तु मैजिस्ट्रेट के लड़के का इसी में देहांत हो जाता है। लेखिका ने दिखाया है कि आजीविका के कारण ही सभी कर्म-चारीगण ऐसा करने को विवश हैं।[१] देश की परिस्थिति का वर्णन करते हुये 'अमराई' कहानी में लेखिका लिखती हैं 'यह उन दिनों की बात है जब सत्या-ग्रह-आन्दोलन अपने पूर्ण विकास पर था। सारे भारतवर्ष में समराग्नि धधक रही थी। दमन का चक्र अपने पूर्ण वेग से चल रहा था। अखबारों में लाठी चार्ज, गोली कांड, गिरफ्तारी और सज़ा की धूम के अतिरिक्त और कुछ रहता ही

१--चौहान, सुभद्रा कुमारी, बिखरे मोती, 'पापी पेट', पृ० १५-२६

न था।[1] 'रायसाहब की अमराई में राष्ट्रीय-गान गाने पर पुलिस लाठी-चार्ज करती है। रायसाहब आनरेरी मैजिस्ट्रेट और सरकार के खैरख्वाह हैं परन्तु इस अत्याचार से उनकी आँखें खुलती हैं और वे अपनी उपाधि तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट का पद त्याग देते हैं। उसके बाद से प्रति-दिन ही कुछ आदमी अमराई में राष्ट्रीय-गान गाते हुये गिरफ्तार होते हैं। राय साहब को छः महीने की सख्त कैद तथा उन पर ५०० रु० जुर्माना होता है और जुर्माने में अमराई नीलाम कर ली जाती है, जहाँ पुलिस चौकी बनने लगती है।[2] इस प्रकार के सभी उल्लेख राष्ट्रीय-आंदोलन से प्रभावित हैं।

राधिकारमण प्रसाद सिंह की 'गाँधी टोपी' कहानी संग्रह की 'गाँधी टोपी' कहानी में लेखक ने एक नेता का हृदय परिवर्तन दिखाया है। रविदास जी गाँधी टोपी के सम्बन्ध में कहते हैं कि 'गाँधी टोपी की बुलन्दी उसकी नवाबी नहीं, उसकी खाकसारी है। भाई यह महज़ खादी की टोपी नहीं, गांधीत्व की थाती है।'[3]

निराला के 'महाराणा प्रताप' की कथा भी परोक्ष रूप से स्वातंत्र्य-आंदोलन से प्रभावित है क्योंकि पुस्तक का नायक ऐसा वीर पुरुष है जिसने अपना सारा जीवन स्वाधीनता के लिये बलिदान कर दिया। उस समय की परिस्थिति का वर्णन करते हुये निराला लिखते हैं कि उन दिनों भारत शस्त्र-कानून का शिकार नहीं हुआ था। पराधीन अवस्था में भी लोग तलवार, भाला, बरछी आदि तेज़ हथियार बड़ी शान से बाँधते थे।[4]

रायकृष्णदास ने 'सुधांशु' कहानी संग्रह की 'क्रांति का केतु' कहानी में दिखाया है कि किस प्रकार पहली बार अन्यायी राजा के अत्याचार का प्रतिकार क्रान्ति से करके मनुष्य-जाति अत्याचार का विरोध करना सीखती है और राष्ट्रीयता की भावना का जन्म होता है।[5]

'दुबे जी की डायरी' १९५८ ई० में प्रकाशित है, परन्तु ये वे ही लेख हैं जो दुबे जी की चिट्ठियों के नाम से पत्रिकाओं में निकलते रहे हैं। इसमें लेखक

१—'अमराई', पृ० १५४;

२—पृ० १६०

३—सिंह, राधिकारमण प्रसाद, गाँधी टोपी, 'गाँधी टोपी', पृ० ४४

४—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'महाराणा प्रताप', द्वितीय परिच्छेद

५—रायकृष्ण दास, सुधांशु, 'क्रान्ति का केतु', पृ० ७६

विजयानन्द दुबे ने देश की समकालीन परिस्थितियों पर विचार किये हैं और तीव्र व्यंग्यपूर्ण शैली में ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति की निन्दा की है। वे मिस्टर चर्चिल से कहते हैं 'फिर हिन्दुस्तानी कमबख्त भी मार खाने में आशातीत मज़बूत साबित हुये। तादाद भी कम्बख्तों की इतनी ज्यादह है कि इन्हें मारते-मारते आपको फ़ालिज़ मार जायेगा और इनका अन्त न होगा।'[1]

यह उल्लेख सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन से प्रभावित है। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में सत्याग्रही नमक बनाते थे और गिरफ्तार होते थे इसीलिये लेखक नमक-कर पर व्यंग्य करते हुये लिखते हैं 'ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानियों के लाभ के लिये कितने कानून बना रक्खे हैं। एक नमक-कानून ही को ले लीजिये भारत-सरकार ने नमक पर टैक्स कुछ अपने लाभ के लिये थोड़ा ही लगाया है? यह भी हिन्दुस्तानियों के लाभ की बात है। उस दिन 'लीडर' में किसी महोदय ने लिखा था—'नमक रजोगुणी है, नमक खाने से सतोगुण का नाश हो जाता है। यदि नमक न खाया जाय तो मनुष्य अधिक स्वस्थ रह सकता है। ऐसी दशा में यदि इस पर टैक्स न लगाया जाता तो लोग इसका अधिक व्यवहार करते। सस्ती चीज़ अधिक खर्च होती है।'[2]

इस काल के साहित्य में राजनीतिक क्षेत्र की घटनाओं के उल्लेख तो अपेक्षाकृत कम मिलते हैं परन्तु नवयुग के विचारों का साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ग्राम-सुधार के कार्यक्रम का वर्णन कई उपन्यासों और कहानियों में मिलता है। नायकों को अधिकतर राष्ट्रवादी-विचार का दिखाया गया है। क्रान्तिकारी-दल के युवकों को केवल जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में नायक बनाया है अतः उनके उपन्यासों में क्रान्तिकारी-दल का कुछ वर्णन प्राप्त होता है।

देश के नेताओं के प्रति इस चरण के साहित्यकारों ने भी आदर प्रकट किया है, यद्यपि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो पिछले चरण की अपेक्षा ऐसे उल्लेख कम हैं।

'युगान्त' की 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में कवि सुमित्रानन्दन पंत ने गाँधी जी के प्रति श्रद्धा प्रकट की है। कवि ने उन्हें जीवन की पूर्ण इकाई माना है और कहा है कि तुमने सदियों का दैन्य-तमिस्र धुनकर प्रकाश सूत काता और नग्न पशुता ढंक दी। मृत-संस्कृतियों के विकृत-भूत तुमने मुक्त किये। शासित-

---

१--कौशिक, विश्वंभरनाथ शर्मा, 'दुबे जी की डायरी', पृ० १२;
२--पृ० ४५

जन को सहयोग सिखाकर शासन का दुर्वह भार हरा। मिथ्या का बल प्रहार, निरस्त्र होकर तुमने सत्याग्रह से रोका।[१]

'मुकुल' की 'मत जाओ' शीर्षक कविता लोकमान्य तिलक के देहावसान पर लिखी गई है।[२]

जहाँ देश के पूज्य नेताओं के प्रति साहित्यकारों ने आदर व्यक्त किया वहाँ उन्होंने नेताओं का वेश धारण करने वाले कपटी व्यक्तियों की पोल भी खोली है। 'गाँधी टोपी' कहानी में राधिकारमण प्रसाद सिंह ने दिखाया है कि किस प्रकार मिश्र जी नेता बनते और गाँधी टोपी धारण करते हैं। वे ऊपर से अछूतों को गले लगाते है परन्तु उन पर अत्याचार करने में भी चूकते नहीं हैं।[३]

राष्ट्रीयता का स्वरूप

अन्तिम प्रश्न राष्ट्रीयता के स्वरूप का है।

हरिऔध की 'कल्पलता' में हिन्दू जातीयता का स्वर ही प्रमुख है। 'मंत्र साधन' के अंतर्गत 'सिद्धि साधना' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि जाति की संख्या प्रति-दिन कम होती जा रही है, देवमंदिर ढहाये जाते हैं और मूर्तियाँ टूटती हैं, पर्व और उत्सवों में अधिकतर बाधा होती है।[४] 'त्यागभूमि' शीर्षक कविता में कवि लिखते है कि 'आर्य-गौरव-रवि गत-तेज है।'[५] 'शिक्षा का उपयोग' शीर्षक कविता में कवि शिक्षित युवकों में जातीय-भावना के अभाव पर दुख प्रकट करते हुये लिखे हैं कि प्रतिदिन शिक्षित-युवक-वृन्द बढ़ता जाता है पर उनमें हम जाति-ममता कहाँ पाते है।[६] इसी प्रकार 'मुरली की तान' शीर्षक कविता में भी कवि लिखते हैं कि जो हिन्दू-बालक कहलाते हैं वे हिन्दू-कुल-काल है। वे भारत-ललना से लालित हैं परन्तु भारत के लाल नहीं हैं। उनका रोम-रोम देश प्रेममय है,

---

१—पंत, सुमित्रानन्दन, युगान्त, 'बापू के प्रति', पृ० ५३-६१

२—चौहान, सुभद्रा कुमारी, मुकुल, 'मत जाओ', पृ० १२०

३—सिंह, राधिकारमण प्रसाद, गाँधी टोपी, 'गाँधी टोपी'

४—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता, 'मंत्रसाधन', 'सिद्धि साधना' पृ० ३३;

५—'त्यागभूमि', पृ० ३९;

६—'शिक्षा का उपयोग', पृ० ४१

अवशिष्ट नहीं रह जायेगा। अगर हिन्दुओं में एकता आ जाय तो उनकी लुप्त-कीर्ति फिर से जग जायेगी।[1]

हिन्दू-जातीयता का दृष्टिकोण लेकर चलने वाले कवियों में मैथिलीशरण गुप्त तथा 'हरिऔध' प्रधान हैं। मैथिलीशरण गुप्त के दृष्टिकोण में कुछ कालोपरान्त परिवर्तन होता है और वे हिन्दू-मुसलिम-एकता तथा राष्ट्रीयता के दृढ़ समर्थक हो जाते हैं। 'हरिऔध' की हिन्दू-भावना में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। उन्हें उन हिन्दुओं से भी सहानुभूति नहीं है जो देश-बंधुता के रंग में रंगे हुये हैं और जिनमें जातीयता का अभाव है। इसी कारण वे देश के नवयुवकों से भी असंतुष्ट हैं।

१९२६ ई० से साहित्य जगत में छायावाद का जन्म और विकास हुआ। छायावाद और रहस्यवाद में जगत के नाना रूपों से दूर हट कर अध्यात्म, प्रकृति अथवा अंतःप्रकृति के सुरम्य रूपों और भावों के उद्घाटन की प्रवृत्ति प्रधान रही, अतः देश की सामयिक परिस्थितियों से हमारे कवि दूर हटते गये। छायावाद और रहस्यवाद की ओर कवियों के उन्मुख होने के अनेक कारणों में से असहयोग-आन्दोलन के उपरान्त भी स्वराज्य न मिलने का अवसाद और खिन्नता भी एक कारण था। इसीलिये कवियोंने 'नाविक से भुलावा देकर निर्जन प्रदेश में ले चलने' का आग्रह किया है जो 'कोलाहल की अवनी' से दूर हो। छायावाद के कारण शैली के रम्य और सुन्दर रूप की प्रतिष्ठा काव्य में हुई और विषय गौण हो गया। नये-नये विषयों ने भी काव्य-क्षेत्र को आच्छन्न-सा कर लिया। इसका फल यह हुआ कि राजनीति तथा राष्ट्रीय-आँदोलन का उल्लेख काव्य के अतिरिक्त साहित्य की अन्य धाराओं में ही हुआ और तुलनात्मक दृष्टि से आँदोलन का प्रभाव पिछले चरण के साहित्य की अपेक्षा इस चरण के साहित्य में कम है।

१—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, परिमल, 'महाराज शिवाजी का पत्र', पृ० १९१-१९४।

अध्याय ५

अन्तिम राष्ट्रीय संघर्ष और तत्कालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

१९३८–१९४२ ई०

●

१९३९ ई० में जो घटनाएँ घटीं उन्होंने विगत काल से इस काल के इतिहास को पृथक् कर दिया। द्वितीय महायुद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं और उसके किसी भी समय छिड़ जाने की आशंका थी। बर्मा, केन्या, लंका तथा दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी-भारतीयों की स्थिति बुरी थी। उनके अधिकारों पर आक्रमण हो रहा था और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उन्हें लड़ना पड़ रहा था। प्रवासी-भारतीयों की परिस्थिति के कारण ही जवाहरलाल लंका गए, परन्तु उनकी यह यात्रा निष्फल हुई। देशी राज्यों में प्रजा के शान्तिपूर्ण संगठनों पर भी प्रतिबन्ध लगाए जा रहे थे। १९३८ ई० में राजकोट में प्रजा के संगठन का दमन करने की कोशिश की गयी उसके विरोध में वहाँ सत्याग्रह-आन्दोलन हुआ। इस आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया गया और अन्त में सरदार पटेल और ठाकुर साहब में समझौता हुआ और वहाँ शान्ति स्थापित हुई। राजकोट में सत्याग्रह-आन्दोलन के सफल होने से उसका प्रभाव अन्य रियासतों पर भी पड़ा। इस चरण के साहित्य में रियासतों की परिस्थिति के महत्वपूर्ण

उल्लेख नहीं प्राप्त होते। काँग्रेस समाजवादी दल १९३६ ई० से ही काम कर रहा था। कम्युनिस्ट दल पर सरकार ने रोक लगा दी थी फिर भी वह बढ़ रहा था। किसानों की एक शाखा समाजवादियों की ओर झुक रही थी और एक कम्यु-निस्टों की ओर। किसानों की समस्याओं को साहित्य में भी महत्व दिया गया है। सभी दल इस बारे में एकमत थे कि युद्ध-विरोधी-कार्यक्रम चलाया जाय। यद्यपि यह कार्यक्रम सबका अलग-अलग था।

१ सितम्बर, १९३९ को द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और ३ सितम्बर को भारत को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। युद्ध छिड़न के समय भारत के ११ प्रान्तों में स्वायत्त शासन था परन्तु युद्ध में सम्मिलित होने या न होने के बारे में किसी से भी राय नहीं ली गई। सरकार सिंगापुर व मिस्र के लिए भारतीय जनता की इच्छा के विरुद्ध सेना भेज रही थी। काँग्रेस कार्यसमिति ने केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्यों से अगले अधिवेशन में भाग न लेने का आग्रह किया और मन्त्रिमण्डलों से भी युद्ध की तैयारियों में सहायता देने की मनाही की। काँग्रेस ने युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की माँग की। स्वयं काँग्रेस में उस समय अनुशासन का अभाव था। सुभाष वसु ने काँग्रेस से अलग अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) की स्थापना की थी। वे तत्काल संग्राम छेड़ने के पक्ष में थे और जवाहरलाल जी विशेष अवस्था में। दोनों ही सरकार को विवश करना चाहते थे। वाइसराय ने इस समय भारत के लगभग सभी प्रमुख व्यक्तियों से भेंट की। परन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी ने अपनी बैठक में अनुरोध किया कि भारत को स्वाधीन-राष्ट्र घोषित कर दिया जाय और इस घोषणा को तुरंत अधिक से अधिक संभव मात्रा में कार्य में लाया जाय। सरकार की ओर से वाइसराय महोदय ने यह वादा किया कि युद्ध की समाप्ति पर सरकार १९३५ के कानून में, भारतीयों की सलाह से, संशोधन करने को तैयार होगी। देशी राज्य प्रजा परिषद् ने भी नरेशों से अनुरोध किया कि वे अपने राज्यों में पूर्ण उत्तर-दायी शासन की घोषणा कर दें और इस नीति को अधिक से अधिक संभव मात्रा में अपनाएँ। वाइसराय की घोषणा से काँग्रेस को कोई संतोष नहीं हुआ और उसने काँग्रेस मंत्रिमण्डलों से त्यागपत्र दे देने के लिए कहा जिस पर बारी-बारी से आठों प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। काँग्रेस युद्ध-उद्देश्यों के स्पष्टी-करण, भारत में उन्हें कार्यान्वित करने और इस बात का प्रमाण केन्द्रीय-सरकार की स्थापना के संबंध में देने की माँग कर रही थी। काँग्रेस ने सविनय-अवज्ञा के लिए तैयारियाँ करने की आवश्यकता बतायी और चरखे, खादी तथा सांप्रदायिक-

एकता पर जोर दिया। अस्पृश्यता-निवारण के लिए भी प्रयत्न करने का आदेश दिया गया। हरिजनोद्धार तथा चरखे में साहित्यकारों ने भी आस्था प्रकट है। काँग्रेस के कुछ व्यक्ति तुरन्त आन्दोलन करने के पक्ष में थे। परन्तु महात्मा गाँधी कहते थे कि काँग्रेस में मतभेद और अनुशासनहीनता इतनी अधिक है कि सविनय-अवज्ञा का कोई फल न होगा। मार्च १९४० में मुस्लिम-लीग ने पाकिस्तान की माँग उपस्थित की। पाकिस्तान की समस्या पर साहित्यकारों ने इस चरण में विचार नहीं प्रकट किए हैं। साम्प्रदायिक झगड़े प्रारंभ हो गए थे। सक्खर में भयानक दंगा हुआ। काँग्रेस का कहना था कि विधान परिषद् के द्वारा आत्म-निर्णय ही एक मात्र उपाय है। जुलाई १९४० में काँग्रेस कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा युद्ध में सहायता देने का प्रस्ताव रक्खा परन्तु उसकी शर्त यही रक्खी कि भारत की स्वाधीनता की घोषणा कर दी जाय। साम्यवादियों, समाजवादियों, राष्ट्रीय-प्रजातंत्रवादियों, किसानों और अग्रगामी दल वालों——सभी में आपस में मतभेद और विरोध था। किसानों और अग्रगामी-दल वालों ने काँग्रेस की नीति का तीव्र विरोध किया। उनका विचार था कि जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ हो जाना चाहिए और साम्राज्यवाद से किसी प्रकार समझौता नहीं करना चाहिए। वे हरिजन आन्दोलन, चरखा तथा अन्य रचनात्मक-कार्यक्रम को महत्वपूर्ण स्थान देने के पक्ष में नहीं थे। वे चाहते थे कि किसानों तथा मज़दूरों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाय। वाइसराय ने कांग्रेस को केन्द्रीय सरकार तथा युद्ध-सलाहकार-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया परन्तु काँग्रेस ने इसे स्वीकार नहीं किया। सरकार ने दमन प्रारम्भ कर दिया था। जुलाई १९४० में ही सुभाष वसु को गिरफ्तार कर लिया गया था।

१७ अक्टूबर, १९४० ई० को सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ हो गया। पहले सत्याग्रही बिनोवा भावे थे तथा दूसरे जवाहरलाल नेहरू। दोनों को ही गिरफ्तार कर लिया गया। 'वाणी स्वातंत्र्य' ही इस संग्राम का उद्देश्य बताया गया था और सत्याग्रही युद्ध-विरोधी-प्रचार करते हुए दिल्ली की ओर जाते थे। इस सत्याग्रह का रूप व्यक्तिगत था। शेष व्यक्तियों के ऊपर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया गया था कि उन्हें जानबूझ कर या नासमझी से गिरफ्तार नहीं होना चाहिए और रचनात्मक-कार्यक्रम में लगे रहना चाहिए। इस सत्याग्रह का प्रभाव साहित्य में बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। जल्दी ही सभी प्रमुख सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया गया। काँग्रेस ने केन्द्रीय-एसेम्बली के सदस्यों को सिर्फ अपनी सीटें बनाये रखने के लिए ही उसमें उपस्थित होने की अनुमति दी थी परन्तु जब युद्ध

के लिए अर्थ-बिल पेश हुआ तो उनसे उसे अस्वीकृत करने के लिए कहा गया जिससे कि यह प्रकट हो जाय कि भारत युद्ध का विरोध कर रहा है। २१ जुलाई को वाइसराय की शासन-परिषद् में ७ भारतीयों की नियुक्ति की गयी और बाद को श्रीरामास्वामी अय्यर को भी उसमें सम्मिलित कर लिया गया।

राष्ट्र के लिए यह बहुत सौभाग्य की बात थी कि गाँधी जी जेल से बाहर रह कर सत्याग्रह का संचालन कर रहे थे। बाद में सत्याग्रहियों को हल्की सजायें दी जाने लगीं परन्तु जब सत्याग्रही दूसरी बार सत्याग्रह करते थे तब उनकी सजा बढ़ा दी जाती थी। इस सत्याग्रह में चर्खे पर बहुत जोर दिया गया था। अहिंसात्मक नीति के बारे में भी स्पष्ट कर दिया गया कि न केवल स्वराज्य प्राप्ति के लिए इसे अपनाया गया है वरन् स्वतंत्र-भारत में भी यथासंभव इसी नीति को अपनाया जायगा। जहाँ तक गाँधीवाद का प्रश्न है लगभग सभी साहित्यकारों ने उसमें विश्वास व्यक्त किया है। रचनात्मक-कार्य में संलग्न कार्यकर्ता भी पकड़े जाने लगे थे। रचनात्मक-कार्यक्रम में अन्य बातों के अतिरिक्त ये भी शामिल थीं— ग्रामोद्योग, गाँव की सफाई, बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य व सफ़ाई की शिक्षा, राष्ट्र-भाषा का प्रचार, स्वभाषा-प्रेम तथा आर्थिक समानता का प्रयत्न। गाँवों की ओर साहित्यकार भी आकृष्ट हुए हैं। पंत तथा सोहनलाल द्विवेदी ने विशेष रूप से ग्राम जीवन का चित्रण किया है।

भारत सरकारने अचानक आज़ाद, नेहरू तथा अन्य भारतीय नेताओं को छोड़ दिया। क्रिप्स साहब अपने प्रस्ताव लेकर भारत आये। यह घोषणा की गयी थी कि क्रिप्स महोदय इस बात की कोशिश करेंगे कि अल्पसंख्यक भारत की राजनीतिक प्रगति में व्यर्थ बाधाएँ न उपस्थित करें और बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के हितों की उपेक्षा न करें। क्रिप्स की योजना भी भारत के किसी दल ने स्वीकार नहीं की। क्रिप्स-योजना का कोई भी उल्लेख समकालीन साहित्य में प्राप्त नहीं होता।

अप्रैल १९४२ में गाँधी जी ने यह घोषित किया कि भारत और ब्रिटेन दोनों का भला इसी में है कि अंग्रेज मालिकों की हैसियत से भारत छोड़ दें। जुलाई १९४२ में कार्यसमिति की बैठक वर्धा में हुई जिसमें उसने एक सामूहिक आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी योजनाएँ बनाई। राजगोपालाचारी पाकिस्तान बन जाने के पक्ष में थे परन्तु जगतनारायण लाल का अखंड भारत का ही प्रस्ताव पास हुआ। पाकिस्तान अथवा अखंड भारत की समस्या पर साहित्यकारों ने सम्मति

नहीं दी है। राजगोपालाचारी काँग्रेस से अलग हो गए और अपना आन्दोलन चलाते रहे। अगस्त १९४२ ई० में काँग्रेस महासमिति की सभा हुई और वर्धा की कार्यसमिति वाला प्रस्ताव दोहराया गया। यह कहा गया कि अंग्रेजों का भारत छोड़ देना हितकर है। ७ और ८ अगस्त को महासमिति की बैठक थी। तुरन्त ही नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। ९ अगस्त को नेताओं की गिरफ्तारी के बाद सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए और शस्त्रास्त्रों को लेकर चलना निषिद्ध कर दिया गया। संयुक्तप्रान्त में काँग्रेस संस्थाओं को अवैध घोषित कर दिया गया। इलाहाबाद में स्वराज्य भवन पर अधिकार कर लिया गया। प्रतिबन्धों की जरा सी भी अवज्ञा करने पर लाठी-चार्ज, मशीनगनों की मार, बम-वर्षा आदि जिससे जनता क्रोध से पागल हो उठी। जनता ने रेलवे-स्टेशनों तथा डाकखानों आदि पर हमले किए, रेल के तार काटे गए, सरकारी इमारतें जला दीं और क्रान्ति की लहर बिजली की तरह भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ गयी। इस आन्दोलन में स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों के छात्रों ने मुख्यतः भाग लिया। शिक्षण संस्थायें बन्द हो गयीं। सन् १९४२ ई० के अन्त तक लगभग ५३८ बार देश में गोली चली। इस आन्दोलन को सभी दलों ने धिक्कारा परन्तु इसकी प्रगति को रोकने की चेष्टा नहीं की। मुस्लिम-लीग ने अपने सदस्यों को इस आन्दोलन से दूर रहने की सलाह दी। अगस्त-प्रस्ताव के संबंध में भारतीय ईसाइयों की प्रतिक्रिया अच्छी और संतोषजनक रही। सरकार ने एक पुस्तिका निकाली जिसमें इस क्रान्ति का उत्तरदायित्व काँग्रेस के सिर थोपा गया। सन् ४२ के इस आन्दोलन का भी कोई प्रभाव इस चरण के साहित्य पर नहीं दिखायी पड़ता है।

मातृभूमि के प्रति प्रेम

हिन्दी साहित्य में छायावाद की प्रतिष्ठा होने के पश्चात् साहित्य के रूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। छायावाद में कला की प्रधानता थी और विषय गौण हो गया था। इसके अतिरिक्त कवि प्रकृति तथा प्रेम जैसे विषयों की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे थे अतः काव्य का क्षेत्र अधिकांश में शृंगार रस तक ही सीमित हो गया। छायावाद की अपनी रीतियाँ थीं इसीलिए जिन काव्यों में राष्ट्रीय-आन्दोलन का प्रभाव भी मिलता है उनका रूप भी छायावाद के अनुरूप ही संयत है। इस चरण के साहित्य में अनुभूति की वह तीव्रता राष्ट्रीय-कविताओं में नहीं मिलती जो भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के साहित्य में प्राप्त होती है। देश

प्रेम की भावना को अभिव्यक्त करने वाली कविताओं की रचना इस चरण के साहित्य में भी हुई है परन्तु शैली की दृष्टि से इन कविताओं में हम विशेषता पाते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त के 'नहुष' (१९४० ई०) खंडकाव्य में नहुष के उत्थान और पतन की कथा है। नहुष एक स्थल पर भारत की प्रशंसा भी करते हैं।[1]

'ग्राम्या' (१९४० ई०) की 'भारतमाता' शीर्षक कविता में कवि सुमित्रानंदन पंत ने मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट किया है। मातृभूमि का दैवीकरण इस कविता में नवीन प्रकार का है। कवि ने भारतमाता का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह ग्रामवासिनी है, खेतों में उसका श्यामल धूल भरा मैला-सा आँचल फैला है, गंगा-यमुना में उसका अश्रुजल है और वह मिट्टी की प्रतिमा है। वह दैन्य-जड़ित अपलक-नत-चितवन है। उसके अधरों में नीरव-रोदन है, युग-युग के तम से उसका मन विषण्ण है और वह अपने ही घर में प्रवासिनी है। उसकी तीस कोटि संतान नग्न-तन, अर्धक्षुधित, शोषित, निरस्त्र, मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, और निर्धन है। भारतमाता नतमस्तक तरुतल निवासिनी है। उसका धरती-सा सहिष्णु मन कुंठित है, क्रन्दन कंपित अधर पर मौन स्थित है तथा वह राहुग्रस्त शरदेन्दुहासिनी है। वह ज्ञानगूढ़ गीता प्रकाशिनी है। उसका तप संयम सफल है और वह अहिंसा का स्तन्य पिला कर जनमन का भय तथा भवतम हरती है। वह जग-जननी जीवन-विकासिनी है।[2] 'राष्ट्रगान' कविता में भी कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है। इसमें भी भारत का दैवीकरण किया गया है। उन्नत हिमालय भारत का मस्तक है। कोटि-कोटि श्रमजीवी हम उसके सुत हैं। भारत स्वर्गखंड है जहाँ षड्-ऋतुएँ परिक्रमा करती हैं।[3]

'ग्राम्या' की 'भारतमाता' तथा 'राष्ट्रगान' शीर्षक इन दोनों कविताओं में भारत के सौंदर्य का वर्णन नहीं हैं वरन् भारत के यथार्थ रूप का वर्णन है। कवि ने भारत माता का करुण चित्र खींचा है। कविता की कलात्मकता की ओर पाठक का ध्यान अधिक आकर्षित होता है।

हरिऔध ने भी मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट किया है। 'पवित्र पर्व' (१९४१)

१—गुप्त, मैथिलीशरण, 'नहुष', पृ० १५

२—पंत, सुमित्रानन्दन, 'भारतमाता', पृ० ४८-४९

३—ग्राम्या, 'राष्ट्रगान', पृ० ५४-५७

की 'चेतावनी' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि जन्मभूमि की रज लेकर सिर पर ललक कर चढ़ाओ[1]। 'कमनीय कामना' में भी कवि कामना करते हैं कि हम लोग देश-रज से भाल आरंजित करके देशराग रंजित रहें।[2] 'रंगभरी होली' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि हम ऐसे राग गायें जिनसे मन में देश-अनुराग भरे।[3]

मैथिलीशरण गुप्त की 'अर्जन और विसर्जन' (१९४२ ई०) पुस्तक की 'अर्जन' शीर्षक कविता में इउडोसिया के देश-प्रेम की महानता दिखायी गयी है जिसके सामने वह व्यक्तिगत सुख का बलिदान कर देती है।

किसानों की समस्या को राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान मिलने के साथ-साथ ही भारत की पृथ्वी को कवियों और साहित्यकारों ने धरती माता के रूप में अपनाया। 'झंकार' (१९३९ ई०) की 'धरती माता' शीर्षक कविता में सुदर्शन लिखते हैं —

'जो धरती हम सब की माता
जो दुनिया की जीवन दाता,
उस पर तन मन धन निसार
धरती माता को नमस्कार।'[4]

स्वर्णिम-अतीत का चित्रण

प्राचीन-संस्कृति से प्रेम व्यक्त करने वाले उल्लेख इस चरण के साहित्य में भी प्राप्त होते हैं, यद्यपि ये बहुत कम हैं। अधिकाश में केवल प्राचीनकाल से कथानक लेकर ही साहित्यकारों ने प्राचीन-भारतीय-संस्कृति के प्रति श्रद्धा का परिचय दिया है।

'निराला' के तुलसीदास (१९३९ ई०) काव्य से उनका भारतीय-संस्कृत से प्रेम प्रकट होता है यद्यपि वह परोक्ष रूप से ही है।

'हरिऔध' के 'वैदेही वनवास' (१९३९ ई०) काव्य से भी उनका भारत की प्राचीन-संस्कृति के प्रति प्रेम प्रकट होता है। राम कहते हैं :—

१—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पवित्र पर्व, 'चेतावनी', पृ० ५४;
२—'कमनीय कामना', पृ० ५६;
३—'रंगभरी होली', पृ० ७४
४—सुदर्शन, झंकार, 'धरतीमाता', पृ० ५

'दमन है मुझे कदापि न इष्ट
क्योंकि वह है भयमूलक नीति।'[1]

इससे एक ओर जहाँ ब्रिटिश-भयमूलक-दमननीति के प्रति विरोध प्रकट होता है वहाँ दूसरी ओर भारत के प्राचीन उच्चादर्श तथा प्राचीन-संस्कृति का गौरव भी प्रकट होता है। 'पवित्र पर्व' की 'दीवाली' शीर्षक कविता में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते हैं कि क्या भव-जननी उस विभव को खोजती फिरती है जिसको खोकर अवनी तम-भरित हो गयी है।[2]

रामकुमार वर्मा के 'जौहर' (१९३९ ई०) शीर्षक कविता संग्रह में जौहर की एक कविता है जिसमें राणासाँगा की रानी करुणादेवी तथा अन्य राजपूत स्त्रियों के जौहर का वर्णन है। भारत के गौरवपूर्ण अतीत को कवि ने कविता का विषय बनाया है। इस सम्बन्ध में साहित्यकारों ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है।

'वासवदत्ता' (१९४२ ई०) के आमुख में कवि सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं :—

'कवि से आशा की जाती है कि वह देश को आज़ादी के ही गीत न दे, किन्तु वे रचनाएँ भी दे जो उसके समाज, जाति, राष्ट्र के मेरुदण्ड-आदर्श को सीधा रख सकें।' इस संग्रह की सभी कविताओं से कवि का प्राचीन-भारतीय-संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है। सभी के विषय या तो बौद्धकाल के हैं अथवा राजपूत-काल के। सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी' (१९४१ ई०) की सभी कविताएँ राष्ट्रीय जागरण के भावों से ओतप्रोत हैं। 'हल्दीघाटी', 'राणाप्रताप के प्रति', 'बुद्धदेव के प्रति', 'तुलसीदास' आदि सभी कविताओं से कवि का अपनी संस्कृति तथा स्वतंत्रता से प्रेम प्रकट होता है।

बेचन शर्मा उग्र का 'गंगा का बेटा' (१९४० ई०) पौराणिक नाटक है। हरीकृष्ण प्रेमी का 'मित्र' (१९४१ ई०) ऐतिहासिक नाटक है और 'आहुति' (१९४० ई०) में रणथम्भौर के महाराज हम्मीरसिंह की कथा है। 'मित्र' के तृतीय अंक के पाँचवें दृश्य में तथा 'आहुति' के तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में जौहर का वर्णन है। साहित्य के इस चरण में राजपूत काल के कथानक और विशेषतया जौहर के वर्णन बहुत प्राप्त होते हैं।

१—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'वैदेही वनवास', तृतीय सर्ग, पृ० ५०;
२—पवित्र पर्व, 'दीवाली', पृ० २२

'निराला' ने 'महाभारत' (१९३९ ई०) में महाभारत की कथा संक्षिप्त रूप में लिखी है। उन्होंने 'चाबुक' के 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' शीर्षक लेख में भारत के प्राचीन वर्णाश्रम धर्म में पूर्ण आस्था प्रकट की है। उनका विचार है कि वर्ण-भेद मिटा देने से राष्ट्र को कोई लाभ नहीं होगा। लेखक के इस उल्लेख से उनका भारतीय-प्राचीन-संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है। सामाजिक-सुधार के आग्रह के समय, जब जातिगत भेदभाव को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा था, उनका यह कथन महत्वपूर्ण है।

सामाजिक-सुधार संबंधी विचार

सामाजिक सुधारों में काँग्रेस प्रारम्भ से ही बहुत रुचि ले रही थी। रचनात्मक-कार्यक्रम में स्त्रियों की उन्नति करना भी सम्मिलित था। नारी-समस्याओं में इस चरण के साहित्यकारों ने भी रुचि ली है।

'युगवाणी' की 'नारी' तथा 'नर की छाया' दोनों कविताओं में कवि ने नारी के पशु-से बन्दी जीवन पर क्षोभ प्रकट किया है और उसे मानवी के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह किया है। यह कथन भारतीय नारी की स्थिति पर ही किया गया प्रतीत होता है।[१] 'आम्रविहग' में कवि ने कामना की है कि 'बहुजाति-पाँति', 'कुलवंशख्याति' सभी जल्दी विनष्ट हों।[२] 'नव संस्कृति' शीर्षक कविता में नई संस्कृति के आदर्श का वर्णन इस प्रकार है: जहाँ 'रूढ़ि-रीतियाँ' आराधित न हों तथा मानव श्रेणी-वर्ग में विभाजित न हो। यद्यपि यह कथन स्पष्ट रूप से केवल भारत से संबंध नहीं रखता, परन्तु भारत की सामाजिक अवनति से प्रभावित अवश्य है।[३]

'ग्राम्या' की 'स्वप्न पट' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि जाति-वर्ण और श्रेणि-वर्ग की दुर्धर्ष भित्तियाँ तोड़कर युग-युग के बन्दीगृह से मानवता बाहर निकली है।[४] 'नारी' शीर्षक कविता में कवि ने समाज में नारी की पशुओं की सी स्थिति पर क्षोभ प्रकट किया है। कवि ने कहा है कि नारी लज्जा से अवगुंठित होकर मानवी नहीं रही। वह युग-युग की बंदिनी, निज देह की कारा में सीमित

१—पंत, सुमित्रानन्दन, युगवाणी, 'नारी', 'नर की छाया', पृ० ५८-६०;
२—'आम्रविहग', पृ० ६६;
३—'नवसंस्कृति', पृ० १८
४—ग्राम्या, 'स्वप्न पट', पृ० १२

है। वह विश्व में अदृश्य तथा अस्पृश्य होकर गृह-पशु-सी ही जीवित है। वह समाज की इकाई नहीं है, उसका जीवन-मान नर के मान पर अवलम्बित है। कवि ने आग्रह किया है कि नारी को स्वाधीन करो। वह नर पर आश्रित न रहे।[१] 'उद्बोधन' शीर्षक कविता में कवि ने आग्रह किया है कि प्राचीन संस्कृतियों के जड़-बंधन खोलकर, जाति-वर्ण, श्रेणी-वर्ग से विमुक्त होकर जन नूतन-विश्व-सभ्यता का शिलान्यास करें।[२] समाजवादी-दल का समाज और साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। समाजवादी विचार-धारा के प्रभाव के कारण ही कवियों ने जाति, वर्ण तथा वर्ग के भेदों से मुक्त होकर वर्गहीन नवीन सभ्यता की स्थापना करने का आग्रह किया है।

'पवित्र पर्व' की 'होलिका दहन', 'रंग की छींटें', 'होली' आदि कविताओं में कवि ने होली के त्योहार पर गाली बकने, मद्यपान आदि कुरीतियों का विरोध किया है।[३]

रामकुमार वर्मा के एकांकी संग्रह 'चारुमित्रा' (१९४२ ई०) में 'रजनी की रात' शीर्षक एकांकी में रजनी समाज से असंतोष प्रकट करती है। उसके विचार से इस समाज में देश के नौजवान लड़कों को आगे बढ़ने की ताकत नहीं है, किसानों की हालत सुधारने की शक्ति नहीं है तथा लड़कियों को इच्छानुसार विवाह करने का अधिकार नहीं है।[४] वह पश्चिम की सभ्यता का भी विरोध करती है और कहती है कि यह सभ्यता भारतीय नहीं हो सकती। इससे हमारे शरीर को सुख भले ही मिले पर आत्मा को सुख नहीं मिल सकता। विदेशी-संस्कृति का विरोध-राष्ट्रीय आन्दोलन में किया ही जा रहा था इसलिए साहित्यकारों ने उस संस्कृति को ग्रहण करने की प्रेरणा कहीं भी नहीं दी है परन्तु अपने समाज के दोष भी उनसे छिपे नहीं थे।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'धीरे धीरे' (१९३९ ई०) नाटक में जमींदारों और किसानों की समस्या ली है। जमींदार राव गुलाबसिंह के किसान उनसे अपने अधिकार चाहते हैं। सगुनचंद जी राष्ट्रसंघ के नेता हैं। उनके भाषण से उत्तेजित

१—ग्राम्या, 'नारी', पृ० ८५;

२—'उद्बोधन', पृ० ९९

३—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पवित्र पर्व, 'होलिका दहन', 'रंग की छींटें', 'होली', पृ० ५३, ५९, ४७

४—वर्मा, रामकुमार, चारुमित्रा, 'रजनी की रात', पृ० १३७

होकर जनता जंगल काटती है जिससे राव गुलाब सिंह तथा किसानों में झगड़ा होता है। किसानों की समस्याएँ राजनीति में महत्वपूर्ण होती जा रही थीं। इसका कारण समाजवाद तथा साम्यवाद का उदय था। साहित्यकार भी किसानों की समस्याओं की ओर आकृष्ट हुए हैं।

जैनेन्द्र ने 'कल्याणी' (१९४० ई०) उपन्यास में स्त्रियों की दीन-अवस्था का वर्णन किया है। इस पुस्तक की नायिका श्रीमती असरानी शिक्षित हैं, लेडी डाक्टर हैं, आर्थिक-दृष्टि से भी स्वतंत्र हैं, फिर भी वे अपने पति के दुर्व्यवहारों से पीड़ित हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'प्रत्यागत' (१९३९ ई०) उपन्यास में मुख्य समस्या जातिगत संकीर्णता की है। मंगल को मलाबार में कुछ मुसलमान बलपूर्वक मुसलमान बना लेते हैं। जब वह घर लौट कर आता है तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसकी जाति वाले उसे मिलाने को तैयार नहीं होते, परन्तु अन्त में, बहुत से नवयुवकों के मंगल का साथ देने पर, ब्राह्मण वर्ग को उसे मिलाना ही पड़ता है। लेखक ने दिखाया है कि इन बाह्य आचार-विचार के बन्धनों में बंध जाने के कारण हमारा धर्म कितना संकीर्ण हो गया है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'सूरदास' (१९४२ ई०) उपन्यास में समाज के अमीरों और गरीबों के अन्तर को दिखाया है। पंखा खींचने वाले मंगरू के लिए वे लिखते हैं 'तो उसे कुदरत की देन नींद मिली है, हमें किस्मत की देन पंखा और पलंग! उसे मेहनत की देन भूख है, हमें अमारत की देन दर्दे-सर! मगर हाय री, ज़माने की फबती! वह रोता है, हम हँसते हैं, वह झोपड़ी में है, हम हवेली में, वह मजूर है हम अमीर।' मज़दूरों की समस्याओं का चित्रण, साम्यवाद और समाजवाद के प्रभाव के कारण, साहित्य में पर्याप्त रूप से हुआ है।

सुदर्शन के 'पनघट' (१९३९ ई०) कहानी संग्रह में 'मजदूर' तथा 'हेरफेर' कहानियाँ भी मज़दूरों की समस्या पर लिखी गयी हैं। 'मज़दूर' कहानी में मजदूरों की दीन-दशा दिखायी गयी है। वे दरिद्रता में अपने दिन काटते हैं और ऋण के भार से दबे रहते हैं। पत्नी का इलाज करवाने तक के लिए उनके पास रुपये नहीं होते हैं। कल्लू भी एक ऐसा ही मजदूर है, उसके मालिक अंग्रेज साहब हैं जो अपने कर्मचारियों से बिलकुल सहानुभूति नहीं रखते। उसकी पत्नी के लिए वे कहते हैं 'ओ! हमें अफसोस है डाक्टर का! दवाई दो, नहीं वह मर जायगा। देसी हकीम गधा का माफिक है। वह कुछ नहीं जानता।' अन्त में कल्लू की पत्नी मर जाती है और उसकी नौकरी छूट जाती है। 'हेरफेर' कहानी भी मज़दूरों के साथ

सहानुभूति रख कर लिखी गयी है और उसमें यह दिखाया गया है कि एक मज़-दूर जब स्वयं अमीर हो जाता है तो उसे फिर मज़दूरों से सहानुभूति नहीं रहती। इस संग्रह में 'दिल जागता है' कहानी अछूतोद्धार की समस्या पर लिखी गयी है। प्रभुदत्तजी ने एक अछूत 'बिसाखी' को घर में रक्खा और उसे चौके में खिलाने लगे। इस पर समाज ने उनका बहिष्कार किया और पत्नी ने भी आपत्ति की। अन्त में बिसाखी उनके यहाँ से चला गया। परन्तु एक बार चोट लगने पर बिसाखी तथा अन्य अछूतों ने उनकी अत्यधिक सेवा की जिससे प्रभावित होकर प्रभुदत्त जी तथा उनकी पत्नी दोनों उसे अपने घर ले आए। इस प्रकार अछूतों की समस्या को ही इस चरण के साहित्य में स्थान दिया गया है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के 'पेरिस की नर्तकी' (१९४२ ई०) कहानी संग्रह की अन्तिम कहानी 'प्रमाद' में उन्होंने पाश्चात्य-सभ्यता का उपहास किया है। शान्तादेवी ने पाश्चात्य-सभ्यता को इस सीमा तक अपना लिया है कि एक दिन बबर्ची के न आने पर वे स्वयं भोजन भी नहीं बना सकतीं। 'बुआ जी' का बनाया हुआ खाना खाकर वे खाना बनाना सीखतीं हैं। पाश्चात्य-सभ्यता का विरोध साहित्यकारों ने प्रारम्भ से ही किया है।

निराला ने 'प्रबन्ध प्रतिमा' (१९४० ई०) के 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' शीर्षक लेख में लिखा है कि हमारे देश में स्त्रियों की शिक्षा के अभाव के कारण जैसी दुर्दशा हो रही है उसका वर्णन असंभव है। युवती-विधवाओं के आँसुओं का प्रवाह प्रतिदिन बढ़ता जाता है। स्त्रियों के साथ जो पाशविक-अत्या-चार किए जाते हैं, उनका कोई प्रतिकार नहीं होता।[१] लेखक ने स्त्री-शिक्षा का आग्रह किया है। लेखक के विचार से स्त्रियों को शिक्षा न देने का बहुत-कुछ कारण देश का दैन्य है परन्तु पुरुषों की अश्रद्धा भी कम नहीं।[२] वे कहते हैं कि हमें स्त्रियों की बाह्य-स्वतंत्रता, शिक्षा-दीक्षा आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है अन्यथा अब के पुरुषों की तरह उनके बच्चे भी गुलामी की अंधेरी रात में उड़ने वाले गीदड़ होंगे, स्वाधीनता के प्रकाश में दहाड़ने वाले शेर नहीं हो सकते।[३] अब तक जितने अत्याचार, बलात्कार हुए हैं, सब परदानशीन औरतों पर ही हुए

१—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध प्रतिमा, 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ', पृ० १३१;

२—पृ० १३२;

३—पृ० १३७

हैं।[१] 'सामाजिक पराधीनता' शीर्षक लेख में लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम-द्वेष के प्रति क्षोभ व्यक्त किया है। हिन्दुओं में स्वयं भिन्न जातीयता भरी हुई है।[२] 'वर्तमान हिन्दू समाज' शीर्षक लेख में निराला लिखते हैं कि देश के कल्याण-कामी यदि शिक्षा के विस्तार के लिए प्रबन्ध करें, इतर जातियों में शिक्षा का प्रसार हो, तो असवर्ण विवाह की प्रथा भी जोरों से चल पडे।[३] हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य उत्पन्न करना तथा शिक्षा-विस्तार करना भी काँग्रेस के रचनात्मक-कार्यक्रम में सम्मिलित था। लेखक का ध्यान इस ओर भी गया है।

'श्रृंखला की कड़ियाँ' (१९४२ ई०) में महादेवी वर्मा ने स्त्रियों की समस्या का विवेचन किया है। पुस्तक प्रधान रूप से भारतीय-महिला की वर्तमान दशा पर लिखी गयी है। वे लिखती हैं कि 'यदि पुरुष धनोपार्जन कर अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ समाज तथा देश का आवश्यक और उपयोगी अंग समझा जाता है, राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकारों का यथेष्ट उपभोग कर सकता है तो स्त्री, गृह में भविष्य के लिए अनिवार्य संतान का पालन-पोषण कर अपने महत् कर्त्तव्य का भार वहन करती हुई उन सब अधिकारों से अपरिचित तथा वंचित क्यों रखी जाती है?[४]

कानून के संबंध में वे लिखती हैं 'कानून हमारे स्वत्वों की रक्षा का कारण न बन कर चीनियों के काठ के जूते की तरह हमारे ही जीवन के आवश्यक तथा जन्मसिद्ध अधिकारों को संकुचित बनाता जा रहा है।[५] वे लिखती हैं कि 'वास्तव में नवीन-युग के अनेक संदेशों में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान नागरिक-अधिकारों के योग्य समझने की अस्पष्ट भावना भी सन्निहित है।[६] 'हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व' शीर्षक निबन्ध में वे लिखती हैं कि 'स्त्री के जीवन में राजनीतिक अधिकारों तथा आर्थिक स्वतंत्रता का अभाव तो रहा ही, साथ ही उसकी सामाजिक-

---

१—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध प्रतिमा, 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, पृ० १३४;

२—'सामाजिक पराधीनता', पृ० १४५;

३—'वर्तमान हिन्दू समाज', पृ० २४०

४—वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, 'हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ', पृ० २२;

५-६—पृ० १९

स्थिति भी कुछ स्पृहणीय नहीं रही।'[१] 'जीवन का व्यवसाय' शीर्षक लेख के दोनों भागों में लेखिका ने वेश्या-समस्या को उठाया है। इसमें वेश्याओं की स्थिति से सहानुभूति प्रकट करते हुए लेखिका ने यह विचार रक्खा है कि वेश्याओं का अस्तित्व समाज की कुछ विशेष स्थितियों के कारण है जिनमें से प्रमुख स्त्रियों की दुर्बलता के प्रति समाज का तिरस्कार का भाव है। 'स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न' शीर्षक निबन्ध के दोनों भागों में स्त्री की आर्थिक-पराधीनता का दिग्दर्शन कराते हुए उसके आर्थिक-अधिकार की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

सुदर्शन ने 'पर्वोत्सव विवरण' (१९४० ई०) के 'हलषष्ठी' शीर्षक निबन्ध में कृषक वर्ग की प्रशंसा करते हुए उसे उदार, परिश्रमी तथा सहनशील कहा है। परन्तु उनका विचार है कि यदि वह वर्ग किसी प्रकार क्रुद्ध हो उठे तो उसका प्रतिकार करना असंभव है। अतः उसे शान्त, संतुष्ट और सुखी रख कर ही समाज शान्त रह सकता है।[२]

इसके पूर्व साहित्यकारों का ध्यान समाज की वैवाहिक-कुरीतियों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ था। विधवाओं के पुनर्विवाह का अधिकार समाज ने क्रमशः स्वीकार कर लिया और बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज-प्रथा आदि कुरीतियों को गर्हित मान लिया परन्तु स्त्री-शिक्षा का प्रचार हो जाने के उपरान्त भी समाज में नारी की स्थिति स्पृहणीय न हो सकी। वह शिक्षित और आर्थिक-दृष्टि से स्वतंत्र होते हुए भी समाज में नर के समान सम्मान का पद न प्राप्त कर सकी। साहित्य के विभिन्न रूपों में स्त्रियों की दशा पर विचार और उनकी उन्नति की इच्छा व्यक्त की गयी। स्त्रियों की समस्याओं के विभिन्न पक्षों पर श्रीमती महादेवी ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में गम्भीर विचार किया। जैनेन्द्र ने भी स्त्रियों की समस्याओं को उपन्यासों में स्थान दिया है। मज़दूर, किसान तथा अछूत आदि शोषित-वर्गों के प्रति उस काल में भी लेखकों ने सहानुभूति व्यक्त की।

भारतीय-समाज की नैतिक-अवनति का चित्रण इस काल के साहित्य में बहुत कम मिलता है। अपवाद स्वरूप युगवाणी (१९३९ ई०) की 'आम्रविहग' शीर्षक कविता में कवि ने कामना की है कि अन्धविश्वास, संघर्ष, द्वन्द्व, उर के प्रमाद आदि सभी का अन्त हो।[३]

१—शृंखला की कड़ियाँ, 'हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व', पृ० ७७

२—सुदर्शन, पर्वोत्सव विवरण, 'हलषष्ठी', पृ० १६

३—पन्त, सुमित्रानंदन, युगवाणी, 'आम्रविहग', पृ० ६६

'पनघट' की 'कीर्ति का मार्ग' कहानी में सुदर्शन ने रईस व्यक्तियों की उपाधि-लोलुपता का वर्णन किया है। दीवान साहब गवर्नर महोदय को अपनी कोठी में एक शानदार डिनर देते हैं जिसमें ३००० रुपए व्यय कर देते हैं और अन्त में उन्हें उपाधि मिल जाती है।[१] उपाधियों को प्रारंभ से ही आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। काँग्रेसी-मंत्रिमंडलों के बनने पर उनकी भी नीति यही रही। साहित्य में भी प्रारंभ से ही उपाधिधारियों को उपहास की दृष्टि से देखा जाता था।

पवित्र पर्व की 'विजया' शीर्षक कविता में कवि ने कामना की है कि विजया आकर कायरता, कलहप्रियता और अनीति को दूर करे तथा वैर, फूट, कटुता, जड़ता, कलह, नीचता, दुःख, कुरुचि तथा आलस्य को नष्ट कर दे।[२] 'होली' कविता में कवि ने नवशिक्षितों से प्रश्न किया है कि क्या वे प्यार से अज्ञानियों को अपने में नहीं मिला सकते और मनोमालिन्य नष्ट नहीं कर सकते ?[३]

देश की आर्थिक अवनति का वर्णन

आर्थिक दृष्टि से समाज की अवनत-दशा के उल्लेख इस चरण के साहित्य में भी प्राप्त होते हैं। युगवाणी की 'नव संस्कृति' शीर्षक कविता में कवि ने नवीन संस्कृति का यह विवरण दिया है : जहाँ मनुज को दैन्य-जर्जर, अभाव-ज्वर-पीड़ित, गर्हित जीवनयापन न करना पड़े।[४] 'मार्क्स के प्रति' शीर्षक कविता में कवि ने मार्क्स के प्रति आदर प्रकट करते हुए कहा है कि अब उत्पादन-यंत्रों पर श्रमिकों का शासन होगा तथा वर्गहीन-सामाजिकता सब को समसाधन देगी। इस उल्लेख से उनका साम्यवाद के सिद्धान्तों में विश्वास प्रकट होता है।[५] 'कृषक' शीर्षक कविता में कवि ने कृषकों की दीन-दशा का चित्रण किया है।[६] 'श्रमजीवी' शीर्षक कविता में कवि श्रमजीवियों का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि वे दैन्य, कष्ट से कुंठित तथा भूख-प्यास से पीड़ित, भद्दी आकृति वाले हैं।[७] 'धननाद' शीर्षक

१—सुदर्शन, पनघट, 'कीर्ति का मार्ग', पृ० १७७

२—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पवित्र पर्व, 'विजया', पृ० २;

३—'होली', पृ० ५०

४—पंत, सुमित्रानंदन, युगवाणी, 'नव संस्कृति', पृ० १८;

५—'मार्क्स के प्रति', पृ० ३८;

६—'कृषक', पृ० ४५;

७—'श्रमजीवी', पृ० ४६

कविता में भी कवि लिखते हैं कि भू के अधिकारी श्रमिक हैं।[१] कृषकों तथा श्रम-जीवियों की ओर कवियों के विशेष ध्यान देने का कारण समाजवाद का प्रचार ही है।

'ग्राम्या' की 'ग्राम कवि' शीर्षक कविता में ग्रामों की दीन-दशा का वर्णन करते हुए सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं कि वहाँ सुन्दरता का क्या मूल्य, जहाँ उदर क्षुब्ध और तन नग्न है, जहाँ असंख्य जन दैन्य जर्जर पशु जघन्य क्षण बिताते हैं, जहाँ कीड़ों से मनुज-शिशु रेंगते हैं और यौवन अकाल वृद्ध है।[२] 'ग्राम चित्र' शीर्षक कविता में भी कवि लिखते हैं कि यहाँ युग-युग से अभिशापित, अन्न-वस्त्र से पीड़ित, असभ्य और निर्बुद्धि जन रहते हैं। यह भारत का ग्राम सभ्यता-संस्कृति से हीन है, यह मानव लोक नहीं, अपरिचित नरक है। यहाँ झाड़-फूस के घर हैं और ये नर-नारी कीड़ों के समान रेंगते हैं।[३] 'गाँव के लड़के' शीर्षक कविता में कवि ने ग्राम के बालकों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मिट्टी से मटमैले उनके तन हैं और अधफटे कुचैले जीर्ण वसन हैं।[४] 'भारत माता' शीर्षक कविता में कवि ने भारत की तीस करोड़ जनता के दारिद्रय का वर्णन किया है।[५] 'ग्राम देवता' शीर्षक कविता में कवि ग्रामों की दरिद्रता का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जनगण तुम्हारे पराधीन हैं और दारिद्र्य दुःख के कर्दम में कृमि सदृश्य लीन हैं।[६] इसी प्रकार 'भारत ग्राम' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि ग्राम के जन दारिद्र्य का ग्रास बने हैं।[७] साहित्यकारों ने ग्रामों को साहित्य में प्रधानता दी है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण समाजवाद और साम्यवाद के फलस्वरूप कृषक तथा श्रमजीवी वर्गों का राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेना है। दूसरा कारण यह है कि काँग्रेस ने भी रचनात्मक-कार्यक्रम में गाँवों की स्वच्छता, शिक्षा आदि समस्याओं पर ध्यान दिया था। इस सत्याग्रह में प्रारम्भ में तो केवल सत्याग्रही युद्ध-विरोधी-प्रचार करते हुए दिल्ली की ओर प्रस्थान करते थे परन्तु

१—पंत, सुमित्रानंदन, युगवाणी, 'धनवाद' पृ० ४७;
२—ग्राम्या, 'ग्राम कवि', पृ० १३;
३—'ग्राम चित्र', पृ० १६;
४—'गाँव के लड़के', पृ० २७
५—ग्राम्या, 'भारत माता', पृ० ४८;
६—'ग्राम देवता', पृ० ६०;
७—'भारत ग्राम', पृ० ९१

बाद में उन्हें अपने गाँव के प्रत्येक घर में पहले युद्ध-विरोधी प्रचार करना होता था और उसके उपरान्त दिल्ली की ओर प्रस्थान।

'चरखा गीत' शीर्षक कविता में कवि ने दरिद्रता को दूर करने के लिए चरखे के साधन में विश्वास प्रकट किया है। चरखा कहता है कि वे अगणित दरिद्रगण, जिनके पास न अन्न है, न वस्त्र, न धन, उनके लिए मैं उन्नति का साधन हूँ। देश की दरिद्रता का तम हरो। मुझे कातो, मैं स्वदेश के धन का रक्षक हूँ।[1]

'पवित्र पर्व' की 'दिव्य दीवाली' शीर्षक कविता में कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भारत की दरिद्रता का वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि हम मालपुआ कैसे खाएँ जब मुट्ठी भर चने भी नहीं मिल पाते और दीवाली कैसे मनाएँ जब दिवाला निकलता रहता है।[2]

रामकुमार वर्मा ने 'रेशमी टाई' के '१८ जुलाई की शाम' शीर्षक एकांकी में शिक्षित युवकों की बेकारी का वर्णन किया है।[3]

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' नामक उपन्यास में कई स्थलों पर देश की दरिद्रता का वर्णन है। साहबों की शिकार पार्टी के ऐश्वर्य तथा देहात की दरिद्रता का वर्णन लेखक ने किया है।[4]

'प्रबन्ध प्रतिमा' के 'चरखा' शीर्षक निबन्ध में निराला ने चरखे में आस्था प्रकट करते हुए लिखा है; 'महात्मा जी जैसे एक समाज-विधाता हैं। वे भारतीय समाज को चरखा चला कर अपना कपड़ा आप बना लेने का उपदेश देते हैं। इससे करोड़ों रुपयों की बचत और फ़ायदा देश के निवासियों को है। इससे वे परावलम्बी न रहेंगे। स्वावलंबी हो जाना ही शक्ति का सूचक है। इस तरह शक्ति-वृद्धि के साथ-साथ देशवासी स्वराज्य की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे, यह कौन

१—पंत, सुमित्रानंदन, ग्राम्या, 'चरखा गीत', पृ० ५०—५१

२—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पवित्र पर्व, 'दिव्य दीवाली', पृ० २३-२४

३—वर्मा, रामकुमार, रेशमी टाई, '१८ जुलाई की शाम', पृ० ११३

४—'इधर यह शान-शौकत का जलवा है, उधर इर्द-गिर्द गाँवों में बरसात उचट जाने से कितने घरों का टाट उलट गया है। इधर नौबत झड़ रही है, उधर सैकड़ों मड़ैयों में चूल्हे जलने की नौबत नहीं। जो तरी के खेत कहीं-कहीं बच रहे हैं, उनकी लहलहाती फसल पर साहबों के घोड़े शेर हो रहे हैं।

—सिंह, राधिकारमण प्रसाद : 'पुरुष और नारी', अध्याय १, पृ० ११

कह सकता है ?'[1] खादी और चर्खे पर इस समय बड़ा बल दिया गया। सत्याग्रहियों के लिये खादी पहनना तथा नियमित रूप से चर्खा कातना आवश्यक हो गया। साहित्यकारों ने तो प्रारम्भ से ही चरखे की शक्ति में विश्वास प्रकट किया था। इस चरण में भी साहित्यकारों ने चरखे में आस्था प्रकट की है। चरखे की महत्ता इसी से प्रकट है कि उसे राष्ट्रीय-झंडे में स्थान मिला है। गाँधी के विरोधियों ने यद्यपि उनके खादी प्रचार, चरखा कातना, हरिजनोद्धार आदि रचनात्मक-कार्यों का विरोध किया था परन्तु साहित्य में इस विरोधी-पक्ष के विचार नहीं मिलते।

सुदर्शन ने 'पर्वोत्सिव विवरण' के 'गोपाष्टमी' शीर्षक निबन्ध में गोबध पर खेद प्रकट किया है और लिखा है कि आज देश में शुद्ध दूध मिलना कठिन हो गया है। जिस पदार्थ से बच्चों और युवकों का पोषण होता, जो हमें शक्ति देता, उसी का इतना अभाव देश पर क्यों न अपना कुफल प्रकट करे।[2] सामूहिक रूप से साहित्यकारों ने भारत के दैन्य का वर्णन किया ही है साथ ही खादी और चरखे में आस्था भी प्रकट की है।

परतंत्रता सम्बन्धी उद्‌गार

परतंत्रता के कारण इस चरण के साहित्य में भी साहित्यकारों ने क्षोभ प्रकट किया है। काव्य-साहित्य में परतंत्रता सम्बन्धी उल्लेख सबसे अधिक मिलते हैं। आधुनिक युग में श्यामनारायण पांडेय का 'हल्दीघाटी' काव्य (१९४१ ई०) विशेष रूप से प्रिय हुआ। इस 'खंड काव्य' में राणा प्रताप के वीर-चरित का वर्णन है परन्तु स्वातंत्र्य-संघर्ष के इस काल में वह वर्णन परोक्ष रूप से स्वतंत्रता-संघर्ष को बल देने वाला सिद्ध हुआ। राणा प्रताप, झाला आदि महान् व्यक्तित्व स्वतंत्रता पर मर मिटने वाले हैं ?[3]

१—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध प्रतिमा, 'चरखा', पृ० ४

२—सुदर्शन, पर्वोत्सव विवरण 'गोपाष्टमी', पृ० ४७

३—'पराधीनता की बेड़ी में
रहना है स्वीकार नहीं।'

—पाँडेय, श्यामनारायण, हल्दीघाटी, पृ० १२

तथा

'स्वतंत्रता के लिए मरो'
राणा ने पाठ पढ़ाया था।

'भैरवी' की प्राय: सभी कविताओं में कवि सोहन लाल द्विवेदी ने परतंत्रता पर क्षोभ तथा स्वतंत्रता से प्रेम प्रकट किया है। 'प्रयाण गीत', 'मुक्ता', 'हल्दी-घाटी' तथा 'राणा प्रताप के प्रति' आदि सभी कविताओं में उन्होंने स्वतंत्रता की महत्ता स्वीकार की है। उनकी स्वतंत्रता की कामना अधिकांश कविताओं में प्रकट हुई हैं।[१]

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास पर स्वातंत्र्य-आँदोलन का बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास का नायक अजीत स्वातंत्र्य-युद्ध में भाग लेने के लिये कालेज से नाम कटा लेता है और सम्पूर्ण जीवन देश को अर्पित कर देता है। वैसे तो सम्पूर्ण पुस्तक में ही परतंत्रता के विरुद्ध काँग्रेस के युद्ध का वर्णन है परन्तु कई स्थलों पर परतंत्रता का स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। प्रोफेसर शिवदयाल कहते हैं 'आज तो देश त्रिदोष में गिरफ़्त है—गुलामी, गरीबी और बेकारी।[२]

इसी वेदिका पर वीरों ने
अपना शीश चढ़ाया था॥
तुम भी तो उनके वंशज हो,
काम करो, कुछ नाम करो।
स्वतंत्रता की बलि वेदी है,
झुककर इसे प्रणाम करो॥"

—पाँडेय, श्यामनारायण, हल्दीघाटी, पृ० १९

१—'गूंजे स्वतंत्रता की तानें
गंगा के मधुर बहावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में।'

—द्विवेदी, सोहनलाल, भैरवी, 'गाँवों में'

तथा

'बढ़ जायें चालिस करोड़ फिर
बल के मधुमय झूलों पर,
मेरी माँ भी चले विहंसती
आजादी के फूलों पर।'

—द्विवेदी, सोहन लाल, भैरवी, 'आजादी के फूलों पर', पृ० ६८

२—सिंह, राधिकारमण प्रसाद, 'पुरुष और नारी', अध्याय १, पृ० ९

उद्‌बोधन

कवि सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में उद्‌बोधन के गीत भी मिलते हैं। भैरवी की सभी कवितायें राष्ट्रीय-भावनाओं से ओत-प्रोत हैं और काव्य-कला की दृष्टि से भी उच्च कोटि की हैं। 'सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी' कविता में भारत के प्राचीन वैभव का वर्णन करके कवि ने भारतीयों को जगाने का प्रयास किया है।[1] 'प्रभाती' में भी कवि न ऋषियों की सन्तान को जागृति का सन्देश दिया है।[2] 'जय जय जय!' तथा 'बढ़े चलो! बढ़े चलो!' आदि कई प्रयाण-गीत भी इसी संग्रह में हैं।

ब्रिटिश-शासन से असंतोष

इस चरण के साहित्य में भी कवियों ने ब्रिटिश शासन की निन्दा की है। 'वैदेही वनवास' में 'दमन' का बार-बार उल्लेख ब्रिटिश-शासन की दमन-नीति की ओर संकेत करता है।[3] ब्रिटिश शासन से असंतोष 'हिमकिरीटिनी' (१९४१ई०) की 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता में भी व्यक्त हुआ है। कवि लिखते हैं –

'काली तू, रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली[4]

इसी कविता में राजनीतिक-कैदियों की दशा का चित्रण कवि ने किया है।[5]

समकालीन घटनाओं, समस्याओं तथा व्यक्तियों के उल्लेख

समकालीन परिस्थितियों का उल्लेख इस काल के साहित्य में भी बहुत मिलता है। 'युगवाणी' की 'साम्राज्यवाद' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि

१—द्विवेदी, सोहन लाल, भैरवी, 'सुना रहा हू तुम्हें भैरवी', पृ० ११०-११३;
२—'प्रभाती', पृ० ११७-११८।
३—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'वैदेही वनवास', तृतीय सर्ग, पृ० ५०
४—चतुर्वेदी, माखनलाल, हिम किरीटिनी, 'कैदी और कोकिला', पृ० १८
५—'क्या—देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूं ?—जीवन की तान,
गिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान ?'
—'कैदी और कोकिला', पृ० १७

पूँजीवाद-निशा समाप्तप्राय है और साम्राज्यवाद मरणोन्मुख है।[१] 'समाजवाद-गांधीवाद' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि गांधीवाद जगत् में मानवता का नया मान लेकर सत्य-अहिंसा से मनुजोचित नई संस्कृति निर्माण करने आया।[२]

'भैरवी' में कवि सोहन लाल द्विवदी ने 'दाँडी यात्रा' शीर्षक कविता में महात्मा गाँधी और उनके अनुयायियों की दांडी यात्रा का वर्णन किया है। वे लिखते हैं :—

> 'नवयुग का नव आरंभ हुआ
> कुछ नये निमक के टुकड़ों पर।
> आजादी का इतिहास लिखा
> दाँडी के कंकड़ पथरों पर।[३]

'त्रिपुरी काँग्रेस' शीर्षक कविता में कवि ने त्रिपुरी की काँग्रेस का वर्णन किया है तथा 'जय राष्ट्रीय निशान' शीर्षक कविता में राष्ट्रीय झंडे का जयगान है। 'प्रार्थना' में हरिजनों ने मंदिर खोलने की प्रार्थना की है। 'भैरवी' की अधिकांश कविताओं को ग्रामों तथा ग्राम-जीवन से प्रेरणा प्राप्त हुई है। ग्रामों के सीधे सरल जीवन की ओर गांधीवाद ने ही जनता को आकृष्ट किया। फलस्वरूप 'झोंपड़ियों की ओर' जैसी कविताओं की सृष्टि हुई जिनमें कवि ने आग्रह किया है कि हम लोग हमलों को भूलें और झोंपड़ियों की ओर चलें।[४] 'गाँवों में' शीर्षक कविता में कवि ने ग्राम-जीवन का एक रेखा-चित्र प्रस्तुत किया है।[५]

'किसान' शीर्षक कावता में किसानों की महान् शक्ति की ओर संकेत करते हुये कवि लिखते हैं :—

१—पंत, सुमित्रानन्दन, युगवाणी, 'साम्राज्यवाद', पृ० ४०
२—'समाजवाद-गाँधीवाद, पृ० ४१
३—द्विवेदी, सोहन लाल, भैरवी, 'दाँडी यात्रा,' पृ० ७६
४—'झोपड़ियों की ओर', पृ० १८
५—'पी गया रक्त, खा गया माँस
रे कौन स्वार्थ के दाँवों में!
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ!
वह बसा हमारे गाँवों में।'
—गाँवों में, पृ० १५

'यदि हिल उठ तू ओ शेष नाग ।
हो ध्वस्त पलक में राज्य-भाग ,
सम्राट् निहारें, नींद त्याग ,
है कहीं मुकुट, तो कहीं पाग !'[१]

इसी प्रकार सोहन लाल द्विवेदी की चित्रा (१९४२ ई०) की दो कवितायें 'ग्राम-कन्या' तथा 'ग्राम बन्धु' ग्राम-जीवन की ही हैं। 'हिम किरीटिनी' की 'बन्धन-सुख' तथा 'निःशस्त्र सेनानी' शीर्षक कवितायें सत्याग्रहियों पर लिखी गई हैं। उन्हें बलि-पशु की उपमा दी गई है और उनके अहिंसात्मक होने का भी उल्लेख किया गया है।[२]

मैथिलीशरण गुप्त की 'विश्ववेदना' (१९४२ ई०) कविता का विषय विश्व युद्ध है। कवि ने शासन की दुरवस्था का वर्णन तथा पूँजीवाद की निन्दा की है। १९४० ई० के सत्याग्रह का आधार वाणी स्वातंत्र्य तथा द्वितीय-महायुद्ध का विरोध ही था। इसीलिये साहित्यकारों ने भी द्वितीय महायुद्ध का वर्णन किया है।

सुदर्शन ने 'झंकार' के गीतों में ग्राम-सुधार का कार्यक्रम उपस्थित किया है।[३] 'शराबी' कविता में उन्होंने मद्यपान का विरोध किया है।[४]

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'धीरे-धीरे' नाटक में निष्पक्ष रीति से देश की राजनीतिक दशा का चित्रण किया है। उनकी सहानुभूति किस वर्ग विशेष के साथ है इसका आभास नहीं मिलता। समस्याओं का कोई हल भी उन्होंने नहीं उपस्थित किया है। जमींदार, किसान, मजदूर आदि सभी वर्गों की अपनी समस्यायें हैं। नाटक में कानून-भवन लखनऊ का भी एक दृश्य है। वहाँ जो भारतीय सदस्य हैं वे भी देश के लिये कुछ कर नहीं पाते। नाटककार की पूर्ण सहानुभूति इन सदस्यों के साथ भी नहीं है। वे लोग भी अपने वोटरों पर आश्रित हैं और उनके आपसी झगड़े चलते रहते हैं। सेना पर अधिक व्यय हो जाने के कारण अन्य

१—द्विवेदी सोहन लाल, भैरवी, 'किसान', पृ० २८

२—चतुर्वेदी, माखनलाल, हिम किरीटिनी, 'निःशस्त्र सेनानी', पृ० ९५

३—'बुलाती है धरती हमें गाँओं की,
बुलाती है खुशियाँ घनी छाओं की,
उठो गर्द झाड़ो जरा पाओं की,
मेरे पीछे पीछे चले आओ तुम।'
—सुदर्शन, झंकार, 'एक ग्राम सुधारक', पृ० १०

४—'शराबी', पृ० ५७

उपयोगी खर्चों के लिये पैसा नहीं बचता। इस नाटक में नाटककार ने दिखाया है कि पुलिस कुछ भी कार्य नहीं करती। पुलिस-विभाग में रिश्वत सबसे बड़ी वस्तु है। उसके अतिरिक्त न कोई सत्य है, न कर्त्तव्य।

सेठ गोविन्ददास ने 'विकास' (१९४१ ई०) नाटक में गाँधी-नीति तथा सत्याग्रह की व्याख्या की है। वे लिखते हैं 'गाँधी ने अन्याय पर विजय प्राप्त करने के लिये एक नवीन मार्ग 'सत्याग्रह' का अनुसंधान किया है। इसमें पाशविक बल नहीं, किन्तु आत्मिक-बल की आवश्यकता है। संसार के अब तक के इतिहास से यही सिद्ध होता है कि जो आज अपने को न्यायशाली कह पाशविक बल का उपयोग कर अन्यायियों का दमन करते हैं वे स्वयं समय पाकर अन्यायी हो जाते हैं। गाँधी के मार्ग में यह बात हो ही नहीं सकती।'[1]

'निराला' के 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१९४१ ई०) शीर्षक उपन्यास में उल्लेख है कि बिल्लेसुर हिन्दुस्तान की जलवायु के अनुसार सविनय-कानून भंग कर रहे थे।[2]

वृन्दावन लाल वर्मा के 'प्रत्यागत' उपन्यास में खिलाफत-आन्दोलन का वर्णन है परन्तु गौण रूप से। उपन्यास में मंगल खिलाफ़त कमिटी का संयुक्त मंत्री है, वह खिलाफ़त-आन्दोलन में भाग लेता है और अपना घर छोड़कर मलाबार जाता है। वहाँ मोपला-विद्रोह में मुसलमान उसका धर्म परिवर्तन कर देते हैं। इन सभी बातों का वर्णन पुस्तक में गौण रूप से हुआ है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास पर समकालीन घटनाओं का प्रभाव सबसे अधिक है क्योंकि कथानक का मुख्य आधार ही राजनीति है। इसका वर्णन तो पहले ही है कि अजीत देश की माँग पर कालिज से नाम कटा लेता है। आगे भी लेखक समकालीन परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन करते हैं।[3] महात्मा जी के अवधि तक दे देने का उल्लेख भी उपन्यासकार ने

१—गोविन्द दास, सेठ, 'विकास', पृ० ११३-११४

२—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'बिल्लेसुर बकरिहा', परिच्छेद २, पृ० ९

३—'महात्मा की समाधि टूट गई। गाँधी ने अहिंसा के मंत्र पर सत्याग्रह ब्रह्मास्त्र का फिर आवाहन किया। 'डांडी मार्च' की घोषणा वज्र टंकार की तरह देश के ज़र्रे-ज़र्रे पर कौंध गई।' इसके आगे भी उपन्यासकार लिख हैं: 'देश की परिस्थिति घंटे-घंटे बदल रही है। गाँधी-अर्विन पैक्ट के टाँके टूट चुके हैं। म्यान से झाँकती तलवार की मूठ पर हाथ रखकर दोनों ओर से पैंतरेबाजी काफ़ी हो चुकी है।' ....

किया है।[1] पहले अध्याय में ही लेखक राजनीतिक-परिस्थिति का वर्णन करते हैं।[2]

देश की दशा का वर्णन लेखक इस प्रकार करते हैं:—

'खादी चली, पर विदेशी माल की खपत न मिटी। शराब रुकी, पर भट्ठी की भट्ठी जलती ही रह गई। सफ़ाई की दुहाई तो भयी पर गन्दगी की पसली चूर-चूर न हुई। गाँव-गाँव पाठशालायें तो खुलीं, मगर भैंस चराने वालों को शिक्षा चरा न सकी। जगह-जगह पंचायत भी चली, पर पुलिस और पटवारी का रवैया ज्यों का त्यों बना रहा।'[3]

उपन्यासकार ने अहिंसा में आस्था प्रकट की है। वे लिखते हैं: 'ब्रिटिश

'महात्मा गाँधी लंदन से बैरंग वापस आये हैं—नन्दन की सैर कर। नाम तो बना, काम कुछ न बना। गोलमेज़ की सेज पर भारत का भाग्य सो गया। महात्मा गाँधी ने भारत की भूमि पर कदम रखा और पैरों में जंजीर पड़ गई। नज़र भी न मिला पाये कि नज़र बन्द कर दिये गये।'

—सिंह, राधिकारमण प्रसाद, 'पुरुष और नारी', अध्याय ७, पृ० ९०

'दमन का बाज़ार फिर गर्म हुआ। गर्म क्या हुआ, भभक उठा। नौकर-शाही ने नादिरशाही के कूचे में कदम रखा।'

—'पुरुष और नारी', अध्याय ११, पृ० १३६

१—'पुरुष और नारी', अध्याय १५, पृ० १८०

२—'१९२० साल। जालियाँवाला बाग की आग अभी बुझी नहीं है। महात्मा गाँधी ने राष्ट्र के अन्तर में नवीन चेतना का जादू फूंका है।'

—'पुरुष और नारी', अध्याय १, पृ० ४

चौथे अध्याय में वे लिखते हैं: 'देश की आबोहवा आज शिथिल है। असहयोग का बवन्डर चौरी-चौरा में दफ़न हो चुका है। वह टूटकर मर मिटने की लहर मिटी तो नहीं, मगर तड़प-झड़पकर पट पड़ गई है। भारत आँख तो मल रहा है, पर अभी उठ नहीं सका है। हाँ, सार्वजनिक जीवन की नैतिक मर्यादा ऊँची उठी है, गाँधी टोपी की बन्दा-नेवाज़ी लोगों के दिल में लौ लगा चुकी है।'

—'पुरुष और नारी', अध्याय ४, पृ० ६७

३—अध्याय ५, पृ० ७५

शेर के पंजों से झंझोरी हुई भारत की मर्यादा आज इस अहिंसा की संजीवनी न पाती, तो कहीं की न रहती।[१] अधिकांश साहित्यकारों ने इसी प्रकार गांधी-वादी नीति में ही विश्वास प्रकट किया है। यह इसलिये महत्वपूर्ण है कि देश में इस समय कई दल थे जो गाँधीवाद का विरोध कर रहे थे।

यशपाल के 'दादा कामरेड' (१९४१ ई०) उपन्यास में क्रान्तिकारी-दल का वर्णन है जो देश की स्वतंत्रता के लिये उद्योग कर रहा था। उपन्यास का नायक हरीश और नायिका शैलबाला दोनों ही इस दल के सदस्य हैं। हरीश अपने दल के सम्बन्ध में कहता है कि हम लोगों ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं केवल देश की स्वतंत्रता के लिये यत्न कर रहे हैं।[२] दूसरी ओर उपन्यास के एक अन्य पात्र काँग्रेस की विचारधारा में विश्वास रखने वाले हैं। उनका विचार है कि 'पच्चीस बरस में इन क्रान्तिकारियों ने करा ही क्या? जो जागृति देश में गांधी जी ने दस वर्ष में फैला दी उसे यह क्रान्तिकारी एक सदी में नहीं फैला सकते थे। सरकार के मुकाबिले में इनके दस-पाँच बम और पिस्तौल कर ही क्या सकते हैं—जिस सरकार की शस्त्र-शक्ति का अंत नहीं, इन फुलझड़ियों से उसका क्या बिगड़ सकता है? पतंगों की तरह जल-मरना हो तो दूसरी बात है।'[३] यह उल्लेख क्रान्तिकारी-दल तथा काँग्रेस के विरोध का यथातथ्य चित्र उपस्थित करता है।

'निराला' ने 'सुकुल की बीबी' (१९४१ ई०) कहानी-संग्रह की 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' शीर्षक कहानी में देश के राष्ट्रीय-आन्दोलन का उल्लेख किया है। स्त्रियों के पिकेटिंग करने का भी उल्लेख है।[४]

'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक निबन्ध-संग्रह में 'आधुनिक नारी—उसकी स्थिति पर एक दृष्टि' शीर्षक निबन्ध के दूसरे भाग में लेखिका महादेवी वर्मा ने आधुनिक काल की प्रतिनिधि नारियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। उन्होंने पहली श्रेणी में उन नारियों को रक्खा है जिन्होंने अपने युगान्तर दीर्घ बन्धनों की अवज्ञा कर पिछले कुछ वर्षों में राजनीतिक-आन्दोलन को गतिशील

१—सिंह, राधिकारमण प्रसाद सिंह, 'पुरुष और नारी', अध्याय २, पृ० २१

२—यशपाल, 'दादा कामरेड', अध्याय १, पृ० ११;

३—अध्याय २, पृ० २३

४—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, सुकुल की बीबी, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', पृ० ५९

बनाने के लिये पुरुषों को अभूतपूर्व सहायता दी।[१] इस प्रकार सत्याग्रह-आंदोलन में स्त्रियों के भाग लेने के उल्लेख इस चरण के साहित्य में मिलते हैं।

निराला के 'कुल्लीभाट' (१९३९ ई०) में भी समकालीन परिस्थितियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। लेखक ने उस समय की परिस्थिति का वर्णन करते हुये लिखा है कि 'देश में पहला असहयोग-आंदोलन जोरों पर था। खलिहानों में बैठे हुये किसान जमींदारों से बचने के लिये रह रहकर 'महात्मा गाँधी की जय' चिल्ला उठते थे।'[२] सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के समाप्त हो जाने, अछूतोद्धार की समस्या का तथा रायबरेली में नमक-कानून तोड़े जाने के उल्लेख भी हैं।[३] लेखक ने इसका उल्लेख भी किया है कि महात्मा जी ने साल भर के लिये अछूतो-द्धार का कार्य ग्रहण किया है और वे देश के एक कोने से दूसरे कोने तक दौरा करेंगे।[४]

देश के नेताओं के प्रति इस चरण में कवियों ने आदर प्रकट किया। 'युगवाणी' की पहली कविता 'बापू' में कवि ने बापू के प्रति श्रद्धा और आदर प्रकट किया है। कवि लिखते हैं कि तुम नई संस्कृति के दूत हो और देवताओं का कार्य करने तथा आत्मा के उद्धार के लिये यहाँ आये हो।[५]

'ग्राम्या' की 'महात्मा जी के प्रति' शीर्षक कविता में कवि सुमित्रानन्दन पंत ने गांधी जी के प्रति आदर और उनके सिद्धान्तों में विश्वास प्रकट किया है। कवि लिखते हैं कि हे दलित-देश के दुर्दम नेता, हे ध्रुववीर, धुरंधर, आत्मशक्ति से तुमने जाति के शव को जीवन-बल दिया। तुम्हारे श्री चरणों से धरा आज चिरपावन है।[६] 'बापू' शीर्षक कविता में भी कवि लिखते हैं कि आज विश्व को भाव का नवोन्मेष चाहिये। मानव के उर में पुनः मानवता का प्रवेश हो। बापू, तुम पर आज संसार की आँखें लगी हैं, क्या तुम मानव-बंधन नहीं खोल जाओगे।[७]

१—वर्मा, महादेवी, शृंखला की कड़ियाँ, 'आधुनिक नारी—उसकी स्थिति पर एक दृष्टि', पृ० ४७

२—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'कुल्लीभाट', परिच्छेद १०, पृ० ८४;

३—परिच्छेद १२, पृ० ९१;

४—परिच्छेद १३, पृ० १०५

५—पंत, सुमित्रानन्दन, युगवाणी, 'बापू', पृ० १३

६—ग्राम्या, 'महात्मा जी के प्रति', पृ० ५२-५३

७—युगवाणी, 'बापू', पृ० ९५

सोहन लाल द्विवेदी ने 'भैरवी' की 'तरुण तपस्वी' शीर्षक कविता में जवाहर-लाल नेहरू और 'सेगाँव का सन्त' में गाँधी जी का यशोगान किया है।[1] पुस्तक की अधिकांश कविताओं में कवि ने महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है।

माखनलाल चतुर्वेदी ने 'हिम किरीटिनी' की 'तिलक' शीर्षक कविता में तिलक के देहान्त पर दुख प्रकट किया है।[2]

'प्रबन्ध प्रतिमा' के 'महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर' शीर्षक लेख में निराला ने लिखा है 'देश में महिलाओं, पतितों तथा ब्राह्मणेतर जातियों के अधिकार के लिये महर्षि दयानन्द तथा आर्य-समाज से बढ़ कर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया।[3] लेखक यह भी कहते हैं कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भी दयानन्द एक प्रवर्तक हैं।

राष्ट्रीयता का स्वरूप

यद्यपि यह समय हिन्दू-जातीयता का नहीं था और लगभग सभी राजनीतिज्ञ और साहित्यकार देश की समस्याओं पर राष्ट्रीय-दृष्टिकोण से विचार करते थे परन्तु अयोध्यासिंह उपाध्याय की जातीयता की भावना में कोई परिवर्तन नहीं दृष्टिगोचर होता। उनकी कविताओं में जाति-प्रेम विशेष रूप से व्यक्त हुआ है। 'विजया' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि विजया हमें जाति-प्रेम के महा-मंत्र से मुग्ध बनाये और उर में नव जातीय-भाव की ज्योति जगाये। इसी शीर्षक के अंतर्गत द्विपद में कवि लिखते हैं कि :—

१—द्विवेदी, सोहनलाल, भैरवी, 'तरुण तपस्वी', पृ० ४२-४३ तथा 'सेगाँव का सन्त', पृ० ४४-४६

२—'क्यों आर्य देश के तिलक चले,
क्यों कमज़ोरों के ज़ोर चले !
तुम तो सहसा उस ओर चले,
यह भारत माँ किस ओर चले ?'

—चतुर्वेदी, माखनलाल, हिमकिरीटिनी, 'तिलक', पृ० ८२

३—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध प्रतिमा, 'महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर', पृ० ५४

४—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पवित्र पर्व, 'विजया', पृ० १

'जातिहित में शिथिल हुए जन की ।
है शिथिलता हरी विजय दशमी ।[1]

'होली' शीर्षक कविता में कवि ने जातीयता की भीतें ढह जाने पर क्षोभ प्रकट किया है और नवशिक्षितों से पुनः जातीयता को जिलाने का आग्रह किया है । कवि के विचार से जाति ही अपनी जाति का भला कर सकती है । यदि जाति अपने पर्व-उत्सवों की प्रेमधारा में न बही तो वह नाम को ही संसार में जीती रहेगी । जाति अपने कीर्ति-चिह्नों को मिटाकर कभी नहीं जी सकती ।[2] 'होलिकादहन' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं—

'रंगो रंग में उमग अबीर गुलाल लगावो ।
किन्तु अधिक जातीय रंगतों को दिखलावो ॥'[3]

'कमनीय कामना', 'कुमकुमे', 'होली के हथकंडे', 'होली के स्वाँग', 'चेतावनी' आदि अनेक ऐसी कवितायें इस संग्रह में हैं जिनसे कवि का हिन्दू जाति तथा धर्म से प्रेम प्रकट होता है ।

'हरिऔध' के विपरीत मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू-जातीयता के दृष्टिकोण को लेकर काव्य रचना प्रारम्भ करते हैं परन्तु धीरे-धीरे उनके दृष्टिकोण में बहुत परिवर्तन होता है । हिन्दू-मुसलिम-एकता उत्पन्न करने के लिये वे मुहम्मद साहब के जीवन की घटनाओं पर काव्य रचना करते हैं। काबा और कर्बला (१९४२ ई०) में मुहम्मद साहब के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं पर कवितायें हैं जिनसे उनकी उदारता तथा उनके विचारों की महानता प्रकट होती है । कवि का विचार है कि हमें उदार तथा सहिष्णु होना चाहिये जिससे हमारा आपस का प्रेम-परिचय बढ़े । सामूहिक रूप से इस चरण के साहित्य पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का प्रभाव अत्यल्प दिखाई पड़ता है। राष्ट्रीय-आन्दोलन से प्रभावित रचनायें इस चरण के साहित्य में कम हैं । इसका प्रमुख कारण साहित्य में छायावाद तथा रहस्यवाद की प्रतिष्ठा है । यद्यपि १९४० ई० का सत्याग्रह तथा सन् ४२ का का आन्दोलन आदि महत्वपूर्ण घटनायें इस समय घटीं परन्तु साहित्य में उनके उल्लेख नहीं मिलते । राष्ट्रीय-आन्दोलन का रूप वैधानिक अधिक होता गया ।

१—हरिऔध, अयोध्यासिंह उपाध्याय पवित्र पर्व, 'विजया', पृ० ४;
२—'होली', पृ० ५०-५१;
३—'होलिकादहन', पृ० ५३

यह भी एक कारण है जिससे साहित्य, राष्ट्रीय-आन्दोलन से बहुत प्रभावित नहीं हुआ। इस समय गाँधी-नीति का भी विरोध सुभाष वसु जैसे नेताओं ने किया परन्तु साहित्यकारों ने गाँधी-नीति में ही आस्था प्रकट की है। द्वितीय महायुद्ध के महत्वपूर्ण उल्लेख भी इस चरण के साहित्य में नहीं प्राप्त होते।

अध्याय ६

स्वराज्य-पूर्व की राजनीतिक परिस्थिति और तत्कालीन हिन्दी-साहित्य

(१९४२-१९४७ ई०)

●

१९४२ ई० की क्रान्ति ने सभी स्थानों पर अपना प्रभाव दिखाया। बिहार में तो कुछ समय के लिये शासन ही जनता के हाथ में चला गया। इस आन्दोलन की सच्ची खबर इंग्लैंड तक नहीं पहुँचाई जाती थीं और वहाँ यही बताया जाता था कि भारत का अधिकांश भाग द्वितीय महायुद्ध का समर्थन करने वाला है। १९४२ ई० के आन्दोलन की ज़िम्मेदारी काँग्रेस के सिर मढ़ी गई।

जिन्ना ने यह घोषित किया कि यह आन्दोलन हिन्दुओं को सत्ता सौंपने के निमित्त ब्रिटिश-सरकार को बाध्य करने के लिये किया गया है इसीलिये मुसलिम-लीग ने अपनी पाकिस्तान की माँग रक्खी। मुसलिम-लीग ने एक समिति की भी स्थापना की जिसका काम भारत में मुसलमानों का संगठन करना था और पाकिस्तान-प्राप्ति के लिये भावी संग्राम हेतु उन्हें तैयार करना था। मुसलिम-लीग ने यह भय भी प्रकट किया था कि काँग्रेस का ध्येय सत्ता को हिन्दू-हाथों में लेकर सरकार को उन वचनों का पालन न करने देना था जो उसने अल्प-संख्यक मुसलमानों को दिये थे। इसलिये 'बट के रहेगा हिन्दुस्तान' मुसलिम-लीग का नारा बन गया।

गाँधी जी ने १० फरवरी, १९४३ ई० से इक्कीस दिन का उपवास प्रारम्भ किया और सारा भारत चिन्ता के सागर में डूब गया। सरकार ने गाँधी जी को छोड़ने से तब तक इनकार कर दिया जब तक अगस्त का प्रस्ताव वापस न लिया जाय। सरकार के इस रुख के कारण वाइसराय की कार्यकारिणी-समिति से तीन व्यक्तियों ने त्यागपत्र दे दिया। गाँधी जी का उपवास इक्कीस दिन के उपरान्त सकुशल समाप्त हो गया। गाँधी जी के उपवास तथा उसकी समाप्ति पर सोहनलाल द्विवेदी ने काव्य रचना की है।

अक्टूबर १९४३ में लार्ड लिंगलिथगो का स्थान लार्ड वैवेल ने ग्रहण किया। उनके आने से भारतीयों में पुनः आशा का संचार हुआ। इधर साम्प्रदायिक-वैमनस्य तीव्रता पर था। देश में महंगी बढ़ती जा रही थी और जनता के कष्ट का कोई अंत नहीं था। चोरबाजारी और रिश्वत का बाजार गर्म था। इसी समय बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। भयानक नर-संहार से जनता क्षुब्ध हो गई। बंगाल के अकाल का वर्णन हिन्दी साहित्य में भी हुआ।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने काँग्रेस छोड़ दी थी परन्तु वह लीग से समझौता करने का प्रयत्न कर रहे थे। ६ मई, १९४४ को गाँधी जी छोड़ दिये गये। राजगोपालाचारी, जिन्ना और गाँधी जी में आपस में समझौते की बातचीत चल रही थी। काँग्रेस और लीग ने मिलकर केन्द्रीय-धारा-सभा में एक अर्थ-बिल को अस्वीकार कर दिया था जिससे समझौते की आशा बंधने लगी। परन्तु अंत में गाँधी-जिन्ना-राजगोपालाचारी समझौता नहीं हो सका। इससे देश में बड़ी निराशा फैली। मार्च १९४५ में लार्ड वैवेल इंगलैंड गये और जून में लौटे। काँग्रेस के नेताओं को जेल से मुक्त कर दिया गया और शिमला में लार्ड वैवेल ने जिन्ना और काँग्रेस नेताओं से बातचीत प्रारम्भ की। इस बातचीत का भी कोई परिणाम न निकला और राजनीतिक स्थिति वैसी ही रही।

इंगलैंड में इसी बीच चुनाव हुआ और लेबर-दल चुनाव जीत गया। क्लीमेंट एटली प्रधानमंत्री बने।

'इंडियन नेशनल आर्मी' के कैप्टन सहगल, कैप्टन शाह नवाज़ तथा अन्य व्यक्तियों पर दिल्ली में विश्वासघात के अभियोग में मुकदमा चलाया जा रहा था। 'इंडियन नेशनल आर्मी' के व्यक्तियों और कार्यों ने भारतीय-जनता को अपनी ओर बहुत आकृष्ट किया। 'जयहिन्द' का भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक प्रचार हो गया और उसने 'वन्देमातरम्' का स्थान ले लिया। सुभाष-चन्द्र वसु के वीरतापूर्ण कार्यों से भी जनता अत्यधिक प्रभावित हुई। अभियुक्तों

के बचाव के लिये काँग्रेस-नेताओं तक ने वकालत की और सारे देश में जोश तथा उत्साह उमड़ पड़ा। इन अभियुक्तों के छूट जाने के बाद जनता का जोश शान्त हो गया। साहित्य में सुभाष वसु के प्रति तो आदर प्रकट किया भी गया है परन्तु 'इंडियन नेशनल आर्मी' के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण उल्लेख नहीं प्राप्त होते।

इंगलैंड की सरकार ने लार्ड वैवेल को इंगलैंड बुलाया जो वहाँ से सितम्बर १९४५ में लौटे। लौटकर उन्होंने ब्रिटिश सरकार का यह इरादा घोषित किया कि विधान बनाने वाली सभा शीघ्र ही बुलाई जायेगी और उस समय तुरन्त वाइ-सराय की कार्यकारिणी-समिति प्रमुख भारतीय-दलों की सम्मति से पुनस्संगठित की जायेगी। केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं के लिये जो चुनाव हुए उनमें काँग्रेस और लीग का बहुमत रहा। सिन्ध और बंगाल के अतिरिक्त अन्य सभी प्रान्तों में काँग्रेस मंत्रिमंडल बन गये। पंजाब में कई दलों का सम्मिलित मंत्रि-मंडल बना। १९४६ में कैबिनेट सदस्यों का एक कैबिनेट मिशन भारतीय परि-स्थितियों और समस्याओं की जानकारी के लिये भारत आया। काँग्रेस और लीग प्रतिनिधियों से इस मिशन ने बातचीत की और कई प्रमुख व्यक्तियों से भेंट की। जून १९४६ में यह कैबिनेट मिशन इंगलैंड लौट गया। १६ मई, १९४६ को इसने अपना निर्णय, 'अवार्ड' घोषित किया। यद्यपि सभी दलों ने इसकी आलोचना की फिर भी इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस योजना में दो प्रकार की योजनायें थीं, एक तो तात्कालिक और दूसरी दीर्घकालीन।

जुलाई १९४६ में विधान-निर्माण-कारिणी सभा के लिये चुनाव हुआ। इस चुनाव में अधिकांश वोट काँग्रेस को मिले। लीग ने योजना के लिये अपनी स्वीकृति वापस ले ली। फलस्वरूप तात्कालिक योजना भी कार्यान्वित न हो सकी। १६ अगस्त को मुस्लिम-लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिये 'डायरेक्ट एक्शन' का दिन नियत किया।

जुलाई में लार्ड वैवेल ने तात्कालिक सरकार के बनाने में सहयोग देने के लिये कांग्रेस तथा लीग दोनों को फिर निमंत्रण दिया परन्तु लीग ने अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों योजनाओं को अस्वीकार कर दिया। अतः अगस्त में लार्ड बेवेल ने काँग्रेस के सभापति नेहरू से सरकार में सम्मिलित करने के लिये सदस्यों के नाम की सूची माँगी। नेहरू ने जिन्ना से सहयोग करने का पुनः प्रयत्न किया परन्तु वह असफल रहा अतः नेहरू ने सात नामों की एक सूची भेजी। इसको वाइसराय ने स्वीकार कर लिया और तात्कालिक सरकार बन गई।

मुसलिम-लीग द्वारा १६ अगस्त 'डायरेक्ट एक्शन' का दिन नियत हुआ था। उस दिन हड़ताल हुई और हिन्दुओं को मारना तथा लूटना प्रारम्भ हो गया। कलकत्ते में चार दिन तक लूट-मार होती रही और लगभग तीन हज़ार व्यक्ति मारे गये। हज़ारों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। अशान्ति का साम्राज्य छा गया। यद्यपि इस समय हिन्दू-मुसलिम दंगे बहुत हुए परन्तु इस भयानक मारकाट का भी वर्णन इस चरण के साहित्य में अधिक नहीं प्राप्त होता है।

अब जिन्ना ने तात्कालिक सरकार में सहयोग देने का निश्चय किया और मुस्लिम लीग के पाँच सदस्य भी सम्मिलित हो गये। परन्तु इसके पहले ही सारे भारत में दंगे प्रारम्भ हो गये। १५ अक्टूबर, सन् १९४६ को नोआखली में भयानक दंगे हुए। नोआखाली से भाग-भाग कर हिन्दू बिहार आये और उन पर अत्याचार की कथाओं ने हिन्दुओं को भी उत्तेजित कर दिया। प्रतिदिन के दंगे भारत के लिये साधारण बात हो गई। गाँधी जी ने नोआखाली, बिहार, कलकत्ता आदि स्थानों में जाकर शान्ति स्थापित करने के अथक प्रयत्न किए और बहुत अंशों में वे सफल भी हुए फिर भी हिन्दुओं और मुसलमानों में द्वेष इतना अधिक बढ़ गया था कि उनमें मेल हो सकना असंभव दिखाई देता था।

९ दिसम्बर को नई दिल्ली में विधान निर्माणकारिणी सभा की बैठक हुई। मुस्लिम-लीग ने दीर्घकालीन योजना को अस्वीकार कर दिया और इस विधान निर्माणकारिणी सभा का पूर्ण बहिष्कार किया। मुस्लिम-लीग ने पाकिस्तान का विधान बनाने के लिए अलग सभा की माँग की।

प्रधानमंत्री एटली ने २० फ़रवरी, १९४७ को घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का इरादा सत्ता को उत्तरदायी भारतीयों को सौंपकर जून १९४८ ई० तक भारत का शासन छोड़ देना था, चाहे भारत के विभिन्न दलों में समझौता हो अथवा न हो। पंजाब में भयानक दंगे प्रारम्भ हो गये थे और साम्प्रदायिक-द्वेष चरम सीमा पर था। इसी समय लार्ड वैवेल के स्थान पर लार्ड माउंटबेटेन वाइसराय नियुक्त हुए। ३ जून, १९४७ को भारत के बंटवारे के लिए माउंटबेटेन योजना की घोषणा की गई। तत्कालीन परिस्थिति में यह योजना विभिन्न-दलों में अच्छा समझौता थी अतः सभी दलों ने इसे स्वीकार कर लिया। इस योजना के अनुसार इंडियन इंडिपेन्डेन्स ऐक्ट जुलाई में बना जिसके अनुसार भारत और पाकिस्तान १५ अगस्त को स्वतंत्र हो गए और सत्ता, विधान-

निर्माणकारिणी सभाओं के हाथों में चली गयी।

राजनीतिक दृष्टि से १९४२ से १९४७ ई० का समय भारत में महत्व-पूर्ण परिवर्तनों और भयानक अशान्ति का था। क्रमशः राजनीति में वैधानिकता की प्रधानता होती गई फिर भी राजनीतिक-क्षेत्र की घटनाएँ ऐसी थीं जिनसे जनता अधिक प्रभावित हुई। १९४२ ई० की क्रान्ति, इंडियन नेशनल आर्मी के उत्तेजक कार्य, मुसलमानों द्वारा पाकिस्तान की माँग, बंगाल का अकाल, भयानक हिन्दू-मुसलिम दंगे और अंत में स्वराज्य-प्राप्ति, ये सभी घटनाएँ ऐसी थीं जिन्होंने जनता को बहुत प्रभावित किया। फिर भी साहित्य में इन सभी परिस्थितियों के उल्लेख अपेक्षाकृत बहुत कम मिलते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि इस क्रान्ति के समय साहित्यकारों का ध्यान साहित्य में ही केन्द्रित नहीं रह सका। इस काल की महत्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण तो वस्तुतः स्वतंत्र भारत के साहित्य में ही अधिक मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त निर्मित साहित्य में साहित्यकारों ने विशेष रूप से हिन्दू-मुस्लिम दंगों के करुणोत्पादक और रोमांचकारी वर्णन किए हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि सन् ४२ के आन्दोलन के उल्लेख भी आलोच्यकाल के साहित्य में नगण्य-से हैं।

मातृभूमि के प्रति प्रेम

मातृभूमि के प्रति प्रेम भावना से परिपूर्ण साहित्य की रचना अन्य चरणों की अपेक्षा इस चरण में स्वल्प है। पंत ने 'स्वर्णधूलि' (१९४७ ई०) की 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए लिखा है कि जिसका गौरव भाल हिमालय है, जिसकी स्वर्णधरा है, जिसमें गंगा-यमुना का जल है, वह मातृभूमि जन-जन के हृदय में बसी है। इस भूमि को राम-लक्ष्मण और सीता अपनी पदधूलि से पुनीत बना गए हैं। कृष्ण ने यहाँ गीता का गान किया था। यहाँ के तपोवन शान्ति निकेतन थे और यहाँ सत्य की किरण बरसती थीं। आज के युद्ध-जर्जर-जीवन में यही जन्मभूमि पुनः वसुधैव कुटुम्बकम् का मंत्रोच्चारण करेगी।[1] 'अणिमा' (१९४३ ई०)की 'भारत ही जीवन धन' शीर्षक कविता में कवि निराला ने भारत की प्रशंसा करते हुए स्वदेश के प्रति प्रेम प्रकट किया है।[2] इसी प्रकार सोहनलाल द्विवेदी के 'युगाधार' (१९४४)

१—पंत, सुमित्रानन्दन, स्वर्णधूलि, 'जन्मभूमि', पृ० २१

२—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अणिमा, 'भारत ही जीवन धन', पृ० ६७

की 'भारतवर्ष' शीर्षक कविता में देश-प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। इन सभी कविताओं में ऐसी कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं दृष्टिगोचर होती, जो इन्हें अपने वर्ग की अन्य कविताओं से पृथक् करे।

मैथिलीशरण गुप्त के 'अजित' (१९४७ ई०) में दादा श्यामसिंह कहते हैं कि उनकी माता रुग्ण थीं, दूसरी ओर भारतमाता की भी आर्त्तदशा थी अतः उन्होंने भारतमाता की सेवा करने के लिए अपनी माता को विष दे दिया।[१] इस प्रकार पात्रों में देश-प्रेम की भावना का आधिक्य प्रदर्शित करके लेखकों ने स्वदेश-प्रेम व्यक्त किया है।

'सुदर्शन' के 'सिकन्दर' (१९४७ ई०) नाटक में भारत के प्राकृतिक-सौंदर्य का वर्णन प्रधान है।[२] सिकन्दर अपने सिपाहियों से भारत के सम्बन्ध में कहता है कि अब तुम उस ज़मीन के मालिक बनने वाले हो जो चाँदी और सोना उगलती है, जिसके समुद्र में मोती है, जिसके जंगलों में संदल है और जिसकी मिट्टी में केसर है।[३] विदेशियों को भारत से प्रभावित दिखा कर स्वदेश की श्रेष्ठता सिद्ध करने की यह प्रणाली इसके पहले भी नाटककारों ने अपनाई है। इस नाटक में पुरु के चरित्र में स्वदेश-प्रेम की प्रधानता है। वह कहता है कि वह देश का झंडा ऊँचा रखने के लिए पैदा हुआ है, उसे मिट्टी में मिलाने के लिए नहीं पैदा हुआ।[४] सिकन्दर, आम्भि जैसे देशद्रोहियों से घृणा करता है।[५] देशप्रेमी व्यक्तियों

१—गुप्त, मैथिलीशरण, 'अजित', खंड, ५

२—'हिन्दुस्तान खूबसूरत मुल्क है। इसकी जमीन, इसके पहाड़, इसके बाग-बगीचे, इसके नदी-नाले सब खूबसूरत हैं। यहाँ कुदरत ने अपनी बरकतें और बहारें कदम-कदम पर खड़ी कर दी हैं। यहाँ के खेत सोना उगलते हैं, यहाँ के आसमान मोती बरसाते हैं, यहाँ की हवाएँ गीत सुनाती हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे देवताओं ने यह मुल्क बनाते वक्त अपना सारा कमाल और सारी कारीगरी ख़त्म कर दी है, और स्वर्ग की खुशियाँ ज़मीन पर बिछा दी हैं।

—'सिकन्दर', पहला अंक, दृश्य ७;

३—तीसरा अंक, दृश्य ५;

४—दूसरा अंक, दृश्य २;

५—दृश्य ३

को नायक तथा देशद्रोहियों को खल नायक के रूप में चित्रित करने की यह प्रणाली लगभग सभी साहित्यकारों ने अपनाई है। लेखकों ने विदेशियों को भी देशद्रोहियों से घृणा करते हुए दिखाया है, चाहे वे व्यक्ति विदेशियों को लाभ ही पहुचाते हों। यह दिखाकर साहित्यकारों ने सिद्ध किया है कि स्वदेश-प्रेम जैसे गुण का आदर शत्रु-मित्र सभी करते हैं। इसी नाटक के एक गीत में नाटककार ने भारत के दैवी रूप का वर्णन किया है।[१]

स्वर्णिम अतीत का चित्रण

भारत की प्राचीन संस्कृति से इस चरण में भी साहित्यकारों ने उसी प्रकार प्रेम प्रकट किया है जैसा अन्य चरणों के साहित्य में। भारत की जिन विशेषताओं तथा जिन वीर पुरुषों से पिछले चरणों में साहित्यकार प्रभावित हुए हैं, उन्हीं से इस चरण के साहित्य में भी। प्राचीन वैदिक तथा संस्कृत साहित्य के महत्व के संबंध में साहित्यकारों ने सदैव उल्लेख किए हैं। 'स्वर्णधूलि' में 'आर्तवाणी' के अन्तर्गत जो कविताएँ हैं वे कवि ने वैदिक मंत्रों तथा तत्सम्बन्धी अध्ययन से प्रभावित होकर लिखी हैं। सोहनलाल द्विवेदी ने 'प्रभाती' (१९४६ ई०) की 'प्रभाती' शीर्षक कविता में महाभारत के वीर योद्धाओं, कालिदास आदि महान् कवियों तथा राम, अशोक, चन्द्रगुप्त आदि महान् पुरुषों का स्मरण गौरवसहित किया है और भारत की पराधीनता पर क्षोभ व्यक्त किया है।[२] 'विक्रमादित्य' शीर्षक कविता में भी कवि ने भारत के अतीत गौरव का वर्णन किया है।[३] इसके अतिरिक्त काव्य के विषय भी ऐसे चुने गए हैं जिनसे कवि का भारत की प्राचीन संस्कृति से प्रेम प्रकट हुआ है। सोहनलाल द्विवेदी ने 'विषपान' (१९४३ ई०) में समुद्रमंथन तथा महादेव द्वारा विषपान की पौराणिक कथा और 'कुणाल' (१९४५ ई०) में सम्राट् अशोक के पुत्र कुणाल की कथा का वर्णन किया है। यशपाल का 'दिव्या' उपन्यास बुद्ध के काल का है। इस उपन्यास का विषय समाज में नारी की दशा और उसके अधिकारों से संबंधित है।

१—'जीते देश हमारा।
चरणों में सोने की लंका, कंठ में दरियाओं की माला,
इसका रूप अनूप मनोहर, सिर पे सुन्दर ताज हिमाला।'
—सुदर्शन, 'सिकंदर', पहला अंक, दृश्य १०

२—द्विवेदी, सोहनलाल, प्रभाती, 'प्रभाती', पृ० ७-११;

३—'विक्रमादित्य', पृ० ७८-७९

रामकुमार वर्मा के 'सप्त किरण' (१९४७ ई०) के 'राजरानी सीता' एकांकी में सीता की अशोकवाटिका के समय की कथा है। 'शिवाजी' (१९४४ ई०) एकांकी में उन्होंने शिवाजी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया है। शिवाजी का सिद्धान्त है कि युद्ध में स्त्रियों का अपमान न हो तथा बच्चों पर अत्याचार न हो। शत्रुपक्ष की स्त्री का वह माता का-सा सम्मान करते हैं। वे धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास रखते हैं और कुरान का भी आदर करते हैं।[१] रामकुमार वर्मा का 'विभूति' एकांकी संग्रह (१९४४ ई०) 'शिवाजी', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' तथा 'श्री विक्रमादित्य' इन तीन एकांकियों का संग्रह है। 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' तथा 'श्री विक्रमादित्य' में गुप्तकाल के दो महान् राजाओं की कथा है। इसी प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'नारद की वीणा' (१९४६ ई०) शीर्षक नाटक से उनका भी भारत की प्राचीन-संस्कृति से प्रेम प्रकट होता है। सुदर्शन ने 'सिकन्दर' में नैतिक दृष्टि से पुरु के चरित्र की उच्चता दिखाकर भारतीयों के चरित्र की श्रेष्ठता प्रदर्शित की है। प्राचीन भारतीय-संस्कृति में स्त्री के उच्च स्थान का उल्लेख पुरु इस प्रकार करता है कि भारत में स्त्री पर-पुरुष के सामने कभी सिर नहीं झुकाती।[२]

अस्तु साहित्य में भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन राष्ट्रीय आन्दोलन के अंतिम चरण में भी उसी प्रकार किया गया है जैसे विगत चरणों में।

सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार

क्रमशः गाँवों को राष्ट्रीय-आन्दोलन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। समाजवादी और साम्यवादी दल मजदूरों और किसानों की आर्थिक-उन्नति के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील थे ही। इसीलिए गाँवों तथा कृषकों की दीन-दशा का चित्रण अन्तिम दोनों चरणों के साहित्य में उल्लेखनीय हैं। इस चरण में गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित कवियों में सोहनलाल द्विवेदी प्रमुख हैं। ग्रामों की दशा और उनकी उपादेयता के सम्बन्ध में वे गाँधी के विचारों से बहुत प्रभावित हैं। उन्होंने काव्य में भारत के गाँवों की दीन-दशा का उल्लेख किया है।[३] भारत एक कृषक देश है। यहाँ कृषकों में जागृति और उनकी दशा

१—वर्मा, रामकुमार, 'शिवाजी', पृ० ८९

२—सुदर्शन, 'सिकन्दर', पहला अंक, दृश्य ९

३—'ये ग्राम उगाते अन्न धान
वे नगर प्रेम से चलते हैं,

में उन्नति होना भारत की उन्नति के लिए परमावश्यक हैं। कवि कृषकों से कहते हैं—

'जब तक तुम न जागोगे, तब तक
नहीं जगेगा हिन्दुस्तान,
हिन्दुस्तान बसा है तुममें
क्या तुम हो इससे अनजान ?'[1]

जातिगत भेद-भाव तथा रूढ़-रीतियों का विरोध सुमित्रानंदन पंत ने विशेष रूप से किया है। 'स्वर्णधूलि' में उन्होंने जाति-द्वेष तथा जाति-पांति की कड़ियों का उल्लेख किया है।[2]

स्त्रियों की समस्या ने प्रायः प्रत्येक चरण में साहित्यकारों को आकर्षित किया है। सामाजिक-समस्याओं का चित्रण विशेष रूप से कथा-साहित्य में हुआ है। इस चरण में भी उपन्यासकारों ने समाज में स्त्री की स्थिति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। सुदर्शन ने स्त्रियों की अवनत-दशा को भारतवर्ष की उन्नति के मार्ग की बाधा माना है। 'प्रेम पुजारिन' में नायक ने नायिका को पत्र में लिखा है: 'भारतवर्ष में जो अत्याचार स्त्रियों पर हो रहे हैं, उनको देख कर मेरा तो हृदय काँप रहा है। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि तुम्हारे माता-पिता उदार विचारों के होते हुए भी इसी जाल में जकड़े हुए हैं, जिसने भारतवर्ष की उन्नति में बड़ी बाधा डाल रक्खी है।[3] नारी की वर्तमान अवनत-दशा ने कभी-कभी साहित्यकारों को प्राचीनकाल में नारी की सामाजिक-

---

जो कृषक उगाते साग पात
वे नगर लूटते रहते हैं।
दधि-दूध और घृत की नदियाँ
ये नगर पिये ही जाते हैं।
भूखे रह कर नंगे रह कर
ये ग्राम जिये ही जाते हैं।'

—द्विवेदी, सोहनलाल, युगाधार, 'सेवाग्राम की आत्मकथा', पृ० १२

१—'हलधर से', पृ० ३३

२—पंत, सुमित्रानन्दन, 'काले बादल', 'भावोन्मेष', पृ० २५, ४२ (क्रमशः)

३—सुदर्शन, 'प्रेमपुजारिन', पृ० ३४

स्थिति के सम्बन्ध में भी विचार करने को प्रेरित किया जैसे यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास में ।

साहित्य के प्रत्येक चरण में उस वर्ग का उपहास किया गया है जो विदेशी सभ्यता का उपासक था। यह वर्ग बड़े-बड़े राजाओं, धनिकों या उच्चपदस्थ सरकारी अधिकारियों का था। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के 'संघर्ष' (१९४५ ई०) उपन्यास में डिप्टी साहब के घर का वातावरण अंग्रेजियत का है। चपरासी उनकी पत्नी को मेम साहब कहते हैं। मेम साहब की रहन-सहन यहाँ तक कि भाषा भी विदेशियों की-सी है। वे कहती हैं : 'आयन्दा इस माफिक होगा तो फाइन (जुर्माना) किया जायगा। इस बार माफ किया—आगे से माफ नहीं होगा।' इस पर उपन्यास के एक अन्य पात्र शर्मा जी अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं—'इन हिन्दुस्तानियों पर भी क्या फटकार है। अंग्रेज बनने को मरे जा रहे हैं। अंग्रेज तो बनते नहीं, हिन्दुस्तानी भी नहीं रहते—दोनों दीन से जाते हैं। यह दासता का परिणाम है। गुलाम की महत्वाकांक्षा यही रहती है कि वह भी अपने मालिक जैसा बन जाय।'[1] इसी प्रकार 'विसर्जन' (१९४४ ई०) उपन्यास में बैरिस्टर मिस्टर चैटर्जी भी विदेशी-सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित हैं। लेखक ने इस सभ्यता का विरोध किया है।[2] सुदर्शन के 'प्रेमपुजारिन' उपन्यास में नायक बृजलाल इस बात पर दुखित होते हैं कि भारतीय विलायत की प्रत्येक वस्तु पर मुग्ध हो जाते हैं।[3] मोहनलाल महतो के 'एकाकी' (१९४५ ई०)

१—कौशिक, विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'संघर्ष', परिच्छेद २६, पृ० २५२

२—'बेला के पिता मिस्टर चटर्जी बैरिस्टर थे और केवल बैरिस्टर ही थे। विलायत की जो हवा वे अपने फेफड़ों में भरकर तीस साल पहले इस अभागे देश में आये थे वह उनके फेफड़ों से निकल कर उनके घर के भीतर आँधी बन गई थी। इस आँधी में उनकी भद्रता, सभ्यता और सहृदयता तीनों का लत्ता-लत्ता उड़ गया, पर साथ ही चटर्जी साहब ने कालों के इस देश में विलायत का जो बाग लगाया था वह फलने-फूलने लगा तो उनके विलायती दिमाग को भी मानो लकवा मार गया।'

—वियोगी, मोहनलाल महतो, 'विसर्जन', पृ० ९

३—'वे चाँदी के बहुमूल्य और पक्के गिलास छोड़ कर काँच के कच्चे और भद्दे गिलास खरीदते हैं, सरसों के तेल का ठंडा और लाभदायक दीपक छोड़ते हैं और दुर्गंधित तेल का अधिक मूल्य वाला गर्म और हानिकारक लैम्प खरी-

और 'फ़रार' (१९४५ ई०) उपन्यास भी सामाजिक ही है। 'एकाकी' उपन्यास में प्रजा पर ज़मीदारों के अत्याचार का वर्णन है।[१]

सुदर्शन ने 'नगीन' (१९४७ ई०) कहानी-संग्रह की 'पाप के पथ पर' शीर्षक कहानी में दिखाया है कि किस प्रकार विधवा लड़की विमाता के अत्याचारों से दुखित होकर पाप का पथ अपना लेती है।

रामकुमार वर्मा ने 'सप्तकिरण' के 'फेल्ट हैट' नाटक में पाश्चात्य वेशभूषा की अधिकता का उपहास किया है। सामाजिक अवनति के चित्रण में भी, इस चरण के साहित्य में, कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं दृष्टिगोचर होती।

देश की नैतिक अवनति का चित्रण

इस चरण के साहित्य में देश की सामाजिक अवनति के उल्लेख तो अन्य चरणों के साहित्य की अपेक्षा कम हैं ही, देश की नैतिक अवनति के उल्लेख भी नगण्य से ही हैं। केवल विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के 'संघर्ष' उपन्यास में रियासतों का वातावरण चित्रित किया गया है। रियासतों में राजा किस प्रकार विलासिता में डूबे रहते हैं, कर्मचारियों में कैसी प्रतिद्वन्दिता तथा षड्यंत्र चलते हैं इन्हीं सब बातों का विशद् वर्णन है। राजा साहब हाकिमों को एक भोज देते हैं जिसमें तहसीलदार, हाकिम परगना, पुलिस कर्मचारी तथा जिलाधीश सभी सम्मिलित रहते हैं। वे भोज में लखनऊ के एक बढ़िया होटल से अंग्रेजी भोजन तथा मूल्यवान शराब का प्रबन्ध करते हैं। इन राजाओं में खुशामद और चापलूसी की प्रवृत्ति इतनी अधिक है कि जिलाधीश के हँसने मात्र से राजा साहब अपना सारा परिश्रम सफल समझते हैं।[२] रियासतों की समस्या ने इस समय तक राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। इसीलिए साहित्यकार रियासतों की स्थिति की ओर आकृष्ट हुए हैं। इस चरण के साहित्य में भी साहित्यकारों ने उपन्यास तथा कहानियों के पात्रों में नैतिक अवनति का चित्रण किया है।

देते हैं, धोती उतारते हैं, टोपी पहनते हैं, संस्कृत भूलते हैं, अंग्रेजी सीखते हैं, हितोपदेश से घृणा करते हैं, फेयरी टेल्स शौक से मँगवाते हैं, कालिदास को समझ नहीं सकते, शेक्सपियर की शतमुख से कीर्ति गाते हैं।'

—सुदर्शन, 'प्रेमपुजारिन', पृ० ४९

१—वियोगी, मोहनलाल महतो, 'एकाकी', पृ० २०२

२—'कौशिक, विश्वम्भरनाथ शर्मा', 'संघर्ष', १३वाँ परिच्छेद, पृ० १२४

देश की आर्थिक अवनति का वर्णन

देश की आर्थिक अवनत-दशा के उल्लेख भी इस चरण में अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। द्वितीय महायुद्ध के कारण जनता को अन्न-वस्त्र का बहुत कष्ट था और मंहगाई बढ़ती जा रही थी। निराला ने 'बेला' (१९४६ ई०) में देश की मंहगाई के सम्बन्ध में लिखा है कि मंहगाई की बाढ़ बढ़ आई है और गाँठ की गाढ़ी कमाई छूट गई।[१] मैथिलीशरण गुप्त ने 'अजित' (१९४७ ई०) में भारत की दरिद्रता का वर्णन किया है। दादा श्यामसिंह कहते हैं कि सारा देश दरिद्र होकर मर रहा है। पेट के लिए यहाँ मनुष्य सब कुछ करते हैं तथा विदेशी सात समुद्र पार से भारत को लूट मार कर अपना घर भरते हैं।[२]

'चोटी की पकड़' (१९४६ ई०) में 'निराला' लिखते हैं कि देश में जाने कितनी मिलें खुल गई हैं जिनका मुनाफा विदेशियों के हाथ में जाता है।[३] निराला का विश्वास स्वदेशी में है। प्रभाकर रानी साहब से मिलता है और उन्हें समझाता है कि उसके यहाँ देशी कारोबार बढ़ाने के लिए कार्यकर्ताओं के केन्द्र हैं। देश में विदेशी व्यापारियों के कारण अपना व्यवसाय नहीं रह गया है। वह स्वदेशी का भाव घर-घर फैलाना चाहता है और इसमें रानी साहबा की सहायता चाहता है।[४] वृन्दावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी' (१९४६ ई०) उपन्यास में रानी लक्ष्मीबाई का सम्पूर्ण जीवन अंकित है। विशेष बात यह है कि यह उपन्यास सत्य पर आधारित है और गहन अध्ययन तथा सूक्ष्म अन्वेषण के बाद लिखा गया है। भारत की तत्कालीन आर्थिक-दशा का वर्णन करते हुए तांत्या टोपे कहते हैं: 'कलाकारों की कला, कारीगरों का शिल्प और अनेक लोगों की रोटी गई। अब धर्म-ईमान की बारी आई है। देश और जनता की रक्षा का समय आ गया है।'[५] यद्यपि यह वर्णन आलोच्य काल का नहीं है फिर भी इससे स्पष्ट है कि कंपनी के शासन के ही समय से भारत की जो अवनति कला, शिल्प तथा व्यापार में हुई थी, उसके प्रति भी हमारे साहित्यकार जागरूक रहे हैं।

१—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'बेला', पृ० ४६

२—गुप्त, मैथिलीशरण, 'अजित', खंड ५

३—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'चोटी की पकड़', ७वाँ परिच्छेद, पृ० ३७;

४—३७वाँ परिच्छेद, पृ० १६०

५—वर्मा, वृन्दावन लाल, 'झाँसी की रानी', पृ० २२०

परतंत्रता सम्बन्धी उद्गार

इस चरण के साहित्यकारों ने भारत की पराधीनता पर क्षोभ प्रकट किया है। 'प्रभाती' में कवि सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं कि संयोगिता रानी, यदि तुम ही जग जातीं तो हम पराधीन क्यों होते ?[१] 'प्रभात फेरी' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता प्राप्ति का दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं कि—

> **'या तो स्वतंत्र हो जायेंगे**
> **या तो हम मरमिट जायेंगे।'[२]**

सुदर्शन के 'सिकन्दर' नाटक में भी परतंत्र अवस्था पर करुणा व्यक्त की गई है। नाटक में सिकन्दर कहता है कि गुलाम के लिए न दुनिया में आराम है और न आदर। वह केवल दूसरों की सेवा करता है और दूसरों की मर्जी देख कर अपना सिर झुकाता है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'झाँसी की रानी' में यह सिद्ध किया है कि रानी स्वराज्य के लिए लड़ रही थीं।[३] इससे लेखक का स्वतंत्रता के प्रति प्रेम प्रकट होता है। इस चरण में परतंत्रता सम्बन्धी उल्लेख अल्प हैं।

उद्बोधन

भारतीयों को जागृत करने वाली उद्बोधन की कविताएँ भी इस चरण में अपेक्षाकृत कम हैं। सोहनलाल द्विवेदी की 'प्रभाती' में 'गढ़वाल के प्रति' शीर्षक कविता उद्बोधन की है। वैसे इस पुस्तक की समस्त कविताएँ स्वातंत्र्य-आन्दोलन के सम्बन्ध में हैं, साथ ही काव्य-कला की दृष्टि से भी उच्च कोटि की हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन संबंधी कलात्मक-साहित्य में सुमित्रानंदन पंत तथा सोहनलाल द्विवेदी की कलापूर्ण कविताएँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सोहनलाल द्विवेदी के 'युगाधार' में भी उद्बोधन के गीत हैं, जैसे—

१—द्विवेदी, सोहनलाल, प्रभाती, 'प्रभाती', पृ० ११;

२—'प्रभातफेरी', पृ० ३७

३—वे कहती हैं हमको एक बड़ा सन्तोष है। जनता हमारे साथ है। जनता सब कुछ है। जनता अमर है। इसको स्वराज्य के सूत्र में बाँधना चाहिए। राजाओं को अंग्रेज भले ही मिटा दें परन्तु जनता को नहीं मिटा सकते। एक दिन आवेगा जब इसी जनता के आगे होकर मैं स्वराज्य की पताका फहराऊँगी।'

—वर्मा, वृन्दावनलाल, झाँसी की रानी, पृ० १६५

'बढ़ उधर, हुंकार भर, हो
जिधर गर्जन घोर,
छीन ले झंडा कि जिनका
घट गया हो जोर।'[१]

'पूजा गीत' (१९४४ ई०) की तो अधिकांश कविताएँ उद्बोधन की ही हैं। कवि ने देश को जागरण की प्रेरणा दी है।[२] वे इस प्रकार देश के सैनिकों को प्रेरणा देते हैं—

'आज युद्ध की बेला।
बुझे मशाल न, तेल डाल लो,
अस्त्र शस्त्र अपने संभाल लो,
हैं तोपें हुंकार भर रहीं,
बापू बढ़ा अकेला।
आज युद्ध की बेला।
कोटि कोटि मेरे सेनानी।
देखें तुममें कितना पानी ?
अंतिम विजय हार अपनी है
है यह अंतिम खेला।
आज युद्ध की वेला।'[३]

कवि ने पिक से भी युग का राग गाने का आग्रह किया है।[४]

श्यामनारायण पाण्डेय ने 'जौहर' में अलाउद्दीन के रानी पद्मिनी पर

१—द्विवेदी, सोहनलाल, युगाधार, 'ओ तरुण !', पृ० ४७

२—'जाग ! सोये देश !
आत्महंता ! अब न सो तू !
जाग रण के बीज बो तू,
मर न बन कर भीरु, वर जय,
वीर का धर वेश।
जाग ! सोये देश !'
—द्विवेदी, सोहनलाल, 'पूजागीत', पृ० २५;

३—पृ० ५९-६०;

४—पृ० ९

आसक्त होने, चित्तौड़ निवासियों और अलाउद्दीन के युद्ध और पद्मिनी तथा अन्य राजपूत स्त्रियों के जौहर का वर्णन है। रानी पद्मिनी के जौहर की गौरव-कथा इस काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि ने भारतीयों को जागृति का संदेश दिया है।[1]

'स्वर्णधूलि' में कवि पंत ने एकता का उपदेश दिया है। उन्होंने जाति, धर्म तथा नर-नारी के भेद को दूर करने का आग्रह किया है।[2]

ब्रिटिश शासन से असंतोष

इस काल में भारतीयों का ब्रिटिश शासन से असंतोष का भाव तीव्रतम था। परन्तु साहित्य में इस संबंध के उल्लेख अत्यन्त अल्प हैं।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अजित' में ब्रिटिश शासन से तीव्र असंतोष के भाव

१—'तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥
× × ×
जगो तुम्हरी जन्मभूमि को
रौंद लुटेरे लूट रहे।
उठो तुम्हारी मातृभूमि के
जीवन के स्वर टूट रहे।
जगो, तुम्हारे अन्न वस्त्र पर
राह बनाई जाती है।
उठो तुम्हारी हरियाली में
आग लगाई जाती है।
जगो तुम्हारे नन्दन को
वैरी शोणित से सींच रहे
उठो द्रौपदी का आँचल
सौ सौ दुःशासन खींच रहे॥'

—पांडेय, श्यामनारायण, 'जौहर'

२—पंत, सुमित्रानंदन, स्वर्णधूलि, 'मनुष्यत्व', पृ० ३१

व्यक्त किए हैं।[१] ब्रिटिश-राज्य में भारतीयों की दयनीय-दशा का वर्णन करते हुए दादा श्यामसिंह कहते हैं कि ये कोटि-कोटि ब्रिटिश मात्र अपने शासक हैं। कुली-कबाड़ी भी यहाँ आकर हमारे हुजूर हो जाते हैं। उन्हीं का सब कुछ है, देश की धूल तक हमारी नहीं है।[२] पुलिस-विभाग से भी कवि को कम असंतोष नहीं है। दरोगा कहता है कि जो कुछ वह करे वही न्याय है। उसका अधिकार तो इतना है कि अगर हाकिम भी गड़बड़ करे तो वह उसे बंधवा दे। निरपराध होते हुए भी नायक को दरोगा जेल भिजवा देता है।[३] इस वर्णन के द्वारा लेखक ने दिखाया है कि पुलिस विभाग में कितनी धांधली चलती है। अंग्रेज-जाति में लेखक को अनेक अवगुण दृष्टिगत होते हैं। दादा श्यामसिंह कहते हैं कि अंग्रेजों का न्यायासन एक व्यवसाय बन गया है। हम लोगों का यही अहोभाग्य है कि हम बिना कर दिए इनके राज्य में साँस ले पाते हैं। भारत का रुपया विदेश ले जाने के लिए इनके राज्य में औषधियाँ तक लन्दन की हैं। इनकी इच्छा यही है कि हम हिन्दू-मुसलमान आपस में झगड़ें इसीलिए इनके मिशनरी स्वयं सीधे सच्चे बन कर हमें आपस में लड़ाते हैं। इनके राज्य में शिक्षा की भी सुव्यवस्था नहीं है। इन्होंने जो विद्यालय खोले हैं वह भृत्य-कृत्य की शिक्षा के लिए ही। इन्होंने हम लोगों को केवल घर पर ही नहीं दलित किया है वरन् बाहर भी कुली बनाकर छोड़ा है। इनकी जाति में डायर से वीर पुरुष हैं और इन्होंने रोलेट जैसे एक्ट बनाये हैं।[४]

वृन्दावनलाल वर्मा की 'झाँसी की रानी' में जनता के सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक-जीवन के चित्र तो हैं ही साथ ही अंग्रेजों की शासन व्यवस्था के भी उल्लेख मिलते हैं। लेखक ने दिखाया है कि कम्पनी का राज्य आतंक के बल पर ही चल रहा था। मि० गार्डन जब प्रेस का उल्लेख झांसी के राजा गंगाधर राव से कहते हैं तो राजा एक यंत्र अपने राज्य में भी मंगाना चाहते हैं। मि० गार्डन को डर लगता है। वे सोचते हैं कि ऐसा भयंकर विषधर झांसी

१—'मूर्तिमान ये श्वेत कुष्ट से हममें फूटे,
मरना भी है भला, पिंड यदि इनसे छूटे।'
—मैथिलीशरण गुप्त, 'अजित'

२—'अजित', खंड ५

३—खण्ड १

४— खंड ६

में न आना ही ठीक है। पुस्तकें निकलने, समाचार पत्र छपने से जनता सजग हो जायेगी और जिस आतंक के बल पर कम्पनी-सरकार राज्य चला रही है वह हवा हो जायेगा।[१] वृन्दावनलाल वर्मा का यह उपन्यास झांसी में १८५७ ई० की क्रान्ति और उसके दमन, रानी लक्ष्मीबाई के महान् त्याग और साहस का इतिहास है। पिछले चरणों के साहित्य के समान ही साहित्यकारों ने इस चरण के साहित्य में भी ब्रिटिश-शासन से असंतोष व्यक्त किया है। साथ ही यह असंतोष नवीन परिस्थितियों अथवा घटनाओं के कारण नहीं है। असंतोष के कारण मुख्यत: पुलिस और न्याय विभाग हैं।

समकालीन घटनाओं, समस्याओं तथा व्यक्तियों के उल्लेख

इस काल के साहित्य में समकालीन-घटनाओं और परिस्थितियों के उल्लेख भी साहित्यकारों ने किए हैं। यद्यपि ऐसे उल्लेख बहुत अल्प हैं फिर भी उनके द्वारा यह सहज ही में जाना जा सकता है कि किन विशेष घटनाओं से साहित्यकार अधिक प्रभावित हुए हैं। कवि सोहनलाल द्विवेदी ने प्रभाती की दो कविताएँ 'ऐतिहासिक उपवास' तथा 'व्रत समाप्ति' गाँधी जी के उपवास तथा उनकी सफल समाप्ति पर लिखी हैं। बंगाल के अकाल से भी जनता के हृदय में क्षोभ की लहर दौड़ गई। 'प्रभाती' की 'बुभुक्षित बंगाल' शीर्षक कविता बंगाल के अकाल पर लिखी गयी है। गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित 'प्रभाती' की 'अहिंसा अवतरण' कविता है। इसके अतिरिक्त 'सेवाग्राम', 'प्रभातफेरी' आदि कविताएँ भी हैं जिनमें स्थान-स्थान पर गाँधीवादी विचारों का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने खादी और स्वराज्य का भी उल्लेख किया है। 'प्रभातफेरी' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं :—

'खादी का बाना पहन लिया
आज़ादी ध्येय हमारा है।'[२]

'अखंड भारत' शीर्षक कविता में कवि ने हिन्दू-मुसलमानों की आपसी फूट का उल्लेख करते हुए लिखा है कि हम औरों से क्या लोहा लेंगे जब हमारे घर में ही फूट हो गई है ?[३] यद्यपि हिन्दू-मुसलिम संघर्ष इस चरण में तीव्रतम था

१—वर्मा, वृन्दावनलाल, 'झाँसी की रानी', पृ० १०९

२—द्विवेदी, सोहनलाल, प्रभाती, 'प्रभात फेरी,' पृ० ३६;

३—'अखण्ड भारत,' पृ० ७३

और भयानक दंगे होना देश के लिए साधारण बात हो गयी थी फिर भी हिन्दू-मुसलिम दंगों के चित्र अथवा हिन्दू-मुसलिम-एकता का आग्रह इस चरण के साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता है। युगाधार की 'बेतवा का सत्याग्रह' शीर्षक कविता में कवि ने सत्याग्रह का वर्णन किया है।[१] 'पूजागीत' में कवि ने देश में क्रान्ति और फलस्वरूप सत्याग्रहियों की गिरफ्तारियों का उल्लेख किया है।[२]

'निराला' की 'बेला तथा नये पत्ते' (१९४६) में राजनीतिक-क्षेत्र की सामान्य-परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है, जैसे 'महंगू महंगा रहा' कविता में नेहरू जी के आने और व्याख्यान देने का वर्णन है।[३] इसी प्रकार 'झींगुर डट कर बोला' शीर्षक कविता में भी कवि ने वर्णन किया है कि गाँधीवादी गाँव में आकर गाँधीवाद के सम्बन्ध में समझाते हैं और इसी से रुष्ट होकर गाँव के जमींदार गोली चलवा देते हैं।[४] 'खून की होली जो खेली' शीर्षक कविता में कवि ने फुटनोट में लिखा है कि यह कविता विद्यार्थियों के देश-प्रेम के सम्मान में लिखी गई है। कवि ने लिखा है कि विद्यार्थियों ने इस खून की होली से लोगों से मान और आदर पाया है।[५] 'बेला' की एक कविता में कवि ने लिखा है कि काले-काले बादल छाये हैं मगर वीर जवाहरलाल नहीं आये।[६] एक अन्य कविता में कवि ने नेहरू के यशोगान के साथ उनके घर की स्त्रियों के स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लेने का भी उल्लेख किया है।[७]

'स्वर्णधूलि' की 'नरक में स्वर्ग' शीर्षक कविता में कवि ने राजतंत्र के प्रति

१—युगाधार, 'बेतवा का सत्याग्रह,' पृ० ६३-८६

२—'हथकड़ी है खनखनाती,
बेड़ियाँ हैं झनझनाती,
आज बन्दी के स्वरों में,
क्रान्ति के आह्वान जागे।
आज सोये प्राण जागे।

—द्विवेदी, सोहनलाल, 'पूजागीत', पृ० १११

३—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, नये पत्ते, 'महँगू महँगा रहा,' पृ० ९९-१०३;

४—'झींगुर डटकर बोला,' पृ० ५६-५७;

५—'खून की होली जो खेली,' पृ० ९७-९८;

६-७—झण्डे ले लेकर निकलीं, स्त्री और बहिनी पंडित की

—'बेला', पृ० ४६-४७

विद्रोह का एक छोटा सा कथानक लिखा है जिस पर वर्तमान घटनाओं और परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। राज्य में अकाल पड़ता है और प्रजा लगान नहीं देना चाहती फलस्वरूप क्रान्ति होती है। कविता के अन्त में कवि लिखते हैं कि आज क्षुधा है, श्रम शोषित है और नग्न प्रजा पीड़ित है।[१] 'काले बादल' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कवि लिखते हैं कि नव-स्वतंत्रता के प्रवेश के काले बादल उठते हैं।[२] '१५ अगस्त १९४७' शीर्षक कविता स्वतंत्रता-दिवस पर लिखी गई है। कवि ने स्वतंत्र भारत की जयजयकार की है। महात्मा गाँधी तथा राष्ट्र-नेताओं का जयगान किया गया है और अन्त में भारत तथा विश्व के लिए मंगल-कामना के साथ कविता की समाप्ति की गई है।[३] 'ध्वजा वंदना' में ध्वजा की वंदना और जन-मंगल की कामना की गई है।[४]

मैथिलीशरण गुप्त के 'अजित' में क्रान्तिकारी-विचारधारा का वर्णन है। नायक क्रान्ति-समिति में सम्मिलित हो जाता है[५] और यह भी कहता है कि मैं स्वयं अहिंसा-धर्म मानता हूँ परन्तु उसकी भी कोई मर्यादा होती है।[६] लेखक का हिन्दू-मुसलिम एकता में पूर्ण विश्वास है। वे लिखते हैं कि मुसलमान वही हिन्दू हैं जिन्होंने अपना धर्म और वंश छोड़ दिया है। बहुत प्रयत्न किये जाते हैं परन्तु यह प्रश्न जैसे का तैसा ही है। हमें आपस में तो प्रेम से ही रहना होगा। हमें चाहिए कि हम पहले औरों से अपना राज्य ले लें फिर चाहे उसे मार्क्स के विचारानुसार गढ़ें अथवा गाँधी के।[७] कवि का यह कथन राजनीतिक-परिस्थितियों से प्रभावित है। देश में गाँधीवादी विचारों का विरोध समाजवादी और साम्यवादी दल कर रहे थे और मुसलिम-लीग पाकिस्तान के बनने पर बल दे रही थी। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन सन् ४२ से तो प्रचलित हो ही गया था।

महादेवी वर्मा द्वारा संपादित 'बंग दर्शन' में बंगाल अकाल पर लिखी गई नौ कवितायें संग्रहीत हैं। इन सभी कविताओं में बंगाल के अकाल के रोमांच-

---

१—पन्त, सुमित्रानन्दन : स्वर्णधूलि, 'नरक में स्वर्ग,' पृ० ४०;

२—'काले बादल,' पृ० २५;

३—'१५ अगस्त १९४७,' पृ० १०९-११०;

४—'ध्वजा वंदना,' पृ० १११-११२

५—गुप्त, मैथिलीशरण : 'अजित', खण्ड ५;

६—खण्ड १२;

७—खण्ड ११

कारी चित्र प्राप्त होते हैं। कवियों की ये रचनायें क्षोभ से भरी हुई हैं। इनमें से हरिवंशराय 'बच्चन' की लिखी 'बंगाल का काल' तथा महादेवी वर्मा की 'बंग वन्दना' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि इन कवियों के काव्य पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है। पुस्तक के अन्त में 'अपनी बात' शीर्षक से महादेवी वर्मा ने एक छोटा-सा सम्पादकीय लेख भी लिखा है। वे लिखती हैं: 'हमारा मंत्रिमंडल भी जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व न कर सका अन्यथा स्थिति के इस सीमा तक पहुँचने में अवश्य ही बाधा पड़ती।'[१] बंगाल के अकाल का वर्णन हरिवंशराय 'बच्चन' इस प्रकार करते हैं :—

'मग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
नग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
देती परम तुष्टि की ताल,
पड़ा बंगाले में काल,
भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती !'[२]

इसमें सन्देह नहीं कि अन्य घटनाओं की अपेक्षा बंगाल के अकाल से साहित्यकार अधिक प्रभावित हुए हैं। वास्तव में इस चरण तक भारत के राष्ट्रीय-आन्दोलन को राजनीतिज्ञ व्यापक दृष्टिकोण से देखने लगे थे और इसीलिए वे साम्राज्यवादी-नीति का ही विरोध कर रहे थे। समाजवादी और साम्यवादी-दल पूँजीवाद के कट्टर विरोधी थे।

सुदर्शन के 'सिकन्दर' नाटक पर नवीन युग की परिस्थितियों का प्रभाव है। पुरु कहता है कि क्या दुनिया में कोई ऐसा देश है जो छोटे और कमज़ोर देशों पर सिकन्दर के धावे को ठीक समझकर उसकी प्रशंसा करता हो?[३] यह कथन आधुनिक साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का विरोध करता हुआ प्रतीत होता है सुखमनी देश के संकट के समय प्रेम-गीत गाने को पाप समझती है।[४] पुरु ने प्रजातांत्रिक-भावनाओं को भी व्यक्त किया है। प्रजा राजा को बदल सकती है, राजा प्रजा को नहीं बदल सकता। अगर प्रजा के दो-चार-दस हज़ार आदमी विद्रोही हो जायें

१—बंग दर्शन, 'अपनी बात,' पृ० ४
२—'बंगाल का काल', पृ० ८
३—सुदर्शन : 'सिकन्दर', द्वितीय अंक, द्वितीय दृश्य;
४—पंचम दृश्य

तो बादशाह उन्हें दबा सकता है परन्तु यदि सारी सेना राजा की आज्ञा मानना अस्वीकार कर दे तो राजा कुछ नहीं कर सकता।[1] रामकुमार वर्मा के 'सप्त किरण' के 'पुरस्कार' नाटक में भी दिखाया गया है कि नलिनी के पति राज सरकारी नौकर हैं। नलिनी प्रकाश से प्रेम करती है जो देश-भक्त है। प्रकाश भागा हुआ है और उसको पकड़ने वाले के लिए पुरस्कार घोषित हो चुका है। राज को अपने ऊपर ग्लानि होती है कि वे सरकार के नमक-हलाल नौकर कहलाने के लिये अपने ही भाइयों और बहनों पर अत्याचार करते हैं परन्तु प्रकाश को गिरफ्तार नहीं कराते। तीनों व्यक्ति देश की स्वतंत्रता के लिए जीवन-दान करने का संकल्प करते हैं। स्वातंत्र्य-संग्राम के कारण साहित्य में ऐसी अनेक परिस्थितियों का चित्रण हुआ और साहित्यकारों ने सदैव सहानुभूति देश सेवकों के साथ ही दिखाई है। राज का हृदय परिवर्तन ऐसा ही उदाहरण है।

सेठ गोविन्ददास के इस चरण के नाटकों में भी राजनीतिक-परिस्थितियों का वर्णन मिलता है। 'महत्व किसे ?' में उन्होंने गाँधीवाद, काँग्रेस संस्था तथा उसके कार्यकर्त्ताओं के सम्बन्ध में विचार किया है। उनके 'सन्तोष कहाँ ?' नाटक का कथानक मिनिस्टर मनसाराम के जीवन से सम्बन्धित है अतः राजनीति पर भी लेखक ने विचार किया है। लेखक ने दिखाया है कि काँग्रेस-मिनिस्ट्री से भी जनता को लाभ नहीं हो रहा है।[2] मिनिस्टर व्यवस्थापिका-सभा के सदस्यों से परेशान हैं।[3] देश में इस समय काँग्रेस के कार्य तथा गाँधीवादी नीति से ऊबने के चिह्न प्रकट होने लगे थे। ये उल्लेख इसके प्रमाण हैं। 'पाकिस्तान' नाटक में सेठ गोविन्ददास ने पाकिस्तान की समस्या पर अपने विचार प्रकट किये हैं। शान्तिप्रिय और जहाँनारा, जो धर्म विभिन्नता होते हुए भी पारस्परिक-स्नेह-सूत्र से जुड़े हुए हैं, पाकिस्तान के प्रश्न पर एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। नाटककार ने यह भी दिखाया है कि पाकिस्तान का प्रश्न शहरों के ही लिए है, गाँव के हिन्दू-मुसलमान प्रेम से भाई-भाई के समान ही रहते हैं।[4] पीरबख्श और दुर्गा क्रमशः पाकिस्तान और अखण्ड-भारत के समर्थक हैं। लेखक ने कल्पना की है कि देश का बंटवारा हो जाता है परन्तु अल्पसंख्यकों के प्रश्न को लेकर दोनों राज्यों में झगड़ा उठ खड़ा होता है। फलस्वरूप जहाँनारा और अमरनाथ मिनिस्ट्री से

१—सुदर्शन : 'सिकन्दर,' तृतीय अंक, छठा दृश्य

२-३—गोविन्ददास, सेठ : 'सन्तोष कहाँ ?' चतुर्थ अंक;

४—प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य

त्याग-पत्र देकर दोनों भागों को मिलाने के लिए एक विराट्-आन्दोलन खड़ा करते हैं। इसी पर लेखक की भी पूर्ण आस्था प्रकट होती है। यह नाटक देश की सम-कालीन और महत्वपूर्ण पाकिस्तान-समस्या और देश के विभाजन के प्रश्न पर लिखा गया है। इस दृष्टि से साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

इलाचन्द जोशी के 'निर्वासित' उपन्यास पर भी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव है। वास्तव में इन घटनाओं का उपयोग वातावरण के सृजन के लिए किया गया है। इस उपन्यास में प्रतिमा ने अपने पत्र में सन् बया-लिस के आन्दोलन और सन् १९४३ ई० के बंगाल के अकाल का वर्णन किया है।[१] इस उपन्यास का नायक महीप काँग्रेसी है। वह बन्दी होता है और जेल में ही उसका देहान्त भी होता है। उपन्यास और कहानी-साहित्य की धारा पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का मुख्य प्रभाव इसी रूप में पड़ा है कि नायक और नायिकाओं को राष्ट्रसेवक और राष्ट्र-सेविकाओं के रूप में चित्रित किया गया है।

यशपाल ने अपने 'पार्टी कामरेड' में देश की राजनीतिक-स्थिति पर विचार किया है। इसमें उनके 'दादा कामरेड' की ही तरह क्रान्तिकारी-दल की कथा है परन्तु इस उपन्यास में उन्होंने देश के लिए क्रान्तिकारियों तथा काँग्रेसवादियों में समझौते और सहानुभूति को कल्याणकारी माना है। देश की स्थिति पर विचार करते हुए कामरेड पारस्परिक मेल में विश्वास करते हैं।[२]

१—'इसके बाद आया बंगाल का मनुष्य-भक्षी अकाल। यह दैवी दुर्भिक्ष नहीं था। युद्धजनित कारणों से उसकी उत्पत्ति हुई थी और मनुष्य-माँस लोभी अर्थपिशाचों द्वारा उसका पोषण हुआ था। मैं कलकत्ते गई थी और जो दृ य वहां की सड़कों पर मैंने देखा था उसका वर्णन तुम अखबारों में पढ़ चुके हो। पर विश्वास मानो, अखबारों के वर्णन उन प्रत्यक्ष लोमहर्षक दृश्यों की तुलना में मनोरंजक और नाटकीय लगते थे। मेरा निश्चित विश्वास है कि कोई भी अनुभूतिशील मानव-प्राणी ऐसा नहीं होगा जो उन दृश्यों को देखकर मानवत्व के महत्व पर अपनी आस्था कायम रख सके। मनुष्यों की अपेक्षा कुत्तों और सियारों की श्रेष्ठता में विश्वास होने लगता था।'

—जोशी, इलाचन्द्र : 'निर्वासित', दूसरा भाग, पृ० ३६६

२—'अगर हम बदला लेंगे तो क्या होगा ? होगा यह कि काँग्रेस वाले हम से बदला लेंगे और हम फिर उनसे बदला लेंगे। अंग्रेजों की पुलिस हम लोगों में शान्ति स्थापित कराने आयेगी। पुलिस से काँग्रेस और हम दोनों ही मार

भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' उपन्यास में भी राजनीतिक-परिस्थितियों का वर्णन है। रामनाथ के तीन पुत्र राजनीतिक दृष्टि से तीन मार्गों पर जाते हैं। उनका बड़ा लड़का दयानाथ काँग्रेसी है, दूसरा उमानाथ समाजवादी है और तीसरा प्रभानाथ, क्रान्तिकारी है। रामनाथ ब्रिटिश सरकार के समर्थक हैं और वे अपने पुत्र दयानाथ से भी काँग्रेस छोड़ देने का आग्रह करते हैं क्योंकि उनके विचार से शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार को मिटानेवाली संस्था जमींदारों और रईसों को कभी नहीं छोड़ सकती।[१] पुस्तक में काँग्रेस-जलसों, गिरफ्तारियों और लाठी-चार्ज आदि का वर्णन है।[२] मुख्य राजनीतिक-दलों का वर्णन उपन्यास में आ गया है। प्रभानाथ पकड़ा जाता है और जेल में ही विष खाकर आत्मघात कर लेता है। 'चोटी की पकड़' में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने बंग-भंग का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि विभाजन की आग छोटे-बड़े सभी के दिलों में एक साथ जल उठी। सम्वाद-पत्र प्रकाश्य और गुप्त रूप से उत्तेजना फैलाने लगे और गाँव-गाँव में स्वदेशी के केन्द्र खोले गये।[३]

सुदर्शन के 'नगीने' शीर्षक कहानी-संग्रह की एक कहानी पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का प्रभाव है। कहानी के नायक रामगोपाल दफ्तर में क्लर्क हैं। उनके और उनकी पत्नी के स्वदेशी-आन्दोलन में भाग लेने पर उनके साहब बहुत नाराज़ होते हैं। जब साहब रामगोपाल बाबू के कान पकड़ते हैं तो रामगोपाल बाबू इस अपमान को सहन नहीं कर पाते और साहब पर आक्रमण कर देते हैं। रामगोपाल बाबू के स्वाभिमान से प्रभावित होकर साहब उन्हें नौकरी से नहीं निकालते। कहानी साहित्य की धारा में विशेष रूप से अंग्रेज़ साहबों और मध्यम श्रेणी के क्लर्कों की परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। सभी दफ्तरों में ऊँचे पदों पर

खायेंगे। यही चाहते हो तुम? तुम्हें अंग्रेजों की पुलिस पर काँग्रेस से ज्यादा विश्वास है? आज काँग्रेस और लीग बेवकूफी कर अंग्रेजों को पंच बना रहे हैं, वही बात हम करें? काँग्रेस है क्या? कल हम तुम काँग्रेस के मेम्बर थे। हमार मेम्बरी के प्रतिज्ञा-पत्र में काँग्रेस मेम्बर होना जरूरी शर्त थी। जितने काँग्रेस मेम्बर हमने बनाये हैं, किसी दूसरी काँग्रेस पार्टी ने नहीं बनाये। हम काँग्रेस को समझा सकते हैं उसे तोड़ नहीं सकते....!'

—यशपाल : 'पार्टी-कामरेड'

१—वर्मा, भगवतीचरण : 'टेढ़े मेढ़े रास्ते,' पृ० १२;

२—पृ० ३१०

३—निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी : 'चोटी की पकड़,' प्रथम परिच्छेद, पृ० १०-११

उस समय अंग्रेज ही थे। इन अफ़सरों की मनोवृत्ति के सुन्दर वर्णन साहित्य में उपलब्ध हैं। 'चतुरीचमार' कहानी संग्रह की इसी शीर्षक की कहानी में 'निराला' ने देश में आन्दोलन के फैलने का उल्लेख किया है।

राष्ट्रीय-आन्दोलन के पंचम चरण में साहित्यकारों ने देश के नेताओं, विशेष रूप से युगपुरुष गाँधी, के प्रति आदर प्रकट किया था। आन्दोलन के इस अन्तिम चरण में भी कवियों ने गाँधी के सिद्धान्तों और कार्यक्रम में विशेष रूप से आस्था प्रकट की है। 'दिनकर' के 'बापू' (१९४७ ई०) काव्य में 'बापू' शीर्षक के अन्तर्गत कई छोटी कवितायें हैं। इस सभी कविताओं में कवि ने बापू के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। कवि ने बापू को शान्ति का दूत और सहज प्रेम का अधिकारी बताया है।[१] वे बापू की प्रशंसा में उनसे कहते हैं कि तू कामना-जयी, तापों से परे, एकरस और निर्विकार है।[२] कवि ने उन्हें ईश्वर के अवतारों के समकक्ष रखते हुए कालियुग का कृष्ण माना है।[३] असहयोग-आन्दोलन के प्रारम्भ से गाँधी को देवता का जो अनुपम स्थान देश और साहित्य में प्राप्त हो गया था, वह आन्दोलन के अन्तिम चरण तक अक्षुण्ण बना रहता है। बापू को समस्त दिव्य-गुणों का प्रतीक मानते हुए कवि ने लिखा है कि यदि बापू हारे तो जगतीतल का सौभाग्य क्षेत्र हारेगा और बापू की हार के साथ ही श्रद्धा, मैत्री, विश्वास तथा प्रेम सभी की हार होगी।[४] सोहनलाल द्विवेदी ने 'प्रभाती' की 'गाँधी', 'जिन्ना और जवाहर', 'गाँधी तीर्थ' या 'भंगी बस्ती', 'गाँधी मन्दिर', 'वीर सुभाषचन्द्र', 'राष्ट्रपति जवाहर', शीर्षक कविताओं में देश के नेताओं—गाँधी, जवाहर तथा सुभाष बसु—के प्रति श्रद्धा प्रकट की है। 'कोटि प्रणाम' शीर्षक कविता में कवि ने देश के त्यागी-नेताओं के प्रति आदर भाव प्रदर्शित किया है। 'युगाधार' में कवि ने, 'बापू के प्रति', 'रेखाचित्र', 'बापू', 'गाँधी', आदि कवितायें बापू के प्रति पूजा-भाव से प्रेरित होकर ही लिखी हैं। बापू को इस युग के कवियों ने नव-संस्कृति के दूत के रूप में देखा है। 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं :—

'तुम वर्त्तमान के कर्म गान !
तुम नवजीवन के नव विधान !

१—दिनकर, रामधारी सिंह : 'बापू', दूसरी कविता, पृ० ४;
२—आठवीं कविता, पृ० १८;
३—नवीं कविता, पृ० २१;
४—बारहवीं कविता, पृ० २८

दुर्बल दलितों के क्रान्तिघोष,
तुम पददलितों के शक्ति कोश !
मृत जीवन के तुम जन्म प्राण !
तुम नव संस्कृति के नव विधान ।[1]

'सेवाग्राम' सोहनलाल द्विवेदी जी की राष्ट्रीय-कविताओं का संग्रह है जो गाँधीजी की ७८वीं वर्षगाँठ पर उन्हें भेंट किया गया। निवेदन में कवि ने लिखा है कि ये रचनाएँ भैरवी, युगाधार, प्रभाती तथा पूजागीत से संग्रहीत की गयी हैं। द्विवेदी जी द्वारा संपादित 'गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ' (१९४४ ई०) में हिन्दी के तेलगू, मलयालम, कन्नड़, अंगरेजी, चीनी आदि भाषाओं के कवियों की कविताएँ भी संग्रहीत हैं। गाँधी की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। इस संग्रह में हिन्दी के सभी लब्धप्रतिष्ठ कवियों ने बापू के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।[2] गाँधी के आत्मिक-तेज का उल्लेख सुमित्रानन्दन पंत इन शब्दों में करते हैं—

'तुम माँसहीन, तुम रक्तहीन, हे अस्थि शेष, तुम अस्थिहीन।
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल, हे चिरपुराण, हे चिर नवीन ॥'[3]

महादेवी वर्मा शुद्ध संस्कृतगर्भित शैली में लिखती हैं—

'साँस का यह तन्तु है कल्याण का निःशेष लेखा,
घेरती है सत्य के शत रूप सीधी एक रेखा,
नापते विश्वास बढ़ बढ़ लक्ष्य है अब दूर जितना,
तोलते हैं श्वास चिर संकल्प का पाथेय कितना ?

१—द्विवेदी, सोहनलाल : युगाधार, 'बापू के प्रति,' पृ० १-२

२—गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ, रत्नाकर : 'गाँधीगोविन्द,' सत्यनारायण कविरत्न : 'गाँधी गौरव,' हरिऔध : 'दशमूर्ति,' मैथिलीशरण गुप्त : 'महात्मा गाँधी की जय बोल,' सियारामशरण गुप्त : 'पछत्तर वर्ष,' लोचनप्रसाद पाण्डेय : 'जयगाँधी,' माखनलाल चतुर्वेदी : 'निःशस्त्र सेनानी,' बालकृष्ण शर्मा नवीन : 'हे क्षुरस्य धारा पथ गामी !' सुमित्रानन्दन पंत : 'बापू के प्रति', रामकुमार वर्मा : 'विश्ववंद्य बापू', महादेवी वर्मा : 'प्रणाम', सुभद्राकुमारी चौहान : 'लोहे को पानी कर देना', जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : 'बापू के आँसू', बच्चन : 'गाँधी के जन्म दिवस पर भारतमाता को बधाई' आदि

३—गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ, 'बापू के प्रति', पृ० २२

साध कण कण की संभाले कम्प एक अकाम !
नित साकार श्रेय ! प्रणाम !'[1]

जहाँ एक ओर कवियों ने गाँधी तथा अन्य नेताओं के प्रति आदर प्रकट किया है वहाँ इस बात पर उन्होंने दुःख भी प्रकट किया है कि जनता विलासिता में पड़ अपने राष्ट्र-नेताओं को भूलती जा रही है। 'नगीने' कहानी संग्रह की 'लड़ाई' शीर्षक कहानी में सुदर्शन क्षोभ के साथ लिखते हैं कि राम, कृष्ण, शिवाजी, प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह, दयानन्द, गाँधी की तस्वीरें तो उड़ गईं और उनके स्थान पर एक्ट्रेसों की तस्वीरें टाँगी जाती हैं।

इस चरण में संस्कृति के प्रमुख अंग भाषा के सम्बन्ध में साहित्यकारों ने विचार नहीं किया। 'हिन्दी' ही राष्ट्रभाषा-पद के योग्य है यह एक प्रकार से सर्व-सम्मत विचार हो चुका था परन्तु उसका स्वरूप क्या हो, वह शुद्ध तत्सम संस्कृत शब्दों से परिपूर्ण हिन्दी हो या तद्भव और देशी शब्दों के साथ अरबी-फ़ारसी के सरल शब्दों से मिली-जुली 'हिन्दुस्तानी' हो यह विवादग्रस्त प्रश्न था और ये सब प्रश्न गम्भीर रूप ले चुके थे। शुद्ध-साहित्य में इन समस्याओं पर साहित्य-कारों ने कोई विचार नहीं किया।

राष्ट्रीयता के स्वरूप के सम्बन्ध में इस चरण में साहित्यकारों ने विशेष नहीं लिखा है। यद्यपि हिन्दू-मुसलिम-वैमनस्य इस काल में चरम सीमा पर था परन्तु यह भी स्पष्ट था कि भारत केवल हिन्दुओं का नहीं है। राष्ट्रीय-आन्दोलन सभी धर्मानुयायियों को साथ लेकर चला था और इसी से उसे तीव्रता मिली थी। पाकिस्तान की माँग से देश के हिन्दू बहुत चिढ़े थे। इस समस्या का वर्णन साहित्य में भी हुआ है। साहित्यकारों का विश्वास, देश के विभाजन में नहीं, अपितु 'अखंड भारत' में प्रकट होता है। इससे स्पष्ट है कि साहित्यकार काँग्रेस के प्रस्तावों से सहमत थे और हिन्दू-मुसलिम ऐक्य में ही विश्वास करते थे।

सामूहिक रूप से इस चरण के साहित्य पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का प्रभाव सबसे कम दिखाई पड़ता है। असहयोग-आन्दोलन के उपरान्त राष्ट्रीय-आन्दो-लन का प्रभाव साहित्य पर क्रमशः क्षीण होता गया है और इस चरण के साहित्य पर तो वह अत्यल्प है। इसका प्रमुख कारण आन्दोलन का रूप वैधानिक हो जाना ही प्रतीत होता है।

१—गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ, 'प्रणाम', पृ० २५

उपसंहार

हिन्दी साहित्य के इतिहास के मध्ययुग में हिन्दी कवियों का संपर्क देश की राजनीति से नहीं रहा। मुगल राज-दरबारों में फ़ारसी-अरबी के विद्वान रहते भी थे और कुछ हिन्दी कवियों को भी संरक्षण दिया जाता रहा परन्तु हिन्दी के भक्त कवियों की रससिक्त वाणी तो जनता को ही आह्लाद पहुँचाती रही। 'भक्तन को कहा सीकरी सों काम ?' वाला कुंभनदास का दृष्टिकोण न केवल उनकी पीढ़ी के वरन् आगे आने वाली पीढ़ियों के कवियों के लिए भी मार्ग-प्रदर्शक सिद्ध हुआ। मध्यकालीन कवियों के काव्य में राजनीति सम्बन्धी उल्लेख इसलिए नहीं मिलते। रीतिकाल में भूषण जैसे कुछ कवि हिन्दू-राजाओं के दरबारों में रहे और उन्होंने जातीय-भावना से पूर्ण रचनाएँ भी कीं परन्तु वे अपवाद-स्वरूप ही कहे जा सकते हैं। भक्ति और रीतिकाल में कविता के क्षेत्र भक्ति और शृंगार तक ही सीमित रहे। यदि राजनीति अथवा शासन संबंधी कोई उल्लेख आये भी हैं तो वे केवल प्रसंगवश ही हैं। किन्तु आधुनिक काल में यह महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ कि साहित्य का जन-जीवन के साथ निकट संपर्क स्थापित हुआ। काव्य केवल भक्ति और शृंगार तक ही सीमित न रह सका और जीवन के विविध पक्षों, अनेक समस्याओं तथा नाना अनुभूतियों का चित्रण उसमें होने लगा। साहित्य में नवयुग का नवसन्देश लाने वाले भारतेन्दु ही थे। रामचंद्र शुक्ल उनके संबंध में लिखते हैं कि 'संवत् १९२० में वे अपने परिवार के साथ जगन्नाथ जी गये। उसी यात्रा में उनका परिचय बंगदेश की नवीन साहित्यिक प्रगति से हुआ। उन्होंने बंगला में नये ढंग के सामाजिक, देश-देशान्तर संबंधी, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक, उपन्यास आदि देखे और हिन्दी में ऐसी पुस्तकों के अभाव का अनुभव किया।'[1] इस प्रकार हिन्दी साहित्य में नवीन विषयों की ओर प्रवृत्ति बंगला साहित्य की प्रेरणा से आई। बंगाल से

१—शुक्ल, रामचंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४५९

ही पश्चिमी जातियों का सम्पर्क सर्वप्रथम हुआ था। यह स्वाभाविक ही था कि नवीन विचारों का प्रारंभ भी वहीं से होता।

स्वदेश-प्रेम की भावना तो साहित्य में भारतेन्दु के समय से ही अभिव्यक्त होने लगी थी परन्तु स्वदेश-प्रेम से युक्त स्वतंत्र गीतों का सृजन राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण के उपरान्त ही हुआ। मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल तथा श्रीधर पाठक ने मातृभूमि के प्रति प्रेम-भावना युक्त सुन्दर गीतों की सृष्टि की। कहीं इन गीतों में भारत की भौगोलिक-स्थिति और प्राकृतिक-सौंदर्य का वर्णन करते हुए उसका दैवीकरण किया गया है, कहीं संस्कृत की स्तोत्र-शैली में उसकी प्रशंसा है, कहीं बिल्कुल घरेलू ढंग के गीतों में भारत का गुणगान है। आन्दोलन के तृतीय चरण में इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विकास यह हुआ है कि स्वदेश-प्रेम की भावना नाटकों और उपन्यासों में भी अभिव्यक्त हुई। 'प्रसाद' के अधिकांश नाटक यद्यपि प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं किन्तु तो भी उनमें स्वदेश-प्रेम और मातृभूमि के लिए त्याग की अनुपम भावना विद्यमान है और इसीलिए स्वातंत्र्य-आन्दोलन की दृष्टि से से वे महत्वपूर्ण हैं। असहयोग और सत्याग्रह के कारण साहित्य में बलिदान की भावना प्रधान हो गई है। नायक और नायिकाओं के रूप में स्वदेशानुरागी और आत्मत्यागी व्यक्तियों का आदर्श चित्रित किया जाने लगा और यह परम्परा लगभग आन्दोलन की समाप्ति तक चलती रही। आन्दोलन के अंतिम दो चरणों में सुमित्रानंदन पंत ने स्वदेश-प्रेमयुक्त सुंदर गीतों की रचना की हैं। शैली की दृष्टि से इन कविताओं में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। ये एक ओर यथार्थवाद से प्रभावित हैं और दूसरी ओर कलात्मकता की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं। भाषा तत्सम शब्दों से युक्त कोमल और कान्त है। हिन्दी-साहित्य की अन्य धाराओं में स्वदेश-प्रेम का चित्रण तृतीय चरण के उपरान्त क्रमशः कम होने लगता है और अंतिम चरण में यह अत्यल्प हो जाता है।

आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही साहित्यकारों ने प्राचीन भारतीय-संस्कृति में विश्वास प्रकट किया है और भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्रण करने में विशेष रूप से रुचि ली है। देश के महान सम्राटों, विद्वानों, दार्शनिकों, वीरों तथा पतिव्रता विदुषी नारियों पर साहित्यकारों ने विशेष रूप से अभिमान प्रकट किया है। वे यह वर्णन करते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि सभी कलाओं, विद्याओं तथा सभ्यता का उद्गम स्थान भारत ही था। प्राचीन ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों को लेकर ही प्रथम चरण में काव्यों और नाटकों की

रचना हुई है। द्वितीय चरण से साहित्यकारों ने राजपूत काल के वीरचरितों का भी वर्णन किया है और प्रेमचंद ने कहानियों के लिए भी कुछ ऐसे कथानक स्वीकार किए हैं। प्रथम चरण के उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी, किशोरी-लाल गोस्वामी आदि ही प्रमुख हैं। इन लेखकों पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का उल्लेख-नीय प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। तृतीय और चतुर्थ चरणों के साहित्यकारों में जयशंकर प्रसाद तथा मैथिलीशरण गुप्त भारतीय-संस्कृति में पूर्ण विश्वास रखने वाले हैं। पाँचवे और छठे चरणों में भी साहित्यकारों ने अपनी संस्कृति से प्रेम प्रकट किया है। रामकुमार वर्मा ने कई ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। अंतिम दो चरणों में रामकुमार वर्मा तथा राष्ट्रीय कवि सोहनलाल द्विवेदी ने विशेष रूप से भारतीय-संस्कृति के स्वर्ण-काल का वर्णन किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के साहित्य. में सुमित्रानन्दन पंत ने सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रधान रखा है।

हिन्दी भाषा संबंधी आन्दोलन साहित्य में आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही चला आ रहा था। १८३५ ई० में अंग्रेजी-शिक्षा के प्रचार का प्रस्ताव कम्पनी सरकार ने पास कर दिया था। मुगल शासनकाल से ही अदालतों और दफ्तरों की भाषा फ़ारसी चली आ रही थी परन्तु इससे जनता को कठिनाई का अनुभव होता था। सरकार ने १८३६ ई० में इश्तहारनामे निकाले कि सब अदालती काम देश की प्रचलित भाषाओं में हुआ करे परन्तु दूसरे ही वर्ष १८३७ में मुसलमानों के प्रयत्न से उर्दू, हिन्दी-प्रदेश के सब दफ्तरों की भाषा कर दी गई। फलस्वरूप जनता की प्रवृत्ति उर्दू पठन-पाठन की ओर हुई।[१] दयानन्द सर-स्वती ने हिन्दी प्रचार में सहायता पहुँचाई। उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' (१८७५ ई०) हिन्दी में लिखा और सब आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी या आर्य-भाषा पढ़ना आवश्यक माना। पंजाब में तथा संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी ज़िलों में आर्यसमाज के कारण हिन्दी भाषा का बहुत प्रचार हुआ।

अदालतों और दफ्तरों की भाषा उर्दू तथा अंग्रेजी होने के कारण बालकों को अंग्रेजी और उर्दू पढ़ाई जाती थी जिसके फलस्वरूप हिन्दी पढ़े-लिखे व्यक्ति कम दिखाई पड़ते थे और जो थे भी वे समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। पाठकों की कमी के कारण हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन में भी कठिनाई होती थी। इसीलिए हिन्दी के साहित्यिकों को साहित्य-निर्माण के साथ-

---

१—शुक्ल, रामचंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२९-४३०

साथ हिन्दी-प्रचार का उद्योग भी निरन्तर करना पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी-प्रचार के लिए बहुत से नगरों में भाषण देने जाना पड़ा था। बाबू तोताराम के प्रयत्न से 'भाषा संवर्द्धिनी' नाम की सभा स्थापित हुई थी और १८८४ ई० में प्रयाग में 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा' स्थापित हुई थी। पंडित गौरीदत्त के प्रयत्न से मेरठ के आस-पास बहुत से देवनागरी स्कूल स्थापित हुए। नागरी प्रचारिणी सभा (स्था० १८९३ ई०) ने भी हिन्दी के प्रचार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। सन् १८९८ ई० में एक अत्यन्त प्रभावशाली डेपुटेशन सर एंटनी मेकडानल महोदय से मिला और नागरी संबंधी मेमोरियल अर्पित किया। अंत में सन् १९०० ई० में नागरी कचहरियों की भाषा घोषित कर दी गई।[1]

इस प्रकार राजनीति से सर्वथा स्वतंत्ररूप से हिन्दी-प्रचार आन्दोलन तथा हिन्दी-उर्दू-विरोध साहित्य में चला आ रहा था। भारतेन्दु-मंडली के लगभग सभी लेखकों ने अंगरेजी और उर्दू की खिल्ली उड़ाई है और नागरी के प्रचार पर बल दिया है। आन्दोलन के प्रथम चरण में साहित्यकारों ने उपन्यास के अतिरिक्त साहित्य के अन्य सभी रूपों में नागरी-प्रचार के लिए उत्साह प्रदर्शित किया है। दूसरे चरण के साहित्य में केवल काव्य में हिन्दी-प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया गया। क्रमशः राजनीति में भी हिन्दी का महत्व स्वीकार कर लिया गया परन्तु उसके स्वरूप के संबंध में मतभेद उठ खड़ा हुआ। इसीलिए आन्दोलन के अंतिम चरणों में राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में लेखकों ने अधिक विचार नहीं किया है। असहयोग-आन्दोलन में अन्य बहिष्कारों के साथ सरकारी स्कूल-कालेजों का भी बहिष्कार हुआ और राष्ट्रीय-विद्यालय खुले। इन विद्यालयों में हिन्दी भाषा को माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया। इससे पूर्व आर्यसाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों में भी हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया गया था। आन्दोलन के तृतीय चरण में, विशेषरूप से काव्य साहित्य में, हिन्दी भाषा के प्रचार का आग्रह कवियों ने दिखलाया। महाबीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी प्रचार में विशेष रुचि ली। इस तृतीय चरण में हिन्दी-आन्दोलन में वह तीव्रता नहीं रही जो प्रथम चरण में दिखायी पड़ती थी। बाद के चरणों के साहित्य में प्रधानतया प्रेमचंद ने ही हिन्दी-प्रचार के लिए उत्साह प्रकट किया है।

काँग्रेस की स्थापना के पूर्व ही ब्रह्म-समाज जैसे महत्वपूर्ण धर्म तथा समाज-

---

१—शुक्ल, रामचंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४८५

सुधार-आन्दोलन देश में चल रहे थे। इन सुधार-आन्दोलनों का प्रभाव जनता पर बहुत बड़ा। हिन्दी-साहित्य में देश की सामाजिक-अवनति का चित्रण तथा सामाजिक-सुधारों का आग्रह सर्वप्रथम भारतेन्दु ने किया। सामाजिक-कुरीतियों में से बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, विदेश-गमन-निषेध, वेश्या-समस्या, देवदासी-प्रथा, अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, बहुविवाह तथा विदेशी-सभ्यता का अनुकरण आदि का चित्रण ही प्रमुख है। आन्दोलन के प्रथम चरण में काव्य, नाटक और निबन्ध साहित्य में ही विशेषरूप से इन समस्याओं का चित्रण हुआ है और यद्यपि अधिकांश साहित्यकारों ने सामाजिक-सुधारों को देश के लिये हितकर माना है किन्तु कुछ सुधारों के विषय में मतभेद भी मिलता है। द्वितीय चरण में एक तो कृषकों और अछूतों की समस्याओं का चित्र प्रारम्भ हो गया है और दूसरे उपन्यास-साहित्य में भी सामाजिक-अवनति के चित्रण मिलने लगते हैं। सामाजिक-अवनति का वर्णन और सामाजिक-सुधारों का आग्रह तृतीय चरण के साहित्य में सबसे अधिक मिलता है। किसानों, मजदूरों तथा अछूतों की दीन-दशा का चित्रण इस साहित्य में और विशेषत: प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में अत्यन्त सफल हुआ है। चतुर्थ चरण के साहित्य, विशेषत: उपन्यास और कहानी साहित्य में, समाज-सुधार के कार्यक्रम का वर्णन हुआ है। अछूतों मजदूरों और किसानों की समस्याओं ने इस चरण में भी साहित्यकारों को आकृष्ट किया। स्त्री-शिक्षा के प्रचलित हो जाने के बाद भी समाज में स्त्री का जो आश्रित स्थान है उसका सुकुमार चित्रण पंत तथा जैनेन्द्र ने किया और महादेवी वर्मा ने इस विषय पर गंभीर विचारात्मक निबन्ध लिखे। विदेशी-संस्कृति का विरोध प्रत्येक चरण में किया गया। समाजवादी-विचारधारा के फलस्वरूप किसानों और मज़दूरों के जीवन का यथार्थवादी चित्रण अंतिम चरणों की विशेषता है। इसमें जमींदारों के अत्याचारों, सरकारी कर्मचारियों की कुटिलताओं तथा महाजनों की अर्थलोलुपता के सजीव चित्र मिलते हैं।

जिस प्रकार देश की सामाजिक-स्थिति का वर्णन साहित्य में भारतेन्दु-युग के प्रारम्भ से ही चल रहा था उसी प्रकार नैतिक अवनति का चित्रण भी हमें प्रारम्भ से मिलता है। प्रथम चरण के साहित्य में भारतीयों की फूट, बैर, खुशामद, आलस्य आदि का वर्णन बहुत हुआ है। द्वितीय चरण के साहित्य में भी स्वार्थपरता, आलस्य, निरुद्यमता, मात्सर्य आदि अवगुणों का उल्लेख मिलता है। तृतीय चरण में उपाधिलोलुपता का भी चित्रण किया गया है यद्यपि उपाधियों का उपहास तो भारतेन्दु साहित्य में ही मिलता है। शिक्षित वर्ग से भी

साहित्यकारों को संतोष नहीं है क्योंकि वे इसे शासकों का आश्रित समझते हैं। हिन्दू-मुसलिम दंगों की प्रतिच्छाया साहित्य पर भी पड़ी है और धार्मिक-विद्वेष का भी चित्रण हुआ है। शिक्षित-स्त्रियों के सामानाधिकारों की माँग के उल्लेख भी साहित्य में मिलते हैं। अंतिम दोनों चरणों के साहित्य में नैतिक-अवनति के उल्लेख अपेक्षाकृत अत्यल्प हैं।

ब्रिटिश-शासन से जनता को विमुख करने वाले कष्टों में से मुख्य आर्थिक था और आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही साहित्य में आर्थिक-कष्ट का वर्णन हो रहा था। कांग्रेस के प्रारम्भिक-अधिवेशनों में भी आर्थिक-समस्याओं को राज-नीतिक-समस्याओं के समान ही महत्वपूर्ण माना गया था। टैक्स, ऊँची सरकारी नौकरियों में अंग्रेज़ों तथा विशेषतया मुसलमानों आदि विधर्मियों की नियुक्ति होना, व्यापार सम्बन्धी हानि तथा लक्ष्मी के विदेश जाने के उल्लेख १८८५ ई० से पूर्व के साहित्य में भी मिलते हैं। विलायती वस्तुओं पर धन नष्ट करने का उल्लेख 'परीक्षा गुरु' उपन्यास में किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि सर्व-साधारण देशी कला-कौशल के विनाश से दुखी था और यह समझता था कि देश का धन फैशन आदि पर व्यर्थ ही विदेश चला जाता है। प्रथम चरण के साहित्य में भी महंगी, टैक्स, इनकम्-टैक्स, चुंगी, निर्धनता, अकाल, रोग, नमक-कर, कृषि की अवनति तथा स्वदेशी आदि के उल्लेख मिलते हैं। साहित्यकारों ने गोवध तथा अन्न-निर्यात का भी विरोध किया है। द्वितीय चरण में स्वदेशी-आन्दोलन साहित्यकारों का प्रिय विषय रहा। इसके अतिरिक्त राजकर्मचारियों को अधिक वेतन मिलने, कलाकौशल के विनाश आदि के उल्लख भी मिलते हैं। तृतीय चरण में अन्य सभी विषयों के अतिरिक्त विदेशी वस्तु बहिष्कार का विषय अत्यन्त प्रिय रहा। चतुर्थ चरण में आर्थिक दशा के बहुत उल्लेख हैं और केवल स्वदेशी का विषय प्रिय रहा है। पंचम चरण में कवि पंत ने भारत की आर्थिक-अवनत-दशा का वर्णन तथा चर्खे में आस्था प्रकट की है।

देश की परतंत्रता पर कवियों ने प्रारम्भ से ही दुःख प्रकट किया था, मुख्य-तया काव्य और निबन्ध साहित्य में। तृतीय चरण में काव्य-साहित्य में विशेष रूप से परतंत्रता पर क्षोभ व्यक्त किया गया है और अब परतंत्रता संबंधी इन उल्लेखों में कटुता दृष्टिगोचर होती है। इसके उपरान्त परतंत्रता सम्बन्धी उल्लेख कम मिलने लगते हैं और अन्तिम चरण में तो वे अत्यल्प हैं।

परतंत्रता के साथ-साथ उद्बोधन के गीत १८८५ ई० के पूर्व से ही हिन्दी-

साहित्य में मिलने लगते हैं। इन गीतों में एकता पर कवियों ने विशेष रूप से बल दिया है।

राजभक्ति की भावना भारतेन्दु युग के प्रारम्भ से ही प्राप्त होती है। हिन्दी के अधिकाँश साहित्यकार सरकारी संरक्षण में नहीं रहे अतः इनकी राजभक्ति स्वतः प्रेरित थी। भारतेन्दु-युग के अनेक साहित्यकार अवश्य पत्र-संपादक थे और उन्हें इसकी आशंका रहती होगी कि कहीं उनके पत्र का प्रकाशन बन्द न कर दिया जाये। इससे वे उग्र-विचारों को प्रकाशित नहीं कर पाते होंगे। परन्तु इतना होते हुए भी यदि इन कवियों की राजभक्ति हृदय की भावना से समन्वित न होती तो उसमें वह तीव्रता कदापि न आती जो उसमें पाई जाती है। साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि इन कवियों ने राजा के प्रति भक्ति दिखायी परन्तु साथ ही ब्रिटिश-शासन के प्रति असंतोष भी व्यक्त किया। बंग-भंग के कारण प्रथम चरण के अन्तिम वर्ष से शासन की कटु आलोचना साहित्य में प्रारम्भ हो गई। द्वितीय चरण में पुरानी परम्परा के साहित्यकारों जैसे, 'प्रेमधन' आदि ने, तथा उसी परम्परा का अनुसरण करने वाले कवियों, 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त ने राजभक्ति की भावना तथा शासन से संतोष प्रकट किया है परन्तु साथ ही बालमुकुन्द गुप्त ने लार्ड कर्जन के शासन से तीव्र असंतोष भी प्रकट किया है। तृतीय चरण के साहित्य में राजभक्ति की भावना तो समाप्त हो गई, केवल एक दो स्थलों पर अंग्रेजों की प्रशंसा अवश्य मिलती है। इस चरण से शासन के दोषों का विशद् वर्णन मिलता है। चतुर्थ चरण के कथा-साहित्य में शासन के प्रति तीव्र असंतोष और रोष की भावना विद्यमान है। अन्तिम दोनों चरणों के साहित्य में शासन सम्बन्धी उल्लेख अत्यल्प हैं।

समकालीन-घटनाओं के उल्लेख साहित्य में काँग्रेस की स्थापना से पूर्व भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतेन्दु युग के अधिकांश साहित्यकार पत्र-संपादक थे और इसीलिए देश के समाचारों के प्रति जागरुक थे। आंदोलन के प्रथम चरण में नील की खेती, इलबर्ट बिल, काँग्रेस के प्रारम्भिक प्रस्तावों आदि के संबंध में उल्लेख प्राप्त होते हैं। द्वितीय चरण में प्रवासी भारतीयों की समस्या, काँग्रेस, चर्खा, स्वराज्य तथा विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार आदि के उल्लेख मिलते हैं। तृतीय चरण के साहित्य में राज-नीतिक-क्षेत्र की महत्वपूर्ण घटनाओं, जैसे जालियानवाला बाग का हत्याकाण्ड, खिलाफ़त-आन्दोलन तथा खेड़ा-सत्याग्रह आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सम-

कालीन-घटनाओं के उल्लेख साहित्यकारों ने इस चरण में सबसे अधिक किए हैं। क्रान्तिकारी-दल के बल प्राप्त कर लेने पर इस सम्बन्ध के उल्लेख भी साहित्य में होने लगे। स्त्रियों ने भी राष्ट्रीय-आन्दोलन में भाग लिया और इस तथ्य के कारण पारिवारिक-परिस्थितियों का आकर्षक-चित्रण साहित्य में हुआ। कभी पति को राष्ट्रीय-विचारों तथा पत्नी को उसका विरोधी चित्रित किया गया, कभी पत्नी को राष्ट्र-सेविका तथा पति को सरकारी पिट्ठू दिखाया गया और कभी केवल संतान को ही राष्ट्रीय-विचारों का पोषक चित्रित किया गया है। परन्तु प्रत्येक परिस्थिति में विचार-परिवर्तन राष्ट्रसेवक का न दिखाकर प्रतिपक्षी का दिखाया गया है जिससे इस आन्दोलन में साहित्यकारों का विश्वास सिद्ध होता है। नायक और नायिकाओं को सदैव राष्ट्रसेवक और राष्ट्रसेविका के रूप में चित्रित किया गया है। पंचम चरण में महात्मा गाँधी की दांडी-यात्रा का उल्लेख मिलता है। महात्मा गाँधी ने प्राचीन अकृत्रिम सभ्यता में विश्वास प्रकट किया और ग्रामों की ओर विशेष ध्यान दिया। इसका प्रभाव यह हुआ कि सुमित्रानंदन पंत तथा सोहनलाल द्विवदी आदि कवियों ने ग्राम-जीवन के आकर्षक चित्र उपस्थित किए और लोक-जीवन के चित्रण में विशेष रुचि ली। उन्होंने काव्य की अनेक नायिकाएं भी ग्रामों से ही चुनीं। यशपाल ने क्रान्तिकारीदल का वर्णन विशेष रूप से किया और काँग्रेस तथा क्रान्तिकारी-दल के झगड़ों का भी उल्लेख किया। अंतिम चरण में साहित्यकारों ने महात्मा गाँधी के उपवास, बंगाल के अकाल तथा पाकिस्तान की समस्या के भी महत्व-पूर्ण चित्रण किये हैं। आँदोलन के प्रथम चरण में साहित्यकारों ने सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी तथा स्वामी दयानन्द का उल्लेख आदरपूर्वक किया है। द्वितीय चरण में श्रीधर पाठक ने गोपालकृष्ण गोखले के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। तृतीय चरण में साहित्यकारों ने गाँधी तथा तिलक के प्रति विशेष रूप से तथा देश के अन्य नेताओं के प्रति सामान्य रूप से आदर और श्रद्धा व्यक्त की है। इसका कारण यही है कि असहयोग के प्रारम्भ के साथ ही देश में नेताओं की पूजा प्रारम्भ हो गई। इसी चरण के साहित्य से महात्मा गाँधी को देवता के समान माना जाने लगा। चतुर्थ चरण से नेताओं के सम्बन्ध में उल्लेख अपेक्षाकृत कम मिलने लगते हैं। पंचम चरण के साहित्यकारों में सुमित्रानंदन पंत तथा सोहन लाल द्विवेदी ने विशेष रूप से गाँधी-दर्शन में आस्था और उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। अंतिम चरण में भी केवल महात्मा गाँधी के प्रति ही विशेष रूप से आदर प्रकट किया गया है।

दूसरे चरण के अन्त तक साहित्यकों ने राष्ट्रीय तथा हिन्दू-जातीय दोनों प्रकार के दृष्टिकोणों को अपनाया है। पुरानी परम्परा का पालन करने वाले कवियों ने भी अधिकतर हिन्दू-जातीयता के ही लिये विशेष रूप से आग्रह दिखाया है जैसे तृतीय चरण में 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त ने, परन्तु साथ ही 'त्रिशूल', 'माधव शुक्ल', आदि कवियों ने शुद्ध राष्ट्रीय-दृष्टिकोण ग्रहण किया है। 'हरिऔध' की जातीय-भावना में अंत तक कोई परिवर्तन लक्षित नहीं होता, परन्तु मैथिलीशरण गुप्त आगे चल कर राष्ट्रीय दृष्टिकोण ग्रहण कर लेते हैं और पारस्परिक-सौहार्द्र बढ़ाने के लिए मुहम्मद साहब के जीवन तक की घटनाओं पर काव्य रचना करते हैं।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय-आन्दोलन की अभिव्यक्ति तो हुई है किन्तु परोक्ष रूप में ही अधिक। आन्दोलन के कथानक को लेकर किसी महाकाव्य या बृहत् प्रवन्धकाव्य की रचना नहीं हुई। असहयोग-आन्दोलन के समय से ही महात्मा गाँधी ने सम्पूर्ण राष्ट्र को गति और दिशा की परन्तु उनको नायक बनाकर किसी सफल काव्य, नाटक अथवा उपन्यास की सृष्टि नहीं हुई। प्रबन्ध-काव्यों और महाकाव्यों में प्राचीन परम्परा को ही आज तक साधारणतया अपनाया जा रहा है। साकेत, प्रियप्रवास तथा कृष्णायन आदि महाकाव्य सिद्ध करते हैं कि रामचरित और कृष्णचरित के प्रति साहित्यकारों की आस्था आधुनिक समय में भी बनी हुई है। कुछ सफल मुक्तक कविताओं की रचना अवश्य राष्ट्रीय-आंदोलन के संबंध में हुई। संभव है कि यह आन्दोलन हिन्दी साहित्यकारों के लिए इतने निकट की वस्तु रही हो कि वे उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन न कर सके हों। नाटकों में भी ऐसा कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं है जो आन्दोलन के कथानक को लेकर चला हो। प्रसाद के नाटकों पर राष्ट्रीय-आन्दोलन का परोक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास और कहानी साहित्य में राष्ट्रीय-आन्दोलन के विविध रूप अवश्य मिलते हैं।

राष्ट्रीय-आन्दोलन की आत्मा मैथिलीशरण गुप्त तथा प्रेमचंद के साहित्य में अमर रहेगी। उन्होंने गाँधी दर्शन को पूर्णतः स्वीकार किया। सुमित्रानंदन पंत ने भी आन्दोलन के अन्तिम चरण में गांधी-दर्शन में आस्था प्रकट की है। इसके अतिरिक्त 'त्रिशूल', माधव शुक्ल, सुभद्राकुमारी चौहान, 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी आदि कवि राष्ट्रीय-आन्दोलन से विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं।

यदि शैली की दृष्टि से देखें तो प्रारम्भ में राष्ट्रीय-हिन्दी-साहित्य की शैली बहुत सीधी-सादी है। इस काव्य में अभिधा का ही विशेष रूप से प्रयोग हुआ

है। 'त्रिशूल' तथा माधव शुक्ल जैसे राष्ट्रीय-कवियों की भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का भी स्वच्छन्दता से प्रयोग हुआ है और उन्होंने उर्दू-छंदों में भी काव्य-रचना की है। वास्तव में इन कवियों का अभिप्राय केवल यह था कि उनके विचार अधिक से अधिक जनता तक पहुँच सकें। उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है। भाषा की सरलता और अभिव्यक्ति की सादगी का एक कारण यह है कि प्रचारात्मक-साहित्य उत्कृष्ट कोटि की कलात्मकता को साथ लेकर नहीं चल पाता है। दूसरा कारण यह भी है कि राष्ट्रीय-कवियों का काव्य अनुभूति प्रधान है और ऐसे साहित्य में सदैव सरल और प्रभावोत्पादक भाषा का ही प्रयोग होता है।

द्विवेदी युग के काव्य के गद्यात्मक तथा इतिवृत्तात्मक होने के कारण तब तक के राष्ट्रीय-साहित्य में उच्च कोटि की कलात्मकता के दर्शन नहीं होते। छायावाद की प्रतिष्ठा के साथ ही राष्ट्रीय काव्य के रूप में भी परिवर्तन दृष्टि-गोचर हुआ। इस काव्य में उच्च कोटि की कलात्मकता के दर्शन हुए और विषय गौण हो गया। कविवर निराला दलित-भारत की विधवा के सम्बन्ध में लिखते हैं :—

> **'वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी**
> **वह दीप-शिखा-सी शांत-भाव में लीन**
> **वह क्रूर-काल-तांडव की स्मृति-रेखा सी**
> **वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन**
> **दलित भारत की विधवा है।'**

इस पद्यांश को पढ़ कर पाठक के हृदय में विधवा के प्रति करुणा तो उत्पन्न होती ही है, परन्तु उससे अधिक उसकी कल्पना आकर्षक उपमानों और अनुप्रासयुक्त भाषा में उलझ कर रह जाती है। यही कारण है कि तृतीय चरण के बाद राष्ट्रीय-साहित्य की रचना अपेक्षाकृत अत्यल्प हुई है।

भारतीय-साहित्य में रस को काव्य की आत्मा माना गया है और उसमें रसात्मक-काव्य तथा रससिद्ध-कवीश्वरों की ही विशेष महिमा है। सामयिक-काव्य को सदैव शाश्वत-काव्य से गौण स्थान मिला है। दूसरी ओर 'कलाकला के लिए' का सिद्धान्त मानने वाले उत्कृष्ट-कला उसी को मानते हैं जिसमें अन्य कोई उद्देश्य निहित न हो। इसीलिए उच्चतम कोटि के साहित्यकारों ने राष्ट्रीय-आन्दोलन के वर्णन में बहुत रुचि नहीं ली है। द्विवदी-युग तक सामाजिक-दशा और देश-दशा आदि काव्य के सर्वसम्मत विषय माने जाते रहे परन्तु छायावाद

के प्रारम्भ से ही रीतिकाल के समान इस साहित्य की भी अपनी रूढ़ियाँ हो गई। यही काण है कि आंदोलन के तृतीय चरण में ही उसका चित्रण सर्वाधिक हुआ। उसके उपरान्त साहित्य में राष्ट्रीय-आन्दोलन को प्राथमिकता नहीं प्राप्त हुई। समाजवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद आदि अनेक वादों ने साहित्य की स्वाभाविक गति मोड़ दी।

साहित्यकार राष्ट्रीय-आन्दोलन के उन्हीं पक्षों से अधिक प्रभावित हुए हैं जो सामान्य जीवन को स्पर्श करते हैं। साहित्य और राजनीति के क्षेत्र विभिन्न हैं। राजनीति में जहाँ तथ्य और आँकड़े देकर लम्बे चौड़े प्रस्ताव उपस्थित किए जाते हैं वहाँ साहित्य में केवल उन भावनाओं का ही वर्णन होता है जिनसे प्रेरित होकर ऐसा किया जाता है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में भी ऐसा ही हुआ है। अपनी संस्कृति के प्रति अभिमान, परतंत्रता के प्रति क्षोभ, देश को जाग्रत करने का प्रयत्न, अपनी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक दशा सुधारने की इच्छा, विदेशी शासन में अन्याय और पक्षपात का अनुभव आदि राष्ट्रीय-आन्दोलन की मूलभूत-भावनाओं का चित्रण साहित्य में विशेष रूप से हुआ। विशिष्ट घटनाओं में से साहित्यकार उन्हीं के प्रति आकृष्ट हुए हैं जो नवीन थीं जैसे विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार, असहयोग, सत्याग्रह, जलियानवाला बाग का हत्याकाण्ड आदि। अंतिम चरण में राष्ट्रीय-आन्दोलन में वैधानिकता की प्रधानता हो गई। जनता क्रिप्स के प्रस्तावों जैसी जटिल समस्याओं में रुचि नहीं ले सकती थी इसीलिए इस प्रकार की घटनाओं के उल्लेख भी साहित्य में अत्यल्प हैं।

छायावाद युग के प्रारम्भ होते ही साहित्यकारों की राष्ट्रीय-जीवन से दूर रहने की प्रवृत्ति भी राष्ट्रीय-अन्दोलन का ही परोक्ष प्रभाव था। असहयोग के बाद देश में जो निराशा फैली वह कुछ अंशों में इसके लिए उत्तरदायी थी।

सत्याग्रह का दर्शन भारत के लिए नवीन नहीं है। नवीन यदि कोई वस्तु है तो वह राजनीति और उच्च नैतिक-आदर्शों का समन्वय है। भारत के राष्ट्रीय-आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह आस्तिकता, धर्म और नैतिकता पर आधारित है तथा सत्य और अहिंसा उसके अस्त्र रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो वह एक प्रकार से मध्ययुग के वैष्णव-आन्दोलनों के बहुत निकट है। दोनों में दलित-वर्गों के प्रति सहानुभूति, अहिंसा तथा आचरण की पवित्रता पर विशेष बल दिया गया है। सामूहिक रूप से आधुनिक-हिन्दी-साहित्य में भी इसी जीवन दर्शन को अपनाया गया है।